UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182968

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No H-81
D12S

Accession No GH. 959

Author ફોફફાલ

Title ઇનામી ફોફ ફાલ અને તોડી

This book should be returned on or before the date last marked below.

174

श्री स्वामी दादूदयाल की बाणी।

अंगबंध सटीक॥

जिसको पण्डित चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ने अनेक पुरानी
हस्तलिखित पुस्तकों से मिलान करके शोधा और
गूढ़ वाक्यों का आशय अनेक महात्माओं
की सम्मति से सम्पादित करके
वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपवाया।

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार॥ पद ५५॥

कापी राइट के लिये रजिस्टर की गई।

१००० प्रति छापी गई

मूल्य बिना जिल्द के ५)
,, जिल्द सहित ५।॥)
,, बढ़िया काग़ज़ पर २ जिल्दों में ७॥)

संवत १९६४ विक्रम, सन् १९०७ ई०

Copyrights registered under Sections 18 and 19, Act XXV of 1868.

पाठकों से सूचना।

दयालजी की बाणी के समझने में सुगमता के लिये आदि लिखी है, उसको पहले पढ़ लेना उचित है। कठिन शब्दों के भाव। के कोष (पृष्ठ ६०३–३२) में मिलेंगे और विविध विषयों का पता सूची से विषय अनुक्रमणिका (पृष्ठ ५७७–६०२) से मिलेगा।

विज्ञापन ॥

स्वामी दादूदयाल की वाणी संपूर्ण अंगबंध सटीक, जिसको पंडित चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ने अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों से मिलान करके शोधा है और दयालजी के गूढ़ वाक्यों का अर्थ अनेक महात्माओं की सम्मति से टिप्पण में दिया है, सो वैदिक यंत्रालय अजमेर में सुंदर मोटी टाइप में चिकने काग़ज़ पर छपकर तैयार हुई है। साखी और पदों के प्रत्येक विभाग एक २ पंक्ति में अलग २ स्पष्टरूप से छापे गये हैं, कायावेली ग्रंथ की संपूर्ण टीका और महात्मा चंपाराम कृत दृष्टांत संग्रह ग्रंथ से उत्तमोत्तम दृष्टांत उचित २ स्थानों पर टिप्पण में धर दिये गये हैं।

दयालजी की वाणी ३०० वर्षों से अधिक समय की बनी है, जिस समय सम्राट अकबरशाह का भारत में राज था तब इसकी रचना हुई थी। उस समय से अभी तक यह हस्तलिखित पुस्तकों में दयालजी के सांप्रदायिक महात्माओं के हाथों में रही है। यह पहला ही बार है कि पूर्णरूप से टीका सहित संपूर्ण वाणी (साखी और पद) छप कर प्रकट हुई है।

यह ग्रंथ सर्वजनों के पठन योग्य है। अक्षर २ में दयालजी ने आत्मज्ञान और उसकी महिमा दर्शाई है। मनुष्यों के कल्याण के उचित साधन सरल रसीले शब्दों में बताये हैं, जिनके पठनमात्र से मनुष्य प्रेम में मग्न होकर ईश्वर में लयलीन हो जाते हैं। निर्गुण भक्ति, योगादि ईश्वर की प्राप्ति के साधन अनेक भांति से बतलाये हैं, जिनका जानना प्रत्येक मनुष्य को उन्नति के लिये आवश्यक है।

आत्मज्ञान के साथ उस भारी सचाई को बतलाया है, जिससे मनुष्य आपस के विरोध छोड़ कर सब में अपने आत्म को ही देखता है, अर्थात् सर्व को अपनी ही तुल्य मानता है, जहां एक आप ही आप है, वहां वैर विरोध किससे हो। ऐसे अद्वैत ज्ञान को नानाभांति से बतला कर शाह अकबरशाह के दर्बार फतेपुर सीकरी में दयालजी ने हिंदू मुसलमानों में परस्पर मेल कराया था, जहां राजा भगवंतदास, वीरबल, अब्बुलफ़ज़लादि अकबर-

शाह के मंत्री उपस्थित थे। इसी प्रकार के धर्मोपदेश तथा सामाजिक और व्यावहारिक रीति संशोधन पर पक्षपात रहित निर्भयता से सच्चे मार्ग को दयालजी ने बतलाया है। उन में से अनेक बातें हमारे लिये अब भी उपयोगी हैं।

आत्मज्ञान, धर्मोपदेश, सामाजिक और व्यावहारिक रीति भांति के अतिरिक्त साहित्य का भी भंडार इस पुस्तक में भरा है, भाषा के पुराने रूप, पुरानी बोल चाल, पुरानी लिखावट के अनेक उदाहरण इस बाणी में मिलते हैं, जिन से विज्ञ जन पुरानी हिंदी का व्याकरण बना सकते हैं। यह विषय भूमिका में कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है।

पुस्तक के अंत में विषयानुक्रमणिका (Index) और कठिन शब्दों का कोष (भावार्थ) अकारादि क्रम से दिया गया है। आदि में सूचीपत्र भी रक्खा है। इन से विषय के खोजने में पाठकों को सुगमता रहेगी। पठन पाठन में सब प्रकार की सरलता रक्खी गई है। हस्तलिखित वा कुरीति से छपी पुस्तकों के पाठ में जो कठिनाइयां होती हैं, उन से यह पुस्तक बची हुई है और हम आशा करते हैं कि पाठक जन इन लाभों को अवश्य सराहेंगे।

६६४ पृष्ठ रायल अठपेजी में पुस्तक छपी है। मूल्य इस भांति से रक्खा गया है—

बिना जिल्द बंधी	५)
जिल्द कपड़े की	५॥)
उत्तम antique कागज़ पर दो जिल्दों में	७॥)

तीसरे प्रकार की बहुत थोड़ी पुस्तकें छपी हैं। जिन महाशयों को लेना हो निम्नलिखित पते से मंगालें। मूल्य अग्रिम न आने पर पुस्तकें बी० पी० द्वारा भेजी जायंगी, जिन के लेने के लिये मंगानेवाले की ज़िम्मेदारी होगी॥

चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी

जोन्सगंज-अजमेर।

योगीराज गोविन्ददासजी जो बाबा "सतिराम" नाम से प्रसिद्ध थे और अजमेर के दौलत बाग के समीप दलालों की बगीची में निवास करते थे, जिन्होंने ९५ वर्ष की अवस्था में रविवार माघ वदी १२ संवत् १९५६ तारीख २८ जनवरी सन् १९०० को शरीर त्यागा। यह चित्र बाबू ज्वालाप्रसादजी ने सन् १८८८ ई० में लिया था।

समर्पण ।

परम श्रद्धास्पद योगीराज

ब्रह्मनिष्ठ

यतेन्द्रिय वाक्सिद्ध सरल स्वभाव

परमोदार

महात्मा गोविंददासजी की कृपा से

मुझे

दयालजी की मूल पुस्तक, उस का

सारज्ञान,

और उस के पाठ में रुचि मिली थी,

अतः

यह ग्रंथ मैं उन्हीं के पुनीत स्मरण

में अर्पण करता हूं ।

चेदिकाप्रसाद त्रिपाठी ।

सूचीपत्र ।

विषय	अंग नंबर	संख्या साखियों की	पृष्ठ
भूमिका	.....	.....	१-२३
गुरुदेव कौ अंग	१	१५७	१-२३
सुमिरण	२	१३२	२४-४१
विरह	३	१५१	४२-६२
पारचा	४	३५३	६३-१११
जरणां	५	३३	११२-१६
हैरांन	६	२७	११७-२०
लै	७	४४	१२१-२६
निहकर्मी पतिव्रता	८	६६	१२७-३१
चितावणीं	९	१०	१४०-४१
मन	१०	१३६	१४२-५८
सूषिम जनम	११	९	१५९-६०
माया	१२	१७३	१६१-८५
साच	१३	१९५	१८६-२१०
भेष	१४	४७	२१०-१६
साध	१५	१२९	२१७-३३
ग्धि	१६	७३	२३३-४२
सारग्राही	१७	२५	२४३-४७
बिचार	१८	५०	२४८-५६
बेसास	१९	५७	२५७-६४
पीवपिछांण	२०	४५	२६५-६९
समर्थाई	२१	४४	२६९-७४
सबद	२२	३४	२७५-७९
जीवतमृतक	२३	५९	२७९-८७
सूरातन (शूरवीरता)	२४	८३	२८७-९७
काल (मृत्यु)	२५	९५	२९७-३०७

विषय	अंग नंबर	संख्या साखियों की	पृष्ठ
सजीवन	२६	५१	३०८-१३
पारिष	२७	४३	३१४-१८
उपजाणि	२८	२०	३१९-२२
दयानिर्बैरता	२९	४२	३२२-२८
सुंदरी	३०	३४	३२८-३२
कस्तूरिया मृग	३१	१५	३३२-३४
निंदा	३२	१७	३३४-३६
निगुणां	३३	२९	३३६-४०
बिनती	३४	८६	३४०-५०
साषीभूत	३५	२१	३५०-५२
बेली	३६	१७	३५३-५५
अबिहड़ (जो बिछुड़ै नहीं	३७	१३	३५५-५६
समस्त साषियों का जोड़		२६५८	

	राग नंबर	पदों के नंबर	पृष्ठ
गौड़ी	१	१-७९	३५७-८०
माली गौड़	२	८०-९५	३८०-८७
कल्याण	३	९६-१७	३८७
कान्हड़ो	४	१८-११०	३८८-४०२
अड़ाणौ	५	१११-१६	४०२-४
केदारो	६	११७-४२	४०४-१५
मारू	७	१४३-६६	४१५-२६
रांमकली	८	१६७-२१३	४२७-४८
आसावरी	९	२१४-४६	४४९-६१
सिंधूड़ो	१०	२४७-५४	४६१-६५
गूजरी	११	२५५-५७	४६५-६७
कलेंड़ो	१२	२५८-९	४६७-६८
पद्जियौ	१३	२६०	४६८-६९

विषय	राग नंबर	पदों के नंबर	पृष्ठ
भांणमली	१४	२६१-६४	४६६-७०
सारंग	१५	२६५-६	४७१-७३
टोड़ी	१६	२७०-८६	४७३-८०
हुसेनी बंगालौ	१७	२६०-९१	४८१
नट नाराइण	१८	२६२-६८	४८२-८४
सोरठ (हितोपदेस)	१६	२६६-३१२	४८५-६१
गुंड	२०	३१३-३३३	४९१-५००
बिलावल	२१	३३४ ५४	५००-१०
सूहो	२२	३५५-५६	५१०-११
कायाबेली ग्रंथ सटीक	,,	३५७-६४	५४५-७६
बसंत	२३	३६५-७३	५११-१५
भैरू	२४	३७४-४०६	५१५-२८
ललित (भक्ति)	२५	४०८-१२	५२८-३०
जैतश्री	२६	४१३-१४	५३०-३१
धनाश्री	२७	४१५-४५	५३१-४४
कार्फी	,,	४२२-२३	५३४-३५
आरती		४४१-४५	५४३ ४४
विषय अनुक्रमणिका	.....	.....	५७७-६०२
कठिन शब्दों का कोष	.....	....	६०३-३२

	अंग वा पद	साखी वा पद का नं०	पृष्ठ
गुजराती भाषा-			
नहिं मेलूं रांम	पद	२०	३६४-५
भाई रे तेन्हौ रूडौ थाये	,,	११३	४०२-३
मारा नाथजी	,,	११७	४०४
कब मिलसी पीव ग्रिह छाती	,,	१२३-२५	४०६-८
तूं छे मारो रांम गुसांई	,,	१२८-३०	४०६-१०
[illegible]र बाबा धूतो रे	,,	१४०	४१४

विषय	अंग वा पद	साखी वा पद का नं०	पृष्ठ
गुजराती भाषा–			
कोई कहो रे मारा नाथ ने	पद	१४६	४१७
अमे बिरहणिया रांम तुम्हारड़िया	,,	१४८	४१८
गोबिंदा गाइबा दे रे	,,	१५२–५४	४२०-२१
मन वाहला रे	,,	१५९	४२३
भगति मांगू बाप	पद	१७८-८०	४३२-३३
मूने येह अचंभो थाये	,,	२१३	४४८
वारीवार कहूं रे गहिला	,,	२५८-६	४६७ ६८
चरण देपाड़ तो परमांण	,,	२६१-६४	४६६-७०
ते मैं कीधेला रांम	,,	२७४	४७४-५
हूं जोइ रही रे वाट	,,	३१५	४६२
तूं घरि आवने माहरे रे	,,	३६६	५१६
माहरूं सूं जे हूं आपूं	,,	३६६	५२४
वाहला माहरा	,,	४१०	५०६
तद्भव रूप हिंदी			
मंगलाचरण	१	१-२	१
रांम नामं जलं कृत्वा	२	६१-६२	३२
निर्गुणं नांमं मई	२	७६ ८०	३४
अज्ञान मूर्ख हितकारी	१५	१११	२३१
मिश्रित भाषा–			
मन मतिवाला मधु पीवै	पद	५६	३८१
अम्ह घरि पाहुणां ये	पद	१६५	४२५
कब आवैगा, कब आवैगा	पद	१६६	४२८
मराठी भाषा–			
तुम्हे अम्हचा गुरू	८	६–१२	१२७-२८
अम्हचा सजणीं अम्हचा बंधू	पद	४०६	५२८
पंजाबी भाषा–			
आसिक रवदा	३	५८–५६	४६

विषय	अंग नंबर	साखी या पद का नंबर	पृष्ठ
पंजाबी भाषा–			
प्याला नूरदा	४	२४१	६३
ना कहिं दिट्ठा ना सुणया	६	२१	११६
पहले पहरे रैंणिदे	पद	४१	३७२–७३
आवे सजणां आव	,,	१०१	३६६
इथांई रहमान वे	,,	३४-३५	५०६–१०
सिन्धी भाषा–			
मींयां मैंडा आव घरि	३	५५	४८
भोरे २ तन करे	३	६०	४६
तैं डीनों ई सभु	३	६२-६३	५०
दादू गाफिल छोवतैं	४	२२-२५	६६
दादू पसु पिरंनि के	४	३५	६७
दादू हिण दरियाव	४	७१	७३
हुण दिल लगा हिक सां	४	१७५	८७
अठे पहर अरस मैं	४	२३३-३७	९५-६
अष्यूं पसण के पिरी	७	१९	१२३
दादू झांती पाये पसु पिरी	६	१४-१५	१४१
कुफर जे के मन में	१३	१६	१८७
दादू बगनी भंगा षाय करि	११	१११-१२	२००
दादू औरैं ही औला तकै	१३	११७	२०१
लंघण के लकु घणां	२५	३१	३००
दादू ओडो हूंवो पाण सैं	३१	७	३३३
हाल असां जो लालड़े	पद	१२१	४०५-६
पिरी तूं पाण पसाइ डे	,,	१७०-७१	४२८-६
अरस इलाही रवदा	,,	३५३-५४	५०६-१०
सुरिजन मेरा वे	,,	४१६	५३३
फारसी भाषा–			
इसक महबत मस्त मन	३	६४	५०

विषय	अंग नंबर	साखी वा पद का नंबर	पृष्ठ
फ़ारसी–			
आसिकां रा कबज़ कर्दः	३	६६	५१
अरवाहे सिजदा कुनंद	३	७०	५२
मौजूद पवर	४	१११-३९	८० ८२
आशिकां मस्ताने आलम	४	१४७	८३
बे खुद पवर होशियार बाशद	४	३१४	१०६
बे मेहर गुमराह गाफ़िल	१३	११	१८७
कुल आलम यके दीदम	२९	३८	३२७
बाबा मर्दे मर्दी गोइ	पद	९१	३९४
उर्दू भाषा–			
दादू आसिक एक अलाहके	३	६५--६९	५० ५१
हरदम हाज़िर होणां बाबा	१३	४७	१९२
इसक अजब अबदाल है	१४	४७	२१६
बंदे हाजिरां हजूर वे	पद	९४	३९६
उपावणहार रे मालिक	,,	११९	४०५
अल्लः नूर तुम्हारा	,,	१२०	४०५
अल्लः आली नूर का	३४	७७	३४८
हुसियार हाकिम न्याव है	पद	२८१	४७७
दिलदार मेरे कांन्हां	,,	२९०	४८१
मालिक मेहरवान करीम	,,	३३५	५०१
मेहरवान मेहरवान	,,	४१२	५३०
अल्लः आशिकां ईमान	,,	४२२	५३४-५
अल्लः तेरा ज़िकर फ़िकर करते हैं	,,	४२३	५३५

श्री दयालवे नमः ।

भूमिका ॥

दयालजी का जीवन समय ॥

श्री स्वामी दादूदयाल गुजरात देश के अहमदाबाद नगर में लोदीराम नागर ब्राह्मण के घर संवत् १६०१ विक्रम के फाल्गुण मास शुक्लपक्ष ८ मी गुरुवार के दिन प्रगट हुये थे। उस समय को आज ३६२ वर्ष हुये हैं। १८ वर्ष की अवस्था तक उसी नगर में रहे, उसके पीछे ६ वर्ष मध्य देश में फिरते हुये काटे। पश्चात् जयपुर राज्य में सांभर (जहां सांभर नाम का लवण बनता है) में आ बसे, कई वर्ष वहां रहे, पीछे आंबेर आये। आंबेर जयपुर राज्य की उस समय राजधानी थी। महाराजा भगवंतदास (राजा मानसिंह के पिता) का उन दिनों में वहां राज्य था। १४ वर्ष स्वामीजी आंबेर रहे, पीछे मारवाड़ बीकानेरादि राज्यों में विचर कर नराणे ग्राम में (जो राजपूताना–मालवा रेलवे पर फुलेरा और अजमेर के बीच अब एक स्टेशन है) विश्राम किया और संवत् १६६० के थावर (शनिवार) ज्येष्ठ बदी ८ मी को ५८ वर्ष २ मास और १५ दिवस की अवस्था पर शरीर त्याग दिया। इसी नराणे में दादूद्वारा नामक दादूपंथी साधुओं का मंदिर है और यही उनका मुख्य स्थान है, जहां प्रतिवर्ष फाल्गुण सुदी ४ से पूर्णमासी तक एक भारी मेला होता है, दूर २ से हज़ारों दादूपंथी साधु एकत्र होते हैं। दयालजी की जीवन लीला अति रोचक है, इस ग्रंथ का आकार बहुत बढ़ गया है, इसलिये स्वामीजी का संपूर्ण जीवनचरित्र और उनके ज्ञान उपदेशों का आशय दूसरी पुस्तक में अलग छपाया जायगा।

बाणी के भाग और महिमा ॥

दयालजी की बाणी के दो भाग हैं, एक में साखी और दूसरे में पद (भजन) हैं। आदि से अंतपर्यंत दोनों भाग ज्ञान उपदेशों और दयालजी के अद्भुत अनुभवों से परिपूर्ण हैं। साधारण लोक भाषा में गंभीर तत्त्वज्ञान

ऐसी रीति से दर्शाये हैं कि जिज्ञासू उनको सहज में समझ जांय और बाणी के पाठ से ही शब्दों के मीठे रस में मग्न होकर आनंद प्राप्त करें । योगीराज स्वामी दादूदयाल जी के वाक्य ऐसे प्रभावशाली हैं कि प्रेम से पढ़ने वाले के हृदय में तत्त्वज्ञान भले प्रकार से पहुंचा देते हैं ।

आत्मज्ञान की महिमा ॥

जैसा कि ईशावस्योपनिषद् के तीसरे मंत्र में कहा है कि आत्मज्ञान को संपादन न करके पुरुष आत्म हत्यारे बनते हैं अर्थात् अपना सर्वस्व गंवा देते हैं। उसी प्रकार से दयालजी ने भांति २ से अनेक बार कहा है कि आत्मराम की प्राप्ति बिना मनुष्य जन्म निष्फल जाता है । आत्मज्ञान से मनुष्य सब रोग दुःख भय क्लेश पीड़ादि संसार के तापों से छूट कर निर्भय निःशंक आनंद मंगलमय भाव को प्राप्त होता है, और सर्व प्रकार से तृप्त परिपूर्ण सर्वसंपत्तिमान सर्वमित्र समदर्शी शीतलहृदयवान होकर सहज भाव से जगत् में रहता है और उचित व्यवहार निपुणता से चलाता है । ऐसे आत्मपद की प्राप्ति की इच्छा किस को न होगी ? आत्मलाभ से केवल परलोक ही नहीं किंतु यह लोक अवश्य सुधरता है । दयालजी ने जीवन्मुक्ति ही को सच्ची मुक्ति बताया है, सो आत्मज्ञान जीवनकाल में पूर्ण आनंद देता है, जिस आनंद को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, उसे दुनियावी विषय सुख तुच्छ (फीके) दीखने लगते हैं, जैसे करोड़पती कौड़ी पैसों की ओर नहीं लुभाता, जैसे स्वादिष्ट ताज़े भोजन करके कोई बासी सड़े गले पदार्थों की तरफ़ नहीं देखता है, तैसे आत्मानंद को पाकर ज्ञानी संसार के भूसी के फोंकवत निःसार पदार्थों के पीछे अपना जीवन मूल नहीं गंवाते, किन्तु आत्म तत्त्व को अच्छी तरह से दृष्टि में सदैव रख कर दुनिया के व्यवहार करते हैं । दुनिया के व्यवहार किये बिना निर्वाह नहीं होता , सो दुनिया के व्यवहार उचित रीति भांति से करते हुये आत्मतत्त्व को सर्वोपर लक्ष्य में रखना उचित है । ज्ञानवान का आचार व्यवहार ऐसा निपुण और सफल होगा कि जिस २ पदार्थ की वह इच्छा करेगा वह २ पदार्थ उस को अवश्य प्राप्त होंगे, जैसा कि मुण्डकोपनिषद् में कहा है:—

यंयं लोकं मनसा संविभाति विशुद्ध सत्त्वः कामयते यांश्चकामान् । तंतं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥

दयालजी के अमृतरूपी वाक्य जिज्ञासू जनों को सर्व कामना देने वाले हैं। उनका आशय विस्तार पूर्वक हमने एक पुस्तक में लिखा है जो स्वामी "दादूदयाल के जीवनचरित्र और ज्ञान उपदेश" नाम से अलग छपेगी ॥

वेदांत की प्रक्रिया ॥

दादूजी की वाणी का अर्थ अच्छी तरह से समझने के लिये वेदांत की प्रक्रिया का ज्ञान अत्यावश्यक है। वेदांत की प्रक्रिया दादूपंथी साधु पंडित निश्चलदास कृत विचारसागर और वृत्तिप्रभाकर ग्रन्थों में बहुत उत्तम रीति से दीगई है। यह दोनों ग्रंथ हिंदी भाषा में हैं और सर्व जिज्ञासू जनों के लिये अति उपयोगी हैं। वृत्तिप्रभाकर विशेष कर के पंडितों के देखने लायक है, पर विचारसागर साधारण जिज्ञासू समझ सकते हैं, जिसने यह ग्रंथ देख लिया है उसको उपनिषद् भगवद्गीतादि का आशय समझना अति सरल होजाता है। वेदांत की प्रक्रिया जाने बिना इन ग्रंथों का आशय नहीं मिलता है। विचारसागर वा संस्कृत में विद्यारण्य स्वामी रचित पंचदशी वेदांत प्रक्रिया के मुख्य ग्रंथ हैं, इन को सर्व वेदांत वाक्यों की कूंची समझना चाहिये। जो महाशय वेदांत प्रक्रिया को अच्छी तरह से समझते हैं उनके लिये दयाल जी की वाणी का तात्पर्य समझना कुछ कठिन नहीं है ॥

वाणी में भाषायें ॥

दयालजी की वाणी में कई भाषायें आई हैं, अर्थात् हिंदी (बृज) मारवाड़ी वा जयपुरी, गुजराती, मरहठी, पंजाबी, सिंधी, फारसी इत्यादि। अधिक भाग बृज और मारवाड़ी वा जयपुरी में है, कुछ साखी और पद एक ही एक भाषा में हैं, पर कोई २ मिश्रित भाषाओं में भी हैं। स्वामीजी की मातृभाषा गुजराती थी, सो गुजराती शब्द कहीं २ हिंदी अथवा मारवाड़ी साखी और पदों में भी आगये हैं। इतनी भाषाओं का समझना कठिन काम है, पर जहांतक

बन सका हमने कठिन वाक्यों के अर्थ टिप्पण में कर दिये हैं और इस पुस्तक के अंत में एक कोष आकारादि क्रम से देदिया है जिस में कठिन शब्दों का भावार्थ मिल जायगा ॥

भाषा की प्राचीनता ॥

दयालजी ने अपने समय की लोक भाषा में यह काव्य रचे थे। उस समय को साढ़े तीन सौ वर्ष हो चुके हैं, उन दिनों की भाषा आज कल की हिंदी के सदृश न थी, वर्तमान बोल चाल तथा लिखने पढ़ने में बहुत कुछ अदल बदल होगया है। दयालजी की बाणी में जो शब्दों के रूप में अथवा मात्राओं में भेद देख पड़ते हैं उन को लिखने वालों की भूल न समझना चाहिये। भाषा पुराने ज़माने की है, उन दिनों में उस का वैसाही वर्ताव था। और जहांतक हम देखते हैं वह बर्ताव नियमानुसार था, जैसा कि आगे हम दिखाते हैं। यदि पाठकों को किसी तरह से प्राचीन भाषा अड़बड़ी जान पड़े तौ धैर्य से इस खुलासे को पहले पढ़लें, पीछे दयालजी की बाणी में प्रवेश करें।

पुरानी भाषा के उपयोग ॥

पुरानी भाषा की असलियत बनाये रखना हम ने अति आवश्यक समझा है और इस अभिप्राय को पूरा करने में हमने अति श्रम भी किया है। आदि में जो प्रति छापने के लिये हम ने लिखाई थी उस में पुरानी रीति भांति के शब्द वर्तमान हिंदी के रूपों में कर दिये गये थे, जब हम को इसका भेद मालूम हुआ तो हम ने उस प्रति को अनेक पुरानी पुस्तकों से मिलान करके फिर से शोधा और जो असली रूप मूल पुस्तकों में अधिकता से पाये सोई रक्खे, कहीं २ मूलपुस्तकों में ही दो भांति के रूप मिले, उन के शोधने में कठिनता हुई, पर जहां तक बनसका हम ने पुरानी रीति भांति को रक्खा है, जो कुछ इस में चूकें रहगई हैं उन को हम ने लिख लिया है सो दूसरी आवृत्ति में सुधर जांयगी। पुरानी रीति का उपयोग विशेष करके हिंदी की उत्पत्ति के इतिहास में आवेगा। जैसे संस्कृत से प्राकृत बनी थी वैसे प्राकृत से हिंदी बनी है। इस बनावट के रूप इस ग्रंथ में बहुतायत से मिलते हैं। इस-

लिये हिंदी के इतिहास में इस पुस्तक का विशेष उपयोग है। इस काम के साधन में महात्मा सुंदरदासजी के ग्रंथ भी अति उपयोगी हैं, किंतु जो कुछ ग्रंथ (सुंदरविलासादि) छापे गये हैं उन में असली भाषा नहीं रक्खी गई है। छापनेवालों ने अथवा उन के शोधकों ने शब्द वा मात्रा बदल दिये हैं। सुंदरदासजी की बाणी तथा और कई ग्रंथ उन के रचे अभी तक छपे भी नहीं हैं, तैसे ही दयालजी के अन्य शिष्यों के ग्रंथ भी संपादन करके छपवाने योग्य हैं। यदि हिंदी के प्रेमियों ने चाहा तो यह संपूर्ण ग्रंथ हम उनकी भेट करेंगे॥

पुस्तक का शोधन॥

दयालजी की बाणी जो हम ने छपवाई है सो बीस वर्ष के श्रम से हमने तैयार करी है। लगभग आठ पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों से (जो अति कठिनता से हमारे हाथ लगीं) अन्य पंडितों को साथ लेकर एक २ अक्षर हम ने मिलान कर शोधा है। जहां कहीं लेखकों की स्पष्ट भूल पाई वह सुधार दी है, जहां पाठांतर पाया वहां टिप्पण में भेद दिखा दिया है, जिस से पाठक आप देखलें कि दो पाठों में से कौनसा पाठ ठीक है। शेष हमने मूल पुस्तकों के अनुसार ही शब्दों के पुराने रूप अक्षर और मात्रा रक्खे हैं। अपने टिप्पणों तथा अन्य लेखों में हम ने वर्तमान हिंदी ही की रीति भांति रक्खी है, सो हमारे लेख मूल बाणी से निराले हैं॥

हस्त लिखित पुस्तकों का वृत्तांत॥

कुछ पुस्तकें हम को किंचित ही काल के लिये मांगे मिली थीं, उन को देख कर हमने पीछे मालिकों को देदीं, अब हमारे पास निम्नलिखित पुस्तकें हैं, इन्हीं से हमने विशेष मिलान किया है। टिप्पण में जो पुस्तकों के नम्बर दिये हैं सो नम्बर इस भांति से हैं:—

(१) पुस्तक नंबर १ उदयपुर की लिखी संवत् १८३६ मिती ४ मंगलवार मास (फटगया) शुक्लपक्ष॥

(२) दूसरी पुस्तक चानसेण की छावनी में लिखी संवत् १९०८ मार्गसिर वदी १२ बृहस्पतिवार। बाबा मंगलदास जी बोरिये की कृपा से मिली॥

(३) अंगबंधू बाणी लिखी संवत् १६०१ मिती श्रावण बदी ३ साध रामदयाल दादूपंथी ने चम्पावती मध्ये। संत राममुखजी जोधनेर निवासी से मिली ॥

(४) अंगबंधू बाणी लिखी आसौज सुद ५ संवत् १८८२ बावा सेसरामजी बावा विष्णुदासजी तिनके जिज्ञासी बालभज बुधरामजी ने ॥

(५) अंगबंधू त्रिपाठी सटीक लिखी कृष्णपक्ष १४ शनिवार संवत् १९३४, पंडित नंदरामजी नराणे के गुरद्वारे निवासी की कृपा से प्राप्त ॥

मूल बाणी का संपादन और भेद ॥

दयालजी के साधुओं के मुख से सुना है कि बाणी दयालजी ने अपने हाथ से नहीं लिखी। समय २ पर जब उनकी मौज आई अथवा किसी ने प्रश्न किया तब उन्होंने साखी और पद रचे और उनके शिष्यों ने लिख लिये। उन शिष्यों में रजबजी, जगन्नाथदासजी और संतदासजी के नाम बताते हैं॥

रजबजी ने जो पुस्तक लिखी उस को "अंगबंधू" कहते हैं, अर्थात् इसमें साखियों और पदों पर विषय सूचक अवांतर अंग रजबजी ने लगा दिये हैं, जिनसे दयालजी की बाणी का आशय मिलता है। और अंगबंधू पोथियों में एक अंग की साखी दूसरे अंग में बहुत कम दोहराई गई है ॥

दूसरी "हरडे बाणी" जगन्नाथदासजी और संतदासजी की लिखी है। इस के अंगों में अवांतर अंग नहीं दिये गये हैं और कितनी साखियां विषय संबंध से अंग अंगांतर में दोहराई गई हैं। जैसे गुरदेव के अंग की २० वीं साखी उपजणि के अंग में ८ वीं साखी डाली गई है। ऐसा पुनः लिखाव हमने इस पोथी में स्पष्ट दिखा दिया है। जो २ साखियां फिर कर लिखी गई हैं उनकी प्रथम पंक्ति के अंत में दोहरौनी के अंग का नम्बर और उस अंग की साखी का नंबर इस प्रकार से हमने दे दिया है, जैसे गुरदेव के अंग की २० वीं साखी के अंत में २८–८ लिखा है, जिससे २८ वें (उपजणि के) अंग की ८ वीं साखी में वह दोहराई गई है। इस प्रकार के अंक जहां २ मिलें उन से समझना चाहिये कि पहला अंक अंग का नम्बर बताता है और दूसरा अंक

साखी का नम्बर। इन अंकों से पाठकों को दोहराई साखियों के अन्य स्थान खोजने में सुगमता होगी॥

साखियों के अंक तो मूल पुस्तकों हीं में लगे हैं। अंगों के नम्बर हमने अपनी तरफ़ से दे दिये हैं, जिसमें उन का हवाला देने में सुगमता हो। आदि से अंत तक जो ३७ अंग हैं उनको क्रम से १ से ३७ नंबर दिये हैं॥

मूल पुस्तकों में पद प्रत्येक राग रागिनी के अलग २ नम्बर वार थे। उन सब को आदि से अंत तक हमने एक ही सिलसिले से नम्बर दिये हैं। इससे यह सुगमता है कि जहां कहीं पद का हवाला देना हो तो केवल पद का ही नंबर दिया जाय, हवाला देने में नंबर के साथ राग लिखने की आवश्यक्ता न रही॥

साखियों के दोहराने में कुछ फरक है, जो पांच पुस्तकों से हमने मिलान किया है उससे विदित हुआ कि दोहराई हुई साखियां सर्व पुस्तकों में नहीं हैं, कोई साखी किसी पुस्तक में है पर किसी दूसरी पुस्तक में वहां नहीं है॥ यह भेद भी हमने इस प्रकार से दिखा दिया है, पांच हस्तलिखित पुस्तकों के नंबर और वृत्तांत जो पहले हम लिख आये हैं उन पांचों को क्रम से क ख ग घ ङ चिन्ह दे दिये हैं। और यह चिन्ह उन साखियों की दूसरी पंक्ति के अंत में अथवा टिप्पण में दे दिये हैं जो किसी पुस्तक में उस ठिकाने नहीं मिली हैं, अर्थात् जिस साखी के अंत में—

(क) लिख दिया है वह साखी पुस्तक नम्बर १ में वहां नहीं है॥
(ख) ,, ,, ,, २ ,, ,,
(ग) ,, ,, ,, ३ ,, ,,
(घ) ,, ,, ,, ४ ,, ,,
(ङ) ,, ,, ,, ५ ,, ,,

जहां इन अक्षरों में से दो तीन अथवा चार एक ही साखी के अंत में दिये, हैं वहां क्रम से समझना चाहिये कि वह साखी दो तीन अथवा चार पुस्तकों में उस ठिकाने नहीं है, किन्तु शेष पुस्तकों में ही है।

साखियों की दोहरौनी सब पुस्तकों में एकसां न होने से प्रतीत होता है

(३) अंगबंधू बाणी लिखी संवत् १६०१ मिती श्रावण बदी १ साध रामदयाल दादूपंथी ने चम्पावती मध्ये। संत रामसुखजी जोधनेर निवासी से मिली ॥

(४) अंगबंधू बाणी लिखी आसौज सुद ५ संवत् १८८९ बाबा सेसरामजी बाबा विष्णुदासजी तिनके जिज्ञासी बालभज बुधरामजी ने ॥

(५) अंगबंधू त्रिपाठी सटीक लिखी कृष्णपक्ष १४ शनिवार संवत् १९३४, पंडित नंदरामजी नराणे के गुरद्वारे निवासी की कृपा से प्राप्त ॥

मूल बाणी का संपादन और भेद ॥

दयालजी के साधुओं के मुख से सुना है कि बाणी दयालजी ने अपने हाथ से नहीं लिखी। समय २ पर जब उनकी मौज आई अथवा किसी ने प्रश्न किया तब उन्होंने साखी और पद रचे और उनके शिष्यों ने लिख लिये। उन शिष्यों में रजबजी, जगन्नाथदासजी और संतदासजी के नाम बताते हैं॥

रजबजी ने जो पुस्तक लिखी उस को "अंगबंधू" कहते हैं, अर्थात् इसमें साखियों और पदों पर विषय सूचक अवांतर अंग रजबजी ने लगा दिये हैं, जिनसे दयालजी की बाणी का आशय मिलता है। और अंगबंधू पोथियों में एक अंग की साखी दूसरे अंग में बहुत कम दोहराई गई है ॥

दूसरी "हरडे बाणी" जगन्नाथदासजी और संतदासजी की लिखी है। इस के अंगों में अवांतर अंग नहीं दिये गये हैं और कितनी साखियां विषय संबंध से अंग अंगांतर में दोहराई गई हैं। जैसे गुरदेव के अंग की २० वीं साखी उपजणि के अंग में ८ वीं साखी डाली गई है। ऐसा पुनः लिखाव हमने इस पोथी में स्पष्ट दिखा दिया है। जो २ साखियां फिर कर लिखी गई हैं उनकी प्रथम पंक्ति के अंत में दोहरौनी के अंग का नम्बर और उस अंग की साखी का नंबर इस प्रकार से हमने दे दिया है, जैसे गुरदेव के अंग की २० वीं साखी के अंत में २८–८ लिखा है, जिससे २८ वें (उपजणि के) अंग की ८ वीं साखी में वह दोहराई गई है। इस प्रकार के अंक जहां २ मिलें उन से समझना चाहिये कि पहला अंक अंग का नम्बर बताता है और दूसरा अंक

साखी का नम्बर। इन अंकों से पाठकों को दोहराई साखियों के अन्य स्थान खोजने में सुगमता होगी॥

साखियों के अंक तौ मूल पुस्तकों हीं में लगे हैं। अंगों के नम्बर हमने अपनी तरफ़ से दे दिये हैं, जिसमें उन का हवाला देने में सुगमता हो। आदि से अंत तक जो ३७ अंग हैं उनको क्रम से १ से ३७ नंबर दिये हैं॥

मूल पुस्तकों में पद प्रत्येक राग रागिनी के अलग २ नम्बर वार थे। उन सब को आदि से अंत तक हमने एक ही सिलसिले से नम्बर दिये हैं। इससे यह सुगमता है कि जहां कहीं पद का हवाला देना हो तौ केवल पद का ही नंबर दिया जाय, हवाला देने में नंबर के साथ राग लिखने की आवश्यक्ता न रही॥

साखियों के दोहराने में कुछ फरक है, जो पांच पुस्तकों से हमने मिलान किया है उससे विदित हुआ कि दोहराई हुई साखियां सर्व पुस्तकों में नहीं हैं, कोई साखी किसी पुस्तक में है पर किसी दूसरी पुस्तक में वहां नहीं है॥ यह भेद भी हमने इस प्रकार से दिखा दिया है, पांच हस्तलिखित पुस्तकों के नंबर और वृत्तांत जो पहले हम लिख आये हैं उन पांचों को क्रम से क ख ग घ ङ चिन्ह दे दिये हैं। और यह चिन्ह उन साखियों की दूसरी पंक्ति के अंत में अथवा टिप्पण में दे दिये हैं जो किसी पुस्तक में उस ठिकाने नहीं मिली हैं, अर्थात् जिस साखी के अंत में—

(क) लिख दिया है वह साखी पुस्तक नम्बर १ में वहां नहीं है॥
(ख) ,, ,, ,, २ ,, ,,
(ग) ,, ,, ,, ३ ,, ,,
(घ) ,, ,, ,, ४ ,, ,,
(ङ) ,, ,, ,, ५ ,, ,,

जहां इन अक्षरों में से दो तीन अथवा चार एक ही साखी के अंत में दिये, हैं वहां क्रम से समझना चाहिये कि वह साखी दो तीन अथवा चार पुस्तकों में उस ठिकाने नहीं है, किन्तु शेष पुस्तकों में ही है।

साखियों की दोहरौनी सब पुस्तकों में एकसां न होने से प्रतीत होता है

कि यह दोहरौनी समय समय पर अनेक महात्माओं ने की है । इस से कुछ हानि नहीं है किन्तु विषय संबंधी साखी एकत्र करदी गई हैं, जिन से आशय समझने में सुगमता है, केवल लिखने वा छपावने का काम और खर्च बढ़ गया है ॥

हमने कोई साखी छोड़ी नहीं है, जहां तक हमने दोहराई साखी पाई हैं सब को इस पोथी में शामिल करलिया है । जो कोई साखी अंगबंधू पुस्तकों के अनुसार छोड़ दी गई है, उसका पता नीचे टिप्पण में लिखा गया है ॥ साखियों के ऊपर अवांतर अंग हमने अंगबंधू पोथियों से लेकर इस-में रख दिये हैं । इस प्रकार से हमारी संपादित पोथी सब भावों से पूरण है।

पोथी का आकार बहुत बढ़ गया है और छपाई तथा कागज़ का खर्च दूना होगया है । टाइप के अक्षर भी उत्तम बड़े रक्खे हैं और प्रत्येक साखी और पद के चरण एक २ पंक्ति में रक्खे हैं, जिस से काव्य के पठन में केवल सुगमता ही नहीं किंतु विषय का खोज सहज में मिल जाय और काव्य का रूप बराबर प्रतीत हो । काग़ज़ भी उत्तम चिकना मोटा मज़बूत लगाया है ॥

कठिन शब्दों का कोष, सूची तथा विषयानुक्रमणिका देकर सर्व प्रकार से ग्रंथ परिपूरण और उपयोगी कर दिया है ॥ संभव है कि किसी साखी वा पद का तात्पर्य ठीक न दिया गया हो । यदि कोई महात्मा ऐसी त्रुटियां पावें तो कृपा कर के उन वाक्यों का ठीक तात्पर्य मुझे लिख भेजें, तो दूसरी आवृत्ति में वह आशय प्रगट कर दिया जायगा ॥

छापने में कहीं २ अशुद्धियां होगई हैं जिन के लिये हम पाठकों से क्षमा के प्रार्थी हैं ॥

भाषा की विलक्षणतायें ॥

दयालजी की बाणी में अनेक शब्द ऐसे आये हैं जिन के रूप विभक्ति अक्षर संस्कृत अथवा वर्तमान हिंदी के शब्दों के रूपादि से विलक्षण हैं । उनका खुलासा पाठकों को उपयोगी होगा इसलिये संक्षेप से मुख्य २ बातों को यहां हम लिखते हैं ॥

स्वरों में भेद ॥

अ बदल कर इ होगया है जैसे स्मरण से सुमिरण, परमानंद से परिमानंद, सज्ञान से सियान, तरणं से तिरना, सवन से सवनि, इत्यादि ।

आ के बदले ए आया है जैसे दा से देना बना है तैसे किताब से कतेब, हिसाब से हसेब ॥

ऐ के बदले अै काम में लाये हैं जैसे ऐसे को अैसे लिखा है। यह रीति पुराने लेखों में प्रचलित थी और गुजराती में अब भी ए ऐ के बदले अे अै लिखे जाते हैं। दयालजी की बाणी के साखी भाग में हमारे लेखकों ने अै की जगह ऐ अनेक स्थानों में रखदी है, सो भूल से छपने में भी आगई है ॥

इ बहुधा य के बदले लगाई गई है जैसे—

लेइ,	देइ, जाइ,	बदले	लेय, देय, जाय	के
उदिम,	मधिम	"	उद्यम, मध्यम	के
भधि,	धनि (पद ३७८)	"	मध्य, धन्य	के
पुनि,	सुनि	"	पुण्य, शून्य	के
अनि,	अनिनि	"	अन्य, अनन्य	के
सति		"	सत्य (१३-१३७)	के
इह,	इक	"	यह, यक	के

ऐसे शब्दों में इ का उच्चारण य और इ के बीचले स्वर का होता है, जैसे अंग्रेजी e का bed में, देखो पृष्ठ १४३ Comparative Grammar of the Modern Aryan Languages of India by John Beames C. S., Vol. 1, 1872.

कहीं इ के बदले य लिखा गया है जैसे—

प्यंड,	भ्यंन बदले	पिंड,	भिन्न के
च्यंता	"	चिंता	के (२-३, ४-२६)
ब्यंब	"	बिंब	के (४-८४, १८-३)

अ इ उ के पीछे जब य व आते हैं तब दोनों मिल जाते हैं, अ+य सदृश अ+इ के मिलकर ए ऐ बन जाते हैं, अ+व सदृश अ+उ के मिलकर ओ

औ हो जाते हैं, इ+य सदृश इ+इ = ई और उ+व सदृश उ+उ के मिल कर ऊ होते हैं, * जैसे—

(१)	भय, लय के बदले	भै,	लै।
	हय (घोड़ा)	”	है
	हृदय के	”	हिरदै वा रिदै
	नयन	”	नैंन
	निश्चय	”	निहचे वा निहचै
	समय	”	समै

(२) लवण = लूण, अवसर = औसर, भवसागर=भौसागर, पवन= पौन, नव = नौ, हवस = हौंस, अवधूत = औधूत, इत्यादि।

(३) प्रियतम = प्रीतम, इंद्रिय = इंद्री।

(४) दिवस = दौंस।

ओ की जगह ऊ वा औ की मात्रा आइ हैं, जैसे—

पंचों	के बदले		पंचूं वा पंचौं (१-१०१)
ज्यों		”	ज्यूं वा ज्यौं
क्यों		”	क्यूं वा क्यौं
दोनों		”	दून्यूं वा दोनौं
को		”	कूं वा कौं
भूमि		”	भोमि

ए और ओ के बदले ऐ और औ की मात्रा आई हैं, जैसे होरी के बदले हौरी, मेरे के बदले मैरै, जैसे के बदले जैसै, अपने के बदले अपनैं, इत्यादि। तैसे आधुनिक कहे सुने और करो धरो के बदले कहै सुनै और करौ धरौ आये हैं। Hoernle महाशय ने अपने व्याकरण में लिखा है कि अ के साथ इ वा उ के आने से ऐ वा औ बन जाता है जैसे चलइ कहउं के बदले चलै

* See para 79 b page 47 of "a Grammar of the Hindi Language" by Rev. S. H. Kellogg, D. D., L. L. D., 1893.

कहीं बने हैं‡। इस नियम के अनुसार दयालजी की बाणी के लेखकों की रीति शुद्ध है।

ऋ और र के उपयोग में नीचे लिखे दृष्टांतों से भेद मिल जायंगे—

संस्कृत रूप	बाणी में लिखित रूप	संस्कृत रूप	बाणी में लिखित रूप
ऋषि	रिषि	सर्वस्व	सर्बस वा श्रबस
वृत्त	बिरष	समर्थ	सम्रथ वा समरथ
गृह	गेह	गर्व्व	ग्रब वा गरब
हृदय	हिरदै वा रिदै	परमानन्द	प्रमांनन्द वा
कर्म	क्रम (८–४४)		परिमांनन्द
सगुण	श्रगुण	श्रेष्ठ	सिष्ट (१६—६)
निर्गुण	नृगुण वा	दृष्टि	दिष्टि (४—८३)
	निगुण (८–८५)	सृष्टि	सिष्टि
निर्मल	नृमल वा त्रिमल		
निर्फल	नृफल वा	कुत्र, त्रिण	कत, तिण
	त्रिफल (८–६१)	प्रौढ	पौढा
कर्तार	कृतार वा करतार		
स्वर्ग	सरग वा श्रग	दृढ	दिढ वा डिढ
सर्व	सरब वा श्रब	अन्यत्र	अनत
सर्प	श्रप (४–३५०)	निर्धन	नीधना
श्रम	सुरम (१६–६,	ग्रहण	गहन
	२१–११)	दारिद्री	दारिदी
श्रोता	सुरता (१३–७३)	समुद्र	समंद

‡ See clause b para. 88 (3) page 53 of Kellogg's Hindi Grammar, and paras 71 & 77 pages 48 & 50 of "a Comparative Grammar of the Gaudian Languages" by A.F. Rudolph Hoernle, 1880.

व्यञ्जनों में भेद ॥

क के बदले ग हो गया है, जैसे —

उपकार	के बदले	उपगार ।	कौतुक	के बदले	कौतिग
सेवक	"	सेवग ।	युक्ति	"	जुगत
प्रकट	"	प्रगट ।	बक	"	बग
विकाश	"	विगास ।	चातक	"	चात्रिग
भक्ति	"	भगति ।			

ख की जगह ष प्राचीन हिन्दी में और गुजराती में तथा मारवाड़ी में सर्वथा लिखा जाता है । कैथी महाजनी वा शराफी में भी ख का रूप ष ही से मिलता है । इस प्रकार से ख की जगह ष का चलन मारवाड़ के बाहेर भी होता आया है । इस चलन के अनुकूल दयालजी की बाणी के लेखकों ने सर्वत्र ख की जगह ष ही लिखा है । ७०० वर्ष से ऊपर समय के तांबे के सिक्के जो दिल्ली के बादशाहों (शमसुद्दीन अल्तमश सन् ६०७ हिजरी, अलाउद्दीन मसाऊदशाह सन् ६३९ हिजरी) ने टकसालों में चलाये थे, उन पर

"श्री षलीफः" अथवा "श्री षलीफा०"

शब्द खुदे मिलते हैं । षलीफा خليفه अरबी शब्द है और इस का उच्चारण खलीफ़ा है । इन ताम्रपत्रों से पुरानी रीति का पुष्ट प्रमाण मिलता है ॥

ष का उच्चारण जैसा संस्कृत में होता है, सो बोल प्राकृत में ही उठगया था, जैसा कि वररुचिकृत प्राकृत प्रकाश के द्वितीय परिच्छेद के ४३ वें सूत्र में और ११ वें परिच्छेद के तीसरे सूत्र में लिखा है । तदानुकूल पुरानी हिन्दी, मारवाड़ी, गुजराती, पंजाबी, मराठी, बंगाली आदि सब गौड़ीय भाषाओं में ष का उच्चारण ष न रहा, किन्तु ख का उच्चारण देने लगा । पूर्व में पण्डित लोग संस्कृत शब्दों में भी ष का उच्चारण ख की भांति ही करते हैं । आधुनिक हिन्दी के लेखकों ने ष के पुराने (संस्कृत के) उच्चारण को फिर से जिलाया है और तत्सम और तद्भव शब्दों में लिखने लगे हैं ॥

ज कहीं २ य के बदले लगाया गया है और कहीं ज के बदले य, जैसे-

युक्ति के बदले	जुगत।	आश्चर्य के बदले	अचरज।
याचना ,,	जाचना।	अजान ,,	अयान (८-१४१)
कार्य ,,	कारिज।	सूर्य ,,	सूरिज।

जूझै को झूझै लिखा है (२४-६४। २४-५३)।

झ का रूप बहुत करके झ हस्तलिखित पोथियों में मिलता है।

न के बदले ण बहुधा लिखा गया है जैसा कि निम्नलिखित शब्दों में-

अपणां बदले अपना के		मांणस बदले मानुष के (२५—७६)	
आसण ,,	आसन के	हींण ,,	हीन के
चुंणैं ,,	चुनै के	सुणैं ,,	सुनै के
जांणैं ,,	जानै के	हूंणा ,,	होना के
पांणीं ,,	पानी के	उपजणि ,,	उपजनके, इत्यादि।

प्राचीन सिक्कों पर निम्नलिखित नामों में भी ण पाई जाती है—

" श्री अणंगपालदेव "

" सुरिताण श्री समसदीण " (सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश संवत् १२८८)

" श्री हसण कुरल " (हसन करलघ)

" सुरिताण श्री रुकणदीण " (रुकनुद्दीन)

" सुरिताण श्री मुअजदीं "

" सुरिताण श्री अलाव्दिण श्री षलीफा० "

इन सिक्कों से पुरानी बोल चाल और लिखावट की रीति पाई जाती है, दयालजी की वाणी के शब्द भी उसी पुरानी रीति के अनुसार हैं।

कहीं म के बदले व और कहीं व के बदले म रक्खा गया है जैसे गमन के बदले गवन, विवेक के बदले बमेक।

य के बदले कहीं व रक्खा गया है और कहीं व की जगह य-

वायु = वाव अथवा वाइ।

आयु = आव्
आयुध = आवध
न्यारा = निवारा (४-३१३)
वियोग = विवोग (३—८८, पद ६२)
,, बिओग (पद ६०)
मुनिवर = मुनियर (१३-१७५)
भाव् = भाइ (१६—८)
अनुभव् = अनभै।

जयपुरी वा मारवाड़ी संज्ञाओं के अंत में आ के बदले या रक्खा है—

दुविधा = दुविध्या	रक्षा = रष्या
क्षुधा = पुध्या	भिक्षा = भिष्या
निंदा = निंद्या	अजा = अज्या
लज्जा = लज्या	हरा = हरया (रंग)
दीक्षा = दष्या	

तैसे ही क्रियाओं के सामान्यभूत रूप में अंतिम आ के पूर्व या रक्खा गया है—

बंधा = बंध्या।	भरा = भरया
लागा = लाग्या।	रहा = रह्या
बना = बन्या।	मारा = मारया
सौंपा = सौंप्या।	पाया = पाइया
फिरा = फिरया।	आया = आइया
हरा = हरया।	लाया = लाइया
मिला = मिल्या, मिलिया।	सुना = सुण्या
माना = मानिया।	बेधा = बेधिया, इत्यादि

ष का उच्चारण बदल कर ख हुआ और संस्कृत में जहां २ श ष स के उच्चारण होते हैं तहां केवल स ही लिखा गया है—

शीर्ष के बदले सीस। दिशांतर के बदले दिसंतर

शब्द के बदले	सबद ।		विश्वास के बदले	बैसास	
शेष	,,	सेस ।	निशि	,,	निस
शौच	,,	सुच्या ।	श्रोता	,,	सुरता
शंका	,,	संक्या ।	संशय	,,	संसा
शून्य	,,	सुनि, सुंनि ।	त्रिषा	,,	तिस
पुरुष	,,	पुरिस (२५—५०)	श्रोत्र	,,	सुत्र

ह के बदलने के उदारण यह पाये जाते हैं—

लाभ के बदले	लाह ।		इक (एक) के बदले	हिक ।	
शोभा	,,	सोहा ।	और	,,	हौर
क्रोध	,,	कोह ।	दुहना	,,	दूझना
मेघ	,,	मेह ।	बिछड़े	,,	बिहड़े
पुष्प	,,	पुहप ।	गुह्य	,,	गुझ
पाषाण	,,	पाहण ।	हृदय	,,	रिदै
पहाड़	,,	पाढ ।	सिंह	,,	सिंघ

युक्ताक्षरों में अदल बदल ॥

युक्त व्यञ्जन शुद्ध संस्कृत शब्दों में आते हैं । युक्त अक्षरों के उच्चारण में साधारण जनों को कठिनता होने से संस्कृत शब्दों का अपभ्रंश हुआ है, संस्कृत से प्राकृत और हिंदी साधारण जनों की बात चीत की भाषायें बनी हैं, दयालजी की बाणी भी उस समय की साधारण लोक भाषा ही में है । इस बाणी में युक्त अक्षरों में फेरफार आगे लिखी भांति से पाये जाते हैं ॥

क्ष के बदले ष या ष्य रक्खा है, जैसे—

अक्षय के बदले	अषय वा अषै ।		लक्षण के बदले	लषन वा लष्यन ।	
अक्षर	,,	अष्यर ।	भिक्षा	,,	भिष्या ।
अलक्ष	,,	अलष ।	शिक्षा	,,	सीष ।
क्षेम	,,	षेम ।	रक्षा	,,	रष्या ।
क्षीर	,,	षीर ।	प्रत्यक्ष	,,	परतषि ।

क्षेत्रपाल	के बदले	षेतरपाल।	सूक्ष्म	के बदले	सिरष।
प्रक्षालन	,,	पषालन।	सूक्ष्मम्	,,	सूषिम।
पक्ष	,,	पष।	क्षय	,,	षै वा षय।
परीक्षक	,,	पारिष।	क्षीण	,,	षीन।
दीक्षा	,,	दष्या।	क्षिण	,,	षिण(२५-१७
लक्ष	,,	लष (२४--१०)			

ज्ञ के बदले ग्य लिखा है जैसे ज्ञान की जगह ग्यांन, आज्ञा के बदले आग्या, यज्ञ के बदले जाग्य।

जिन संस्कृत शब्दों के आदि में स् के साथ दूसरा व्यञ्जन आया है उन में स् का लोप हो गया है अथवा स् के पूर्व अ लग गया है जैसेः—

स्कंध = कंध।	स्थान=थान, अस्थान (१-२२)
स्तन = अस्तन, थन।	स्थिर=थिर, अस्थिर।
स्तुति = अस्तुति।	स्थल=थल, अस्थल।
स्थिति = थाती (पद ३४)।	स्पर्श=परस, सपरस।
स्थापन = थापन।	स्मरण=सुमिरण।

शब्दों के मध्य के व का लोप—

तत्व = तत।	स्वास = सास (२५—२१,२-६)
स्वर्ग = सरग वा सुरग (१६--४२)	विश्वास = बेसास
द्वंद्व = दंद (२६-११)	सरस्वती = सुरसती
स्वेत = सेत (२५-६१)	परमेश्वर = परमेसुर
स्वाद = साद	

जहां क च ज्ज ट त्त थ द्ध इत्यादि युक्त व्यञ्जन संस्कृत वा वर्तमान हिंदी के शब्दों में पाये जाते हैं वहां दयालजी की बाणी में केवल एक ही अक्षर लिखा गया है, जैसे—

पक्का=पाका व पका।	मक्खन=माषण
उच्चारण=उचारण।	कच्छप=कछिव (१-८६)
उज्वल वा उज्जल=उजल (१७-११)	विच्च (पंजाबी) बिच

इत्थां = इथां (पद ३५३) शुद्ध = सुध (१-२७)
हत्थ = हथ (१६-२३) उद्धार = उधार ।

लिखने में जो बुध सुध हथ पथर तत इत्यादि आये हैं उनका उच्चारण बुद्ध सुद्ध हस्थ पत्थर तत्त सा ही होता है, बछा का उच्चारण बच्छा अगली चौपाई में स्पष्ट है:—

जैसे जल बिन तलफै मंछा ।
सर बिन हंस गाय बिन बछा ॥

तैसे ही रजब का उच्चारण रज्जब है, कहीं २ मूल पुस्तकों में ऐसे शब्दों के शुद्ध संस्कृत रूप भी पाये जाते हैं, कहीं हमारे लेखकों ने छापने वाली मति में संस्कृत रूप लिख दिये थे सो छप गये हैं, (यह भूल द्वितीय आवृत्ति में निकाल दी जायगी) पर पुरानी लिखित पुस्तकों में इन युक्त अक्षरों के बदले एकही अक्षर लिखने की विशेष रूढ़ी पाई जाती है ॥

इस के विपरीत एक अक्षर के बदले बाणी में युक्ताक्षर भी मिलते हैं, जैसे साबित के बदले स्याबति, बिंब = ब्यंब, दोनों = दोन्यूं, शौच = सुच्या, शंका = संक्या, लय = ल्यौ ।

कहीं युक्ताक्षरों को अलग २ करके भी लिखा है, जैसे—

स्नेह = सनेह	प्रसंग = परसंग
स्नान = सनांन	वर्ण = बरण
प्रगट = परगट	वृक्ष = विरष
प्रलय = परलै	श्रम = सुरम
ग्रास = गिरास	स्वार्थ = सवारथ
स्पर्श = सपरस	स्वादी = सवादी
मुक्ति = मुकति	प्रत्यक्ष = परतष
भक्ति = भगति	समर्थ = समरथ वा सम्रथ
पर्यन्त = परजंत	आश्चर्य = अचरज
आत्म = आतम	तप्त = तपत वा ताता

निम्नलिखित शब्दों में व्यञ्जन अनेक भांति से बदले हैं:—

पेषना = देखना	बाइक = वाक्य
ठाली = खाली	सूका = सूखा
डांव = दांव	पाछि = पथ्य
डिढ़ = दिढ़	फंध = फंदा
डफांण = तोफान	पहुंता = पहुंचा
पासी = फांसी	गर्भ = गर्व
पयाल = पताल	गुझ = गुह्य
बधना = बढ़ना	दुर्लभ = दुल्यभ (पद १६४)
तलपत = तलफत	पैसना = पैठना
मींडक = मेंढक	दूझना = दुहना
मड़हट(१०—६८) = मरघट	विहड़ै = विछुड़ै
मंछर = मत्सर	वैसनौ = वैठना

दयालजी की बाणी के लेखकों ने अनुनासिक कहीं भी नहीं लगाया है । इस के बदले अनुस्वार ही सर्वत्र बाणी में मिलता है । तहां निम्न लिखित शब्दों में अनुस्वार विशेष पाया जाता है—

नांउं, ठांउं	करनां, धरनां
रांम, नांम	अयांनां, सुपिनां
ग्यांनीं, ध्यांनीं	मांहिं, नांहिं
आंन, सनांन	नैंन, बैंन
हींन, मींन	कौंण, प्रांणीं
रांणां, ध्यांनां	इत्यादि ॥

सांई की ई के पीछे अनुस्वार नहीं लगाया है सो गुजराती रीति के अनुसार शुद्ध है ॥

विसर्ग भी बाणी में कहीं नहीं लगाया गया है, कहीं तो इसे छोड़ ही दिया है, और कहीं इस की जगह ह रक्खा है, जैसे दुष, निहकरमी, निहचल, इत्यादि ॥

कॉमा का चिन्ह , जो मूल साखी वा पदों में छपा है सो हमने अपनी तरफ से लगाया है, मूल पुस्तकों में उस के स्थान पाइयां । थीं ॥

विभक्ति ।

कर्म्म और संप्रदान की विभक्ति में को के बदले कूं अथवा कौं आया है, कहीं नें वा नैं भी लिया है ॥

करण की विभक्ति में अ वा आकारांत संज्ञाओं के अंत में ऐ की मात्रा लगाई हैं जैसे सहजै वा सहजैं=सहज से, घोड़ै=घोड़े ने, यह रीति गुजराती में भी है ॥

अपदान की विभक्ति में सें के बदले सूं सौं तैं वा थैं आया है ॥

संबंध की विभक्ति साधारण हिंदी में का के की हैं, सोई यहां भी आई हैं, कहीं २ का के बदले कौ और के के बदले कै आया है ॥

अधिकरण को कई प्रकार से रक्खा है, कहीं शब्द के पीछे मांहिं, मांहैं वा मैं लगाया है, कहीं अंत के ह्रस्व स्वर को दीर्घ करके अनुस्वार लगा दिया है, कहीं केवल इ, ए वा ऐ की मात्रा लगा दी हैं, जैसे—

आतम मांहैं १–२० ।

मांन सरोवर मांहिं जल (१-४६)
सो धी दाता पलक मैं (१–४६)
जब मन लागै साचै (साचे में) पद १८३ ।
सतगुर चरणां मस्तक धरणां (पद ३७४)
भगति मुकति बैकुठां जाइ, (,, ,,)
ईथांई रहिमांन वे, (पद ३५३)
दादू आतमरांम गलि (गले में) (४–२६६)
जरणां जोगी जगि (जग में) रहै, (५–१८)
तब माथै मीच न जागै, (पद १८३)
तूं हीं तूं तनि माहरे गुसांई (पद १३०)
जियरा जाइ अंदोहे (पद १२६)

ऊपर लिखे इकारांत गलि, जगि, तनि शब्दों में इ का बड़ा उपयोग है। तनि का अर्थ "तन में" होता है, यदि वहां इ न होती तो अर्थ होता तू ही तू हमारा तन है बदले "तू ही तू हमरे तन में है" के। इस प्रकार से संज्ञाओं के अंत अनेक शब्दों में इ लगाई गई है, उस को पाठक वृथा न समझैं। यद्यपि यह आधुनिक हिंदी से विलक्षण है और नये पाठकों को अशुद्ध प्रतीत हो, तथापि इस प्रकार से सप्तमी विभक्ति में इ का लगाना संस्कृत व्याकरण को लेकर है॥

विधि क्रियाओं के अंत में आज्ञार्थ बताने के लिये भी इ लगाई गई जैसे—

बसि	अर्थात्	बासकर॥
धरि	"	धर
देपि	"	देख (पद ३७०)
तारि	"	तार दे (पद ३२३)
समझि	"	समझ ले (पद २८१)
सोधि ले	"	सोधले (१५–११५)

कहीं इ केवल स्त्री लिंग ही दिखाती है, जैसे कामणि, नागणि, सापणि (१२–१६१)

कहीं २ अंतिम ई बदले इये के लगाई गई है, जैसे—

बूझी,	झूझी	बदले	बूझिये, झूझिये के (६–५)
कीजी,	पीजी	"	कीजिये, पीजिये के (६–४)
लीजी		"	लीजिये के (६–८)
जांणीं		"	जानिये के (१०–१२८, १६–४५)
वांछी,	डरी	"	वांछिये, डरिये के (१६–४३)
बिसारी		"	बिसारिये के (२–४०) १६–४४)
राषी,	बरजी	"	राखिये, बरजिये के (१०–२,२०–१३)
घाली		"	घालिये के (१८–४५)
बोली		"	बोलिये के (१–१०८)
करी,	समझी	"	करिये, समझिये के (२–४, ४७)

दिपलाई, दिषाई बदले दिखलावो, दिखावो के (१५–२७)

दयालजी की बाणी के उन मुख्य २ भेदों को यहां हम ने सरल रीति से दिखाने की कोशिश की है जो आधुनिक हिंदी से निरे विलक्षण हैं। जो महाशयें प्राचीन भाषा का व्याकरण बनाना चाहें उनके लिये यह सामग्री अति उपयोगी होगी। इन के सिवाय और भी अनेक विलक्षणतायें भाषा में हैं सो विचारवान स्वयम् देख लेंगे ॥

उपसंहार ।

दयालजी की बाणी के संपादन में हमको अनेक महात्माओं और सज्जनों से सहायता मिली है, तिनको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। प्रथम धन्यवाद हैं योगीराज बाबा सत्यराम (गोविंददासजी) को, जिनकी कृपादृष्टि से दयालजी के ज्ञान से हमें परिचय हुआ। फिर धन्यवाद हैं बाबा मंगलदासजी बोरिये किशनगढ़ निवासी को, जिन्होंने उदारता से पुस्तक नं० २ मुझे संवत् १९३९–४० में दी। अन्य महात्माओं में से हम परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी कृष्णानंदजी का और पंडित भगवानदासजी (बाबा नंदराम के गद्दी नशीन) को विशेष धन्यवाद देते हैं, कि उन्होंने दयालजी के गूढ़ वाक्यों के अर्थों में अनेक बार सहायता दी। इनमहात्माओं के पीछे यह अनुचित न होगा जो मैं अपनी दुहिता बाई रामदुलारी को भी धन्यवाद दूं, क्योंकि पुरानी पुस्तकों को मिलान करके शुद्ध पाठ उन्हीं के हाथों से लिखा गया था। तैसे ही पंडित श्रीधर शर्म्मा पुष्कर निवासी और बाबू राधाकृष्ण भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं, इन्होंने ग्रंथ के शोधन मिलानादि में हमारे साथ अतिश्रम किया है।

यह स्वामी दादूदयाल की बाणी अंगबंधू सटीक, जिसमें कायाबेली ग्रंथ की टीका सम्मिलित है, और महात्मा चंपाराम कृत दृष्टांत संग्रह ग्रंथ से उचित २ स्थान में दृष्टांत भी टिप्पण में धरे हैं, पहली ही बार इस पूर्णरूप से छपी है। यह ग्रंथ अभी तक सर्व साधारण को अप्राप्त था, केवल दयालजी की संप्रदाय में ही रहता आया है। इन महात्माओं की अधिकतर इच्छा यह रही है कि दयालजी का पुनीत कृत्य अनधिकारियों के हाथ में न जाय, किंतु इस प्रतिबंध से अनेक अधिकारी सज्जन भी दयालजी के उपदेशों से अपरिचित

रहे हैं, और जो कुछ महिमा दयालजी की जगत् में होनी चाहिये थी सो नहीं हुई है। इस ग्रंथ के छपने और प्रचार से दयालजी का कृत्य देश देशांतर में अधिक फैलेगा और महिमा भी बढ़ेगी, इस हेतु से हम आशा करते हैं कि संतजन बाणी के प्रकाश से प्रसन्न और आदरमान होंगे। दयालजी के उपदेश सर्व प्रकार से आदरणीय हैं, इन के प्रगट करने में किसी प्रकार के संकोच का स्थल नहीं है। जिन उपदेशों से सांप्रदायिक जन निर्मल ज्ञान को प्राप्त करते आये हैं उन्हीं से अब सर्व जनों को अपना जीवन उद्धार करने का अवसर मिला है॥

विवेकी जनों को अनेक उत्तमोत्तम उपदेश इस ग्रंथ में मिलेंगे। आत्मज्ञान तो एक २ अक्षर में दयालजी ने रक्खा है, तिसके साथ सामाजिक रीति, सदाचार, नित्यकृत्य, धर्माचरण, परस्पर प्रेम पूर्वक बर्ताव, सब मतमतांतरों में समता, अद्वैत ब्रह्म में निष्ठा, उसी की भक्ति, निर्गुण उपासना, उसी का ध्यान, सुमिरण, उसी में लयलीन रहना, इत्यादि मनुष्य के संपूर्ण धर्म दयालजी ने भलीभांति से बतलाये हैं। आत्मज्ञान के साथ उस भारी सचाई को नाना भांति से निरूपण किया है, जिस से मनुष्य आपस के विरोध छोड़कर सर्वत्र अपने आत्मा को ही देखता है, अर्थात् सर्व को अपने ही समान मानता है। जहां एक आपही आप है वैर विरोध किस से हो। ऐसे अद्वैत ज्ञान को स्पष्ट दर्शाकर शाह अकबरशाह के दर्बार फतेपुर सीकरी में दयालजी ने हिंदू मुसलमानों में परस्पर हेल मेल कराया था, जहां राजा भगवंतदास, बीरबल, अब्बुलफ़जलादि अकबर शाह के मंत्री उपस्थित थे॥

आदि में दयालजी की बाणी का संपादन हम ने केवल अपने बोध के लिये किया था। पीछे ज्यूं २ इस के गूढ़ार्थ हम को मिलते गये त्यूं २ इन परम पावन वाक्यों को सर्व जनों के हितार्थ तैयार करने की रुचि हमारे हृदय में बढ़ती गई। वेदांत के अमूल्य आशयों और साधनों की रीतियों को दयालजी ने सरलभाव से रसीले शब्दों में प्रगट किया है। जिज्ञासू जन जो प्रेम से बाणी का पाठ करते हैं वो आनंद में लयलीन होकर मग्न हो जाते हैं। जिन सज्जनों को जीवन्मुक्त होकर इस संसार सागर में विचरना

हो, जिन को सहज ही में परमानंद लेना हो, जिन को सर्व क्लेश और चिंताओं से छूटना हो. राग द्वेष भय कलह शारीरिक मानसिक संपूर्ण रोग दुःखों से बचना हो, जिन को अपना आत्म सुख अपने अंदर ही लेना हो, मन की दुर्बलता, जीवन मरण के भय क्लेशों से मुक्त होना हो, जिन को सर्व प्राणियों से मेल कर के समभाव से वर्त्तना हो, जिन को सदेह अथवा विदेह मुक्ति लेकर परमपद में रहने की इच्छा हो, तो उन को उचित है कि नित्यप्रति इस बाणी का थोड़ा २ पाठ प्रेम पूर्वक करते रहें। दयालजी के ज्ञान उपदेशों के आशयों में जो अलग छपनेवाले हैं, हम स्पष्ट रीति से दिखावेंगे कि किस प्रकार से रोग दुःखों से छूटकर मनुष्य सदेह मुक्त अपनी इच्छानुसार चिरञ्जीव रह सकता है।

मिती वैशाख शुक्ल अक्षय्य तीज बुधवार संवत् १९६४ विक्रम्
तारीख़ १५ मई सन् १९०७ ई०

चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी
जोन्सगंज—अजमेर

श्री रामजी सत्य ॥

सकल साध सहाय ॥

श्रीस्वामी दादूदयालजी की अनभै बाणी

प्रथमे साषी

प्रथम गुरदेव कौ अंग ॥

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
परब्रह्म परापरं, सो ममदेव निरंजनम् । (२०–४)
निराकारं निर्मलम्, तस्य दादू बंदनम् ॥ २ ॥ (क,ग,घ)

॥ गुर प्राप्ति और फल ॥

दादू गैब मांहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।
मस्तकि मेरे कर धरया, दर्श्या अगम अगाध ॥ ३ ॥

---

(२) परापरं=परात्परम्=कारणभाव से परे=कारणरूप माया विशिष्ट चेतन (ईश्वर) से परे शुद्ध चेतन सो परब्रह्म है ॥

(३) दृष्टान्त—बालपने दर्शन दियो, भगवत बूढण होय ।
नगर अहमदाबाद में, दादू भज तूँ मों हिं ॥
निमित्त निगम आगम अगम अनवंच्छित है जाय ।
राघौ राम रसायनी, मिले गैब में आय ॥
ज्यों गुर दादू कौं मिले, त्यों नानक जदुराय ।
कान्हां कौं गैब हि मिले, नृप रघुगण गुर पाय ॥

दादू सतगुर सहज मैं, कीया बहु उपगार ।
निरधन धनवंत करि लिया, गुर मिलिया दातार ॥ ४ ॥
दादू सतगुर सूं सहजैं मिल्या, लीया कंठि लगाइ ।
दया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥ ५ ॥
दादू देषु दयाल की, गुरू दिषाई बाट ।
ताला कूंची लाइ करि, षोले सबै कपाट ॥ ६ ॥

॥ सतगुर समर्थाई ॥

दादू सतगुर अंजन बाहि करि, नैन पटल सब षोले ।
बहरे कानौं सुणने लागे, गूंगे मुख सौं बोले ॥ ७ ॥
सतगुर दाता जीव का, श्रवन सीस कर नैन ।
तन मन सौंज संवारि सब, मुष रसना अरु बैन ॥ ८ ॥
राम नाम उपदेस करि, अगम गवन यहु सैन ।
दादू सतगुर सब दिया, आप मिलाये अैन ॥ ९ ॥
सतगुर कीया फेरि करि, मन का औरै रूप ।
दादू पंचौं पलटि करि, कैसे भये अनूप ॥ १० ॥
साचा सतगुर जे मिलै, सब साज संवारै ।
दादू नाव चढ़ाइ करि, ले पार उतारै ॥ ११ ॥
दादू सतगुर पसु मानस करै, मांणस थैं सिध सोइ ।
दादू सिध थैं देवता, देव निरंजन होइ ॥ १२ ॥
दादू काढ़े काल मुषि, अंधे लोचन देइ ।
दादू अैसा गुर मिल्या, जीव ब्रह्म करि लेइ ॥ १३ ॥

(१२) सिध, सिद्धिवान ॥

दादू काढ़े काल मुषि, श्रवनहु सबद सुनाइ ।
दादू अैसा गुर मिल्या, मृतक लिये जिलाइ ॥ १४ ॥
दादू काढ़े काल मुषि, गूंगे लिये बुलाइ ।
दादू अैसा गुर मिल्या, सुष मैं रहे समाइ ॥ १५ ॥
दादू काढ़े काल मुषि, मिहरि दया करि आइ ।
दादू अैसा गुर मिल्या, महिमां कही न जाइ ॥ १६ ॥
सतगुर काढ़े केस गहि, डूबत इहि संसार ।
दादू नाव चढ़ाइ करि, कीये पैली पार ॥ १७ ॥
भौ सागर मैं डूबतां, सतगुर काढ़े आइ ।
दादू षेवट गुर मिल्या, लीये नाव चढ़ाइ ॥ १८ ॥
दादू उस गुर देव की, मैं बलिहारी जांउं ।
जहं आसण अमर अलेष था, ले राषे उस ठांउं ॥ १९ ॥

॥ ज्ञानोत्पत्ति ॥

आत्म मांहैं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान । (२८–८)
कृतम जाइ उलंघि करि, जहां निरंजन थान ॥ २० ॥
आत्मबोध बंभ का बेटा, गुर मुषि उपजै आइ । (२८–७)
दादू पंगुल, पंचबिन, जहां राम तहं जाइ ॥ २१ ॥

॥ अनहद शब्द ॥

साचा सहजैं ले मिलै, सबद गुरू का ज्ञान ।
दादू हमकूं ले चल्या, जहं प्रीतम का अस्थान ॥ २२ ॥

(२०) कृतम्=विधि निषेध, कर्तव्यता ॥
(२१) बंभ=भक्ति । पैचबिन=पंच विषयों को त्यागकर ॥

दादू सबद बिचारि करि, लागि रहै मनलाइ ।
ज्ञान गहै गुरुदेव का, दादू सहजि समाइ ॥ २३ ॥

॥ दया बिनती ॥

दादू कहै सतगुर सबद सुणाइ करि, भावै जीव जगाइ ।
भावै अंतरि आप कहि, अपने अंग लगाइ ॥ २४ ॥
दादू बाहरि सारा देषिये, भीतरि कीया चूर ।
सतगुर सबदौं मारिया, जाण न पावै दूर ॥ २५ ॥
दादू सतगुर मारे सबद सौं, निरषि निरषि निज ठौर ।
राम अकेला रहि गया, चीति न आवै और ॥ २६ ॥
दादू हमकौं सुख भया, साध सबद गुर ज्ञान ।
सुधि बुधि सोधी समझि करि, पाया पद निर्बाण ॥ २७ ॥

॥ सतगुर शब्द बाण ॥

दादू सबद बाण गुर साधके, दूरि दिसंतरि जाइ (२२–२१)
जिहि लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ ॥ २८ ॥
सतगुर सबद मुषसौं कह्या, क्या नेड़ै क्या दूर ।
दादू सिष श्रवणहु सुण्या, सुमिरन लागा सूर ॥ २९ ॥

॥ करनी बिना कथनी ॥

सबद दूध, घृत रामरस, मथि करि काढै कोइ ।
दादू गुर गोबिंद बिन, घटि घटि समझि न होइ ॥ ३० ॥

---

(२९) दृष्टांत– दोहा– रज्जब बखनो आदि जे, नेड़े लागे बाण ।
साधू तेजानंदजी, माता दूरिंहि जाण ॥

सबद दूध घृत रामरस, कोई साध बिलोवण हार ।
दादू अमृत काढि ले, गुरमुषि गहै बिचार ॥ ३१ ॥
घीव दूध मैं रमि रह्या, व्यापक सबही ठौर ।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढैं ते और ॥ ३२ ॥
कामधेनि घटि घीव है, दिन दिन दुरबल होइ ।
गोरू ज्ञान न ऊपजै, मथि नहिं षाया सोइ ॥ ३३ ॥

॥ योगाभ्यास ॥

साचा समरथ गुर मिल्या, तिन तत दिया बताइ ।
दादू मोटा महाबली, घटि घृत मथि करि षाइ ॥ ३४ ॥
मथि करि दीपक कीजिये, सब घटि भया प्रकास ।
दादू दीवा हाथि करि, गया निरंजन पास ॥ ३५ ॥

---

(३३) वाक्यार्थ—कामधेनु के शरीर में घीव है, तौभी वह दिन २ दुर्बल होती है (और घी से बलवान–सुखी–होनी चाहिये) परन्तु उस गोरू (पशु) को ज्ञान नहीं उपजता जो उस को मथकर खाय ॥

तात्पर्य—मनुष्य के शरीर ही में ब्रह्मानंदरूपी घृत है, पर उस आनंद को मनुष्य जानता नहीं, जिस कारण से वह दुखी रहता है, कबतक ? जब तक उस पशुरूपी (अज्ञानी) मनुष्य को ब्रह्म ज्ञान नहीं प्राप्त होता और उस आनंदरूपी घृत को नहीं पान करता है ॥

(३४) तात्पर्य—सच्चा समर्थ गुरू मिला उसने तत्वरूपी ज्ञान दिया, तब वह मनुष्य मोटा महाबली हुआ, काहे से ? अपने अंदर से ब्रह्मानंदरूपी घृत खा करके ॥

(३५) तात्पर्य—अनहद शब्द को शोधकर आनंदरूपी घृत निकाल ज्ञानरूपी दीपक कीजिये, तब सब घट (शरीर) में प्रकाश होगा, ऐसा दीवा (ज्ञान) हाथ में करके दादूजी निरंजन परमात्मा को प्राप्त हुये ॥

दीवै दीवा कीजिये, गुर मुष मारगि जाइ ।
दादू अपणे पीवका, दरसन देषै आइ ॥ ३६ ॥
दादू दीवा है भला, दीवा करौ सब कोइ ।
घरमैं धरचा न पाइये, जे कर दिया न होइ ॥ ३७ ॥
दादू दीये का गुण ते लहैं, दीया मोटी बात ।
दीया जगमैं चांदिणां, दीया चालै साथ ॥ ३८ ॥
निर्मल गुर का ज्ञान गहि, निर्मल भगति बिचार ।
निर्मल पाया प्रेम रस, छूटे सकल विकार ॥ ३९ ॥
निर्मल तन मन आत्मा, निर्मल मनसा सार ।
निर्मल प्राणीं पंच करि, दादू लंघे पार ॥ ४० ॥
परापरी पासैं रहै, कोई न जाणैं ताहि ।
सतगुर दिया दिषाइ करि, दादू रह्या ल्यौलाइ ॥ ४१ ॥

---

(३६) दीवै दीवा कीजिये=ज्ञान ही से ज्ञान बढ़ाइये ॥

(३७) इस साखी के दो अर्थ बनते हैं ॥

(१) दीवा (ज्ञान) ही जगत में सार है, तिस को यत्न करके संपादन करना चाहिये । घर (शरीर) में स्थित आत्म-स्वरूप सो ज्ञान बिना नहीं मिलता है ।

(२) दीवा (दान) उत्तम है, सो दान सब को देना चाहिये, घरमें रक्खा हुआ धन परलोक में काम न आवेगा ॥

(३८) "ते" शब्द पूर्वोक्त ज्ञानियों का वाचक है, अर्थात् उपरोक्त ज्ञानी ही ज्ञानरूपी दिये को अनुभव कर सक्के हैं, ज्ञान बड़ी बात है, जगत का चांदना और साथ चलने वाला है ॥

॥ शिष्य जिज्ञासा ॥

जिन हम सिरजे सो कहां, सतगुर देहु दिषाइ ।
दादू दिल अरवाहका, तहं मालिक ल्यौ लाइ ॥ ४२ ॥
मुझही मैं मेरा धणी, पड़दा षोलि दिषाइ ।
आतमसौं परआतमा, परगट आणि मिलाइ ॥ ४३ ॥
भरि भरि प्याला प्रेमरस, अपणे हाथि पिलाइ ।
सतगुरु कै सदिकै किया, दादू बलि बलि जाइ ॥ ४४ ॥
सरवर भरिया दह दिसा, पंषी प्यासा जाइ ।
दादू गुरप्रसाद बिन, क्यौं जल पीवै आइ ॥ ४५ ॥
मांन सरोवर मांहि जल, प्यासा पीवै आइ ।
दादू दोस न दीजिये, घर घर कहण न जाइ ॥ ४६ ॥

॥ गुरु लक्षण ॥

दादू गुर गरवा मिल्या, तार्थैं सब गमि होइ ।
लोहा पारस परसतां, सहजि समांनां सोइ ॥ ४७ ॥
दीन गरीबी गहि रह्या, गरवा गुरु गंभीर ।
सूषिम सीतल सुरति मति, सहज दया गुर धीर ॥ ४८ ॥
सो धीदाता पलक मैं, तिरै, तिरावण जोग ।
दादू ऐसा परम गुर, पाया किहिं संजोग ॥ ४९ ॥

---

(४२) इस साखी का प्रथमार्द्ध प्रश्न है और दूसरा अंश उत्तर—प्रथम में शिष्य पूछता है कि जिसने हमको पैदा किया है उसको, हे सतगुर, मुझे दिखाओ। तिसका उत्तर गुरु देते हैं कि जीव के दिल (हृदय-गुहाबुद्धि) में परमात्मा है, उसी मालिक की तरफ लय लगाये रहो, अर्थात् अन्तर्मुखवृत्ति अनहद में एकाग्र करो ॥

(४९) तिरै = तारै ॥

दादू सतगुर ऐसा कीजिये, रामरस माता ।
पार उतारै पलक मैं, दरसनका दाता ॥ ५० ॥
देवै किरका दरदका, टूटा जोड़ै तार ।
दादू सांधै सुरति कूं, सो गुर पीर हमार ॥ ५१ ॥
दादू घाइल व्है रहे, सतगुर के मारे ।
दादू अंगि लगाय करि, भौसागर तारे ॥ ५२ ॥
दादू साचा गुर मिल्या, साचा दिया दिषाइ ।
साचे कूं साचा मिल्या, साचा रह्या समाइ ॥ ५३ ॥
साचा सतगुर सोधिले, साचे लीजी साध । (२०–१४)
साचा साहिब सोधि करि, दादू भगति अगाध ॥ ५४ ॥
सनमुष सतगुर साधसौं, सांई सूं राता ।
दादू प्याला प्रेम का, महा रसिमाता ॥ ५५ ॥
सांई सौं साचा रहे, सतगुरसौं सूरा ।
साधूं सौं सनमुष रहै, सो दादू पूरा ॥ ५६ ॥
सतगुर मिलै त पाइये, भगति मुकति भंडार ।
दादू सहजैं देषिये, साहिब का दीदार ॥ ५७ ॥
दादू सांई सतगुर सेविये, भगति मुकति फल होइ ।
अमर अभै पद पाइये, काल न लागै कोई ॥ ५८ ॥

---

(५४) साध = साधन ॥ "लींजी" की जगह पुस्तक नं० १–२ में "लीजै" है ॥

(५५) अंतर गुरु और साधनों में तत्पर रहे और परमात्मा में मग्न, ऐसी समाधि में जो अनहद अमृत मिले वही प्रेम का प्याला और मस्त रखने वाला महारस है ॥

॥ गुर बिन ज्ञान नहीं ॥

इक लष चन्दा आणि घरि, सूरज कोटि मिलाय ।
दादू गुर गोव्यंद बिन, तौभी तिमर न जाय ॥ ५९ ॥
अनेक चंद उदै करै, असंष सूर प्रकास ।
एक निरंजन नांव बिन, दादू नहीं उजास ॥ ६० ॥
दादू कदि यहु आपा जाइगा, कदि यहु विसरै और। (२३–२६)
कदि यहु सुषिम होइगा, कदि यहु पावै ठौर ॥ ६१ ॥
दादू विषम दुहेला जीवकौं, सतगुर थैं आसान ।
जब दरवै तब पाइये, नेड़ा ही असथान ॥ ६२ ॥

॥ गुरुज्ञान ॥

दादू नैंन न देषैं नैन कूं, अंतर भी कुछ नाहिं ।
सतगुर दर्पन करि दिया, अरस परस मिलि मांहिं ॥ ६३ ॥
घटि घटि रामरतन है, दादू लषै न कोइ ।
सतगुर सबदौं पाइये, सहजैं ही गम होइ ॥ ६४ ॥
जबहीं कर दीपक दिया, तब सब सूझन लाग ।
यूं दादू गुर ज्ञान थैं, राम कहत जन जाग ॥ ६५ ॥

---

(६२) जब परमात्मा प्रसन्न हो तभी उसकी प्राप्ति होती है, जैसा मुण्डकोपनिषद् में लिखा है कि "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्" ॥

(६३) करि दिया = कर (हाथ) में दिया ॥

॥ आत्मार्थी भेष ॥

दादू मनमाला तहं फेरिये, जहं दिवस न परसै रात ।
तहां गुर बानां दिया, सहजैं जपिये तात ॥ ६६ ॥
दादू मन माला तहं फेरिये, जहं प्रीतम बैठे पास ।
आगम गुर थैं गम भया, पाया नूर निवास ॥ ६७ ॥
दादू मन माला तहं फेरिये, जहं आपै येक अनंत ।
सहजैं सो सतगुर मिल्या, जुगि जुगि फाग बसंत ॥ ६८ ॥
दादू सतगुर माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ ।
बिन हाथौं निसदिन जपै, परम जाप यूं होइ ॥ ६९ ॥
दादू मन फकीर माहैं हुवा, भीतरि लीया भेष ।
सबद गहै गुरदेव का, मांगै भीष अलेष ॥ ७० ॥

(६६) मनमाला = मन के अन्दर माला, अर्थात् अजपा जाप ॥ दिवस = सूर्य, रात = चंद्र, अर्थात् सूर्य और चन्द्रस्वर रहित सुषमना नाड़ी के चलते समय अजपा जाप धारण करै, तहां गुरु का बाना यह है कि उस जाप को सहज ही विना परिश्रम और सूक्ष्म वेग से चलावै अर्थात् ज़ोर से स्वास प्रस्वास न करै ॥

(६७) आगम = अगम्य आत्मा गुरु द्वारा गम (प्राप्त) हुआ ॥

(६९) यह अजपा जाप की विधि है, दयालजी कहते हैं कि मन के अंदर माला सतगुरु ने दिया, सो कैसा है कि, पवन (स्वास प्रस्वास) को सुरति से पिरोये अर्थात् सोऽहमहंसः रूपी अजपा जाप स्वास प्रस्वास में लगाते हुये मन को अनहद में स्थिर करे । यह जाप विना हाथौं के दिन रात जपै । यह परम जाप है ॥

(७०) भिक्षा अलेख जो मनादि की विषय न हो, अर्थात् निर्गुण ब्रह्म ॥

दादू मन फकीर सतगुर किया, कहि समझाया ज्ञान ।
निहचल आसणि बैसि करि, अकल पुरिस का ध्यान ॥ ७१ ॥
दादू मन फकीर जगथैं रह्या, सतगुर लीया लाइ ।
अहनिसि लागा येक सौं, सहज सुंनिरस षाइ ॥ ७२ ॥
दादू मन फकीर ऐसैं भया, सतगुर के परसाद ।
जहां क था लागा तहां, छूटे बाद बिबाद ॥ ७३ ॥
नां घरि रह्या न बनि गया, नां कुछ किया कलेस । (१६–३३)
दादू मनहीं मन मिल्या, सतगुर के उपदेस ॥ ७४ ॥

॥ भ्रम विध्वंस ॥

दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुर दिया दिषाइ । (१६–५४)
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥ ७५ ॥

॥ कस्तूरिया मृग ॥

दादू मंझे चेला मंझि गुर, मंझे ही उपदेस ।
बाहरि ढूंढैं बावरे, जटा बंधाये केस ॥ ७६ ॥

॥ मन का दमन ॥

मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केस ।
दादू विषै बिकार सब, सतगुर के उपदेस ॥ ७७ ॥

॥ भ्रम विध्वंस ॥

दादू पड़दा भरम का, रह्या सकल घटि छाइ ।
गुर गोब्यंद कृपा करै, तौ सहजैं हीं मिटि जाइ ॥ ७८ ॥

---

(७१) अकल = अकाल, अमर ॥

(७२) सहज सुंनिरस = अनहद अमृत ॥

॥ सूषिम मार्ग ॥

दादू जिहि मत साधू उधरै, सो मत लीया सोध।
मनलै मारग मूल गहि, यहु सतगुर का परमोध ॥ ७९ ॥
दादू सोई मारग मनि गह्या, जेंहि मारग मिलिये जाइ।
बेद कुरानूं नां कह्या, सो गुर दिया दिषाइ ॥ ८० ॥

॥ विचार ॥

दादू मन भुवंग यहु बिष भरया, निरबिष क्यौंही न होइ।
दादू मिल्या गुर गारड़ी, निरबिष कीया सोइ ॥ ८१ ॥
एता कीजै आपथैं, तनमन उनमन लाइ।
पंच समाधी राषिये, दूजा सहज सुभाइ ॥ ८२ ॥
दादू जीव जंजालौं पड़ि गया, उलझ्या नौ मण सूत।
कोइ एक सुलझै सावधान, गुर बाइक अवधूत ॥ ८३ ॥

॥ मन का रोकना ॥

चंचल चहुं दिसि जात है, गुर बाइक सूं बंधि।
दादू संगति साधकी, पारब्रह्म सूं संधि ॥ ८४ ॥

---

(७९) मनलै मारग = मन को शांत करनेवाला मार्ग ॥

(८२) अपने पुरुषार्थ से तन से मन से वचन से उनमनी (शांत) वृत्ति को प्राप्त करे। पंच समाधी = पंच इंद्रियों को रोके रहे। दूजा सहज सुभाइ = बाकी व्यवहारों में सरल रीति से प्रकृति के अनुकूल बर्त्तता जाय ॥

(८३) गुरबाइक अवधूत = गुरु वाक्य से मन वासनाका त्यागी ॥

(८४) चंचल मन चहुंदिश जाता है, इसको गुरुवाक्य से बांध, और साधनों के अभ्यास से अथवा संतों की संगति से परमात्मा में लगा ॥

गुर अंकुस मानैं नहीं, उदमद माता अंध ।
दादू मन चेतै नहीं, काल न देषै फंध ॥ ८५ ॥
दादू मारयां बिन मानैं नहीं, यह मन हरि की आन ।
ज्ञान षड़ग गुरदेव का, ता संगि सदा सुजान ॥ ८६ ॥
जहां थैं मन उठि चलै, फेरि तहां ही राषि ।
तहं दादू लैलीन करि, साध कहैं गुर साषि ॥ ८७ ॥
दादू मनही सूं मल ऊपजै, मन हीं सूं मल धोइ ।
सीष चली गुर साधकी, तौ तूं नृमल होइ ॥ ८८ ॥
दादू कछिब अपने करि लिये, मन इंद्री निज ठौर ।
नांइ निरंजन लागि रहु, प्राणी परहरि और ॥ ८९ ॥
मनकै मतै सब कोइ षेलै, गुरमुष बिरला कोइ ।
दादू मनकी मानै नहीं, सतगुर का सिष सोइ ॥ ९० ॥
सब जीवौं कौं मन ठगै, मनकौं बिरला कोइ ।
दादू गुरके ज्ञान सौं, सांई सनमुष होइ ॥ ९१ ॥
दादू येक सूं लै लीन हूणां, सबै सयानप येह ।
सतगुर साधू कहत हैं, परमतत्त जपि लेह ॥ ९२ ॥
सतगुर सबद बमेक बिन, संजमि रह्या न जाइ ।
दादू ज्ञान बिचार बिन, विषै हलाहल षाइ ॥ ९३ ॥

---

(८९) जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है तैसे मनुष्य अपने मन इन्द्रियों को एकाग्र कर रामनांव मैं लगै और सब (रागद्वेषादि) त्याग दे ॥

घरि घरि घट कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ ।
दादू गुरके ज्ञान बिन, विषै हलाहल षाइ ॥ ९४ ॥

॥ गुरु शिष्य परमोध ॥

सतगुर सबद उलंघि करि, जिनि कोई सिष जाइ ।
दादू पग पग काल है, जहां जाइ तहं षाइ ॥ ९५ ॥
सतगुर बरजै सिष करै, क्यूं करि बंचै काल ।
दह दिसि देषत बहि गया, पाणी फोड़ी पाल ॥ ९६ ॥
दादू सतगुर कहै सु सिष करै, सब सिधि कारिज होइ ।
अमर अभै पद पाइये, काल न लागै कोइ ॥ ९७ ॥
दादू जे साहिब कूं भावै नहीं, सो हम थैं जिनि होइ ।
सतगुर लाजै आपणां, साध न मांनैं कोइ ॥ ९८ ॥
दादू हूंकी ठाहर है कहौ, तनकी ठाहर तूं ।
री की ठाहर जी कहौ, ज्ञान गुरूका यौं ॥ ९९ ॥

॥ गुरुज्ञान ॥

दादू पंच सवादी पंच दिसि, पंचे पंचौं बाट ।
तब लग कह्या न कीजिये, गहि गुरू दिषाया घाट ॥१००॥

---

(९४) घर २ शरीररूपी कोल्हू चलता है और अमीरस (ब्रह्मानंद) व्यर्थ जाता है, ज्ञान के विना पुरुष विषयरूपी विष खाता है ॥

(९९) किसी कलावंत (गानेबजानेवाले) ने दादूजी के पास आकर नाद भरा था, तब यह साखी दयालजी ने कही थी, तात्पर्य इसका यह है कि हरि के नाद विना बात चीत व्यर्थ है ॥

(१००) पंच सवादी=पंच ज्ञान इन्द्रियां। पंचदिसि=पंच विषयों में । पंचे पंचौं बाट=पांचौं के अपने २ पांच विषय ॥

दादू पंचूं येक मत, पंचूं पूरथा साथ ।
पंचौं मिलि सनमुष भये, तब पंचौं गुर की बाट ॥ १०१ ॥

॥ सतगुर विमुष ज्ञान ॥

दादू ताता लोहा तिणे सूं, क्यूं करि पकड़था जाइ ।
गहण गति सूझै नहीं, गुर नहिं बूझै आइ ॥ १०२ ॥

॥ गुरमुख कसौटी ॥

दादू औगुण गुण करि मानै गुरके, सोई सिष सुजाण ।
सतगुर औगुण क्यौं करै, समझै सोई सयाण ॥ १०३ ॥
सोने सेती बैर क्या, मारै घण के घाइ ।
दादू काटि कलंक सब, राषै कंठि लगाइ ॥ १०४ ॥
पांणी मांहैं राषिये, कनक कलंक न जाइ (२२–३१)
दादू गुरके ज्ञान सौं, ताइ अगनि मैं बाहि ॥ १०५ ॥
दादू मांहैं मीठा हेत करि, ऊपरि कड़वा राषि ।
सतगुर सिषकौं सीष दे, सब साधूं की साषि ॥ १०६ ॥

॥ गुरुशिष प्रमोध ॥

दादू कहै सिष भरोसै आपणै, व्है बोली हुसियार ।
कहैगा सो बहैगा, हम पहली करैं पुकार ॥ १०७ ॥
दादू सतगुर कहै सु कीजिये, जे तूं सिष सुजाण ।
जहं लाया तहं लागि रहु, बूझै कहा अजाण ॥ १०८ ॥

---

(१०४) तात्पर्य—शिष्य से गुरू का कोई बैर नहीं है, जैसे सोने को तप्त कर के उस का मल निकाल देते हैं और कूट पीट (गढ़) कर माला बनाय कंठ में धारण करते हैं, तैसे ही शिष्य को गुरू ताड़ना देकर उस की बुद्धि शुद्ध करके अपना प्रिय बनाये रखते हैं ॥

गुर पहली मनसौं कहै,—पीछै नैन की सैंन ।
दादू सिष समझै नहीं, कहि समझावै बैन ॥ १०६ ॥
कहैं लषै सो मानवी, सैंन लषै सो साध ।
मनकी लषै सु देवता, दादू अगम अगाध ॥ ११० ॥

॥ कठोरता ॥

दादू कहि कहि मेरी जीभ रही, सुणि सुणि तेरे कान ।
सतगुर बपुरा क्या करै, जो चेला मूढ़ अजाण ॥ १११ ॥

॥ गुर शिष प्रमोध ॥

एक सबद सब कुछ कह्या, सतगुर सिष समझाइ ।
जहं लाया तहं लागै नहीं, फिर फिर बूझै आइ ॥ ११२ ॥

॥ अज्ञ स्वभाव अपलट ॥

ज्ञान लिया सब सीषि सुणि, मनका मैल न जाइ ।
गुरू बिचारा क्या करै, सिष विषै हलाहल षाइ ॥ ११३ ॥
सतगुर की समझै नहीं, अपणै उपजै नांहिं ।
तौ दादू क्या कीजिये, बुरी बिथा मन मांहिं ॥ ११४ ॥

॥ सत्यासत्य गुरू पारष ॥

गुर अपंग पग पंष बिन, सिष साषां का भार ।
दादू षेवट नाव बिन, क्यूं उतरैंगे पार ॥ ११५ ॥
दादू संसा जीव का, सिष साषां का साल ।
दोनौं कौं भारी पड़ी, ह्वैगा कौण हवाल ॥ ११६ ॥

---

(१०६) दृष्टांत—दोहा— मनकी जग जीवन लही, नैन सैन गोपाल ।
बचन रज्जब बखनैं लहे, गुर दादू प्रतिपाल ॥
(११५) ज्ञान हीन गुरू जिस पर शिष्यादिकों का बोझ लदा है सो खेवट और नाव (परमेश्वर के भजन) बिना कैसे पार उतरैंगे ॥

अंधे अंधा मिलि चले, दादू बंधि कतार ।
कूप पड़े हम देषतां, अंधे अंधा लार ॥ ११७ ॥

॥ पर परमोध ॥

सोधी नहीं सरीर की, औरौं कौं उपदेस ।
दादू अचिरज देषिया, ये जांहिगे किस देस ॥ ११८ ॥
दादू सोधी नहीं सरीर की, कहैं अगम की बात ।
जान कहावैं बापुड़े, आवध लीये हाथ ॥ ११९ ॥

॥ सत्यासत्य गुरपारष लक्षण ॥

दादू माया मांहैं काढि करि, फिरि माया मैं दीन्ह ।
दोऊ जन समझैं नहीं, येकौ काज न कीन्ह ॥ १२० ॥
दादू कहै सो गुर किस कामका, गहि भरमावै आन ।
तत्त बतावै निर्मला, सो गुर साध सुजान ॥ १२१ ॥
तूं मेरा हूं तेरा, गुर सिष कीया मंत ।
दून्यौं भूले जात हैं, दादू बिसस्या कंत ॥ १२२ ॥
दुहि दुहि पीवै ग्वाल गुर, सिष हैं छेली गाइ ।
यहु औसर यौंहीं गया, दादू कहि समझाइ ॥ १२३ ॥
सिष गोरू, गुर ग्वाल है, रष्या करि करि लेइ ।
दादू राषै जतन करि, आणि धणी कौं देइ ॥ १२४ ॥
झूठे अंधे गुर घणें, भरम दिढावैं आइ ।
दादू साचा गुर मिलै, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ॥ १२५ ॥

---

(११९) जान=जानकार, बुझक्कड़ ॥

(१२०) माया=गृहस्थी, एक गृहस्थी से निकाल कर दूसरी साधौं की मंडलीरूपी माया में डालना ॥

झूठे अंधे गुर घणें, बंधे विषै बिकार ।
दादू साचा गुर मिलै, सनमुख सिरजनहार ॥ १२६ ॥
झूठे अंधे गुर घणें, भरम दिढावैं कांम ।
बंधे माया मोहसौं, दादू मुषसौं राम ॥ १२७ ॥
झूठे अंधे गुर घणें, भटकैं घर घरबारि ।
कारिज को सीझै नहीं, दादू माथै मारि ॥ १२८ ॥

॥ वे परचबिसनी ॥

दादू भगत कहावैं आपकौं, भगति न जाणैं भेव ।
सुपिनै हीं समझैं नहीं, कहां बसै गुरदेव ॥ १२९ ॥

॥ भ्रम बिधूसण ॥

भरम करम जग बंधिया, पंडित दिया भुलाइ ।
दादू सतगुर ना मिलै, मारग देइ दिषाइ ॥ १३० ॥
दादू पंथ बतावैं पापका, भर्म कर्म बेसास ।
निकटि निरंजन जे रहै, क्यौं न बतावैं तास ॥ १३१ ॥

॥ बिचार ॥

दादू आपा उरझैं उरझिया, दीसै सब संसार । (१८–३३)
आपा सुरझैं सुरझिया, यहु गुरज्ञान बिचार ॥ १३२ ॥

(१३०–१३१) वेद मांहि सब भेद हैं, जानै बिरला कोइ ।
सुंदर सो सतगुर बिना, निर्वारा नहिं होइ ॥
सुंदर ताला सबद का, सतगुर षोल्या आइ ।
भिन्न २ समझाइ करि, दीया अर्थ बताइ ॥

(१३२) यह साखी दयालजी के महावाक्यों में से है । जगत के संपूर्ण जाल जंजालों से छूटने की इस में एक कुंजी है । दयालजी कहते हैं कि

॥ गुरमुष कसौटी ॥

साधू का अंग निर्मला, तामैं मल न समाइ ।
परमगुरू परगट कहै, ताथैं दादू ताइ ॥ १३३ ॥

॥ सुमिरण नाम चितावणी ॥

रांम नांम गुर सबदसौं, रे मन पेलि भरंम । (२—१४)
निह करमी सूं मन मिल्या, दादू काटि करंम ॥ १३४ ॥

आपनपौ में उलझ रहने से अर्थात् इस स्थूल शरीर ही में अपना सर्वस्व मानने से, सब संसार उलझा हुआ (कठिन दुःखरूप) प्रतीत होता है। अथवा जो जन अपने आप को बंध जगत में फंसा, दुःखी, दीन, दासादि, स्वतंत्रता नाशक भावों से मानता है, उस को उसी प्रकार से सब जगत दुःख-दाई प्रतीत होता है ॥

जिसने अपना आत्म स्वरूप निश्चय करके अपने आप को स्वतंत्र निर्भय सच्चिदानन्दरूप माना है, वह जन मुक्त है । ऐसे महाज्ञान का जो मनन है उसको दयालजी "गुरज्ञान विचार" कहते हैं ॥

आप जो जगत जाल में उलझ रहे हैं उनको सब जगत उलझा ही दीखता है ॥ और सकल जीव परस्पर ममत्व बांधकर आप ही उलझ रहे हैं, यथाः—

सारंग सुर सुं विनास, मीन रसना रस आसा ।
पावक पेषि पतंग, भंवर नासिक भिद वासा॥
पटछल वारुण बाघ, मुग्ध मति मर्कट सूवा ।
मूस चुरावत बाति, पवन पावग जलि मूवा ॥
स्वान मीच दर्पन महल, मकरी मूंदि सुद्वार ।
रजब मरहि सिंधोर बग, पाया नहीं विचार ॥

(१३३) पुस्तक नं० १ और ४ में "परम" की जगह "प्रम" आया है ॥

(१३४) राम नाम का साधन करके सब भ्रमों को त्याग, परमेश्वर से मन मिलाकर कर्म के बंधन को काट ॥

॥ सूक्षम मार्ग ॥

दादू बिन पाइन का पंथ है, क्यौं करि पहुंचै प्राण। (७–१०)
बिकट घाट औघट षरे, मांहि सिषर असमांन ॥ १३५ ॥
मन ताजी चेतन चढै, ल्यौ की करै लगांम ।
सबद गुरू का ताजणां, कोइ पहुंचै साध सुजाण ॥ १३६ ॥

॥ पारष लक्षण ॥

साधौं सुमिरण सो कह्या, जिहि सुमिरण आपा भूल ।
दादू गहि गंभीर गुर, चेतन आनंद मूल ॥ १३७ ॥

॥ स्वार्थी पर्मार्थी ॥

दादू आप सवारथ सब सगे, प्राण सनेही नांहि ।
प्राण सनेही राम है , के साधू कलि मांहि ॥ १३८ ॥
सुष का साथी जगत सब, दुष का नाही कोइ ।
दुष का साथी सांइयां, दादू सतगुर होइ ॥ १३९ ॥
सगे हमारे साध हैं सिर परि सिरजनहार ।
दादू सतगुर सो सगा, दूजा धंध बिकार ॥ १४० ॥

॥ दया निर्वैरता ॥

दादू कै दूजा नहीं, एकै आतम राम ।
सत गुर सिर परि साध सब, प्रेम भगति बिश्राम ॥ १४१ ॥

---

(१३५) बिन पाइन का (अगम्य) पंथ । औघट खरे = अति कठिन। मांहि सिषर असमांन = जिसका शिखर आसमान है । सारांश परमेश्वर का रास्ता अति कठिन है ॥

॥ उपजनि ॥

दादू सुध बुध आतमा, सत गुर परसै आइ ।
दादू भृंगी कीट ज्यौं, देषत ही ह्वै जाइ ॥ १४२ ॥
दादू भृंगी कीट ज्यूं, सतगुर सेती होइ ।
आप सरीषे कर लिये, दूजा नांहीं कोइ ॥ १४३ ॥
दादू कछव राषै दृष्टि मैं, कुंजौं के मन माहिं ।
सत गुर राषै आपणां, दूजा कोई नांहि ॥ १४४ ॥
बच्चौं के माता पिता, दूजा नांहीं कोइ ।
दादू निपजै भावसूं, सतगुर के घटि होइ ॥ १४५ ॥

॥ बे परवाही ॥

एकै सबद अनंत सिष, जब सतगुर बोलै ।
दादू जड़े कपाट सब, दे कूंची षोलै ॥ १४६ ॥
बिनही कीया होइ सब, सनमुष सिरजनहार ।
दादू करि करि को मरै, सिष साषा सिरि भार ॥ १४७ ॥
सूरिज सनमुष आरसी, पावक किया प्रकास ।
दादू सांई साध बिचि, सहजैं निपजै दास ॥ १४८ ॥

---

(१४२) शुद्ध बुद्ध आत्मा सतगुर के स्पर्श से आता (प्राप्त होता) है, जैसे कीट भृंगी के मेल से भृंगी हो जाता है ॥

(१४४) कछुवा अपने बच्चौं को दृष्टि से पालता है, कुंज पक्षी अपने बच्चौं का पालन सुरति से करती है; तैसे सतगुर शिष्य की रक्षा करता है दूसरा कोई नहीं ॥

(१४८) सूर्य में अग्नि साधारण रूप से है पर सब पदार्थों में वह अग्नि प्रगट नहीं होती, किन्तु शुद्ध आतशी शीशे ही द्वारा प्रगट होती है; इसी

॥ मन इंद्रिय निग्रह ॥

दादू पंचौं ये परमोधि ले, इनहीं कौं उपदेस ।
यहु मन अपणा हाथि कर, तौ चेला सब देस ॥ १४६॥
अमर भये गुरज्ञान सौं, केते इहि कलि मांहि ।
दादू गुर के ज्ञान बिन, केते मरि मरि जांहि ॥ १५० ॥
औषदि षाइ न पछि रहै, विषम व्याधि क्यौं जाइ ।
दादू रोगी बाव़रा, दोस बैद कौं लाइ ॥ १५१ ॥
बैद बिथा कहै देषि करि, रोगी रहै रिसाइ ।
मन मांहैं लीये रहै, दादू ब्याधि न जाइ ॥ १५२ ॥
दादू बैद बिचारा क्या करै, रोगी रहै न साच ।
षाटा मीठा चरपरा, मांगै मेरा बाच ॥ १५३ ॥

॥ गुर उपदेस ॥

दुर्लभ दरसन साध का, दुर्लभ गुर उपदेस ।
दुर्लभ करिबा कठिन है, दुर्लभ परस अलेष ॥ १५४ ॥
दादू अविचल मंत्र, अमर मंत्र, अषै मंत्र,
अभै मंत्र, राममंत्र निजसार ।
सजीवनमंत्र, सबीरजमंत्र, सुन्दर मंत्र,
सिरोमणि मंत्र, निर्मल मंत्र, निराकार ॥

तरह से सांई (परमेश्वर) सर्वत्र परिपूर्ण है परंतु स्वच्छ अंतःकरण वाले अधिकारी साधू वा दास के ही हृदय में प्रगट होता है, अन्य के नहीं ॥

(१५३) "बाच" की जगह पुस्तक नं० १,२ और ३ में "बाछ" है। इस का अर्थ बच्चा, पुत्र निकलता है ॥

अलष मंत्र, अकल मंत्र, अगाध मंत्र,
अपार मंत्र, अनंत मंत्र राया ।
नूर मंत्र, तेज मंत्र, जोति मंत्र,
प्रकास मंत्र, परम मंत्र पाया ॥
उपदेस दष्या (दादू गुरराया) ॥ १५५ ॥

दादू सबही गुर किये, पसु पंषी बन राइ ।
तीनि लोक गुण पंचसौं, सबही मांहिं षुदाइ ॥ १५६ ॥

जे पहली सत गुर कह्या, सो नैनहुं देष्या आइ ।
अरस परस मिलि एक रस, दादू रहे समाइ ॥ १५७ ॥

इति श्री गुरदेव कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥

---

(१५५) यह गुर दीक्षा है, इन मंत्रों से गुरू शिष्य को उपदेश देता है कि तू अविचल है, अमर है, अक्षय है इत्यादि ॥ इस के अन्त में "दादू गुरराया" शब्द केवल एक पुस्तक नं० १ में है अन्य पुस्तकों में नहीं हैं ॥

(१५६) दादू जी कहते हैं कि हम ने सब ही पशु पक्षी बनराय (वृक्षों) को गुरू किया है क्योंकि सब में परमात्मा व्यापक है ॥

अथ सुमिरण को अंग ॥ २ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
एकै अष्षर पीव का, सोई सत करि जाणि ।
राम नाम सतगुर कह्या, दादू सो परवाणि ॥ २ ॥
पहली श्रवण, दुती रसन, तृतीये हिरदै गाइ ।
चतुर्दसी चिंतन भया, तब रोम रोम ल्यौ लाइ ॥ ३ ॥

॥ मन परमोध ॥

दादू नीका नांव है, तीनि लोक ततसार ।
राति दिवस रटिबो करी, रे मन इहै बिचार ॥ ४ ॥
दादू नीका नांव है, हरि हिरदै न बिसारि ।
मूरति मन मांहैं बसै, सासैं सास संभारि ॥ ५ ॥
सासैं सास संभालतां, इकदिन मिलि है आइ ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुर दिया बताइ ॥ ६ ॥
दादू नीका नांव है, सो तूं हिरदै राषि ।
पाषंड प्रपंच दूरि करि, सुनि साधू जनकी साषि ॥ ७ ॥
दादू नीका नांव है, आप कहै समझाइ ।
और आरंभ सब छाडि दे, राम नाम ल्यौ लाइ ॥ ८ ॥

राम भजन का सोच क्या, करतां होइ सो होइ।
दादू राम संभालिये, फिरि बूझिये न कोइ ॥ ९ ॥

॥ नाम चेतावनी ॥

राम तुम्हारे नांव बिन, जे मुष निकसै और।
तौ इस अपराधी जीव कौं, तीनि लोक कत ठौर ॥१०॥
छिन छिन राम संभालतां, जे जिव जाइ त जाउ।
आतम के आधार कौं, नांहीं आन उपाउ ॥ ११ ॥

॥ सुमिरण माहात्म ॥

एक महूरत मन रहै, नांव निरंजन पास।
दादू तब हीं देषतां, सकल करम का नास ॥ १२ ॥
सहजैं हीं सब होइगा, गुण इंद्री का नास।
दादू राम संभालतां, कटैं करम के पास ॥ १३ ॥

॥ नाम चिंतावणी ॥

राम नाम गुर सबद सौं, रे मन पेलि भरम। (१—१३४)
निहकरमी सौं मन मिल्या, दादू काटि करम ॥ १४ ॥
एक राम के नांव बिन, जीव की जलनि न जाइ।
दादू के ते पचि मुए, करि करि बहुत उपाइ ॥ १५ ॥
दादू एक राम की टेक गहि, दूजा सहजसुभाइ।
राम नाम छाडैं नहीं, दूजा आवै जाइ ॥ १६ ॥

॥ नाम अगाधता ॥

दादू राम अगाध है, परिमित नांहीं पार।
अबरण, बरण न जांणिये, दादू नांइ अधार ॥ १७ ॥

दादू राम अगाध है, अबिगत लषै न कोइ ।
निर्गुण सर्गुण का कहै, नांइ बिलम्ब न होइ ॥ १८ ॥
दादू राम अगाध है, बेहद लष्या न जाइ ।
आदि अंति नहि जाणिये, नांव निरंतर गाइ ॥ १९ ॥

॥ अद्वैत ब्रम्ह ॥

दादू राम अगाध है, अकल अगोचर एक ।
दादू नांउ बिलंबिये, साधू कहैं अनेक ॥ २० ॥
दादू एक अलह राम है, सम्रथ सांई सोइ ।
मेदे के पकवांन सब, षातां होइ सो होइ ॥ २१ ॥
सर्गुण निर्गुण ह्वै रहे, जसा है तैसा लीन ।
हरि सुमिरण ल्यौ लाइये, काजाणौं का कीन ॥ २२ ॥

॥ नाम चित्त आवै सो लेय ॥

दादू सिरजनहार के, केते नांव अनंत ।
चिति आवै सो लीजिये, यौं साधू सुमिरैं संत ॥ २३ ॥
दादू जिन प्रांण पिंड हम कौं दिया, अंतर सेवैं ताहि ।
जे आवै औसाण सिरि, सोई नांव संबाहि ॥ २४ ॥

---

(१८) राम अपार है और अगम्य है, इंद्रियों करके उसे कोई नहीं लख सकता है, निर्गुण सर्गुण का विचार क्या करना, राम नाम का सुमिर्ण करने में विलम्ब न करना चाहिये ॥

(२०) "एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् जो है सो एक है पर विप्र उसको बहुभांति कहते हैं, ऋग्वेद ॥

(२२) दृष्टांतः—दोहा—गुर दादू ढिग बाद तैं, आये द्वै पष दोषि ।
तिन दोनों की बात सुनि, भाष्यौ भजन विशेष ॥

॥ चिंतावणी ॥

दादू ऐसा कोण अभागिया, कछू दिढावै और ।
नांव बिना पग धरन कूं, कहौ कहां है ठौर ॥ २५ ॥

॥ सुमिरण नाम महिमा माहात्म ॥

दादू निमष न न्यारा कीजिये, अंतर थैं उरि नाम ।
कोटि पतित पावन भये, केवल कहतां राम ॥ २६ ॥

॥ मन परमोध ॥

दादू जे तैं अब जाण्यां नहीं, राम नाम निज सार ।
फिरि पीछैं पछिताहिगा, रे मन मूढ गंवार ॥ २७ ॥
दादू राम संभालि ले, जब लग सुषी सरीर ।
फिरि पीछैं पछिताहिगा, जब तन मन धैरै न धीर ॥ २८ ॥
दुष दरिया संसार है, सुष का सागर राम ।
सुषसागर चलि जाइये, दादू तजि बे काम ॥ २९ ॥
दादू दरिया यहु संसार है, तामैं राम नाम निज नाव ।
दादू ढील न कीजिये, यहु औसर यहु डाव ॥ ३० ॥

॥ सु० नाम निःसंशय ॥

मेरे संसा को नहीं, जीवण मरण क राम ।
सुपिनैं ही जिनि बीसरै, मुख हिरदै हरि नाम ॥ ३१ ॥

॥ सु० नाम बिरह ॥

दादू दूषिया तब लगै, जब लग नांव न लेहि ।
तब हीं पावन परम सुख, मेरी जीवन येहि ॥ ३२ ॥

(३२) पावन=पवित्र अथवा हमें प्राप्त हो ॥

॥ सु० नाम पारष लषन ॥

कछु न कहावै आपकौं, सांई कूं सेवै ।
दादू दूजा छाडि सब, नांव निज लेवै ॥ ३३ ॥

॥ सु० नाम निःसंशय ॥

जे चित चहुटै राम सौं, सुमिरण मन लागै ।
दादू आतम जीवका, संसा सब भागै ॥ ३४ ॥

॥ सु० नाम चिंतावणी ॥

दादू पिवका नांवले, तौ मिटैं सिरि साल ।
घड़ी महूरत चालणा, कैसी आवै काल्हि ॥ ३५ ॥

॥ सुमिरण बिना सांस न ले ॥

दादू औसरि जीव तैं, कह्या न केवल राम ।
अंति काल दम कहैं गे, जम बैरी सौं काम ॥ ३६ ॥
दादू ऐसे मंहग मोल का, एक सास जे जाइ ।
चौदह लोक समान सो, कहे रेत मिलाइ ॥ ३७ ॥

॥ अमोल स्वस ॥

सोई सास सुजाण नर, सांई स्यौं लाइ ।
करि साटा सिरजनहार सूं, मंहगे मोलि बिकाइ ॥ ३८ ॥

---

(३३) दान पुण्य भजन करके अपनी प्रशंसा न करावै ॥

(३५) प्रति घड़ी और प्रति महूर्त सुमिरण करते रहना चाहिये, नहीं मालूम कल का दिन कैसा होवै, अर्थात् यह शरीर रहे वा न रहे अथवा सुखी वा दुःखी हो, जिस करके सुमिरण न हो सके ॥

(३७) ऐसे अमोल चौदह लोक समान जन्म को क्यों रेत (धूल) में मिलावै, अर्थात् व्यर्थ गवांवै ॥

॥ व्यर्थ जीवन ॥

जतन करै नहिं जीवका, तन मन पवना फेरि ।
दादू मंहगे मोलका, द्वै दोवटी इक सेर ॥ ३६ ॥

॥ सफल जीवन ॥

दादू रावत राजा राम का, कदे न बिसारी नांव ।
आत्मराम संभालिये, तौ सूबस काया गांव ॥ ४० ॥

॥ निरंतर सुमिरण ॥

दादू अह निसि सदा सरीर मैं, हरि चिंतत दिन जाइ ।
प्रेम मगन लै लीन मन, अन्तर गति ल्यो लाइ ॥ ४१ ॥
निमष एक न्यारा नहीं, तन मन मंझि समाइ ।
एक अंगि लागा रहै, ताकौं काल न षाइ ॥ ४२ ॥
दादू पिंजर पिंड सरीर का, सुवटा सहजि समाइ ।
रमता सेती रमि रहै, बिमलि बिमलि जस गाइ ॥४३॥

---

(३६) जो तन मन और स्वास को फेरि करके साधन नहीं करता है, सो इस अमोल जीवन को केवल दो धोति और एक सेर अन्न का ही रखता है, अर्थात् अपना जीवन व्यर्थ गंवाता है ॥

(४०) जो शूरवीर राजा राम का नाम कभी न बिसारै और आत्मराम को संभाले रहे, उसका बास, काया, और गाम सब सफल है ॥

(४१) "चिंतत" की जगह "चितवत" पुस्तक नं० १ में आया है ।

(४३) पिंड (स्थूल) शरीर रूपी पिंजरें में जीवरूपी सुवटा (सूवा) सहज (आनंद) भाव को प्राप्त होकर रमतारूपी राम से रमि रहे और प्रफुल्लित हो २ कर यश गावे ॥

अबिनासी सौं एक ह्वै, निमष न इत उत जाइ ।
बहुत बिलाई क्या करै, जे हरि हरि सबद सुणाइ ॥४४॥
दादू जहां रहूं तहं राम सौं, भावै कंदलि जाइ ।
भावै गिरि परबति रहूं, भावै ग्रेह बसाइ ॥ ४५ ॥
भावै जाइ जल हरि रहूं, भावै सीस नवाइ ।
जहां तहां हरि नांव सौं, हिरदै हेत लगाइ ॥ ४६ ॥

॥ मन परमोध ॥

दादू राम कहे सब रहत है, नष सष सकल सरीर ।
राम कहे बिन जात है, समझी मनवां बीर ॥ ४७ ॥
दादू राम कहे सब रहत है, लाहा मूल सहेत ।
राम कहे बिन जात है, मूरख मनवां चेत ॥ ४८ ॥
दादू राम कहे सब रहत है, आदि अंति लौं सोइ ।
राम कहे बिन जात है, यहु मन बहुरि न होइ ॥ ४९ ॥
दादू राम कहे सब रहत है, जीव ब्रम्ह की लार ।
राम कहे बिन जात है, रे मन हो हुसियार ॥ ५० ॥

---

(४४) अविनाशी परमात्मा में लय लीन हो । और एक क्षण भी इधर उधर न जाय, ऐसे सूवे का बिल्लीरूपी माया कुछ नहीं कर सकती है, यदि वह हरि हरि (अनहद) शब्द सुनाता रहै ॥

(४६) जल हरि= मछली की तरह जल वास । (२) सीसनवाइ=चिम-गादड़ की तरह उलटे लटकना ॥

॥ परोपकार ॥

हरि भजि साफिल जीवना, पर उपगार समाइ ।
दादू मरणा तहां भला, जहां पसु पंषी षाइ ॥ ५१ ॥

॥ सुमिरण ॥

दादूराम सबद मुषि ले रहै, पीछै लागा जाइ ।
मनसा बाचा क्रमना, तिहिं तत सहजि समाइ ॥ ५२ ॥
दादू रचिमचि लागे नांव सौं, राते माते होइ ।
देषैंगे दीदार कौं, सुष पावैंगे सोइ ॥ ५३ ॥

॥ चेतावनी ॥

दादू सांई सेवैं सब भले, बुरा न कहिये कोइ ।
सारौं मांहैं सो बुरा, जिस घटि नांव न होइ ॥ ५४ ॥
दादू जियरा राम बिन, दुषिया इहि संसार ।
उपजै बिनसै षपि मरै, सुष दुष बारंबार ॥ ५५ ॥
रामनाम रुचे ऊपजै, लेवै हित चित लाइ ।
दादू सोई जीयरा, काहे जमपुरि जाइ ॥ ५६ ॥
दादू नीकी बरियां आय करि, राम जपि लीन्हां ।
आतम साधन सोधि करि, कारिज भल कीन्हां ॥५७॥
दादू अगम बस्त पानैं पड़ी, राषी मंझि छिपाइ ।
छिन छिन सोइ संभालिये, मति वै बीसरि जाइ ॥५८॥

॥ सुमिरण नाम महिमा माहात्म ॥

दादू उजल निर्मला, हरि रंग राता होइ ।
काहे दादू पचि मरै, पानी सेती धोइ ॥ ५९ ॥

सरीर सरोवर राम जल, मांहै संजम सार ।
दादू सहजैं सब गये, मनके मैल बिकार ॥ ६० ॥

दादू राम नामं जलं कृत्वा, स्नानं सदाजितः ।
तन मन आत्म निर्मलं, पंच भूपापंगतः ॥ ६१ ॥

दादू उत्तम इंद्री निग्रहं, मुच्यते माया मनः ।
परम पुरुष पुरातनं, चिंतते सदातनः ॥ ६२ ॥

दादू सब जग बिष भरया, निर्बिष बिरला कोइ ।
सोई निर्बिष होयगा, जाके नांव निरंजन होइ ॥ ६३ ॥

दादू निर्बिष नाव सौं, तन मन सहजैं होइ ।
राम निरोगा करैगा, दूजा नांहीं कोइ ॥ ६४ ॥

ब्रह्म भगति जब ऊपजै, तब माया भगति बिलाइ ।
दादू निर्मल मल गया, ज्यूं रबि तिमर नसाइ ॥ ६५ ॥

मनहरि भांवरि ॥

दादू बिषै बिकार सौं, जब लग मन राता ।
तब लग चीति न आवई, त्रिभुवनपति दाता ॥ ६६ ॥

दादू का जाणौं कब होइगा, हरि सुमिरण इकतार ।
का जाणौं कब छाडिहै, यहु मन बिषै बिकार ॥ ६७ ॥

---

(६१) सदाजित=इन्द्रियजित । पंच भूप (इन्द्रिय) अपंगतः, निर्जीव होगये ।
(६२) मुच्यते=छूटजाता है । सदातनः=नित्यप्रति ॥
(६५) दृष्टांतः—दोहा—लक्ष्मी विष्णु भक्त पैं, लेगई भेट बनाय ।
वे अचाह, ताड़त भये, आई मुंह लबकाय ॥

है सो सुमिरण होता नहीं, नहीं सु कीजै काम ।
दादू यहु तन यौं गया, क्यूं करि पइये राम ॥ ६८ ॥

॥ सुमिरण नाम महिमा माहात्म ॥

दादू राम नाम निज मोहनी, जिनि मोहे करतार ।
सुर नर संकर मुनि जनां, ब्रह्मा सिष्टि बिचार ॥ ६९ ॥
दादू राम नाम निज औषदी, काटै कोटि बिकार ।
बिषम व्याधि थैं ऊबरै, काया कंचन सार ॥ ७० ॥
दादू निर्बिकार निज नांव ले, जीवन इहै उपाइ ।
दादू कृतम काल है, ताकै निकटि न जाइ ॥ ७१ ॥

॥ सुमिरण ॥

मन पवना गहि सुरति सौं, दादू पावै स्वाद ।
सुमिरण मांहै सुष घणा, छाडि देहु बकवाद ॥ ७२ ॥
नांव सपीड़ा लीजिये, प्रेम भगति गुण गाइ ।
दादू सुमिरण प्रीतिसौं , हेत सहित ल्यौ लाइ ॥ ७३ ॥
प्राण कवल मुषि राम कहि, मन पवना मुषि राम ।
दादू सुरति मुषि राम कहि, ब्रह्म सुंनि निज ठाम ॥ ७४ ॥
दादू कहतां सुणतां राम कहि, लेतां देतां राम ।
षातां पीतां राम कहि, आत्म कवल बिश्राम ॥ ७५ ॥

---

(७१) कृतम= कपटी ॥

(७४) प्राण मन सुरति इन तीनौं के मुख में राम ही का सुमिरण होना चाहिये, अर्थात् प्राण मन और सुरति ब्रम्ह की ओर ही लगे रहें ॥ सो ब्रम्ह कैसा है ? सुंनि=आनंदघन, निर्वात, शांत रूप, जहां प्रपंच का अत्यंत अभाव है ॥

ज्यूं जल पैसै दूध मैं, ज्यूं पाणी मैं लूण ।
ऐसैं आत्मराम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥ ७६ ॥
दादू राम नाम मैं पैसि करि, राम नाम ल्यौ लाइ ।
यहु इकंत त्रिय लोक मैं, अनत काहे कौं जाइ ॥७७॥

॥ मध्य ॥

ना घर भला न बन भला, जहां नहीं निज नांव ।
दादू उनमनी मन रहे, भला त सोई ठांव ॥ ७८ ॥

॥ नाम महिमा माहात्म ॥

दादू निर्गुणं नामं मई, हृदय भाव प्रवर्तितं ।
भरमं करमं कलिविषं, माया मोहं कंपितं ॥ ७९ ॥
कालं जालं सोचितं, भयानक जम किंकरं ।
हरिषं मुदितं सतगुरं, दादू अविगत दर्शनं ॥ ८० ॥
दादू सब सुष सरग पयाल के, तोलि तराजू बाहि ।
हरि सुष एक पलक का, तासमि कह्या न जाइ॥ ८१ ॥

---

(७७) दृष्टांत—दोहाः—जगजीवन आंबेर में, भूंर कूवे जाय ।
भजन करत भरियो नहीं, गुर दादू समझाय ॥
गये भाजि बशिष्टजी, छोडि यहे ब्रहमांड ।
रची कुटी संकल्प की, अंतर हिरदे मांडि ॥

(७९–८०) निर्गुण नाम में जब हृदय प्रवर्त होता है, तब भ्रम कर्म और कलिविष (पाप) मायामोह की जड़ कटजाती है काल जाल, शोक, भयानक यमदूत कंपायमान होते हैं, और हर्ष, मोद सतगुर और परमात्मा के दर्शन प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥

(८१) इस साखी में " सरग " की जगह " श्रग " अधिक पुस्तकों में मिलता है ॥

॥ सुमिरण नाम पारिषलषन ॥

दादू राम नाम सब को कहै, कहिबे बहुत बमेक ।
एक अनेकौं फिरि मिले, एक समाना एक ॥ ८२ ॥
दादू अपणी अपणी हदमैं, सब को लेवै नांउ ।
जे लागे बेहद सौं, तिनकी मैं बलि जांउ ॥ ८३ ॥

॥ सुमिरण नाम अगाधता ॥

कौण पटंतर दीजिये, दूजा नांहीं कोइ ।
राम सरीषा राम है, सुमिरयां हीं सुष होइ ॥ ८४ ॥
अपणी जाणै आप गति, और न जाणै कोइ ।
सुमिरि सुमिरि रस पीजिये, दादू आनंद होइ ॥ ८५ ॥

॥ करणी बिना कथणी ॥

दादू सबही बेद पुरान पढ़ि, नेटि नांउं निरधार ।
सब कुछ इनही मांहि है, क्या करिये बिस्तार ॥ ८६ ॥

दृष्टांतः–दोहा–विश्वामित्र बशिष्ट के, अड़वी (बिवाद) पड़ी विशेष ।
शिव ब्रह्मा हरि पचि रहे, न्याय निरेरयो शेष ॥

शेष जी का निर्णय यह था कि हरि के भजन में जो आनंद है सो स्वर्ग पताल में नहीं है ॥

(८२) राम नाम सब कोई कहता है पर कहने में बहुत बिवेक (भेद) है । कोई फिर अनेक जीवों में जन्म पाते हैं और कोई एक परमात्मा में जा मिलते हैं । अथवा कोई राम नाम लेते हुये अनेक विषयों में मन दौड़ाते हैं और कोई एक परमात्मा में ही मग्न रहते हैं ॥

(८४) पटंतर=उपमा ॥

॥ नाम अगाध ॥

पढि पढि थाके पंडिता, किनहूं न पाया पार।
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नाइ अधार ॥ ८७ ॥
निगमहि अगम बिचारिये, तऊ पार न आवै।
ताथैं सेवग क्या करै ? सुमिरण ल्यौ लावै ॥ ८८ ॥

॥ कथणी बिना करणी ॥

दादू अलिफ एक अल्लाः का, जे पढि जाणै कोइ।
कुरान कतेबां इलम सब, पढि करि पूरा होइ ॥ ८९ ॥
दादू यहु तन पिंजरा, मांहीं मन सूवा।
एकै नांव अलंह का, पढि हाफिज हूवा ॥ ९० ॥

॥ सुमिरण नाम पारष लषण ॥

नांव लिया तब जाणिये, जेतन मन रहै समाइ।
आदि अंति माधि एक रस, कबहूं भूलि न जाइ ॥ ९१ ॥

॥ विरह पतिव्रत ॥

दादू एकै दसा अनिनि की, दूजी दसा न जाइ।
आपा भूलै आन सब, एकै रहै समाइ ॥ ९२ ॥

---

(८७) दृष्टांतः–दोहा–बृहस्पति गुर पै इंद्र पढ़ि, गरब भयो मन मांहिं।
समंद, कुंभ अरु सींक ज्यौं, किंचित तैंने पाहि॥
मिश्र कथा बहु तैं करी, रह्यो बार को बार।
नांव सुनिश्चय धारिके, भई गूजरी पार ॥

(८९) अलिफ से तात्पर्य सच्चे सुमिरण से है, अर्थात् जो सच्ची उपासना करता है वह कृतार्थ है ॥

(९०) दृष्टांतः–दोहा- गुर दादू अकबर मिले, कही सुवौ ले जाह।
हमरे संग तो आप है, सुनो अकब्बर शाह ॥

॥ सुमिरण बीनती ॥

दादू पीवै एक रस, बिसरि जाइ सब और ।
अबिगत यहु गति कीजिये, मन राषौ इहि ठौर ॥९३॥
आतम चेतनि कीजिये, प्रेमरस पीवै ।
दादू भूलै देह गुण, ऐसैं जन जीवै ॥ ९४ ॥

॥ सुमिरण नाम अगाध ॥

कहि कहि केते थाके दादू, सुणि सुणि कहु क्या लेई ।
लूंण मिलै गलि पाणियां, तासमि चित यौं देई ॥९५॥
दादू हरिरस पीवतां, रती बिलंब न लाइ ।
बारंबार संभालिये, मतिवै बीसरि जाइ ॥ ९६ ॥

॥ सुमिरण नाम बिरह ॥

दादू जागत सुपना ह्वै गया, चिंतामणि जब जाइ ।
तबहीं साचा होत है, आदि अंति उरि लाइ ॥९७॥
नांव न आवै तब दुषी, आवै सुष संतोष ।
दादू सेवग रामका, दूजा हरष न सोक ॥ ९८ ॥
मिलै तो सब सुष पाइये, बिछुरे बहु दुष होइ ।
दादू सुष दुष रामका, दूजा नाहीं कोइ ॥ ९९ ॥
दादू हरिका नांव जल, मैं मीन ता मांहि ।
संगि सदा आनन्द करै, बिछुरत ही मरि जाहि ॥ १०० ॥

---

(९७) जागृदवस्था का विषय प्रपंच जब स्वप्नवत होजाय, और जगत का चिंतन बिसर जाय, तब साचे ब्रम्ह का साक्षात्कार होता है, ऐसी वृत्ति को आदि अंति (निरंतर) हृदय में लगाये रहना चाहिये ॥

दादू राम बिसारि करि, जीवैं किंहि आधार ।
ज्यूं चातृग जल बूंद कौं, करै पुकार पुकार ॥ १०१ ॥
हम जीवैं इहि आसिरै, सुमिरण के आधार ।
दादू छिटकै हाथथैं, तौ हमकौं वार न पार ॥ १०२ ॥

॥ पतिव्रत निःकाम सुमिरण ॥

दादू नांव निमति रामहि भजै, भगति निमति भजि सोइ ।
सेवा निमति सांई भजै, सदा सजीवनि होइ ॥१०३॥

॥ नाम संपूर्णता ॥

दादू राम रसाइण नित चवै, हरि है हीरा साथ ।
सोधन मेरे सांइयां, अलष षजीना हाथ ॥ १०४ ॥
हिरदै राम रहै जा जनकै, ताकौं ऊरा कौण कहै ।
अठ सिधि नौ निधि ताकै आगै, सनमुष सदा रहै ॥१०५॥
बंदित तीनौं लोक बापुरा, कैसैं दरस लहै ।
नांव निसान सकल जग ऊपरि, दादू देषत है ॥१०६॥
दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ ।
सो धनवंता जाणिये, जाकै राम पदारथ होइ ॥१०७॥
संगहि लागा सब फिरै, राम नाम कै साथ ।
चिंतामणि हिरदै बसै, तौ सकल पदारथ हाथ ॥ १०८ ॥

---

(१०४) राम रसाइण = दसवें द्वार का अमृत ॥
(१०५) दृष्टांतः बाल दिढ़री कबीर के, दादू गे टोलाव ।
भारद्वाज मुनि प्रयाग में, भरथ जिमायो साव ॥

दादू आनंद आत्मा, अबिनासी कै साथ।
प्राणनाथ हिरदै बसै, तौ सकल पदारथ हाथ॥ १०६ ॥

॥ पुरुष प्रकासीक ॥

दादू भावै तहां छिपाइये, साच न छाना होइ (१३–१७२)
सेस रसातलि गगनधू, प्रगट कहीये सोइ ॥ ११० ॥
दादू कहां था नारद मुनि जना, कहां भगत प्रहलाद।
परगट तीन्यूं लोक मैं, सकल पुकारैं साध ॥ १११ ॥
दादू कहं सिव बैठा ध्यान धरि, कहां कबीरा नाम।
सो क्यौं छांनां होइगा, जे रू कहेगा राम ॥ ११२ ॥
दादू कहां लीन सुखदेव था, कहं पीपा रैदास।
दादू साचा क्यौं छिपै, सकल लोक परकास ॥ ११३ ॥
दादू कहं था गोरष भरथरी, अनंत सिधौं का मंत।
परगट गोपीचंद है, दत्त कहैं सब संत ॥ ११४ ॥
अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन।
दादू छाना क्यौं रहै, जिस घटि राम रतन ॥ ११५ ॥
दादू श्रग पयाल मैं, साचा लेवै नांव़।
सकल लोक सिरि देषिये, परगट सबही ठांव़ ॥ ११६ ॥

सुमिरण लांबि रस ॥

सुमिरण का संसा रह्या, पछितावा मन मांहि।
दादू मीठा राम रस, सगला पीया नांहि ॥ ११७ ॥
दादू जैसा नांव़ था, तैसा लीया नांहि।
हौंस रही यहु जीव़ मैं, पछितावा मन मांहि ॥ ११८ ॥

सुमिरण नाम चिंतावणी ॥

दादू सिरि करवत बहै, बिसरै आतम राम ।
माहिं कलेजा काटिये, जीव नहीं बिश्राम ॥ ११९॥
दादू सिरि करवत बहै, राम रिदै थी जाइ ।
मांहि कलेजा काटिये, काल दसौं दिसि षाइ ॥ १२० ॥
दादू सिरि करवत बहै, अंग परस नहि होइ ।
माहिं कलेजा काटिये, यहु बिथा न जाणै कोइ ॥ १२१ ॥
दादू सिरि करवत बहै, नैनहु निरषै नांहि ।
मांहि कलेजा काटिये, साल रह्या मन मांहि ॥ १२२ ॥
जेता पाप सब जग करै, तेता नांव बिसारैं होइ ।
दादू राम संभालिये, तौ येता डारै धोइ ॥ १२३ ॥
दादू जबही राम बिसारिये, तबही मोटी मार ।
षंड षंड करि नाषिये, बीज पड़ै तिंहिबार ॥ १२४ ॥
दादू जबही राम बिसारिये, तबही झंपै काल ।
सिर ऊपरि करवत बहै, आइ पड़ै जम जाल ॥ १२५ ॥
दादू जबही राम बिसारिये, तबही कंध बिनास ।
पग पग परलै पिंड पड़ै, प्राणी जाइ निरास ॥ १२६ ॥
दादू जबही राम बिसारिये, तबही हांनां होइ ।
प्राण पिंड सर्वस गया, सुषी न देष्या कोइ ॥ १२७ ॥

---

(१२३) परमेश्वर का सब जगह होना, सर्वज्ञभाव, और उस की भक्ति भूल जाने ही से मनुष्य पापों में फंसता है । जो परमेश्वर को सदैव अपने सन्मुख रखता है वह पापों से छूट जाता है ॥

॥ नाम संपूरण ॥

साहिबजी के नांव़मां, बिरहा पीड़ पुकार ।
तालाबेली रोवणां, दादू है दीदार ॥ १२८ ॥

॥ सुमिरण विधि ॥

साहिबजी के नांव़मां, भाव़ भगति बेसास ।
लै समाधि लागा रहै, दादू सांई पास ॥ १२९ ॥
साहिब जी के नांव़मां, मति बुधि ज्ञान बिचार ।
प्रेम प्रीति सनेह सुष, दादू जोति अपार ॥ १३० ॥
साहिबजी के नांव़मां, सब कुछ भरे भंडार ।
नूर तेज अनंत है, दादू सिरजनहार ॥ १३१ ॥
जिस मैं सब कुछ सो लिया, निरंजन का नांउं ।
दादू हिरदै राषिये, मैं बलिहारी जांउं ॥ १३२ ॥

इति श्री सुमिरण कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥

अथ विरह को अंग ॥ ३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
रतिवंती आरति करै, राम सनेही आव ।
दादू औसर अब मिलै, यहु बिरहनि का भाव ॥ २ ॥
पीव पुकारै बिरहनी, निस दिन रहै उदास ।
राम राम दादू कहै, तालाबेली प्यास ॥ ३ ॥
मन चित चातृग ज्यूं रटै, पिव पिव लागी प्यास ।
दादू दरसन कारनै, पुरवहु मेरी आस ॥ ४ ॥
दादू बिरहनि दुष कासनि कहै, कासनि देइ संदेस ।
पंथ निहारत पीव का, बिरहनि पलटे केस ॥ ५ ॥ (ग)
दादू बिरहनि दुख कासनि कहै, जानत है जगदीस ।
दादू निसदिन बिरहि है, बिरहा करवत सीस ॥ ६ ॥
सबद तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यों कारी ।
तुंहीं तुंहीं निस दिन करौं, विरहा की जारी ॥ ७ ॥

---

(२) रतिवंती बुद्धि है सो याचना करती है कि हे राम, मेरे स्नेही, मुझ को प्राप्त हो । आप की प्राप्ति का अवसर मुझे अब मिलै अब मिलै । इस तरह का भाव विरहनि–मुमुक्षु–बुद्धि का होता है ॥

(६) "विरहि है" की जगह पु० नं० १ में "विरहै", पु० नं० २ में "विहर है", पु० नं० ३, ५ में "विहरि है" है ॥

(७) हे प्रभु ! नाम तुम्हारा पवित्र है जिस को रटते २ बिरह से जली

॥ बिरह विलाप ॥

बिरहनि रोवै राति दिन, झूरै मनही माहिं ।
दादू औसर चलि गया, प्रीतम पाये नाहिं ॥ ८ ॥
दादू बिरहनि कुरलै कुंज ज्यूं, निसदिन तलपत जाइ ।
राम सनेही कारणै, रोवत रैनि बिहाइ ॥ ९ ॥
पासैं बैठा सब सुणै, हम कौं ज्वाब न देइ ।
दादू तेरे सिरि चढै, जीव हमारा लेइ ॥ १० ॥
सब कौं सुषिया देषिये, दुषिया नांही कोइ ।
दुषिया दादू दास है, औंन परस नहिं होइ ॥ ११ ॥
साहिब मुषि बोलै नहीं, सेवग फिरै उदास ।
यहु बेदन जिय मैं रहै, दुषिया दादू दास ॥ १२ ॥
पिव बिन पल पल जुग भया, कठिन दिवस क्यौं जाइ ।
दादू दुषिया राम बिन, कालरूप सब षाइ ॥ १३ ॥
दादू इस संसार मैं, मुझ सा दुषी न कोइ ।
पीव मिलन के कारणै, मैं जल भरिया रोइ ॥ १४ ॥
ना वहु मिलै न मैं सुषी, कहु क्यौं जीवन होइ ।
जिन मुझकौं घाइल किया, मेरी दारू सोइ ॥ १५ ॥
दरसन कारनि बिरहनी, बैरागनि होवै ।
दादू बिरह बिवोगनी, हरि मारग जोवै ॥ १६ ॥

हुई चिड़िया रूपी मेरी बुद्धि क्यों काली (मलीन) है ? जिज्ञासू की यही हालत होती है, जब तक आत्मानंद नहीं मिलता तब तक जिज्ञासू साधन करता हुआ भी दुःखी ही रहता है ॥

॥ विरह उपदेश ॥

अति गति आतुर मिलन कौं, जैसें जल बिन मीन ।
सो देषै दीदार कौं, दादू आतम लीन ॥ १७ ॥
राम बिछोही बिरहनी, फिरि मिलन न पावै ।
दादू तलपै मीन ज्यूं, तुझ दया न आवै ॥ १८ ॥

॥ छिन बिछोह ॥

दादू जब लग सुरति समिटै नहीं, मन निहचल नहिं होइ ।
तब लग पिव परसै नहीं, बड़ी विपति यहु मोहि ॥१९॥
ज्यूं अमली कै चित अमल है, सूरे कै संग्राम ।
निर्धन कै चित धन बसै, यौं दादू कै राम ॥ २० ॥
ज्यूं चातृग कै चिति जल बसै, ज्यूं पानी बिन मीन ।
जैसे चंद चकोर है, ऐसैं दादू हरिसौं कीन ॥ २१ ॥
ज्यूं कुंजर कै मन बन बसै, अनल पंषि आकास ।
यूं दादू का मन राम सौं, ज्यूं बैरागी बन षंडि बास ॥२२॥
भवरा लुबधी बासका, मोह्या नाद कुरंग ।
यौं दादू का मन रामसौं, ज्यौं दीपक जोति पतंग ॥ २३ ॥
श्रवना राते नाद सौं, नैनां राते रूप ।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यौं दादू एक अनूप ॥ २४ ॥

॥ विरह उपदेस ॥

देह पियारी जीवकौं, निसदिन सेवा मांहि ।
दादू जीवन मरण लौं, कबहूं छाडी नांहि ॥ २५ ॥

---

(२४) जैसे कान को गाना मीठा है, नेत्रों को रूप, और जिभ्या को स्वाद तैसे दादू को एक अनूप परमात्मा प्रिय है ॥

देह पियारी जीवकौं, जीव पियारा देह ।
दादू हरि रस पाइये, जे ऐसा होइ सनेह ॥ २६ ॥

दादू हरदम मांहि दिवान, सेज हमारी पीव है ।
देषौं सो सुबहान, ये इसक हमारा जीव है ॥ २७ ॥

दादू हरदम मांहि दिवान, कहूं दरूंनैं दरदसौं ।
दरद दरूंनै जाइ, जब देषौं दीदार कौं ॥ २८ ॥

॥ विरह वीनती ॥

दादू दरूनै दरदवंद, यहु दिल दरद न जाइ ।
हम दुषिया दीदार के, मिहरबान दिषलाइ ॥ २९ ॥

मूये पीड़ पुकारतां, बैद न मिलिया आइ ।
दादू थोड़ी बात थी, जे टुक दरस दिषाइ ॥ ३० ॥

॥ बिनती ॥

दादू मैं भिष्यारी मंगिता, दरसन देहु दयाल ।
तुम दाता दुष भंजिता, मेरी करहु संभाल ॥ ३१ ॥

---

(२७) हर स्वास मैं आतुर हूं, मेरा पीव परमात्मा मेरी सेज में (शरीर के अंदर) है, उस को देखूं तो आनंद हो । इस प्रकार के प्रेम ही से मेरा जीवन है ॥

(२८) हरदम मैं दीवाना हो रहा हूं, दर्द से मैं अपने अंदर पुकार रहा हूं । जब परमात्मा का दर्शन पाउं तब मेरे अंदर का दुःख जाय ॥

(२९) दर्द बंद का भीतरी दर्द दिल से नहीं जाता । क्यों ? वह दुखिया दीदार का है । जब दयालू परमात्मा अपना दर्शन दे तो वह दुःख जाय ॥

॥ छिन बिछोह ॥

क्या जीयेमैं जीवणां, बिन दरसन बेहाल ।
दादू सोई जीवणां, परगट परसन लाल ॥ ३२ ॥
इहि जगि जीवन सो भला, जब लग हिरदै राम ।
राम बिना जे जीवनां, सो दादू बेकांम ॥ ३३ ॥

॥ बिरह बीनती ॥

दादू कहु दीदार की, सांई सेती बात ।
कब हरि दरसन देहुगे, यहु औसर चलि जात ॥ ३४ ॥
बिथा तुम्हारे दरस की, मोहि व्यापै दिन राति ।
दुषी न कीजै दीन कौं, दरसन दीजै तात ॥ ३५ ॥
दादू इस हियड़े ये साल, पिव बिन क्योंहि न जाइसी ।
जब देषौं मेरा लाल, तब रोम रोम सुष आइसी ॥ ३६ ॥
तूं है तैसा प्रकास करि, अपनां आप दिषाइ ।
दादू कौं दीदार दे, बलि जाउं बिलंब न लाइ ॥ ३७ ॥
दादू पिवजी देषै मुझकौं, हूं भी देषौं पीव ।
हूं देषौं, देषत मिलै, तो सुष पावै जीव ॥ ३८ ॥

॥ बिरह कसौटी ॥

दादू कहै तन मन तुम परि वारणैं, करि दीजै कै बार ।
जे ऐसी बिधि पाइये, तो लीजै सिरजनहार ॥ ३९ ॥

---

(३२) परगट परसन लाल=लाल परमात्मा तिस का दर्शन पर्शन रूप साक्षात्कार ॥

॥ वि० पतिव्रत ॥

दीन दुनी सदकै करौं, टुक देषण दे दीदार ।
तन मन भी छिन छिन करौं, भिस्त दोजग भी वार ॥४०॥

॥ वि० कसौटी ॥

दादू हम दुषिया दीदार के, तूं दिल थैं दूरि न होइ ।
भावै हमकौं जालि दे, हूंणां है सो होइ ॥ ४१ ॥

॥ वि० पतिव्रत ॥

दादू कहै जे कुछ दिया हमकौं, सो सब तुम ही लेहु ।
तुम बिन मन मानै नहीं, दरस आपणां देहु ॥ ४२ ॥

दूजा कुछ मांगैं नहीं, हम कौं दे दीदार ।
तूं है तब लग एक टग, दादू के दिलदार ॥ ४३ ॥

बिरह बिनती ॥

दादू कहै तूं है तैसी भगति दे, तूं है तैसा प्रेम ।
तूं है तैसी सुरति दे, तूं है तैसा षेम ॥ ४४ ॥

दादू कहै सदिकै करौं सरीर कौं, बेर बेर बहु भंत ।
भाव भगति हित प्रेम ल्यौ, षरा पियारा कंत ॥ ४५ ॥

दादू दरसन की रली, हम कौं बहुत अपार ।
क्या जाणौं कबहीं मिलै, मेरा प्रांण अधार ॥ ४६ ॥

दादू कारणि कंत के, षरा दुषी बेहाल ।
मीरां मेरा मिहर करि, दे दरसन दरहाल ॥ ४७ ॥

तालाबेली प्यास बिन, क्यौं रस पीया जाइ ।
बिरहा दरसन दरद सौं, हम कौं देहु षुदाइ ॥ ४८ ॥

---

(४०) भिस्त दोजग=बहिश्त दोज़ख़=स्वर्ग नर्क ॥

तालाबेली पीड़सौं, विरहा प्रेम पियास ।
दरसन सेती दीजिये, बिलसै दादू दास ॥ ४९ ॥
दादू कहै, हमकौं अपणां आप दे, इश्क मुहब्बति दर्द ।
सेज सुहाग सुष प्रेमरस, मिलि षेलैं लापर्द ॥ ५० ॥
प्रेम भगति माता रहै, तालाबेली अंग ।
सदा सपीड़ा मन रहै, राम रमै उन संग ॥ ५१ ॥
प्रेम मगन रस पाइये, भगति हेत रुचि भाव ।
बिरह बेसास निज नांवसौं, देव दया करि आव ॥५२॥
गई दसा सब बाहुड़ै, जे तुम प्रगटहु आइ ।
दादू ऊजड़ सब बसै, दरसन देहु दिषाइ ॥ ५३ ॥
हम कसियें क्या होइगा, बिड़द तुम्हारा जाइ ।
पीछैं हीं पछिताहु गे, ता थैं प्रगटहु आइ ॥ ५४ ॥

॥ छिण विछोह ॥

मींयां मैंडा आव घरि, वांढी वत्तां लोइ ।
डुषंडे मुंहिडे गये, मरां बिछोहै रोइ ॥ ५५ ॥

---

(५०) इश्क मुहब्बति की जगह मूल पुस्तकों में "इसक महुबति" आया है ॥

(५३) गई दसा=ब्रम्हभाव, जो जीवभाव से पूर्व था ।

(५४) "हम कसियें"=हम को कसने से, अर्थात् दुःख देने से ।

(५५) हे मेरे मियां (मालिक) मेरे घर आव, अर्थात् मेरे मन में बास कर, मैं दुहागणी लोक में फिरती हूं, मेरे दुःख बढ़ गये हैं और तेरे वियोग से मैं मरती हूं ।

॥ विरह पतिव्रत ॥

है, सो निधि नहिं पाइये, नहीं, सो है भरपूर ।
दादू मन मानै नहीं, तातैं मरिये झूरि ॥ ५६ ॥

॥ विरही विरह लष्यण ॥

जिस घटि इसक अलाह का, तिस घटि लोही न मास ।
दादू जियरे जक नहीं, ससकै सासैं सास ॥ ५७ ॥
रत्ती रब ना बीसरै, मरै संभालि संभालि ।
दादू सुहदायी रहै, आसिक अल्लह नाल ॥ ५८ ॥
दादू आसिक रब दा, सिर भी डेवै लाहि ।
अल्लह कारणि आप कौं, साड़ै अंदरि भाहि ॥ ५९ ॥

॥ कसौटी ॥

भोरे भोरे तन करै, वंडै करि कुरबाण ।
मिट्ठा कौड़ा ना लगै, दादू तौहू साण ॥ ६० ॥

॥ विरह लष्यन ॥

जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ ।
आसिक मरणै नां डरै, पिया पियाला सोइ ॥ ६१ ॥

---

(५६) है सत, सो प्राप्त होता नहीं; नहीं है असत, प्रपंच, सो भरपूर प्रतीत होता है । और मन मानता नहीं, तिस से हम सूखकर मरते हैं ॥

(५९) रब (परमेश्वर) का प्रेमी अपने संपूर्ण अपनपौ को परमेश्वर को अर्पण करै । और परमेश्वर के वास्ते आपे (अहंकार) को अग्नि (विरह) में साड़ै (जलावै) ।

(६०) तन को रत्ती २ काट कर कुर्बाण चढ़ावै और बांट दे । इतना करने पर मीठा परमेश्वर कड़वा न लगै, तब परमेश्वर (प्राप्त) हो ॥

॥ बिरह पतिब्रत ॥

तैं डीनों ई सभु, जे डीये दीदार के ।
　उंजे लहदी अभु, पसाई दो पाण के ॥ ६२ ॥
बिचौं सभौ डूरि करि, अंदरि बिया न पाइ ।
　दादू रता हिकदा, मन मोहब्बत लाइ ॥ ६३ ॥

॥ बिरह उपदेश ॥

इसक महवति मस्त मन, तालिब दर दीदार ।
　दोस्त दिल हरदम हजूर, यादिगार हुसियार ॥ ६४ ॥

॥ बिरह लष्यन ॥

दादू आसिक एक अलाह के, फारिक दुनियां दीन ।
　तारिक इस औजूद थैं, दादू पाक अकीन ॥ ६५ ॥

---

(६२) दर्शन देने से आप सब कुछ दे चुकोगे । उसकी प्राप्ति से सब वांछा पूरी होंगी, जो आप दिखाई दोगे ॥

(६३) बीच से सब पर्दा दूर कीजिये, अंदर द्वैतभाव न रहे । दादू एक ही में प्रेम पूर्वक मन लगाय कर रत है ॥

(६४) यह साखी अकबरशाह के प्रश्न के उत्तर में कही थी । तात्पर्य इस का यह है कि ईश्वर के प्रेम में मन मस्त रहे और उस के दर्शन की इच्छा बनाये रक्खे । अपना दोस्त जो परमात्मा उस के सन्मुख दिल हरदम रक्खे और उस की याद में होशियार रहे ॥

(६५) दादू जी कहते हैं कि एक परमात्मा के भक्त, लोक और मतों से मुक्त होते हैं, अपने शरीर के अभिमान को भी वो तरक (छोड़) देते हैं, केवल एक पवित्र परमात्मा ही का निश्चय रखते हैं ॥

आसिकां रह कबज कर्दां, दिल व़ जां रफतंद । (४–१४६)
अलह आले नूर दीदम, दिलहि दादू बंद ॥ ६६ ॥

॥ शब्द ॥

दादू इसक अवाज सौं, अैसैं कहै न कोइ ।
दर्द मोहब्बति पाइये, साहिब हासिल होइ ॥ ६७ ॥

॥ बिरही बिलाप लष्यन ॥

कहं आसिक अल्लाः के, मारे अपने हाथ ।
कहं आलम औजूद सौं, कहै जवां की बात ? ॥ ६८ ॥
दादू इसक अल्लाःका, जे कबहूं प्रगटै आइ ।
तौ तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ ॥ ६९ ॥

---

(६६) इस का अर्थ यह है:– प्रेमीजनों को परमेश्वर अपनी तरफ खैंच लेता है और उन के दिल और जान परमेश्वर ही की तरफ जाते हैं । परमेश्वर का शोभायमान प्रकाश मैं देखता हूं और तरफों से मेरा दिल बंद है ॥

(६७) प्रेम शब्द कोई इस प्रकार से नहीं कहता है, (जो कहे) तो प्रेम और बिरह दर्द दोनों प्राप्त हों और परमात्मा का दर्शन भी हो ॥

(६८) साखी प्रश्न की, कहां इस आलम वजूद (इस लोक) में ऐसे परमेश्वर के प्रेमी हैं जो अपने हाथ से आपको मारें अर्थात् ऐसे कठिन बिरह का करैं ?

(६९) उत्तरः– दयालजी कहते हैं कि जो कभी परमात्मा का प्रेम प्राप्त हो जावै, तो जीव के तन मन दिल के सब पड़दे (अज्ञान, भय, दुःख दुर्बलतादि) नष्ट हो जांय ॥

॥ विरह जिज्ञास उपदेश ॥

अरवाहे सिजदा कुनंद, औजूद रा चिकार । (४–१४५)
दादू नूर दादनी, आसिकां दीदार ॥ ७० ॥

॥ विरह ज्ञान अग्नि ॥

दादू बिरह अग्नि तन जालिये, ज्ञान अग्नि दौं लाइ ।
दादू नषसिष परजलै, तब राम बुझावै आइ ॥ ७१ ॥
विरह अगनि मैं जालिबा, दरसन के तांई ।
दादू आतुर रोइबा, दूजा कुछ नांहीं ॥ ७२ ॥

॥ विरह पतिव्रत ॥

साहिब सौं कुछ बल नहीं, जिनि हठ साधै कोइ ।
दादू पीड़ पुकारिये, रोतां होइ सो होइ ॥ ७३ ॥
ज्ञान ध्यान सब छाडि दे, जप तप साधन जोग ।
दादू बिरहा ले रहै, छाडि सकल रस भोग ॥ ७४ ॥
जहं बिरहा तहं और क्या, सुधि बुधि नांठे ज्ञान ।
लोक वेद मारग तजे, दादू एकै ध्यान ॥ ७५ ॥

॥ विरही विरह लष्यन ॥

बिरही जन जीवै नहीं, जे कोटि कहैं समझाइ ।
दादू गहिला ह्वै रहै, कै तलफि तलफि मरि जाइ ॥ ७६ ॥

---

(७०) जीव परमात्मा को दंडवत करता है, न शरीर (औजूद, वजूद) । भक्तों को नूर (प्रकाश) रूपी दीदार (दर्शन) दीदनी (देखना) प्रिय है ॥

(७१) परजलै = प्रज्वलै, प्रदीप्त हो, खूबजले ।

(७६) देखौ साखी ३ – ८५ ॥

दादू तलफै पीड़ सौं, बिरही जन तेरा ।
ससकै सांई कारणै , मिलि साहिब मेरा ॥ ७७ ॥
पड्या पुकारै पीड़ सौं, दादू बिरही जन ।
राम सनेही चिति बसै, और न भावै मन ॥ ७८ ॥
जिस घटि बिरहा रामका, उस नींद न आवै ।
दादू तलफै बिरहनीं , उस पीड़ जगावै ॥ ७९ ॥
सारा सूरा नींद भरि, सब कोइ सोवै ।
दादू घाइल दरद बंद, जागै अरु रोवै ॥ ८० ॥
पीड़ पुरांणीं नां पड़ै, जे अंतर बेध्या होइ ।
दादू जीवण मरण लौं, पड्या पुकारै सोइ ॥ ८१ ॥
दादू बिरही पीड़ सौं, पड्या पुकारै मीत ।
राम बिना जीवै नहीं, पीव मिलन की चीत ॥ ८२ ॥
जे कबहुं बिरहनि मरै, तौ सुरति बिरहनी होइ ।
दादू पिव पिव जीवतां, मुवां भी टेरै सोइ ॥ ८३ ॥
दादू अपणी पीड़ पुकारिये, पीड़ पराई नांहि ।
पीड़ पुकारै सो भला, जाके करक कलेजे मांहि ॥८४॥

बिरह बिलाप ॥

ज्यूं जीवत मृत्तक कारणै, गत करि नाषै आप ।
यौं दादू कारणि रामके, बिरही करै बिलाप ॥ ८५ ॥

---

(८२) चीत=चिंता ।

(८५) जीवत मृतक वह है जो जीते जी इस शरीर को मृतवत मानै—देखौ जीवत मृतक २३ वां अंग ।

दादू तलफि तलफि बिरहनि मरै, करि करि बहुत बिलाप।
बिरह अगनि मैं जल गई, पीव न पूछै बात ॥ ८६ ॥
दादू कहां जांव कौण पै पुकारौं, पीव न पूछै बात।
पिव बिन चैन न आवई, क्यौं भरौं दिन रात ॥ ८७ ॥
दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, मो पैं सह्या न जाइ।
कोई कहौ मेरे पीव कौं, दरस दिषावै आइ ॥ ८८ ॥
दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, निसदिन सालै मोंहि।
कोई कहौ मेरे पीव कौं, कब मुष देषौं तोहि ॥ ८९ ॥
दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, तन मन धरै न धीर।
कोई कहौ मेरे पीव कौं, मेटै मेरी पीर ॥ ९० ॥
दादू कहै साध दुखी संसार मैं, तुम बिन रह्या न जाइ।
औरौं के आनंद है, सुखसौं रैनि बिहाइ ॥ ९१ ॥
दादू लाइक हम नहीं, हरि के दरसन जोग।
बिन देषे मरि जांहिगे, पिव के बिरह बिवोग ॥ ९२ ॥

॥ बिरह पतिव्रत ॥

दादू सुष सांईसौं, और सबै ही दुष।
देषौं दरसन पीव का, तिसही लागै सुष ॥ ९३ ॥
चंदन सीतल चंद्रमा, जल सीतल सब कोइ।
दादू बिरही राम का, इनसौं कदे न होइ ॥ ९४ ॥

---

(८७) "भरौं" पूर्ण (व्यतीत) करौं ॥

॥ बिरही विरह लष्यन ॥

दादू घाइल दरदवंद, अंतरि करै पुकार ।
सांई सुणै सब लोक मैं, दादू यहु अधिकार ॥ ९५ ॥

दादू जागै जगतगुर, जग सगला सोवै ।
बिरही जागै पीड़सौं, जे घाइल होवै ॥ ९६ ॥

॥ विरह ज्ञान अगनि ॥

बिरह अगनि का दाग दे, जीवत मृत्तक गोर । (२३–५६)
दादू पहिली घर किया, आदि हमारी ठौर ॥ ९७ ॥

॥ विरह पतिव्रत ॥

दादू देषे का अचिरज नहीं, अण देषे का होइ ।
देषे ऊपरि दिल नहीं, अण देषे कौं रोइ ॥ ९८ ॥

॥ विरह उपजनि ॥

पहिली आगम विरह का, पीछैं प्रीति प्रकास ।
प्रेम मगन लै लीन मन, तहां मिलन की आस ॥ ९९ ॥

बिरह बिवोगी मन भला, सांई का बैराग ।
सहज संतोषी पाइये, दादू मोटे भाग ॥ १०० ॥

दादू तृषा बिना तनि प्रीति न उपजै, सीतल निकटि जल धरिया ।
जनम लगैं जिव पुणग न पीवै, निरमल दह दिस भरिया ॥ १०१ ॥

दादू षुध्या बिना तनि प्रीति न उपजै, बहु बिधि भोजन नेरा ।
जनम लगैं जिव रती न चाषै, पाक पूरि बहुतेरा ॥ १०२ ॥

---

(१०२) नेरा=नेरे=नजदीक ।

दादू तपति बिना तनि प्रीति न उपजै, संग ही सीतल छाया ।
जनम लगैं जिव जाणै नांहीं, तरवर त्रिभुवन राया ॥ १०३ ॥
दादू चोट बिना तनि प्रीति न उपजै, औषद अंग रहंत ।
जनम लगैं जिव पलक न परसै, बूंटी अमर अनंत ॥ १०४ ॥
दादू चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥ १०५ ॥
दादू पीड़ न ऊपजी, ना हम करी पुकार ।
ताथैं साहिब ना मिल्या, दादू बीती बार ॥ १०६ ॥
अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहरि करै पुकार ।
दादू सो क्यौं करि लहै, साहिब का दीदार ॥ १०७ ॥
मन हीं मांहै झूरणां, रोवै मन हीं मांहि ।
मन हीं मांहै धाह दे, दादू बाहरि नांहि ॥ १०८ ॥
बिन ही नैन हु रोवणां, बिन मुष पीड़ पुकार ।
बिन ही हाथौं पीटणां, दादू बारंबार ॥ १०९ ॥
प्रीति न उपजै बिरह बिन, प्रेम भगति क्यौं होइ ।
सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करै जे कोइ ॥ ११० ॥
दादू बातौं बिरह न ऊपजै, बातौं प्रीति न होइ । (ख)
बातौं प्रेम न पाइये, जिनि रू पतीजै कोइ ॥ १११ ॥

॥ बिरह उपदेश ॥

दादू तौ पिव पाइये, कुसमल है सो जाइ ।
निर्मल मन करि आरसी, मूरति मांहि लषाइ ॥ ११२ ॥
दादू तौ पिव पाइये, करि मंझ बिलाप ।
सुनिहै कबहूं चित्त धरि, परगट होवै आप ॥ ११३ ॥

दादू तौ पिव पाइये, करि सांई की सेव ।
काया मांहि लषाइसी, घटही भीतरि देव ॥ ११४ ॥
दादू तौ पिव पाइये, भावै प्रीति लगाइ ।
हेजैं हरी बुलाइये, मोहन मंदिर आइ ॥ ११५ ॥

॥ विरह उपजनि ॥

दादू जाकै जैसी पीड़ है, सो तैसी करै पुकार ।
को सूषिम, को लहज मैं, को मृतक तिहिं बार ॥ ११६ ॥

॥ विरह लष्यन ॥

दरद हि बूझै दरदवंद, जाके दिल होवै ।
क्या जाणै दादू दरदकी, नींद भरि सोवै ॥ ११७ ॥

॥ करनी विना कथनी ॥

दादू अष्यर प्रेम का, कोई पढैगा एक ।
दादू पुस्तक प्रेम विन, केते पढ़ैं अनेक ॥ ११८ ॥
दादू पाती प्रेम की, विरला बांचै कोइ ।
बेद पुरान पुस्तक पढैं, प्रेम विना क्या होइ ॥ ११९ ॥

॥ विरह बाण ॥

दादू कर बिन सर बिन कमान विन, मारै पैंचि कसीस ।
लागी चोट सरीर मैं, नष सिष सालै सीस ॥ १२० ॥
दादू भलका मारै भेदसौं, सालै भंभि पराण ।
मारण हारा जाणि है, के जिहि लागै बाण ॥ १२१ ॥
दादू सो सर हमकौं मारिले, जिहि सरि मिलिये जाइ ।
निसदिन मारग देषिये, कबहूं लागै आइ ॥ १२२ ॥

जिहि लागी सो जागि है, बेध्या करै पुकार ।
दादू पिंजर पीड़ है, सालै बारंबार ॥ १२३ ॥
बिरही ससकै पीड़सौं, ज्यौं घाइल रण मांहि ।
प्रीतिम मारे बाण भरि, दादू जीवै नांहि ॥ ॥ १२४ ॥
दादू बिरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव ।
जीव जगावै सुरति कौं, पंच पुकारैं पीव ॥ १२५ ॥
दादू मारे प्रेम सौं, बेधे साध सुजाण ।
मारण हारे कौं मिले, दादू बिरही बांण ॥ १२६ ॥
सहजै मनसा मन सधै, सहजैं पवनां सोइ ।
सहजै पंचौं थिर भये, जे चोट बिरह की होइ ॥ १२७ ॥
मारणहारा रहि गया, जिहि लागी सो नांहि ।
कबहूं सो दिन होइगा, यहु मेरे मन मांहि ॥ १२८ ॥
प्रीतम मारे प्रेम सौं, तिनकौं क्या मारै ।
दादू जारे बिरह के, तिन कौं क्या जारै ॥ १२९ ॥

॥ छिण बिछोह ॥

दादू पड़दा पलक का, येता अंतर होइ ।
दादू बिरही राम बिन, क्यौं करि जीवै सोइ ॥ १३० ॥

॥ बिरह लष्यन ॥

काया मांहै क्यौं रह्या, बिन देषे दीदार ।
दादू बिरही बावरा, मरै नहीं तिहि बार ॥ १३१ ॥
बिन देषैं जीवै नहीं, बिरह का सहिनाण ।
दादू जीवै जब लगैं, तब लग बिरह न जांण ॥ १३२ ॥

॥ बिरह बीनती ॥

रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार ।
राम घटा दल उमंगि करि, बरसहु सिरजनहार ॥ १३३ ॥

॥ बिरही बिरह लष्यन ॥

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहि ।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नांहि ॥ १३४ ॥

सब घट श्रवनां सुरति सौं, सब घट रसनां बैंन ।
सब घट नैंना ह्वै रहे, दादू बिरहा अैन ॥ १३५ ॥

॥ बिरह बिलाप ॥

राति दिवस का रोवणां, पहर पलक का नांहि ।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब मांहि ॥ १३६ ॥

दादू नैंन हमारे बावरे, रोवैं नहिं दिनराति ।
सांई संग न जागहीं, पिव क्यौं पूछै बात ॥ १३७ ॥

नैनहु नीर न आइया, क्या जाणैं ये रोइ ।
तैसें ही करि रोइये, साहिब नैनहु जोइ ॥ १३८ ॥

दादू नैन हमारे ढीठ हैं, नाले नीर न जांहिं ।
सूके सरां सहेत वै, करंक भये गलि मांहि ॥ १३९ ॥

॥ बिरही बिरह लष्यन ॥

दादू बिरह प्रेम की लहरि मैं, यहु मन पंगुल होइ ।
राम नाम मैं गलि गया, बूझै बिरला कोइ ॥ १४० ॥

---

(१३९) नेत्र हमारे निर्लज्ज हैं, कि उन से आंसुओं के नाले नहीं बहते, जैसे मीन मेंडकादि तालाब के सूख जाने पर उसी के भीतर गल कर सूख मरते हैं तैसे हम नहीं हुये । सारांश इस का यह है कि हम भक्तिहीन हैं ॥

॥ बिरह ज्ञान अग्नि ॥

दादू बिरह अगनि में जलि गये, मनके मैल बिकार ।
दादू बिरही पीव का, देखैगा दीदार ॥ १४१ ॥
बिरह अगनि में जलि गये, मन के विषै बिकार ।
ताथैं पंगुल ह्वै रह्या, दादू दरि दीदार ॥ १४२ ॥
जब बिरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा राम ।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे काम ॥ १४३ ॥

॥ बिरह बाण ॥

जब राम अकेला रहि गया, तन मन गया बिलाइ ।
दादू बिरही तब सुषी, जब दरस परस मिलि जाइ ॥१४४॥

बिरही बिरहा लष्यन ॥

जे हम छाडैं राम कौं, तौ राम न छाड़ै ।
दादू अमली अमल थैं, मन क्यूं करि काढै ॥ १४५ ॥
बिरहा पारस जब मिलै, तब बिरहनि बिरहा होइ ।
दादू परसै बिरहनी, पिव पिव टेरै सोइ ॥ १४६ ॥
आसिक मासूक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ ॥ १४७ ॥
राम बिरहनी ह्वै रह्या, बिरहनि ह्वै गई राम ।
दादू बिरहा बापुरा, ऐसे करि गया काम ॥ १४८ ॥
बिरह बिचारा लेगया, दादू हम कौं आइ ।
जहं अगम अगोचर राम था, तहं बिरह बिना को जाइ॥१४९॥

(१४७) देखो परचा के अंग की १८० वीं और २७३ वीं साखी ॥

बिरह बापुरा आइ करि, सोवत जगावै जीव ।
दादू अंगि लगाइ करि, ले पहुंचावै पीव ॥ १५० ॥

बिरहा मेरा मीत है, बिरहा बैरी नांहि ।
बिरहा को बैरी कहै, सो दादू किस मांहि ॥ १५१ ॥

दादू इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग ।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग ॥ १५२ ॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुझ देषण का चाव ।
तहां ले सीस नवाइये, जहां धरे थे पाव ॥ १५३ ॥

॥ बिरह पतिव्रत ॥

बाट बिरह की सोधि करि, पंथ प्रेम का लेहु ।
लै के मारग जाइये, दूसर पाव न देहु ॥ १५४ ॥

बिरहा बेगा भगति सहजं मैं, आगै पीछै जाइ ।
थोड़े मांहै बहुत है, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ १५५ ॥

॥ बिरह बाण ॥

बिरहा बेगा ले मिलै, तालाबेली पीर ।
दादू मन घाइल भया, सालै सकल सरीर ॥ १५६ ॥

---

(१५२) दृष्टांतः—दोहा—गुर दादू सों बादशाह, बूझी चारि जो बात ।
जाति अंग औजूद रंग, साहेब के विख्यात ॥
अर्थात् १५२ वीं साखी दादूजी ने अकबरशाह के प्रश्न पर कही थी ॥

॥ बिरह विनती ॥

आज्ञा अपरंपार की, बसिअंबर भरतार ।
हरे पटंबर पहिरि करि, धरती करै सिंगार ॥ १५७ ॥
बसुधा सब फूलै फलै, पिरथी अनंत अपार ।
गगन गरजि जल थल भरै, दादू जै जै कार ॥ १५८ ॥
काला मुंह करि कालका, सांई सदा सुकाल ।
मेघ तुम्हारे घरि घणां, बरसहु दीन दयाल ॥ १५९ ॥

इति श्री बिरह कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥

---

(१५७) दृष्टांतः—सोरठा—आंधी गांव हि मांहि, रहे जो दादू दासजी ।
वर्षा वर्षी नांहि, करि विनती बर्षाइयो ॥

अर्थात् आंधी गांव में जब दादूजी ने चौमासा किया था और वहां वर्षा नहीं हुई थी, तब उन्होंने यह प्रार्थना कर के वर्षा बर्षाई थी ॥

अथ परचा कौ अंग ॥ ४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व लाधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू निरन्तर पिव पाइया, तंह पंषी उनमन जाइ ।
सप्तौं मंडल भेदिया, अष्टैं रह्या समाइ ॥ २ ॥
दादू निरन्तर पिव पाइया, जहं निगम न पहुंचै बेद ।
तेज सरूपी पिव बसै, कोइ बिरला जानै भेद ॥ ३ ॥

---

(२) पीव जो परमात्मा है सो अंतर रहित हृदय के भीतर प्राप्त होने योग्य है, तिस परमात्मा को हंस रूपी जीव मन की उनमनी (निर्विकल्पावस्था) में प्राप्त होता है । वही परमात्मा जो इतने समीप है सो सातौं मंडल (सप्तलोक) में व्यापक है और आप आठवां मंडल कर सब को समा रक्खा है ॥

दूसरा अर्थ—दयाल जी कहते हैं कि तिरंतर कहिये वृत्यंतर के व्यवधान से रहित पीव जो प्रियतम परमात्मा है तिस की प्राप्ति होती है । किस प्रकार से प्राप्ति होती है सो कहते हैं—तहां पंषी उनमन जाइ अर्थात् मनरूप जो पक्षी है सो तहां परमात्मा के स्वरूप में उनमन जाय कहिये उनमनी अवस्था को प्राप्त होवै है, अर्थात् जिस काल में मन निर्विकल्प अवस्था को पहुंचता है तब परमात्मस्वरूप की निरंतर प्राप्ति होती है ॥

(३) जहं निगम न पहुंचै वेद, यहां यह आशय है, गुण क्रिया जाति संबंध वाली वस्तु को ही वर्णात्मक वेद विषय करता है । परब्रह्म में गुणादि हैं नहीं । असंगोह्ययमात्मा इति श्रुतेः ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, तीनि लोक भरपूरि ।
सब सेजौं सांई बसै, लोक बतावैं दूरि ॥ ४ ॥

दादू निरन्तर पिव पाइया, जहं आनंद बारह मास ।
हंस सौं प्रमहंस षेलै, तहं सेवग स्वामी पास ॥ ५ ॥

दादू रंग भरि षेलौं पीव सौं, तहं बाजै बेन रसाल ।
अकल पाट परि बैठा स्वामी, प्रेम पिलावै लाल ॥ ६ ॥

दादू रंग भरि षेलौं पीव सौं, सेती दीन दयाल ।
निस बासुरि नहि तहं बसै, मांनसरोवर पाल ॥ ७ ॥

दादू रंग भरि षेलौं पीव सौं, तहं कबहूं न होइ बिछोग ।
आदि पुरस अंतरि मिल्या, कुछ पूरबले संजोग ॥ ८ ॥

दादू रंग भरि षेलौं पीव सौं, तहं बारह मास बसंत ।
सेवग सदा अनंद है, जुगि जुगि देषौं कंत ॥ ९ ॥

दादू काया अंतरि पाइया, त्रिकुटी केरे तीर ।
सहजैं आप लषाइया, व्याप्या सकल सरीर ॥ १० ॥

दादू काया अंतरि पाइया, निरन्तर निरधार ।
सहजैं आप लषाइया, अैसा सम्रथ सार ॥ ११ ॥

दादू काया अंतरि पाइया, अनहद बेन बजाइ ।
सहजैं आप लषाइया, सुन्य मंडलमैं जाइ ॥ १२ ॥

दादू काया अंतरि पाइया, सब देवन का देव ।
सहजैं आप लषाइया, अैसा अलष अभेव ॥ १३ ॥

(१२) सुन्य मंडल, दशवें द्वार से परे ॥

दादू भवर कवल रस बेधिया, सुष सरवर रस पीव़ ।
तहं हंसा मोती चुणें, पिव़ देष सुष जीव़ ॥ १४ ॥
दादू भवर कवल रस बेधिया, गहे चरण कर हेत ।
पिव़जी परसत ही भया, रोम रोम सब सेत ॥ १५ ॥
दादू भवर कवल रस बेधिया, अनत न भरमै जाइ ।
तहां बास बिलंबिया, मगन भया रस षाइ ॥ १६ ॥
दादू भवर कवल रस बेधिया, गही जो पीव़ की ओट ।
तहां दिल भवरा रहै, कौण करै सर चोट ॥ १७ ॥

॥ प्रेम जिज्ञास उपदे ॥

दादू षोजि तहां पिव़ पाइये, सबद ऊपनै पास ।
तहां एक एकांत है, तहां जोति परकास ॥ १८ ॥
दादू षोजि तहां पिव़ पाइये, जहं चंद न ऊगै सूर ।
निरन्तर निर्धार है, तेज रह्या भरपूर ॥ १९ ॥
दादू षोजि तहां पिव़ पाइये, जहं बिन जिभ्या गुण गाइ ।
तहं आदि पुरस अलेष है, सहजैं रह्या समाइ ॥ २० ॥

---

(१४) कबीर अंतर कमल प्रकाशिया, ब्रम्ह बास तेंहि होइ ।
मन भौंरा जेंहि लुब्धिया, जाणै गा जन कोइ ॥

भवर=मन, कवल=हृदय, रस=आत्मा ॥

जैसे कमल को भेदन करके उसके रस को पान करता हुआ भंवरा आनंद को प्राप्त होता है, तैसे ही, दयाल जी कहते हैं, हमारा मन हृदय कमल को भेदन करके आत्म स्वरूप रस को पान करके आनंद पाता है । दूसरा दृष्टांत—जैसे मानसरोवर का जल पान करके, मोती चुग करके और सरोवर के दर्शन से हंस आनंदित होता है, तैसे ही हम पीव़ के दर्शन करके, राम भजन रूपी मोती चुग के, स्वरूपानन्द का अनुभव़ करके आनंदित होते हैं ॥

दादू षोजि तहां पिव पाइये, जहं अजरा अमर उमंग ।
जुग जरण भौ भाजसी, रावै अपणै संग ॥ २१ ॥

दादू गाफिल छो वतैं, मंझे रब निहारि ।
मंझेई पिव पाण जौ, मंझेई बिचार ॥ २२ ॥

दादू गाफिल छो वतैं, आहे मंझि अलाह ।
पिरी पांण जौ पाणसैं, लहै सभोई साव ॥ २३ ॥

दादू गाफिल छो वतैं, आहे मंझि मुकाम ।
दरगह मैं दीवाण तत, पसे न बैठौ पांण ॥ २४ ॥

दादू गाफिल छो वतैं, अंदरि पिरी पसु ।
तषत रबाणीं बिच मैं, पेरे तिन्हीं वसु ॥ २५ ॥

॥ परचै ॥

हरि चिंतामणि च्यंततां, चिंता चित की जाइ ।
च्यंतामणि चित मैं मिल्या, तहं दादू रह्या लुभाइ ॥२६॥

---

(२१) पुस्तक नं० १ और ४ में "अमर" की जगह "अम्र" है ।

(२२) बे होश तू क्या फिरता है; अपने अंदर ही परमात्मा को देख । भीतर ही जो परमात्मा आप है, उसको भीतर शोध ॥

(२३) गाफिल तू क्या फिरता है, अपने अंदर ही अल्लः है । परमात्मा अपने आप से सब स्वाद लेता है ॥

(२४) दरगह=हृदय । दीवान तत=स्वयं प्रकाश । पसे=देखै । न=नहीं । बैठौ=बैठा, पांण=आप ॥

(२५) तषत रबाणी=परमेश्वर का सिंहासन । पेरे=समीप । तिन्ही=तिनके । वसु=रहे ॥

अपने नैनहुं आप कौं, जब आतम देषै ।
तहं दादू परआतमा, ताही कूं पेषै ॥ २७ ॥
दादू बिन रसना जहं बोलिये, तहं अंतरजामी आप ।
बिन श्रवणहु सांई सुनै, जे कुछ कीजै जाप ॥ २८ ॥

॥ परचै जज्ञास उपदेस ॥

ज्ञान लहर जहां थैं उठै, बाणी का परकास ।
अनभै जहां थैं ऊपजै, सबदैं किया निवास ॥ २९ ॥
सो घर सदा बिचार का, तहां निरंजन बास ।
तहं तूं दादू षोजि ले, ब्रह्म जीव के पास ॥ ३० ॥
जहं तन मन का मूल है, उपजै ओंकार ।
अनहद सेझा, सबद का, आतम करै विचार ॥ ३१ ॥
भाव भगति लै ऊपजै, सो ठाहर निज सार ।
तहं दादू निधि पाइये, निरंतर निर्धार ॥ ३२ ॥
एक ठौर सूझै सदा, निकटि निरंतर ठांउ ।
तहां निरंजन पूरि ले, अजरावर तिहिं नांउ ॥ ३३ ॥
साधू जन क्रिला करैं, सदा सुषी तिहि गांव ।
चलु दादू उस ठौर की, मैं बलिहारी जांव ॥ ३४ ॥
दादू पसु पिरंनि के, वेही मंझि कलूब ।
बेठौ आहे बिच मैं, पाण जौ महबूब ॥ ३५ ॥

---

(२७) नैनहुं = अंतः करण की अंतर वृत्ति से ॥
(३५) पसु = देख । पिरंनि = परमेश्वर । पेही = पाव । कलूब = हृदय ॥ मंझि = बीच, पाण = आप, महबूब = प्रियतम, परमेश्वर ॥

नैनहु वाला निरखि करि, दादू घालै हाथ ।
तब हीं पावै रामधन, निकटि निरंजन नाथ ॥ ३६ ॥
नैनहु बिन सूझै नहीं, भूला कतहूं जाइ ।
दादू धन पावै नहीं, आया मूल गंवाइ ॥ ३७ ॥

॥ परचै लै लष्यन सहज ॥

जहां आतम तहं राम है, सकल रह्या भरपूर ।
अंतरि गति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥ ३८ ॥

॥ परचै जज्ञास उपदेश ॥

पहली लोचन दीजिये, पीछैं ब्रह्म दिषाइ ।
दादू सूझै सार सब, सुष में रहै समाइ ॥ ३९ ॥
आंधी कै आनंद हुवा, नैंनहुं सूझन लाग ।
दरसन देषै पीव का, दादू मोटे भाग ॥ ४० ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू मिहीं महल बारीक है, गांउं न ठांउं न नांउं ।
तासौं मन लागा रहै, मैं बलिहारी जांउं ॥ ४१ ॥
दादू षेल्या चाहै प्रेमरस, आलम अंगि लगाइ ।
दूजे कौं ठाहर नहीं, पुहपु न गंध समाइ ॥ ४२ ॥

---

(४२) जो संसार में लिप्त हो कर तूं आत्म रस चखना चाहै, तो यह संभव नहीं, क्योंकि तेरे अंतःकरण में दो के लिये गुंजायश नहीं है, उस में दो नहीं समा सक्ते, जैसे पुष्प में दूसरी वास नहीं समाती ॥

नाहीं ह्वै करि नांउं ले, कुछ न कहाई रे ।
साहिबजी की सेज पर, दादू जाई रे ॥ ४३ ॥
जहां राम तहं मैं नहीं, मैं तहं नाहीं राम (२३–५५)
दादू महल बारीक है, द्वै को नाहीं ठाम ॥ ४४ ॥
मैं नांहीं तहं मैं गया, एकै दूसर नांहि (२३–५४)
नांही कौं ठाहर घणी, दादू निज घर मांहि ॥ ४५ ॥
मैं नांहीं तहं मैं गया, आगे एक अलाव ।
दादू ऐसी बंदिगी, दूजा नांही आव ॥ ४६ ॥
दादू आपा जब लगै, तब लग दूजा होइ ।
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नाहीं कोइ ॥४७॥

---

(४३) अहंकार मनादि का अस्तित्व त्यागि कर योगाभ्यास करौ और अपने मानापमान पर कुछ न कहौ, केवल परमात्मा ही में मग्न रहौ ॥

(४४) मैं शब्द अहंकार का वाचक है । साखी का तात्पर्य यह है कि जिसने परमात्मा में दृष्टि लगाई है उस में ममता अहंकार नहीं रहता, जिस में अहंभाव बना है सो परमात्मा को नहीं पहुंचा ॥ यह महल (अंतःकरण) बारीक है, इस में दो के लिये स्थान नहीं है ॥

(४५) "मैं नांहीं" अर्थात् ममता भाव जिस में नहीं है तिस को मैं प्राप्त हुआ, सो एक अद्वितीय है दूसरा नहीं, प्रपंच जिस में वास्तव से नहीं है किंतु रज्जु सर्प की तरह कल्पित रूप है। निज स्वरूप (ब्रम्ह) में "नांहीं" (अहंता ममता भाव से रहित) को ठाहर (जगह) बहुत है, जिस के विपरीत " दूजे को ठाहर नहीं" अर्थात् द्वैतभाव को ठाहर नहीं है जैसा ४२ वीं साखी में कहा है ॥

(४६) अलाव=अल्लः परमात्मा ॥ आव=आना ।

दादू मैं नांहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ ।
मैं तैं पड़दा मिटि गया, तब ज्यूं था त्यूंही होइ ॥४८॥

दादू है कौं भै घणां, नांहीं कौं कुछ नांहि (२३–५३)
दादू नांहीं होइ रहु, अपणे साहिब मांहि ॥ ४९ ॥

॥ परचै ॥

दादू तीनि सुंनि आकार की, चौथी निर्गुण नांव ।
सहज सुंनि मैं रमि रह्या, जहां तहां सब ठांव ॥ ५० ॥

---

(४९) "है" शब्द का अहंता ममता से तात्पर्य है और "नांहीं" का अहंता ममता के अभाव से, देखो सजीवन के अंग की ५ वीं साखी ॥

(५०) इस साखी को ५३ वीं और ५६ वीं साखियों के साथ पढ़ना चाहिये, जुदी २ पुस्तकों वा स्थानों में "सुंनि" शब्द के जुदे २ रूप दादूजी की बाणी के नकल करने वालों (लेखकों) ने दिये हैं, कहीं सुनि, कहीं सुंनि, कहीं सुन्य, कहीं स्वंनि मिलता है। यह सब रूप संस्कृत के शून्य शब्द के अपभ्रंस हैं। सुंनि शब्द का अर्थ शांत निर्वाण पद है, जैसा कि महात्मा सुंदरदासजी के निम्न लिखित वाक्यों से स्पष्ट है:—

" गुर के प्रसाद सब जोग की जुगति जानैं ।
गुर के प्रसाद सुनि मैं समाधि लाइये " (ज्ञान समुद १२)

अथवा सुंनि शब्द का अर्थ लयलीन अवस्था वा समाधी भी बनता है ॥ दयालजी इन साखियों में तीन अवस्थाओं और तीन शरीरों को बताकर उनसे परे परमतत्त्व परमात्मा को दिखाते हैं। इसी भाव को लेकर दयालजी कहते हैं कि तीन सुंनि (समाधी) आकार की हैं और चौथी निर्गुण शुद्ध ब्रम्ह रूप है ॥

(१) **प्रथम "काया सुंनि"**—स्थूल शरीर का लय होना। स्थूल शरीर जाग्रत अवस्था में प्रतीत होता है और स्वप्नावस्था में उसका लय होता है ॥

(२) **आत्म सुंनि**—यहां आत्म शब्द से सूक्ष्म शरीर का ग्रहण है ।

पांच तत्त के पांच हैं, आठ तत्त के आठ ।
आठ तत्त का एक है, तहां निरंजन हाट ॥ ५१ ॥
जहं मन माया ब्रह्म था, गुण इंद्री आकार ।
तहं मन बिरचै सबनि थैं, रचि रहु सिरजनहार ॥ ५२ ॥
काया सुंनि पंचका बासा, आतम सुंनि प्राण प्रकासा ।
परम सुंनि ब्रह्मसौं मेला, आगैं दादू आप अकेला ॥ ५३ ॥
दादू जहांथैं सब ऊपजे, चंद सूर आकास ।
पानी पवन पावक किये, धरती का परकास ॥ ५४ ॥
काल करम जिव ऊपजे, माया मन घट सास ।
तहं रहिता रमिता राम है, सहज सुंनि सब पास ॥ ५५ ॥
सहज सुंनि सब ठौर है, सब घट सबही मांहि ।
तहां निरंजन रमि रह्या, कोइ गुण ब्यापै नांहि ॥ ५६ ॥

सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था में प्रतीत होता है और सुषुप्ति में अथवा समाधि काल में उस का लय होता है ।

(३) **परम सुंनि**–तुरिया अवस्था—समाधि की परिपक्वावस्था. जिस में जीव ब्रम्ह का अनुभव करता है ।

(४) **सहज सुंनि, ब्रम्ह सुंनि**–तुरियाऽतीत, जिस में जोगी ब्रम्ह में लयलीन होकर ब्रम्हाकार ही हो जाता है । वहां द्वितीय भाव नहीं रहता, आप ही आप निर्वाणरूप रहता है ॥ देखौ साखी १३० वीं इसी अंगकी ॥

(५४) "जहां" शब्द अकेले परमात्मा की तरफ है, अर्थात् उसी परमात्मा से सब सृष्टि उत्पन्न होती है ॥

(५५) काल और कर्म कर के जीव उपजे हैं, तैसे ही माया मन प्राण शरीरादि । इन सर्व में परमात्मा सहजभाव से व्यापक रमता है ॥

दादू तिस सरवर के तीर, सो हंसा मोती चुणैं ।
पीवैं नीझर नीर, सो है हंसा सो सुणैं ॥ ५७ ॥
दादू तिस सरवर के तीर, जप तप संजम कीजिये ।
तहं मनमुष सिरजनहार, प्रेमपिलावै पीजिये ॥ ५८ ॥
दादू तिस सरवर के तीर, संगी सबै सुहावणें ।
तहां बिन कर बाजै बेन, जिभ्याहीणे गावणें ॥ ५९ ॥
दादू तिस सरवर के तीर, चरण कवल चित लाइया ।
तहं आदि निरंजन पीव, भाग हमारे आइया ॥ ६० ॥
दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करैं कलोल ।
सुष सागर सू भर भर्‌या, मुक्ताहल मन मोल ॥ ६१ ॥
दादू हरि सरवर पूरण सबै, जित तित पाणी पीव ।
जहां तहां जल अंचतां, गई तृषा सुष जीव ॥ ६२ ॥
सुष सागर सूं भर भर्‌या, उज्जल निर्मल नीर ।
प्यास बिना पीवै नहीं, दादू सागर तीर ॥ ६३ ॥
सुन्य सरोवर हंस मन, मोती आप अनंत ।
दादू चुगि चुगि चंच भरि, यौं जन जीवैं संत ॥ ६४ ॥

---

(५७) उस सहज सुन्यरूपी सरोवर के किनारे, हंसरूपी महात्मा मोती चुनते हैं, अर्थात् आत्मानंद का अनुभव करते हैं, और अनहद सेझे का अमृत रूपी वृष्टी जल पान करते हैं और अनहद शब्द "सो है हंसा" में मग्न हो जाते हैं ।

(५९) "संगी" यहां मन इंद्रिय बुद्धयादि हैं सो सब इस अवस्था को प्राप्त हो के सुहावने होजाते हैं, अर्थात् विषय वासना छोड़ करके परम तत्त्व के ध्यान में ही सहकारी होते हैं ॥

सुन्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव ।
दादू यहु रस बिलसिये, ऐसा अलष अभेव ॥ ६५ ॥
सुन्य सरोवर मन भवर, तहां कवल करतार ।
दादू परिमल पीजिये, सनमुष सिरजनहार ॥ ६६ ॥
सुन्य सरोवर सहज का, तहं मर जीवा मन ।
दादू चणिं चुणि लेइगा, भीतरि राम रतन ॥ ६७ ॥
दादू मंझि सरोवर बिमल जल, हंसा केलि करांहि ।
मुकताहल मुकता चुगैं, तिहिं हंसा डर नांहि ॥ ६८ ॥
अषंड सरोवर अथग जल, हंसा सरवर न्हांहि ।
निर्भय पाया आप घर, इब उड़ि अनत न जांहि ॥ ६९ ॥
दादू दरिया प्रेम का, तामैं झूलैं दोइ ।
इक आतम परआतमा, एकमेक रस होइ ॥ ७० ॥
दादू हिरा दरियाव, माणिक मंझेई ।
टुबी डेई पाए में, डिठो हंझेई ॥ ७१ ॥
परआतम सौं आतमा, ज्यूं हंस सरोवर मांहि ।
हिलिमिलि षेलैं पीव सौं, दादू दूसर नांहि ॥ ७२ ॥
दादू सरवर सहज का, तामैं प्रेम तरंग ।
तहं मन झूलै आतमा, अपणे सांई संग ॥ ७३ ॥
दादू देषौं निज पीव कौं, दूसर देषौं नांहि ।
सबै दिसा सौं सोधिकरि, पाया घट ही मांहि ॥ ७४ ॥

(६८) मुकताहल = मोती । मुकता = जीवन मुक्त ॥
(७१) इस अंतर्मुख वृत्ति रूपी दरिया ही में मानिक (परमेश्वर) है । अपने अंदर ही गोता मारो, तो परमात्मा का दर्शन पावोगे ॥

दादू देषौं निज पीव़कौं, और न देषौं कोइ ।
पूरा देषौं पीव़कौं, बाहरि भीतरि सोइ ॥ ७५ ॥
दादू देषौं निज पीव़ कौं, देषत ही दुष जाइ ।
हूं तौ देषौं पीव़ कौं, सब मैं रह्या समाइ ॥ ७६ ॥
दादू देषौं निज पीव़ कौं, सोई देषण जोग ।
परगट देषौं पीव़ कौं, कहां बतावैं लोग ॥ ७७ ॥

॥ परचै जज्ञास उपदेस ॥

दादू देषु दयाल कौं, सकल रह्या भरपूरि ।
रोम रोम मैं रमि रह्या, तूं जिनि जाणै दूरि ॥ ७८ ॥
दादू देषु दयाल कौं, बाहरि भीतरि सोइ ।
सब दिसि देषौं पीव़ कौं, दूसर नांहीं कोइ ॥ ७९ ॥
दादू देषु दयाल कौं, सनमुष सांई सार ।
जीधरि देषौं नैन भरि, तीधरि सिरजनहार ॥ ८० ॥
दादू देषु दयाल कौं, रोकि रह्या सब ठौर ।
घटि घटि मेरा सांईया, तूं जिनि जाणै और ॥ ८१ ॥

॥ उभै असमाव़ ॥

तन मन नांहीं मैं नहीं, नहिं माया नहिं जीव ।
दादू एकै देषिये, दह दिसि मेरा पीव़ ॥ ८२ ॥

॥ पति पहचान ॥

दादू पाणी मांहै पैसि करि, देषै दिष्टि उघारि ।
जलाब्यंब सब भरि रह्या, ऐसा ब्रह्म बिचारि ॥ ८३ ॥

॥ परचै पतिव्रत ॥

सदा लीन आनंद मैं, सहज रूप सब ठौर ।
दादू देषै एक कौं, दूजा नांही और ॥ ८४ ॥
दादू जहं तहं साथी संग हैं, मेरे सदा अनंद ।
नैन बैन हिरदै रहैं, पूरण परिमानंद ॥ ८५ ॥
जागत जगपति देषिये, पूरण परिमानंद ।
सोवत भी सांई मिलै, दादू अति आनंद ॥ ८६ ॥
दह दिसि दीपक तेज के, बिन बाती बिन तेल ।
चहुं दिसि सूरज देषिये, दादू अदभुत षेल ॥ ८७ ॥
सूरज कोटि प्रकास हैं, रोम रोम की लार ।
दादू जोति जगदीस की, अंत न आवै पार ॥ ८८ ॥
ज्यौं रवि एक अकास है, ऐसे सकल भरपूर ।
दादू तेज अनंत है, अल्लः आली नूर ॥ ८९ ॥
सूरज नहि तहं सूरिज देषे, चंद नहीं तहं चंदा ।
तारे नहि तहं झिलिमिलि देष्या, दादू अति आनंदा ॥९०॥
बादल नहि तहं बरिषत देष्या, सबद नहीं गरजंदा ।
बीज नहीं तहं चमकत देष्या, दादू परिमानंदा ॥ ९१ ॥

॥ आत्म बल्ली तरू ॥

दादू जोति चमकै झिलिमिलै, तेज पुंज परकास ।
अमृत झरै रस पीजिये, अमर बेलि आकास ॥ ९२ ॥

॥ परचै ॥

दादू अविनासी अंग तेज का, ऐसा तत्त अनूप ।
सो हम देष्या नैन भरि, सुंदर सहज सरूप ॥ ९३ ॥

(९१) बीज = बिजली ।

परम तेज परगट भया, तहं मन रह्या समाइ ।
दादू षेलै पीव सौं, नहिं आवै नहिं जाइ ॥ ९४ ॥
निराधार निज देषिये, नैनहुं लागा बंद ।
तहं मन षेलै पीवसौं, दादू सदा अनंद ॥ ९५ ॥

॥ आत्मवल्लीतरू ॥

ऐसा एक अनूप फल, बीज बाकुला नांहि ।
मीठा निर्मल एक रस, दादू नैनहुं मांहि ॥ ९६ ॥

॥ परचै ॥

हीरे हीरे तेज के, सो निरषे त्रिय लोइ ।
कोइ इक देषै संतजन, और न देषै कोइ ॥ ९७ ॥
नैन हमारे नूर मां, तहां रहे ल्यौ लाइ ।
दादू उस दीदार कौं, निसदिन निरषत जाइ ॥९८॥
नैनहुं आगैं देषिये, आतम अंतरि सोइ ।
तेज पुंज सब भरि रह्या, झिलिमिलि झिलिमिलि होइ ॥९९॥
अनहद बाजे बाजिये, अमरा पुरी निवास ।
जोति सरूपी जगमगै, कोइ निरषै निज दास ॥ १०० ॥
परम तेज तहं मन रहै, परम नूर निज देषै ।
परम जोति तहं आतम षेलै, दादू जीवन लेषै ॥ १०१ ॥
दादू जरै सु जोति सरूप है, जरै सु तेज अनंत ।
जरै सु झिलमिल नूर है, जरै सु पुंज रहंत ॥ १०२ ॥

---

(९७) त्रिय लोय=तीसरे ज्ञानरूपी लोचन से ॥
(१०२) जरै=प्रकाशमान ।

॥ परचै पति पहचान ॥

दादू अलष अलाह का, कहु कैसा है नूर ? ।
दादू बेहद, हद नहीं, सकल रह्या भरपूर ॥ १०३ ॥
वारपार नहिं नूरका, दादू तेज अनंत । (२०–२७)
कीमति नहिं करतार की, ऐसा है भगवंत ॥ १०४ ॥
निरसंध नूर अपार है, तेज पुंज सब मांहि । (२०–२६)
दादू जोति अनंत है, आगौ पीछौ नांहि ॥ १०५ ॥
षंड षंड निज नां भया, इकलस एकै नूर । (२०–२५)
ज्यूंथा त्यूंहीं तेज है, जोति रही भरपूर ॥ १०६ ॥
परम तेज प्रकास है, परम नूर निवास । (२०–२८)
परम जोति आनंद मैं, हंसा दादू दास ॥ १०७ ॥
नूर सरीषा नूर है, तेज सरीषा तेज ।
जोति सरीषी जोति है, दादू षेलै सेज ॥ १०८ ॥
तेज पुंज की सुंदरी, तेज पुंज का कंत ।
तेज पुंज की सेज परि, दादू बन्या बसंत ॥ १०९ ॥
पुहप प्रेम बरिषै सदा, हरिजन षेलैं फाग ।
ऐसा कौतिग देषिये, दादू मोटे भाग ॥ ११० ।

॥ परचै रस ॥

अमृत धारा देषिये, पार ब्रह्म बरिषंत ।
तेज पुंज झिलमिल झरै, को साधू जन पीवंत ॥ १११ ॥
रसही मैं रस बरषिहै, धारा कोटि अनंत ।
तहं मन निहचल राषिये, दादू सदा बसंत ॥ ११२ ॥

घन बादल बिन बरषि है, नीझर निर्मल धार ।
दादू भीजै आतमा, को साधू पीवनहार ॥ ११३ ॥
अैसा अचिरज देषिया, बिन बादल बरिषै मेह ।
तहं चित चातृग ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह ॥११४॥
महारस मीठा पीजिये, अबिगत अलष अनंत ।
दादू निर्मल देषिये, सहजैं सदा झरंत ॥ ११५ ॥

॥ करता कामधेन ॥

कामधेन दुहि पीजिये, अकल अनूपम एक ।
दादू पीवै प्रेम सौं, निर्मल धार अनेक ॥ ११६ ॥
कामधेन दुहि पीजिये, ताकूं लषै न कोइ ।
दादू पीवै प्यास सौं, महारस मीठा सोइ ॥ ११७ ॥
कामधेन दुहि पीजिये, अलष रूप आनंद ।
दादू पीवै हेत सौं, सुष मन लागा बंद ॥ ११८ ॥
कामधेन दुहि पीजिये, अगम अगोचर जाइ ।
दादू पीवै प्रीति सूं, तेज पुंज की गाइ ॥ ११९ ॥
कामधेन करतार है, अमृत सरवै सोइ ।
दादू बछरा दूध कौं, पीवै तौ सुष होइ ॥ १२० ॥
अैसी एकै गाइ है, दूझै बारह मास ।
सो सदा हमारे संग है, दादू आतम पास ॥ १२१ ॥

॥ परचै आत्म बल्ली तरू ॥

तरवर साषा मूल बिन, धरती पर नांहीं ।
अबिचल अमर अनंत फल, सो दादू षांहीं ॥ १२२ ॥
तरवर साषा मूल बिन, धर अंबर न्यारा ।
अविनासी आनंद फल, दादू का प्यारा ॥ १२३ ॥
तरवर साषा मूल बिन, रज बीरज रहिता ।
अजर अमर अतीत फल, सो दादू गहिता ॥ १२४ ॥
तरवर साषा मूल बिन, उतपति परलै नांहि ।
रहिता रमिता रामफल, दादू नैनहुं मांहि ॥ १२५ ॥
प्राण तरवर सुरति जड़, ब्रह्म भोमि ता मांहि ।
रस पीवै फूलै फलै, दादू सूकै नांहि ॥ १२६ ॥

॥ जज्ञास उपदेस प्रश्नोत्तरी ॥

ब्रह्म सुंनि तहं क्या रहै, आतम के अस्थान ? ।
काया असथलि क्या बसै ?, सतगुर कहै सुजान ॥ १२७ ॥
काया के अस्थलि रहैं, मन राजा पंच प्रधान ।
पचीस प्रकीरति तीनि गुण, आपा गर्ब गुमान ॥ १२८ ॥

---

(१२२) आत्मरूपी वृक्ष शाखा और जड़ रहित है, (साधारण वृक्षों की तरह वह) धरती पर नहीं है । उसका फल अविचल अमर अनन्त है, सो दयाल जी कहते हैं खाइये, अर्थात् हम को खाना चाहिये ॥

(१२६) प्राण एक वृक्ष है, सुरति उस की जड़ है, सो जड़ ब्रम्हरूपी भूमि में प्रवेश कर के तदाकार वृत्ति वाली हो, तहां ऐसे एकाग्र सुरति काल में जो अनहद रस मिलता है उस के पीने से जीव फूलता फलता है और सूखता नहीं ॥

आतम के अस्थान हैं, ज्ञान ध्यान बिसवास।
सहज सील संतोष सत, भाव भगति निधि पास॥ १२६॥
ब्रह्म सुंनि तहं ब्रह्म है, निरंजन निराकार।
नूर तेज तहं जोति है, दादू देषण हार॥ १३०॥

॥ प्रश्न ॥

मौजूद षबर माबूद षबर, अरवाह षबर औजूद।
मुकाम चे चीज़ अस्त, दादनी सजूद॥ १३१॥

॥ उत्तर ॥

औजूद मुकाम अस्त, नफ्स ग़ालिब, किब्र काबिज़,
गुस्सा मनीयत।
दुई दरोग़ हिर्स हुज्जत, नाम नेकी नेस्त॥ १३२॥
अरवाह मुकाम अस्त, इश्क इबादत बंदगी यगाना इषलास।
मेहर मोहब्बत षैर षूबी, नाम नेकी पास॥ १३३॥

---

(१३०) देखो टिप्पण साखी ५० वीं पर इसी अंग में॥

(१३१) मुसलमानों में चार सुब्नतें (मंज़िलें) मानते हैं, अर्थात् शरीअत तरीक़त हक़ीक़त और मारफ़त। इस प्रश्न में यही पूछा गया है कि इन चार मंज़िलों वालों का मुकामक्या है जिस को सिजदा किया जाय॥

(१३२) शरीअत मे वे लोग हैं जो अपने स्थूल देह को ही अंत मुकाम मानते हैं, मन जिनका ग़ालिब (अजित) किब्र (अहंकार) से दवा, क्रोध, आपा, द्वैतभाव, झूठ, ईर्षा, हठ में रत रहता है और ईश्वर का नाम जिन के मन मेंनहीं आता॥

(१३३) तरीक़त में वे लोग हैं जो आत्मा को मुख्य मुकाम मानते हैं,

मौजूद षबर मावूद षबर, अरवाह षबर वजूद ।
मक़ाम चिः चीज़ हस्त, दादनी सजूद ॥ १३१ ॥
मौजूद मक़ाम हस्त ॥
नफ़्स ग़ालिब, किब्र काबिज़, गुस्सः सनी एस्त ॥
दुई दरोग़ हिर्स हुज्जत, नाम नेकी नेस्त ॥ १३२ ॥
अरवाह मक़ाम अस्त ॥
इश्क इबादत बंदगी यगानगी इषलास ।
मेहर मुहब्बत षैर षूबी, नाम नेकी पास ॥ १३३ ॥
मावूद मक़ामे हस्त ॥
यके नूर षूबे षूबां दीदनी हैरां ।
अजब चीज़ पुरदनी, पियालए मस्तां ॥ १३४ ॥
हैवान आलम गुमराह गाफ़िल अक्वल शरीयत पंद ।
हलाल हराम नेकी बदी इल्मे दानिशमंद ॥ १३५ ॥

(१३१–३३) यह तीन साखियां पिछले पृष्ठ पर लग चुकी है, किंतु फारसी शब्दों में कुछ चूक रहगई थी; इसलिये उन को दूसरी बार यहां शुद्ध कर के छापा है ॥

(१३३) "तरीक़त" में वे लोग है जो आत्मा को मुख्य मक़ाम मानते हैं, जो प्रेम, पूजा, सेवा, एकही परमात्मा में निश्चय, तथा निरवैरता भलाई और नेकी से विचरते हैं ॥

(१३४) "हक़ीक़त" में वे है जो परमात्मा को ही मुख्य मक़ाम मानते हैं, जो एक तेजरूपी खूबों में खूब है, जिस को देखकर आंखें हैरान होती हैं, वह मस्तों के पियाले का अजब अमृत है ॥

(१३५) संसार पशुवत भटक रहा है और अचेत है, पहले शरीयत के उपदेश। हलाल हराम नेकी बदी उपदेश बुद्धिमान के ॥

कुल फारिग़ तर्के दुनियां हररोज़ हरदम याद ।
अल्लः आली इश्क आशिक दरूने फरियाद ॥ १३६ ॥
आब आतश अर्श कुर्सी, सूरते सुबहां ।
शरर सिफ़त कर्दः बूदन्द, मारफ़त मक़ां ॥ १३७ ॥
हक़ हासिल नूर दीदम, क़रारे मक़सूद ।
दीदारे यार अरवाहे आदम मौज़ूदे मौज़ूद ॥ १३८ ॥
चहार मंज़िल बयां गुफतम, दस्त करदः बूद ।
पीरां मुरीदां षबर करदः जां राहे माबूद ॥ १३९ ॥
पहली प्राण पसू नर कीजै, साच झूठ संसार ।
नीति अनीति भला बुरा सुभ असुभ निर्धार ॥ १४० ॥

---

(१३६) मारफत में वो हैं जो सब से निराले, दुनिया को छोड़ बैठे हैं, प्रतिदिन प्रतिक्षण परमात्मा की याद में रहते हैं, वहां तीन हैं, अर्थात् (१) अल्लाः आली (परमात्मा), (२) प्रेम (३) प्रेमी, जो अपने अंदर (हृदय में) ही फरियाद (उपासना याचना) करता है बाहेर किसी से कुछ नहींकहता ॥

(१३७) पानी, अग्नि, आकाश, पृथ्वी यह चार परमेश्वर की सूरतैं हैं। चिनगारी की तरह वे मारफ़त मक़ाम में स्थित हैं ॥

(१३८) हक़ हासिल=अंत में प्रकाश उसका देखा, जो हमारा वांछित तत्त्व था । वह प्यारे का दर्शन, जीवात्मा अस्तित्व का अस्तित्व ॥

(१३९) चार मंजिलें मैं ने कह सुनाई, ॥ पीरों ने शागिदों को माबूद (परमात्मा) की राह बताई ॥

(१४०–४४) यह पांच साखियां ऊपर आई हुई फारसी की साखी १३२–३९ का सारार्थ बतलाती हैं ॥

सब तजि देषि, बिचारि करि, मेरा नाहीं कोइ ।
अनदिन राता राम सौं, भाव भगति रत होइ ॥ १४१ ॥
अंबर धरती सूर ससि, सांई सबले लावै अंग ।
जसु कीरति करूणा करै, तन मन लागा रंग ॥ १४२ ॥
परम तेज तहं मैं गया, नैनहुं देष्या आइ ।
सुष संतोष पाया घणां, जोतिहिं जोति समाइ ॥१४३॥
अरथ चारि असथान का, गुर सिष कह्या समझाइ ।
मारग सिरजनहार का, भाग बड़े सो जाइ, ॥१४४ ॥
अरवाह सिज्दः कुनद, वजूद रा चिः कार । (३–७०)
दादू नूर दादनी, आशिकां दीदार ॥ १४५ ॥
आशिकां रा क़ब्ज़ः कर्दः, दिलो जां रफ्तंद (३–६६)
अल्लाः आली नूर दीदम, दिले दादू बंद ॥ १४६ ॥
आशिकां मस्ताने आलम, षुरदनी दीदार ।
चंद रह चिः कार दादू, यारे मा दिलदार॥ १४७ ॥

॥ ब्रह्म साक्षात्कार धारणा ॥

दादू दया दयाल की, सो क्यौं छानी होइ ।
प्रेम पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागनि सोइ ॥१४८॥

---

(१४५) जीवात्मा शरीर को क्यौं नमता है ? क्योंकि प्रेमियों की दृष्टि तेज दायिनी है ॥

(१४७) इसका अर्थ यह है:– प्रेमी जन जगत में मस्त रहते हैं, उन की खुराक परमेश्वर के दर्शन ही हैं, दुनियां के तुच्छ पदार्थों (धन दौलत) से कुछ काम नहीं, हमारा मित्र (परमेश्वर) दिलदार है ।

(१४८) प्रेम पुलक मुलकत रहै = प्रेम करके हर्षित मुसकराती रहे ।

दादू बिगसि बिगसि दर्सन करै, पुलकि पुलकि रसपान।
मगन गलित माता रहै, अरस परस मिलि प्रान ॥१४९॥
दादू देखि देखि सुमिरण करै, देखि देखि लै लीन।
देखि देखि तन मन बिलै, देखि देखि चित दीन॥१५०॥
दादू निरखि निरखि निज नांव ले, निरखि निरखि रस पीव।
निरखि निरखि पिव कौं मिलै, निरखि निरखि सुख जीव॥१५१॥

॥ आत्म सुमिरण ॥

तन मौं सुमिरण सब करैं, आतम सुमिरण एक।
आतम आगै एक रस, दादू बड़ा बिबेक ॥ १५२ ॥
दादू माटी के मुकाम का, सब को जागै जाप।
एक आप अरबाह का, बिरला आपैं आप ॥ १५३ ॥
दादू जबलग अस्थल देह का, तब लग सब व्यापै।
निर्भै अस्थल आतमा, आगै रस आपै ॥ १५४ ॥
जब नांहीं सुरति सरीर की, बिसरै सब संसार।
आतम न जानै आप कौं, तब एक रह्या निर्धार ॥१५५॥

(१५२) "तन मौं सुमिरण" = मुख से राम, कर से माला और विषयों में भटकता मन। "आत्म सुमिरण" = मन बुद्धि को एकाग्र करके आत्मा में लगाना।

(१५३ "माटी के मुकाम" = स्थूल शरीर, जिस के निमित्त जाप।
"आपैं आप" = अपने आप को ब्रह्मरूप जानना। अर्थात् "सोऽहमहं-मः" जाप ॥

(१५४) इस साखी का तात्पर्य १५५ वीं साखी से खुलता है।

तनसौं सुमिरण कीजिये, जब लग तन नीका ।
आतम सुमिरण ऊपजै, तब लागै फीका ।
आगैं आपैं आप है, तहां क्या जीवका ॥ १५६ ॥

॥ परचै ॥

चर्म दृष्टी देषै बहुत, आतम दृष्टी एक ।
ब्रह्मदृष्टि परचै भया, तब दादू बेठा देष ॥ १५७ ॥
येई नैनां देहके, येई आतम होइ ।
येई नैनां ब्रह्म के, दादू पलटै दोइ ॥ १५८ ॥

(१५६) "जबलग तन नीका" = जबतक तन में आत्म अध्यास है अथवा शरीर के पालन पोषण में प्रेम है वा सौंदर्य बुद्धि है ।
"तब लागै फीका" = तब शरीर फीका प्रतीत होगा ।
"तहां क्या जीव का" = तहां जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं ।

(१५७–१५८) इन साक्षियों में तीन प्रकार की दृष्टि कही हैं, अर्थात्–

(१) चर्मदृष्टि जिससे संसार को नानात्व भाव से देखते हैं ।
(२) आत्मदृष्टि, जिससे जगत् का अधिष्ठान रूप एक ही आत्मा प्रतीत होता है ।
(३) ब्रह्मदृष्टि, जिससे वही आत्मा ब्रह्म रूपता से भान होता है ।

दादूजी कहते हैं कि तीसरे निश्चय में स्थित रहना योग्य है, यथा—

चर्मदृष्टि सब जगत है, आत्मदृष्टि दास ।
ब्रह्मदृष्टि जीवन मुकत, भई वासना नास ॥

अन्य—

लुब्धाः धनमयं विश्वं, कामुकाः कामनीमयं ।
नारायणमयं धीराः, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥

घट परचै सब घट लषै, प्राण परचै प्राण ।
ब्रह्म परचै पाइये, दादू है हैरान ॥ १५६ ॥

॥ सुषिम सौंज अरचा बंदगी ॥

दादू जल पाषाण ज्यूं, सेवै सब संसार ।
दादू पाणी लूण ज्यूं, कोइ बिरला पूजणहार ॥ १६० ॥
अलष नांव अंतरि कहै, सब घटि हरि हरि होइ ।
दादू पाणी लूण ज्यूं, नांव कहीजै सोइ ॥ १६१ ॥
छाडै सुरति सरीर कूं, तेज पुंज मैं आइ । (७ – ३५)
दादू ऐसैं मिलि रहै, ज्यूं जल जलहि समाइ ॥ १६२ ॥
सुरति रूप सरीर का, पीव के परसैं होइ ।
दादू तन मन एक रस, सुमिरण कहिये सोइ ॥ १६३ ॥
राम कहत रामहि रह्या, आप विसर्जन होइ ।
मन पवना पंचौं बिलै, दादू सुमिरण सोइ ॥ १६४ ॥
जहं आतमराम संभालिये, तहं दूजा नांहीं और ।
देही आगैं अगम है, दादू सूषिम ठौर ॥ १६५ ॥

---

(१५६) अपने घट (शरीर) के परिचय (निश्चय) से अन्य शरीरों को भी वैसा ही जानै, तैसे ही सब लिंग शरीरों को समान जानै, ब्रम्ह से अभेद रूप साक्षात्कार करके सर्व को ब्रम्ह ही रूप जानै, ऐसे अद्भुत ज्ञान को पाय कर पूर्वावस्था के स्मर्ण से दयालजी आश्चर्य करते हैं ॥

(१६३) "सुरति रूप सरीर का, " इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि जब परमात्मा का स्पर्श रूप साक्षात्कार होजाता है तब शरीर का परिणाम केवल सुरति ही रूप रह जाता है अर्थात् उस समय केवल ब्रह्माकार सुरति ही होती है, शरीरादि कुछ नहीं प्रतीत होते ।

परआतम सौं आतमा, ज्यौं पाणी मैं लूंण ।
दादू तन मन एक रस, तब दूजा कहिये कूंण ॥ १६६ ॥
तन मन बिलै यौं कीजिये, ज्यौं पाणी मैं लूंण ।
जीव ब्रह्म एकै भया, तब दूजा कहिये कूंण ॥ १६७ ॥
तन मन बिलै यौं कीजिये, ज्यौं घृत लागै घाम ।
आत्म कवल तहं बंदगी, जहं दादू परगट राम ॥ १६८ ॥

नषसिष सुमिरण ॥

कोमल कवल तहं पैसि करि, जहां न देषै कोइ ।
मन थिर सुमिरण कीजिये, तब दादू दर्सन होइ ॥ १६९ ॥
नषसिष सब सुमिरण करै, अैसा काहिये जाप ।
अंतरि बिगसै आतमा, तब दादू प्रगटै आप ॥ १७० ॥
अंतरि गति हरि हरि करै, तब मुष की हाजति नांहि ।
सहजैं धुनि लागी रहै, दादू मनहीं मांहि ॥ १७१ ॥
दादू सहजैं सुमिरण होत है, रोम रोम रमि राम ।
चित्त चहूंट्या चित्त सौं, यौं लीजै हरि नाम ॥ १७२ ॥
दादू सुमिरण सहज का, दीन्हा आप अनंत ।
अरस परस उस एक सौं, षेलैं सदा बसंत ॥ १७३ ॥
दादू सबद अनाहद हम सुन्या, नषसिष सकल सरीर ।
सब घटि हरि हरि होत है, सहजैं ही मन थीर ॥ १७४ ॥
हुण दिल लगा हिकसां, मे कूं ये हा तांति ।
दादू कंमि षुदाय दे, बैठाडी हैं रांति ॥ १७५ ॥

---

(१६६) कोमल कवल=हृदय स्थान ।

दादू माला सब आकार की, कोइ साधू सुमिरे राम ।
करणीगर तैं क्या किया, ऐसा तेरा नाम ॥ १७६ ॥
सब घट मुष रसना करै, रटै राम का नांव ।
दादू पीवै राम रस, अगम अगोचर ठांव ॥ १७७ ॥
दादू मन चित अस्थिर कीजिये, तौ नषसिष सुमिरण होइ ।
श्रवण नेत्र मुष नासिका, पंचौं पूरे सोइ ॥ १७८ ॥

॥ साध महिमा ॥

आतम आसण राम का, तहां बसै भगवान ।
दादू दून्यूं परसपर, हरि आतम का थान ॥ १७९ ॥
राम जपै रुचि साध कौं, साध जपै रुचि रामं ।
दादू दून्यूं एक टग, यहु आरंभ यहु काम ॥ १८० ॥
जहां राम तहं संत जन, जहं साधू तहं राम ।
दादू दून्यूं एकठे, अरस परस विश्राम ॥ १८१॥

---

(१७६) सब ब्रह्मांड को एक माला मानौ, घट पर्यांत आकारों को गुरिया (मणके) रूपी धागा मानौ । हे करतार ! यह अद्भुत माया प्रपंच तूने क्या रचा है । इस प्रकार चिंतवन रूप स्मरण है सो कोई साधुजन करता है ॥

माया घट मणियें सबै, सुमिरै सांई साध ।
रजब तुछ तसबी रही, माला मिली अगाध ॥
पंच पचीसौं त्रिगुन मन, ये मणियां जिव हेरि ।
रजब हित के हाथ सौं, आठौं पहर सुफेर ॥

(१७७) शरीर के प्रत्येक छिद्र को मुख और जिभ्या रूप करै, अर्थात् छिद्र छिद्र से राम नाम का उच्चारण करै ॥

(१८०) विरह के अंग की १४७ वीं साखी देखौ ॥

दादू हरि साधू यौं पाइये, अविगत के आराध ।
साधू संगति हरि मिलैं, हरि संगति थैं साध ॥ १८२ ॥
दादू राम नाम सौं मिलि रहै, मन के छाडि बिकार ।
तौ दिलही मांहै देषिये, दून्यूं का दीदार ॥ १८३ ॥
साध समाना राम मैं, राम रह्या भरपूरि ।
दादू दून्यूं एक रस, क्यौं करि कीजै दूरि ॥ १८४ ॥
दादू सेवग सांई का भया, तब सेवग का सब कोइ ।
सेवग सांई कौं मिल्या, तब सांई सरीषा होइ ॥ १८५ ॥

॥ सत्संग महिमा ॥

मिश्री मांहै मेलि करि, मोल बिकाना बंस ।
यौं दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस ॥ १८६ ॥
मीठे मांहै राषिये, सो काहे न मीठा होइ ।
दादू मीठा हाथि ले, रस पीवै सब कोइ ॥ १८७ ॥

॥ संगति कुसंगति ॥

मीठे सौं मीठा भया, षारे सौं षारा ।
दादू ऐसा जीव है, यहु रंग हमारा ॥ १८८ ॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

मीठै मीठे करि लिये, मीठा मांहै बाहि ।
दादू मीठा ह्वै रह्या मीठे मांहि समाइ ॥ १८९ ॥
राम बिना किस काम का, नहिं कौड़ी का जीव ।
सांई सरीषा ह्वै गया, दादू परसैं पीव ॥ १९० ॥

॥ पारिष अपारिष ॥

हीरा कौडी ना लहै, मूरिष हाथि गंवार ।
पाया पारिष जौंहरी, दादू मोल अपार ॥ १६१ ॥
अंधे हीरा परषिया, कीया कौड़ी मोल ।
दादू साधू जौंहरी, हीरे मोल न तोल ॥ १६२ ॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

मीरां किया मेहर सौं, परदे थैं लापर्द ।
राषि लिया दीदार मैं, दादू भूला दर्द ॥ १६३ ॥
दादू नैंन बिन देषिबा, अंग बिन पेषिबा,
रसन बिन बोलिबा, ब्रह्म सेती ।
श्रवण बिन सुणिबा, चरण बिन चालिबा,
चित्त बिन चित्यबा, सहज एती ॥ १६४ ॥

॥ पतिब्रत ॥

दादू देष्या एक मन, सो मन सबही मांहि ।
तिहि मनसौं मन मानिया, दूजा भावै नांहि ॥ १६५ ॥

॥ पुरष प्रकासी ॥

दादू जिहिं घटि दीपक रामका, तिहिं घटि तिमर न होइ ।१५-८५
उस उजियारे जोति के, सब जग देषै सोइ ॥ १६६ ॥

॥ पतिब्रत ॥

दादू दिल अरवाह का, सो अपणा ईमान ।
सोई स्याबति राषिये, जहं देषै रहिमान ॥ १६७ ॥

---

(१६५) इस साखी में प्रथम तीन बार जो "मन" शब्द आया है तिस का अर्थ ब्रम्ह है, चौथे "मन" शब्द का साधारण मन ही अर्थ है ॥ अथवा मन (चेतनता) सब में समान है ॥

(१६७) अरवाह (जीव) का दिल (मन) है सोई जीव का ईमान

अल्लः आप इमान है, दादू के दिल मांहि ।
सोई स्याबति राषिये, दूजा कोई नांहि ॥ १६८ ॥

॥ अध्यात्म ॥

प्राण पवन ज्यौं पतला, काया करै कमाइ । (२५–६०)
दादू सब संसार मैं, क्यौं ही गह्या न जाइ ॥ १६६ ॥
नूर तेज ज्यौं जोति है, प्राण प्यंड यौं होइ । (२५–६१)
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, साहिब के बसि सोइ ॥ २०० ॥
काया सूषिम करि मिलै, ऐसा कोई एक ।
दादू आतम ले मिलैं, ऐसे बहुत अनेक ॥ २०१ ॥

(कल्याण करनेवाला) है, उस (मन) को ऐसा साबित (सावधान) रखना चाहिये, जिस में वह रहमान (परमात्मा) ही को देखै ॥

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ भ० गीता अ० ५ श्लो० ६

(१६६–२००) चंपागम ने अपने दृष्टांतसंग्रह में इन साखियों के "प्राण पवन ज्यौं पतला" तुक पर यह दृष्टांत दिया है:—

गुर दादू पै सिद्ध द्वै, आये लघु करि देह ।
उपदेसत भये तिन्ह को, कहा सिधाई एह ॥

अर्थात् दादूजी के पास दो सिद्ध जन लघु शरीर धर के आये तिन को यह दो साखियां दयालजी ने कहीं । इनका तात्पर्य यह है कि काया को ऐसा कमाय कि पवन के सदृश सूक्ष्म और दीपक की ज्योतिवत् प्रकाशमान हो, जो किसीप्रकार गह्या (पकड़ा) न जाय न देखने में आवै, तब सिद्धाई प्राप्त हो॥ दादूजी ने अपने शरीर की यह दशा अपने अंत समय से कुछ पूर्व अपने शिष्यों को दिखाई थी—यह संपूर्ण हाल स्वामी दादू दयाल के जीवन चरित्र में लिखा है ॥

(२०१) पूर्वोक्त प्रकार से काया को सूक्ष्म करके मिलनेवाला

॥ सुंदरि सुहाग ॥

आडा आतम तन धरै, आप रहै ता मांहि ।
आपण षेलै आप सौं, जीवन सेती नांहि ॥ २०२ ॥

॥ अध्यात्म ॥

दादू अनभै थैं आनंद भया, पाया निर्भय नांव ।
निहचल निर्मल निर्बाणपद, अगम अगोचर ठांव ॥२०३॥
दादू अनभै बाणी अगम कौं, ले गइ संगि लगाई ।
अगह गहै अकह कहै, अभेद भेद लहाइ ॥ २०४ ॥
जे कुछ बेद कुरांन थैं, अगम अगोचर बात ।
सो अनभै साचा कहै, यहु दादू अकह कहात ॥ २०५ ॥
दादू जब घटि अनभै ऊपजै, तब किया करम का नास ।
भै भ्रम भागे सबै, पूरण ब्रह्म प्रकास ॥ २०६ ॥
दादू अनभै काटै रोग कौं, अनहद उपजै आइ ।
सेझे का जल निर्मला, पीवै रुचि ल्यौ लाइ ॥ २०७ ॥
दादू बाणी ब्रह्मकी, अनभै घटि परकास । (२२–२६)
राम अकेला रहि गया, सबद निरंजन पास ॥ २०८ ॥

कोई विरला एक है, पर (काया के पतन पीछे) आत्मा (लिंग शरीर) को लेकर मिलनेवाले बहुत हैं ॥

(२०२) तन के सामने (आड़े) आत्मा को करै, अर्थात् तन को भूलकर आत्मा ही में मन लगावै, और "आप रहै ता मांहि" उसी में सुरति लगाये रक्खै ॥ अपने अंतर आत्मा से ही आप खेलै (रमण करै) अन्य जीवादिकों से मोह न करै ॥

जे कबहूं समझै आतमा, तौ दिढ़ गहि राषै मूल ।
दादू सेझा राम रस, अमृत काया कूल ॥ २०६ ॥

॥ परचै जज्ञास उपदेस ॥

दादू मुझही मांहै मैं रहूं, मैं मेरा घरबार ।
मुझही मांहै मैं बसूं, आप कहै करतार ॥ २१० ॥
दादू मैंही मेरा अरस मैं, मैं ही मेरा थान ।।
मैं ही मेरी ठौर मैं, आप कहै रहिमान ॥ २११॥
दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार ।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजन हार ॥२१२
दादू मैं ही मेरी जाति मैं, मैं ही मेरा अंग ।
मैं ही मेरा जीव मैं, आप कहै परसंग ॥ २१३ ॥
दादू सबै दिसा सो सारिषा, सबै दिसा मुष बैन ।
सबै दिसा श्रवणहु सुणै, सबै दिसा कर नैन ॥ २१४ ॥
सबै दिसा पग सीस हैं, सबै दिसा मन चैन ।
सबै दिसा सन्मुख रहै, सबै दिसा अंग ऐन ॥ २१५ ॥
बिन श्रवणहु सब कुछ सुणै, बिन नैनहु सब देषै ।
बिन रसना मुष सब कुछ बोलै, यहु दादू अचिरज पेषै ॥२१६॥
सब अंग सब ही ठौर सब, सर्बगी सब सार ।
कहै गहै देषै सुनै, दादू सब दीदार ॥ २१७ ॥
कहै सब ठौर, गहै सब ठौर, रहै सब ठौर, जोति प्रवानै ।
नैन सब ठौर, बैन सब ठौर, अैन सब ठौर, सोई भल जानै ॥

सीस सब ठौर, श्रवण सब ठौर, चरण सब ठौर, कोई यहु मानै।
अंग सब ठौर, संग सब ठौर, सबै सब ठौर, दादू ध्यानै ॥२१८॥
तेज ही कहणा, तेज ही गहणा, तेजही रहणा सारे।
तेज ही बैना, तेजही नैंना, तेजही अैन हमारे ॥
तेजही मेला तेजही षेला, तेज अकेला, तेज ही तेज संवारे।
तेजही लेवै, तेजही देवै, तेजही षेवै, तेजही दादू तारे॥२१९॥
नूरहि का धर, नूरहि का घर, नूरहि का बरु मेरा।
नूरहि मेला, नूरहि षेला, नूर अकेला, नूरहि मांझि बसेरा ॥
नूरहि का अंग, नूरहि का संग, नूरहि का रंग मेरा।
नूरहि राता, नूरहि माता, नूरहि षाता दादू तेरा ॥२२०॥

॥ सूषिम सौंज अरचा बंदगी ॥

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहां बसै मावूदं।
तहं बंदे की बंदगी, जहां रहै मौजूदं ॥ २२१ ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहं षालिक भरपूरं।
आली नूर अल्लाः का, षिदमतगार हजूरं ॥ २२२ ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहं देष्या करतारं।
तहं सेवग सेवा करै, अनंत कला रवि सारं ॥ २२३ ॥
दादू नूरी दिल अरवाह का, तहां निरंजन बासं।
तहं जन तेरा एक पग, तेज पुंज परकासं ॥ २२४ ॥
दादू तेज कवल दिल नूर का, तहां राम रहिमानं।
तहं कर सेवा बंदगी, जे तूं चतुर सयानं ॥ २२५ ॥

तहां हजूरी बंदगी, नूरी दिल मैं होइ ।
तहं दादू सिजदा करै, जहां न देषै कोइ ॥ २२६ ॥
दादू देही मांहै दोइ दिल, इक षाकी इक नूर ।
षाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥ २२७ ॥

॥ निमाज़ सिजदा ॥

दादू हौद हजूरी दिलही भीतरि, ग़ुस्ल हमारा सारं ।
उजू साजि अलह के आगे, तहां निमाज गुज़ारं ॥२२८॥
दादू काया मसीति करि, पंच जमाती मनही मुलां इमामं ।
आप अलेष इलाही आगै, तहं सिजदा करै सलामं ॥२२९॥
दादू सब तन तसबी कहै करीमं, ऐसा कर ले जापं ।
रोज़ा एक दूरि करि दूजा, कलमां आपै आपं ॥ २३० ॥
दादू अठे पहर अलह के आगै, इकटग रहिबा ध्यानं ।
आपैं आप अरस के ऊपर, जहां रहै रहिमानं ॥ २३१ ॥
अठे पहर इबादती, जीवन मरण नेबाहि ।
साहिब दर सेवै षडा दादू छाडि न जाइ ॥ २३२ ॥

। साध महिमा माहात्म ॥

अठे पहर अरस मैं, ऊभो ई आहे ।
दादू पसे तिन के अला गाल्हाये ॥ २३३ ॥

---

(२२७) षाकी = मलीन बुद्धि । नूर = शुद्ध बुद्धि ।

(२३२) आठौं पहर भजन में जन्म से मरण तक निबाहै, परमेश्वर के द्वारे खड़ा सेवा करै, कभी छांडिकर न जाय ॥

(२३३) अरस = आसमान (पवित्र हृदय) ऊभो=खड़ा ही रहे अंतर्मुख वृत्ति द्वारा । गाल्हाय=बात करे ।

अठे पहर अरस मैं, बेठा पिरी पसंनि ।
दादू पसे तिन के, जे दीदार लहंनि ॥ २३४ ॥
अठे पहर अरस मैं, जिन्हीं रूह रहंनि ।
दादू पसे तिनके, गुझ्यूं गाल्ही कंनि ॥ २३५ ॥
अठे पहर अरस मैं, लुडींदा आहीन ।
दादू पसे तिनके, असां षबरि डीन्ह ॥ २३६ ॥
अठे पहर अरस मैं, वजी जे गाहीन ।
दादू पसे तिनके, किते ई आहींन ॥ २३७ ॥

॥ रस (प्रेम पियाला)॥

प्रेम पियाला नूर का, आसिक भरि दीया ।
दादू दर दीदार मैं, मतिवाला कीया ॥ २३८ ॥
इसक सलूनां आसिकां, दरगह थैं दीया ।
दर्द मोहब्बति प्रेम रस, प्याला भरि पीया ॥ २३९ ॥
दादू दिल दीदार दे, मतिवाला कीया ।
जहां अरस इलाही आप था, अपना करि लीया ॥२४०॥
दादू प्याला नूर दा, आसिक अरसि पिवन्नि ।
अठे पहर अल्लाह दा, मुंह दिट्ठे जीवंनि ॥ २४१ ॥
आसिक अमली साध सब, अलष दरीबे जाइ ।
साहेब दर दीदार मैं, सब मिलि बैठे आइ ॥ २४२ ॥

---

(२४०) दादू दिल दीदार दे=दादू के मन में दर्शन देकर ॥

(२४२) दृष्टांतः—गुर दादू आंबेर मैं, ठहरे माधवदास ।
भेजी भेट जुवार की, अलख दरीबे पास ॥

राते माते प्रेमरस, भरि भरि देइ पुदाइ ।
मस्तान मालिक करि लिये, दादू रहे ल्यौ लाइ ॥२४३॥

॥ लांबी (भक्ति अगाध) ॥

दादू भगति निरंजन राम की, अविचल अविनासी ।
सदा सजीवनि आतमा, सहजैं परकासी ॥ २४४ ॥
दादू जैसा राम अपार है, तैसी भगति अगाध ।
इन दून्यूं की मित नहीं, सकल पुकारैं साध ॥२४५॥
दादू जैसा अविगत राम है, तैसी भगति अलेष ।
इन दून्यूं की मित नहीं, सहस मुषां कहै सेस॥ २४६॥
दादू जैसा निर्गुण राम है, तैसी भगति निरंजन जाणि ।
इन दोन्यौं की मित नहीं, संत कहैं प्रवांणि ॥२४७ ॥
दादू जैसा पूरा राम है, तैसी पूरण भगति समान ।
इन दोन्यौं की मित नहीं, दादू नाहीं आन ॥ २४८ ॥

॥ सेवा अखंडित ॥

दादू जब लग राम है, तब लग सेवग होइ ।
अषंडित सेवा एक रस, दादू सेवग सोइ ॥ २४९ ॥
दादू जैसा राम है, तैसी सेवा जाणि ।
पावैगा तब करैगा, दादू सो परवांणि ॥ २५० ॥
सांई सरीषा सुमिरण कीजै, सांई सरीषा गावै ।
सांई सरीषी सेवा कीजै, तब सेवग सुष पावै ॥ २५१ ॥

॥ परचै करुण बीनती ॥

दादू सेवग सेवा करि डरै, हम थैं कछू न होइ ।
तूं है तैसी बंदगी, करि नहिं जाणै कोइ ॥ २५२ ॥

दादू जे साहिब मानै नहीं, तऊ न छाडौं सेव ।
इहि अवलंबनि जीजिये, साहिब अलष अभेव ॥ २५३ ॥

॥ सूषिम सौंज अरचा बंदगी ॥

आदि अंति आगै रहै, एक अनूपं देव । (२०–३०)
निराकार निज निर्मला, कोई न जाणै भेव ॥ २५४ ॥
अविनासी अपरंपरा, वार पार नहिं छेव ॥ (२०–३१)
सो तूं दादू देषिले, उर अंतरि करि सेव ॥ २५५ ॥
दादू भीतरि पैसि करि, घट के जड़ै कपाट ।
सांई की सेवा करै, दादू अबिगत घाट ॥ २५६ ॥
घट परचै सेवा करै, प्रत्यषि देषै देव ।
अविनासी दरसन करै, दादू पूरी सेव ॥ २५७ ॥

॥ भरम बिधूसण ॥

पूजण हारे पासि है, देही मांहैं देव ।
दादू ताकौं छाडि करि, बाहरि मांडी सेव ॥ २५८ ॥

॥ परचय ॥

दादू रमिता राम सौं, षेलै अंतरि मांहि ।
उलटि समाना आप मैं, सो सुष कतहूं नांहि ॥ २५९ ॥

(२५४–५५) एक समै कहुं सुरति चलाई, अनंत कोटि ब्रम्हंड दिखाई ।
परा सबद ऐसें तहं आया, वार पार काहू नहिं पाया ॥
जन गोपाल कृत जीवनचरित्र ७ वां वि० ४२ चौ०

(२५८) देव पूजन हारे के पास (उस की ही देह में) है ॥

दादू जे जन बेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव़। (क,ग,घ)
उलटि समाने आप मैं, अंतर नांही पीव़ ॥ २६० ॥
परगट षेलै पीव़ सौं, अगम अगोचर ठांव़ ।
एक पलक का देषणां, जीवन मरण क नांव़ ॥ २६१ ॥

॥ सूषिम सौंज अरचा बंदगी ॥

आतम मांहै राम है, पूजा ताकी होइ ।
सेवा़ बंदन आरती, साध करैं सब कोइ ॥ २६२॥
परचै सेवा़ आरती, परचै भोग लगाइ ।
दादू उस परसाद की, माहिमा कही न जाइ ॥ २६३ ॥
मांहि निरंजन देव़ है, मांहै सेवा़ होइ ।
मांहि उतारैं आरती, दादू सेव़ग सोइ ॥ २६४ ॥
दादू मांहै कीजै आरती, मांहै पूजा होइ ।
मांहै सतगुर सेवि़ये, बूझै बिरला कोइ ॥ २६५ ॥
संत उतारैं आरती, तन मन मंगल चार ।
दादू बलि बलि वा़रणै, तुम परि सिरजन हार ॥ २६६॥
दादू अबिचल आरती, जुगि जुगि देव अनंत ।
सदा अषंडित एकरस, सकल उतारैं संत ॥ २६७ ॥

॥ सौंज ॥

सत्यराम, आत्मा वैश्नौं, सुबुधि भोमि, संतोष थान, मूल मंत्र, मन माला, गुर तिलक, साति संजम, सील सुच्या, ध्यान धोव़ती, काया कलस, प्रेम जल, मनसा मंदिर, निरंजन देव़, आत्मा पाती, पुहप प्रीति, चेतना

चंदन, नवधा नांव, भाव पूजा, मति पात्र, सहज समर्पण, सबद घंटा, आनंद आरती, दया प्रसाद, अनिन एक दसा, तीर्थ सतसंग, दान उपदेस, ब्रत सुमिरण, षट गुण ज्ञान, अजपा जाप, अनभै आचार, मरजादा राम, फल दरसन, अभिअन्तरि सदा निरन्तर, सति सौंज दादू वर्तते, आत्मा उपदेस, अंतर गति पूजा ॥२६८॥

पिवसौं षेलौं प्रेमरस, तो जियरे जक होइ ।
दादू पावै सेज सुष, पड़दा नांही कोइ ॥ २६९ ॥

॥ सूषिम सौंज ॥

सेवग बिसरै आप कौं, सेवा बिसरि न जाइ ।
दादू पूछै राम कौं, सो तत कहि समझाइ ॥ २७० ॥

ज्यौं रसिया रस पीवतां, आपा भूलै और ।
यौं दादू रहि गया एक रस, पीवत पीवत ठौर ॥ २७१ ॥

जहं सेवग तहं साहिब बैठा, सेवग सेवा मांहि ।
दादू सांई सब करै, कोई जाणै नांहि ॥ २७२ ॥

दादू सेवग सांई बस किया, सौंप्या सब परिवार ।
तब साहिब सेवा करै, सेवग के दरबार ॥ २७३ ॥

---

(२६८) सौंज=आचार । सत्यराम=तारक ब्रम्ह संज्ञक मंत्र है । आत्मा वैष्णौ=अपने आप को वैष्णौ मानैं । मूलमंत्र=राम नाम । गुरतिलक=तिलकस्थानी मस्तक पर गुरू को मानै । अनिन एकदसा=अनन्य शरण ईश्वर की । षट गुण ज्ञान=मन इंद्रियों को पवित्र रखना । अनभै आचार=किसी तरह का भय न रक्खे । मरजादा राम=राम में निश्चय ॥

(२७३) देखो विरह के अंग की १४७ वीं साखी ॥

तेज पुंज कौं विलसणा, मिलि षेलैं इक ठांव़ ।
भरि भरि पीवै रामरस, सेव़ा इसका नांव़ ॥ २७४ ॥
अरस परस मिलि षेलिये, तब सुष आनंद होइ ।
तन मन मंगल चहुं दिसि भये, दादू देषै सोइ ॥२७५॥

॥ सुंदर सुहाग ॥

मस्ताकि मेरे पांव धरि, मंदिर मांहै आव़ ।
संइयां सोवै सेज परि, दादू चंपै पांव ॥ २७६ ॥
ये चारयूं पद पलिंग के, सांई की सुष सेज ।
दादू इन पर बैसि करि, सांई सेती हेज ॥ २७७ ॥
प्रेम लहरि की पालकी, आतम बैसै आइ ।
दादू षेलै पीव़ सौं, यहु सुष कह्या न जाइ ॥ २७८ ॥

॥ पूजा—भक्ति सूषिम सौंज ॥

दादू देव़ निरंजन पूजिये, पाती पंच चढाइ ।
तन मन चंदन चरचिये, सेवा सुरति लगाइ ॥ २७९ ॥
भगति भगति सब को कहै, भगति न जाणै कोइ ।
दादू भक्ति भगवंत की, देह निरंतर होइ ॥ २८० ॥

---

(२७६) ध्यान में जो त्रिकुटी के तीर सुरति होती है, उस सुरति को मस्तक से ऊपर उल्लांघि करि ब्रम्हाकार वृत्ति रूपी मंदिर में प्रवेश करै, वहां पर अरस परस मेल जो आत्मा और परमात्मा का है सो सेव्य सेवक भाव़ से (पति और स्त्री के दृष्टांतवत) यहां कहा है ॥

(२७७) पिछली (२७६ वीं) साखी के चारों पद ही सांई की सेज के पाये हैं ॥

(२७९) पंच पाती = पंच इंद्रिय और शब्द स्पर्श रूप रस गंध विषय ॥

देही मांहैं देव है, सब गुण थैं न्यारा ।
सकल निरंतर भरि रह्या, दादू का प्यारा ॥ २८१ ॥
जीव पियारे राम कौं, पाती पंच चढ़ाइ ।
तन मन मनसा सौंपि सब, दादू बिलम न लाइ ॥२८२॥

॥ ध्यान—अध्यात्म ॥

सबद सुरति ले सानि चित, तन मन मनसा मांहि ।
मति बुधि पंचौं आत्मा, दादू अनत न जांहि ॥ २८३ ॥
दादू तन मन पवना पंच गहि, ले राखै निज ठौर ।
जहां अकेला आप है, दूजा नांहीं और ॥ २८४ ॥
दादू यहु मन सुरति समेटि करि, पंच अपूठे आणि ।
निकटि निरंजन लागि रहु, संगि सनेही जाणि ॥२८५॥
मन चित मनसा आतमा, सहज सुरति ता मांहि ।
दादू पंचौं पूरिले, जहं धरती अंबर नांहि ॥ २८६ ॥
दादू भीगे प्रेम रस, मन पंचौं का साथ ।
मगन भये रस में रहे, तब सनमुष त्रिभुवननाथ ॥२८७॥
दादू सबदैं सबद समाइ ले, परआतम सौं प्राण ।
यहु मन मन सौं बांधि ले, चित्तैं चित्त सुजाण ॥२८८॥

---

(२८२) बिलम = बिलम्ब ॥

(२८५) पंच ज्ञान इंद्रिय, तिन को बाह्य विषयों से फेरि कर अंतर मुख करैं, अर्थात् नेत्रों को बाह्य रंगीले रूपों से रोक कर अंतर आत्म प्रकाश पर दृढ़ करैं । श्रोत्रों को बाह्य शब्दों से फेरि कर अंदर अनाहद शब्द में लगावैं, रसना इंद्रिय को खट्टे मीठे पदार्थों की इच्छा से मोड़ कर अंदर

दादू सहजैं सहज समाइ ले, ज्ञानैं बंध्या ज्ञान ।
सुत्रैं सुत्र समाइ ले, ध्यानै बंध्या ध्यान ॥ २८९ ॥
दादू दृष्टैं दृष्टि समाइ ले, सुरतैं सुरति समाइ ।
समझैं समझ समाइ ले, लै सौं लै ले लाइ ॥ २९० ॥
दादू भावैं भाव समाइ ले, भगतैं भगति समान ।
प्रेमैं प्रेम समाइ ले, प्रीतैं प्रीति रसपान ॥ २९१ ॥
दादू सुरतैं सुरति समाइ रहु, अरु बैनहुं सौं बैन ।
मनहीं सौं मन लाइ रहु, अरु नैनहुं सौं नैन ॥ २९२ ॥
जहां राम तहं मन गया, मन तहं नैनां जांइ ।
जहं नैनां तहं आतमा, दादू सहजि समांइ ॥ २९३ ॥

जीवनमुक्ति (विषयवासना निवृत्ति)

प्राण न षेलै प्राण सौं, मन ना षेलै मन ।
सबद न षेलै सबद सौं, दादू राम रतन ॥ २९४ ॥

आत्मरस (अमृत) की चाट सिखावै, तैसे घ्राण और त्वचा इंद्रियों को बाह्य विषयों से फेरि कर अंतर्मुख आत्मा की ओर रक्खै सनेही = परमात्मा ॥

(२९४) यह और इस से अगली साखियां समाधी की परिपक्व अवस्था को निरूपण करती हैं । ध्यानावस्था में ध्यानी कभी प्राणों की गति में चित्त लगा कर खेलता (सुरति को जमाता) है, कभी मन के पीछे सुरति रहती है, फिर अनाहद शब्द में स्थिर होकर मग्न हो जाती है । इन प्रकारों के खेल जब तक सुरति में रहते हैं तब तक परिपक्व अवस्था नहीं होती । जब परिपक्व अवस्था प्राप्त होती है तब "दादू रामरतन" केवल शुद्ध अद्वैत निर्वाण पद ही होता है, जहां संपूर्ण इंद्रिय प्राण मन चित्तादि का और संपूर्ण विषयों का लय होजाता है । फिर जहां केवल शुद्ध स्वयं प्रकाश ब्रम्ह

चित्त न षेलै चित्त सौं, बैन न षेलैं बैन ।
नैन न षेलै नैन सौं, दादू परगट अैन ॥ २९५ ॥
पाक न षेलै पाक सौं, सार न षेलै सार ।
षूब न षेलै षूब सौं, दादू अंग अपार ॥ २९६ ॥
नूर न षेलै नूर सौं, तेज न षेलै तेज ।
जोति न षेलै जोति सौं, दादू एकै सेज ॥ २९७ ॥
पंच पदारथ मन रतन, पवना माणिक होइ ।
आतम हीरा सुरति सौं, मनसा मोती पोइ ॥ २९८ ॥
अजब अनूपं हार है, सांइ सरीषा सोइ ।
दादू आतम राम गलि, जहां न देषै कोइ ॥ २९९ ॥
दादू पंचौं संगी संगि ले, आये आकासा ।
आसण अमर अलेष का, निर्गुण नित बासा ॥ ३०० ॥
प्राण पवन मन मगन है, संगि सदा निवासा ।
परचा परम दयाल सौं, सहजैं सुष दासा ३०१ ॥
दादू प्राण पवन मन मणि बसै, त्रिकुटी केरे संधि ।
पांचौं इंद्री पीव सौं, ले चरणौं मैं बंधि ॥ ३०२ ॥
प्राण हमारा पीव सौं, यौं लागा सहिये ।
पुहप बास, घृत दूध मैं, अब कासौं कहिये ॥ ३०३ ॥

रहा, "तव पाक न षेलै पाक सौं" अर्थात् वहां जीवात्मा और परमात्मा का साक्षात् अभेद होकर किसी प्रकार का द्वैतभाव नहीं रहता ॥

(२९९) गलि = गले में ।

(३०३) सहिये = चहिये, सही हो, ठीक हो ।

पाहण लोह बिचि बासदेव, ऐसैं मिलि रहिये ।
दादू दीन दयाल सौं, संगहि सुष लहिये ॥ ३०४ ॥
दादू ऐसा बड़ा अगाध है, सूषिम जैसा अंग ।
पुहप बास थैं पतला, सो सदा हमारे संग ॥ ३०५ ॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब अंतर कुछ नांहि ।
ज्यौं पाला पांणी कौं मिल्या, त्यौं हरि जन हरि मांहि ॥३०६॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब सब पड़दा दूरि ।
ऐसैं मिलि एकै भया, बहु दीपक पावक पूरि ॥ ३०७ ॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब अंतर नांही रेष ।
नाना विधि बहु भूषणां, कनक कसौटी एक ॥ ३०८ ॥
दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब पलक न पड़दा कोइ ।
डाल मूल फल बीज मैं, सब मिलि एकै होइ ॥ ३०९ ॥
फल पाका बेली तजी, छिटकाया मुष मांहि ।
सांई अपणा करि लिया, सो फिरि ऊगै नांहि ॥ ३१० ॥
दादू काया कटोरा, दूध मन, प्रेम प्रीति सौं पाइ ।
हरि साहिब इहि बिधि अंचवै, बेगा वार न लाइ ॥३११॥

---

(३१०) जब फल पकता है तब बेली को त्याग देता है, तब मुख में डाल कर उस को लोग खा जाते हैं, वह खाया हुआ बीज फिर उगता नहीं । तैसे हरि के भजन से जीव रूपी फल, पापों की निवृत्ति रूपी परिपक्वावस्था को प्राप्त होके, शरीर रूपी बेली में अहंभाव रूपी अध्यास को त्यागकर, मुख रूपी परमेश्वर को प्राप्त होकर, असंभावना विपरीत भावना से रहित अपने स्वरूप को निश्चय कर लेता है, तब फिर वह जीव जन्म मरण रूपी संसार को नहीं प्राप्त होता ॥

टगाटगी जीवण मरण, ब्रह्म बराबरि होइ ।
परगट षेलै पीव सौं, दादू बिरला कोइ ॥ ३१२ ॥
दादू निवारा ना रहै, ब्रह्म सरीषा होइ ।
लै समाधि रस पीजिये, दादू जब लग दोइ ॥ ३१३ ॥
बे षुदषबर होशियार बाशद, षुदषबर पामाल ।
बे क़ीमती मस्तानः ग़लतां, नूरे प्यालये ष्याल ॥ ३१४ ॥
दादू माता प्रेम का, रस मैं रह्या समाइ ।
अंत न आवै जब लगैं, तब लग पीवत जाइ ॥ ३१५ ॥
पीया तेता सुष भया, बाकी बहु बैराग ।
ऐसैं जन थाकै नहीं, दादू उनमन लाग ॥ ३१६ ॥
निकट निरंजन लागि रहु, जब लग अलष अभेव। (८-८७)
दादू पीवै राम रस, निह कामी निज सेव ॥ ३१७ ॥
राम रटणि छाडै नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचैं हीं अटकै नहीं, कला कोटि दिषलाइ ॥ ३१८ ॥
दादू हरि रस पीवतां, कबहूं अरुचि न होइ ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवण हारा सोइ ॥ ३१९ ॥

---

(३१२) जीवन काल मरण पर्यंत ब्रम्ह में टगाटगी (लय) लगाये रहे ॥

(३१४) फार्सी साखी का अर्थ-अहंकार हीन होशियार होता है, आपा नीचे गिराता है। अपने खियाल के पियाले का प्रकाश अमूल्य मस्तानः आनंद देता है ॥

दृष्टांत-या साखी सुनि औलिया, चलि आयो आंमेरि ।
कथा करत गुरुदेव के, मुह चालत लियो फेरि ॥

(३१५) दई सु देता ना थकै, लेता थकै न दास ।
जन रज्जब दोऊ अथक, जुग २ एही पियास ॥

(३१९) "पीवत प्यासा नित नवा"=पीते हुए जिसे नित्य नई प्यास रहे, तात्पर्य-ब्रम्ह के चिंतन (ध्यान) में नित्य उन्नति करनेवाला॥

दादू जैसे श्रवणां दोइ हैं, अैसे हूंहि अपार ।
राम कथा रस पीजिये, दादू बारंबार ॥ ३२० ॥
जैसे नैनां दोइ हैं, अैसे हूंहि अनंत ।
दादू चंद चकोर ज्यौं, रस पीवैं भगवंत ॥ ३२१ ॥
ज्यौं रसना मुष एक है, अैसे हूंहि अनेक ।
तौ रस पीवै सेस ज्यौं, यौं मुष मीठा एक ॥ ३२२ ॥
ज्यौं घटि आतम एक है, ऐसे हूंहि असंष ।
भरि भरि राषै राम रस, दादू एकै अंक ॥ ३२३ ॥
ज्यौं ज्यौं पीवै राम रस, त्यौं त्यौं बढ़ै पियास ।
अैसा कोई एक है, बिरला दादू दास ॥ ३२४ ॥
राता माता राम का, मतिवाला मैमंत ।
दादू पीवत क्यौं रहे, जे जुग जांहिं अनंत ॥ ३२५ ॥
दादू निर्मल जोति जल, बरिषा बारह मास ।
तिहिं रसि राता प्राणिया, माता प्रेम पियास ॥ ३२६ ॥
रोम रोम रस पीजिये, एती रसनां होइ ।
दादू प्यासा प्रेम का, यौं बिन तृप्ति न होइ ॥ ३२७ ॥
तन गृह छाड़ै लाज पति, जब रसि माता होइ ।
जब लग दादू सावधान, कदे न छाड़ै कोइ ॥ ३२८ ॥

---

(३२२) शेष जी के दो सहस्र जीभैं हैं और एक सहस्र मुख, तिन से परमेश्वर का वो भजन करते हैं ॥

(३२५) "पीवत क्यौं रहे" = पीने से क्यों रुके ॥

(३२८) लाज पति = बड़ाई, इज्ज़त ।

आंगणि एक कलाल के, मतिवाला रस मांहि ।
दादू देष्या नैंन भरि, ताकै दुविधा नांहि ॥ ३२९ ॥
पीवत चेतन जब लगैं, तब लग लेवै आइ ।
जब माता दादू प्रेम रस, तब काहे कौं जाइ ॥ ३३० ॥
दादू अंतरि आतमा, पीवै हरिजल नीर ।
सौंज सकल ले उद्धरै, निर्मल होइ सरीर ॥ ३३१ ॥
दादू मीठा राम रस, एक घूंट करि जांउं ।
पुणग न पीछै कौं रहै, सब हिरदै मांहि समांउं ॥३३२॥
चिड़ी चंच भरि ले गई, नीर निघटि नहि जाइ ।
ऐसा बासण नां किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥३३३॥
दादू अमली राम का, रस बिन रह्या न जाइ ।
पलक एक पावै नहीं, तौ तबहिं तलफि मरि जाइ ॥३३४॥

---

(३२९) आंगणि एक कलाल के = ब्रम्ह के समीप ।

(३३०) रस पीते हुये जब तक चेतन (सचेत) रहे, तब तक रस लेता रहे । जब रस में लीन हो जाय, तब उसे आगे जाने की हाजत नहीं रही ॥

(३३३) दृष्टांत—गुर दादू को दरस करि, अकबर कियो संवाद ।
सा षी सुनाय कबीर की, ब्रम्ह सो अगम अगाध ॥

अकबरशाह ने कबीर साहब की यह साखी—

तन मटकी मन मही, प्रान बिलोवन हार ।
तत्त कबीरा ले गया, छाछ पिये संसार ॥

कह कर दयालजी से प्रश्न किया था, उस के उत्तर में दयालजी ने कहा कि कबीर साहब के ब्रम्ह तत्व प्राप्त करने से वह तत्व घटा नहीं, जैसे समुद्र से चोंच भर जल चिड़िया के ले जाने से समुद्र घट नहीं जाता, तैसे ब्रम्ह अपार है, और ऐसा कोई बासन है नहीं जिस में दरिया रूपी ब्रम्ह समा जाय ॥

दादू राता रामका, पीवै प्रेम अघाइ ।
मतिवाला दीदार का, मांगै मुक्ति बलाइ ॥ ३३५ ॥
उजल भवरा हरि कवल, रस रुचि बारह मास ।
पीवै निर्मल बासना, सो दादू निज दास ॥ ३३६ ॥
नैनहुं सौं रस पीजिये, दादू सुरति सहेत ।
तन मन मंगल होत है, हरि सौं लागा हेत ॥ ३३७ ॥
पीवै पिलावै राम रस, माता है हुसियार ।
दादू रस पीवै घणां, औरूं कूं उपगार ॥ ३३८ ॥
नाना बिधि पिया राम रस, केती भांति अनेक ।
दादू बहुत बमेक सौं, आतम अबिगत एक ॥ ३३९ ॥
परचै का पै प्रेम रस, जे कोई पीवै ।
मतिवाला माता रहै, यौं दादू जीवै ॥ ३४० ॥
परचै का पै प्रेम रस, पीवै हित चित लाइ ।
मनसा वाचा क्रमना, दादू काल न षाइ ॥ ३४१ ॥
परचै पीवै राम रस, जुगि जुगि अस्थिर होइ ।
दादू अबिचल आतमा, काल न लागै कोइ ॥ ३४२ ॥
परचै पीवै रामरस, सो अविनासी अंग ।
काल मीच लागै नहीं, दादू सांई संग ॥ ३४३ ॥
परचै पीवै रामरस, सुष मैं रहै समाइ ।

(३३५) "मांगै मुक्ति बलाइ", इस का तात्पर्य यह है कि उस मतवाले की बलाय मुक्ति मांगै, अर्थात् उस को अन्य मुक्ति की कुछ अपेक्षा नहीं रही ॥

(३४०) पै = पय = अमृत ॥

मनसा वाचा क्रमना, दादू काल न षाइ ॥ ३४४ ॥
परचै पीवै राम रस, राता सिरजन हार ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, ते छूटे संसार ॥ ३४५ ॥
अमृत भोजन राम रस, काहे न बिलसै षाइ ।
काल बिचारा क्या करै, रमि रमि राम समाइ ॥३४६॥

॥ सजीवन ॥

दादू जीव अज्या बिध काल है, छेली जाया सोइ ।
जब कुछ बस नहिं कालका, तब मीनी का मुष होइ ॥ ३४७ ॥
मन लौरू के पंष है, उनमन चढ़ै अकास ।
पगरहि पूरे साच के, रोपि रह्या हरि पास ॥ ३४८ ॥

(३४७–३५२) यह साखियां नामदेव के निम्न लिखित पद का गूढ़ार्थ बताती हैं: —

नामदेव का पद ॥

लटके न बोलौं बाप, ब्रतमान गाढौ ।
कोल्हा येवड़ा मोतीड़ा, मैं मंझे डोलै देषीला । टेक ॥
छेली बैली (ब्याली ?) बाघ जैला मांझारिया (मांजरि) भय दूंडै ।
उडत पंष मैं लवरूं पेष्या, नरली जेव्है टांडै ॥ १ ॥
बावलिया चै षोटै, मांषणियां चै पोटै ।
संषै सुनहा मारीला, तहां मींडक अभिला लोटै ॥ २ ॥
अम्हे जु गैला ब्राट देस, तहां गांभी दूध कैला ।
श्रब आटै गांभीला, तहां चौदह रंजन भरिला ॥ ३ ॥
लटक्यौ गइयो गढिया जोलै, गढिया येवड़ रोलै ।
उडत पंषि मैं मूंगी पेषी, बाटी जे है डोलै ॥ ४ ॥
बिप्रदास नामदेव इमं प्रणवै, ये छै जीव ची ग्कती ।
लटके आछै सांगीला, ताछै मोक्ष न मुकती ॥ ५ ॥

तन मन बिरष बबूल का, कांटे लागे सूल।
दादू माषण ह्वै गया, काहू का अस्थूल ॥ ३४९ ॥
दादू संषा सबद है, सुनहां संसा मारि।
मन मींडक सूं मारिये, संक्या श्रप निवारि ॥ ३५० ॥
दादू गांभी ज्ञान है, भंजन है सब लोक।
राम दूध सब भरि रह्या, ऐसा अमृत पोष ॥ ३५१ ॥
दादू झूठा जीव है, गढिया गोविंद बैन।
मनसा मूंगी पंष सौं, सुरज सरीषे नैन ॥ ३५२ ॥
सांई दीया दत घणां, तिस का वार न पार।
दादू पाया राम धन, भाव भगति दीदार ॥ ३५३ ॥
इति परचै कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ४ ॥

अर्थ—झूठ न बोलौं, मेरा यह गाढ़ा व्रत है। कासीफल (कद्दू की बराबर एक मोती (शुद्धमन) मैं मंझे (मेरे भीतर) मैंने डोलै (आंखों से) देखा॥ छेली (बकरी) रूपी जीवात्मा व्याली (व्याई) तिससे बाघ रूपी काल जैला (उत्पन्न हुआ), जब जीव परमपद को प्राप्त होता है तब उसे काल का भय नहीं रहता, ऐसी अवस्था में वह बाघ रूपी काल बिल्ली की सदृश भयभीत हो जाता है। यह नामदेवजी के पहले पद के प्रथमार्द्ध का अर्थ, दादूजी की ३४७ वीं साखी से स्पष्ट हुआ॥

लवरू पक्षी के पंखवत मन है सो आकाशवत व्यापक परमेश्वर को उन-मनी अवस्था में प्राप्त होता है। (३४८)

नामदेव के पद २ का तात्पर्य दादूजी की ३४९–३५०वीं साखियां बताती हैं

,, ,, ३–४ का ,, ,, ३५१–५२ ,, ,,

अथ जरणा को अङ्ग ॥ ५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
को साधू राषै रामधन, गुर बाइक बचन बिचार ।
गहिला दादू क्यौं रहै, मरकत हाथ गंवार ॥ २ ॥
दादू मनहीं मांहैं समझि करि, मनहीं मांहिं समाइ ।
मनहीं मांहैं राषिये, बाहरि कहि न जणाइ ॥ ३ ॥
दादू समझि समाइ रहु, बाहरि कहि न जणाइ ।
दादू अद्भुत देषिया, तहं नां को आवै जाइ ॥ ४ ॥
कहि कहि क्या दिषलाइये, सांई सब जाणै ।
दादू प्रगट का कहै, कुछ समझि सयाणै ॥ ५ ॥
दादू मनही मां हैं ऊपजै, मनही मांहि समाइ ।
मनही मां हैं राषिये, बाहरि कहि न जणाइ ॥५॥ (क, ग)

---

(२) हजारों में कोइ एक साधू गुरू वाक्य विचार कर राम नाम रूपी धन सञ्चय करता है, यह धन गाहिलों के हाथ नहीं रहता, जैसे गंवार के हाथ में मरकत मणी नहीं रहती ॥

जरणा, गुजराती भाषा के जरवुं शब्द से बना है । इस का अर्थ पचानां, हजम करना, धारण करना, गुप्त रखना शांति, क्षमा इत्यादि यहां बनता है ॥

लै बिचार लागा रहै, दादू जरता जाइ ।
कबहूं पेट न आफरै, भावै तेता षाइ ॥ ६ ॥
जिनि षोवै दादू रामधन, रिदै राषि, जिनि जाइ ।
रतन जतन करि राषिये, चिंतामणि चित लाइ ॥ ७ ॥
सोई सेवग सब जरै, जेती उपजै आइ ।
कहि न जणावै और कौं, दादू मांहि समाइ ॥ ८ ॥
सोई सेवग सब जरै, जेता रस पीया ।
दादू गूझ गंभीर का, परकास न कीया ॥ ९ ॥
सोई सेवग सब जरै, जे अलष लषावा ।
दादू राषै रामधन, जेता कुछ पावा ॥ १० ॥
सोइ सेवग सब जरै, प्रेम रस षेला ।
दादू सो सुष कस कहै, जहं आप अकेला ॥ ११ ॥
सोई सेवग सब जरै, जेता घटि परकास ।।
दादू सेवग सब लषै, कहि न जणावै दास ॥ १२ ॥

---

(६) विचार पूर्वक भजन में लगा रहे (यहां बिचार यह है कि प्रगट करने से हानि होती है और गुप्त रखने से भजन का फल पूर्ण होता है) तो दयालजी कहते हैं कि सब (भजन) हजम (सफल) होता है, जैसे पथ्य भोजन रुचि पूर्वक किया हुआ सब हज़म होजाता है ॥

(८) सोई सेवग सब जरै=सेवक वही है जो देखी सुनी को पचा लेवे अर्थात् गुह्य बात किसी और को न सुनावै, यथाः—

कही सो दूर्योधन कही, करन ने कही नांहि ।
धुंई धुंआं न संचरै, रहि पिंजर के मांहि ॥

अजर जरै रस ना झरै, घटि मांहि समावै ।
दादू सेवग सो भला, जे काहि न जणावै ॥ १३ ॥
अजर जरै रस ना झरै, घट अपना भरि लेइ ।
दादू सेवग सो भला, जारै जाण न देइ ॥ १४ ॥
अजर जरै रस ना झरै, जेता सब पीवै ।
दादू सेवग सो भला, राषै रस, जीवै ॥ १५ ॥
अजर जरै रस ना झरै, पीवत थाकै नाहिं ।
दादू सेवग सो भला, भरि राषै घट मांहिं ॥ १६ ॥

॥ साध महिमा ॥

जरणा जोगी जुगि जुगि जीवै, झरणा मरि मरि जाइ ।
दादू जोगी गुर मुषी, सहजैं रहै समाइ ॥ १७ ॥
जरणा जोगी जागि रहै, झरणा परलै होइ ।
दादू जोगी गुर मुषी, सहजि समाना सोइ ॥ १८ ॥
जरणा जोगी थिर रहै, झरणा घट फूटै ।
दादू जोगी गुर मुषी, काल थैं छूटै ॥ १९ ॥
जरणा जोगी जगपती, अविनासी अवधूत ।
दादू जोगी गुर मुषी, निर अंजन का पूत ॥ २० ॥

---

(१३) अजर जरै रस ना झरै = जो साधारण जरणा के योग्य नहीं उस को जरै, अर्थात् पचावै, धारण करै और गुप्त रक्खै, और धारण भी ऐसे करै कि किसी प्रकार से रस निकल न जाय ॥

(१७) जरणा जोगी = जरणा करनेवाला योगी ।
झरणा = बहा देने वाला कुयोगी ।

(१८) जगि रहै = जग में रहै ।

जरै सु नाथ निरंजन बाबा, जरै सु अलष अभेव़ ।
जरै सु जोगी सबकी जी.व़नि, जरै सु जगमैं देव़ ॥२१॥
जरै सु आप उपाव़न हारा, जरै सु जगपति सांई ।
जरै सु अलष अनूप है, जरै सु मरणा नांहीं ॥ २२ ॥
जरै सु अविचल राम है, जरै सु अमर अलेष ।
जरै सु अविगत आप है, जरै सु जग मैं एक ॥ २३ ॥
जरै सु अविगत आप है, जरै सु अपरंपार ।
जरै सु अगम अगाध है, जरै सु सिरजन हार ॥ २४ ॥
जरै सु निज निरकार है, जरै सु निज निर्धार ।
जरै सु निज निर्गुण मई, जरै सु निज तत सार ॥२५॥
जरै सु पूरण ब्रह्म है, जरै सु पूरण हार ।
जरै सु पूरण परम गुर, जरै सु प्राण हमार ॥ २६ ॥
दादू जरै सु जोति सरूप है, जरै सु तेज अनंत ।
जरै सु झिलिमिलि नूर है, जरै सु पुंज रहंत ॥ २७ ॥
दादू जरै सु परम प्रकास है, जरै सु परम उजास ।
जरै सु परम उदीत है, जरै सु परम बिलास ॥ २८ ॥
दादू जरै सु परम पगार है, जरै सु परम बिगास ।
जरै सु परम प्रभास है, जरै सु परम निवास ॥ २९ ॥

॥ परमेश्वर की दयालुता ॥

दादू एक बोल भूले हरी, सु कोई न जाणै प्राण ।
औगुण मनि आणै नहीं, और सब जाणै हरि जाण ॥३०॥

---

(३०) इस साखी का तात्पर्य यह है कि हरी (परमेश्वर) बड़ा दयालू

दादू तुम्ह जीवों के औगुण तजे, सु कारण कौंण अगाध ?।
मेरी जरणा देषि करि, मति को सीषै साध ॥ ३१ ॥

धारणा ॥

पवना पानी सब पिया, धरती अरु आकास ।
चंद सूर पावक मिले, पंचौं एक गरास ॥ ३२ ॥
चौदह तीन्यूं लोक सब, ठूंगे सासै सास ।
दादू साधू सब जरै, सतगुर के बेसास ॥ ३३ ॥
॥ इति जरणा कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ५ ॥

है । जीवों के अवगुणों को भुलाये सा रहता है यद्यपि वह उन अवगुणों को सर्व प्रकार से जानता है, प्राणीजन चाहे उन अवगुणों को न भी जानते हों॥

(३१) इस साखी का प्रथमार्द्ध प्रश्न रूप है और द्वितीयार्द्ध में उस का उत्तर है ॥ दयालजी प्रश्न करते हैं कि हे अगाध ! परमेश्वर !! तुम जो जीवों के अवगुणों को छोड़ देते हो, सो इसमें क्या कारण है ? इस के उत्तर में परमेश्वर कहते हैं कि मेरी जरणा (शांति, क्षमा) देखि कर, इस क्षमावान् मति (बुद्धि) को साधुजन धारण करैं ॥

दृष्टांतः—वांमा विष सुव्याधि तैं, क्षमा करी खल जानि ।
जरणा अति मंहगी करी औतारूं उर आनि ॥

(३२) पवन का गुण विषयों में अनासक्ति, जल का गुण शीतलता, सो हमने पान कर लिया है । धरती का गुण क्षमा, आकाश का गुण असंगता, चंद्र का गुण सौम्यता, सूर्य का गुण भगवत भक्ति में सूरवीरता, अग्नि का गुण तेजस्वी पनादि, इन गुणों को हमने ग्रासवत् धारण किया है ।

(३३) चौदह भुवन और तीनौं लोकौं के संपूर्ण गुण हमने "ठूंगे सासै सास" पूर्ण रूप से धारण किये हैं ।

इसप्रकार दयालजी कहते हैं कि साधु जन गुण, औगुण, शीतोष्ण, सुख दुःख सब जरै (सहारै) और पांचौं इन्द्रियों के गुणों का एक ग्रास करै, यथा—

अथ हैरान कौ अङ्ग ॥ ६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरदेवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
रतन एक बहु पारिष, सब मिलि करैं बिचार ।
गुंगे गहिले बावरे, दादू वार न पार ॥ २ ॥
केते पारिष जौहरी, पंडित ज्ञाता ध्यान ।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कहि कथिये ज्ञान ॥ ३ ॥
केते पारिष पचि मुये, कीमति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान हैं, गुंगे का गुड़ षाइ ॥ ४ ॥
सबही ज्ञानी पंडिता, सुरनर रहे उरझाइ ।
दादू गति गोबिंद की, क्योंही लषी न जाइ ॥ ५ ॥
जैसा है तैसा नांऊ तुम्हारा, ज्यौं है त्यौं कहि सांई ।
तूं आपै जाणै आपकौं, तहं मेरी गमि नांहीं ॥ ६ ॥

धरती जड़ मति आप अनंग, तामस तेज बाइ बक अंग ।
रजब डिंभ गगन अभिमान, ये गुण जीतैं ब्रम्ह समान ॥
छेः प्रकार जरनां कही श्री दयालजी भाषि ।
घन आनंद, प्रकाश, रस, गुन, प्रचा, इंद्रि दिढ़राषि ॥

(२) रत्नरूपी परमात्मा है, उस के पारिषरूपी अनेक मतवादी हैं, सो उन अंधौं की तरह हैं जो हाथी को पहचानने गये थे और हाथी के एक २ अंग को ही हाथी मान कर नानारूप का हाथी बखानते थे ॥

(४) गुंगे का गुड़ षाय = गुंगा गुड़ खाकर स्वाद नहीं बतला सकता, केवल मिठास की उत्तमता के इशारे करता है, देखो साखी १४ वीं ॥

केते पारिष अंत न पावैं, अगम अगोचर मांहीं ।
दादू कीमति कोइ न जाणै, षीर नीर की नांईं ॥ ७ ॥
जीव ब्रह्म सेवा करै, ब्रह्म बराबरि होइ ।
दादू जाणै ब्रह्म कौं, ब्रह्म सरीषा सोइ ॥ ८ ॥
वार पार को ना लहै, कीमति लेषा नांहि ।
दादू एकै नूर है, तेज पुंज सब मांहि ॥ ९ ॥

॥ पीव पिछान ॥

हस्त पांव नहिं सीस मुष, श्रवण नेत्र कहुं कैसा ।
दादू सब देषै सुणै, कहै गहै है ऐसा ॥ १० ॥
पाया पाया सब कहैं, केतक देहुं दिषाइ ।
कीमति किनहूं ना कही, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ११ ॥
अपना अंजन भरि लिया, उहां उताही जाणि ।
अपणी अपणी सब कहैं, दादू बिड़द बषाणि ॥ १२ ॥
पार न देषै आपणा, गोप गूझ मन मांहिं ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जाहिं ॥ १३ ॥
गुंगे का गुड़ का कहूं, मन जानत है षाइ ।
त्यौं राम रसाइण पीवतां, सो सुष कह्या न जाइ ॥ १४॥

---

(८) "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति", इस श्रुति के अनुकूल यह साखी है ।

(११) केतक, देहुं दिषाइ=कितने कहते हैं कि मैं दिखा सकता हूं । कीमति=ब्रम्ह का यथार्थ स्वरूप वा आदिअंत ॥

(१२) अपार समुद्र में जाकर कोई घड़ाभर जल लावे, तो केवल घड़ा ही भर जल ला सकता है, न संपूर्ण समुद्र का जल । तैसे ही मनुष्य अपनी शक्ति ही भर अपार परमेश्वर को जान सकता है, न उस के संपूर्ण महान् स्वरूप को ॥

दादू एक जीभ केता कहूं, पूरण ब्रह्म अगाध ।
बेद कते बां मित नहीं, थकित भये सब साध ॥१५॥
दादू मेरा एक मुख, कीरति अनंत अपार ।
गुण केते परिमित नहीं, रहे बिचारि बिचारि ॥ १६ ॥
सकल सिरोमणि नांउ है, तूं है तैसा नांहि ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जांहि ॥ १७ ॥
दादू केते कहि गये, अंत न आवै ओर ।
हमहूं कहते जात हैं, केते कहसी होर ॥ १८ ॥
दादू मैं का जानूं का कहूं, उस बलिये की बात ।
क्या जानूं क्योंहीं रहै, मो पै लष्या न जात ॥ १६ ॥
दादू किते चलि गये, थाके बहुत सुजान ।
बातौं नांव न नीकलै , दादू सब हैरान ॥ २० ॥
ना कहिं दिट्ठा ना सुण्या, ना कोइ आषण हार ।
ना कोइ उत्तौं थीं फिर्‌या, नां उर वार न पार ॥ २१ ॥
नहीं मृतक नहिं जीवता, नहिं आवै नहिं जाइ ।
नहिं सूता नहिं जागता, नहिं भूषा नहिं षाइ ॥ २२ ॥

---

(१८) "हमहु" की जगह "हमभी" पुस्तक नं० १ में है ॥

(२०) बातौं नांव न नीकलै = बातों में परमेश्वर की महिमा कोई नहीं कह सकता, अर्थात् परमेश्वर अकथ है ॥

(२१) ना कहीं परमेश्वर को देखा है ना उसका आदि अंत सुना है और ना कोई उसका कहनेवाला है । ना कोई मरकर ऊपर से लौट आया है जो वहां का अथवा मरे पीछे जो होता है उसका वृत्तान्त कहे । ना परमेश्वर का उरला किनारा है ना परला किनारा है ॥

न तहां चुप ना बोलणां, मैं तैं नाहीं कोइ ।
दादू आपा पर नहीं, न तहां एक न दोइ ॥ २३ ॥
एक कहूं तो दोइ हैं, दोइ कहूं तो एक ।
यौं दादू हैरान है, ज्यौं है त्यौंहीं देष ॥ २४ ॥
देषि दिवाने ह्वै गये, दादू षरे सयान ।
वार पार कोइ ना लहै, दादू है हैरान ॥ २५ ॥

॥ पतिव्रत निहकाम ॥

दादू करणहार जे कुछ किया, सोई हूं करि जाणि ॥१६-५१॥
जे तूं चतुर सयानां जानराइ, तौ याही परवाणि ॥२६॥
दादू जिन मोहनि बाजी रची, सो तुम्ह पूछौ जाइ ।
अनेक एकथैं क्यौं किये, साहिब कहि समझाइ ॥ २७ ॥

॥ इति हैरान कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ६ ॥

---

(२६) किसी वादी ने दादूजी से प्रश्न किया था कि तुम कौन हो, तब उसको यह उत्तर दिया कि जो कुछ करणहार परमेश्वर ने बनाया है सोई मैं हूं । यह निश्चय कर तू जान ।

(२७) दृष्टांतः—

इक वादी संसार की उत्पति पूछी आय ।
जातैं उत्तर वाको दियो, या साखी समझाय ॥

इस साखी के पीछे किसी २ पुस्तक में परचा के अंग की १५७, १५८ और १५९ वीं साखियां दी हैं ॥ इन साखियों से जगत् का नानात्व चर्म (व्यावहारिक) दृष्टि से बतलाया है, पार्मार्थिक दृष्टि से अद्वैत ही सिद्ध है ॥ वादी का प्रश्न यह था कि एक से अनेक रूप जगत् क्यौं हुआ, इसका विशेष उत्तर दादूजी के जीवनचरित्र में इस अंग की समालोचना पर दिया जायगा ॥

अथ लै कौ अङ्ग ॥ ७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू लै लागी तब जाणिये, जे कबहूं छूटि न जाइ ।
जीवत यौं लागी रहै, मूवां मंझि समाइ ॥ २ ॥
दादू जे नर प्राणी लैगता, सोई गत ह्वै जाइ ।
जे नर प्राणी लैरता, सो सहजैं रहै समाइ ॥ ३ ॥
सब तजि गुण आकार के, निहचल मन ल्यौ लाइ ।
आत्म चेतन प्रेम रस, दादू रहै समाइ ॥ ४ ॥
तब मन पवना पंच गहि, निरंजन ल्यौ लाइ ।
जहं आत्म तहं परआत्मा, दादू सहजि समाइ ॥ ५ ॥
अर्थ अनूपं आप है, और अनरथ भाई ।
दादू ऐसी जानि कर, तासौं ल्यौ लाई ॥ ६ ॥
ज्ञान भगति मन मूल गहि, सहज प्रेम ल्यौ लाइ ।
दादू सब आरंभ तजि, जिनि काहू संगि जाइ ॥ ७ ॥

---

(३) लैगता = लयहीन । गत ह्वै जाय = निष्फल हो जाय । लैरता = लयलीन ॥

(४) आकार (प्रपंच) के गुणौं (व्यवहारों) को तजि करके, निराकार चेतन आत्मा में निश्चल मन की लय लगावै ।

(७) ज्ञान और भक्ति से सर्व इंद्रियों के मूल मन को स्थिर करै फिर सहज (आतुरता रहित) प्रेम से लय लगावै, दुनिया के सब आरंभौं (वासनाओं) को त्याग दे, किसी वासना के संग मन को न जाने दे ॥

॥ अगम संसार ॥

पहली था सो अब भया, अब सो आगैं होइ । (क, ख)
दादू तीनौं ठौर की, बूझै बिरला कोइ ॥ ७–½ ॥

॥ अध्यात्म ॥

जोग समाधि सुष सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव ॥ ८ ॥
सहज सुंनि मन राषिये, इन दून्यूं के मांहिं । (१६–६)
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भै नांहि ॥ ६ ॥
दादू बिन पायन का पंथ है, क्यौं करि पहुंचै प्राण । (१–१३५)
बिकट घाट औघट घरे, मांहि सिषर असमान ॥१०॥ (घ, ङ)
मन ताजी चेतन चढै, ल्यौ की करै लगाम । (१–१३६)
सबद गुरू का ताजणां, कोइ पहुंचै साध सुजान ॥११॥ (घ, ङ)

॥ सूषिम मार्ग ॥

किहिं मारग ह्वै आइया, किहिं मारग ह्वै जाइ ।
दादू कोई नां लहै, केते करैं उपाइ ॥ १२ ॥
सून्यहि मारग आइया, सून्यहि मारग जाइ ।
चेतन पैंडा सुरति का, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ १३ ॥

---

(८) महल (शरीर) का मुक्ति द्वारा रूप सुख जैसे जोग, समाधी वा सुरति से सहजैं सहज (शनै २) प्राप्त होता है तैसे ही वह सुख भक्ति से भी होता है, अर्थात् जोग समाधी सुरति वा भक्ति का फल एक ही है ॥

(६) "सहज सुंनि", देखो परचा के अंग की ५६ वीं साखी ॥ यहां जो "इन दून्यूं के मांहि" वाक्य आया है तिस में "दून्यूं" शब्द जोग समाधी और भक्ति जोग को दर्शाता है ॥

दादू पारब्रह्म पैंडा दिया, सहज सुरति लै सार ।
मन का मारग मांहि घर, संगी सिरजन हार ॥ १४ ॥

॥ लै ॥

राम कहै जिस ज्ञान सौं, अमृत रस पीवै ।
दादू दूजा छाडि सब, लै लागी जीवै ॥ १५ ॥
राम रसाइन पीवतां, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ।
दादू आतमराम सौं, सदा रहै ल्यौ लाइ ॥ १६ ॥
सुरति समाइ सनमुष रहै, जुगि जुगि जन पूरा ।
दादू प्यासा प्रेम का, रस पीवै सूरा ॥ १७ ॥

॥ अध्यात्म ॥

दादू जहां जगत गुर रहत है, तहां जे सुरति समाइ ।
तौ इनहीं नैनहुं उलटि करि, कौतिग देषै आइ ॥१८॥
अष्यूं पसण के पिरी, भिरे उल थौं मंझ ।
जिते बेठो मां पिरी, नीहारी दौ हंझ ॥ १९ ॥
दादू उलटि अपूठा आप मैं, अंतरि सोधि सुजाण ।
सो ढिग तेरी बाहरे, तजि बाहेर की बाणि ॥ २० ॥
सुरति अपूठी फेरि करि, आतम मांहै आण ।
लागि रहै गुरदेव सौं, दादू सोइ सयांण ॥ २१ ॥
जहां आतम तहं राम है, सकल रह्या भरपूर । (ग घ)
अंतरि गति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥ २२ ॥

---

(१९) परमात्मा के दर्शन के निमित्त आंखों को फेरि कर उलटी भीतर लगावे, जहां परमात्मा बैठा है, तिस को संतजन देखते हैं ॥

॥ सूक्षम सौंज अरचा बंदगी ॥

दादू अंतरि गति ल्यौ लाइ रहु, सदा सुरति सौं गाइ ।
यहु मन नाचे मगन ह्वै भावै ताल बजाइ ॥ २३ ॥
दादू गावै सुरति सौं, बाणी बाजै ताल ।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगे दीन दयाल ॥ २४ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू सब बातनि की एक है, दुनिया तैं दिल दूरि ।
सांई सेती संग करि, सहज सुरति लै पूरि ॥ २५ ॥

॥ अध्यात्म ॥

दादू एक सुरति सौं सब रहैं, पंचौं उनमन लाग ।
यहु अनभै उपदेस यहु, यहु परम जोग बैराग ॥ २६ ॥
दादू सहजैं सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग ।
अरस परस मिलि एक ह्वै, सनमुष रहिबा संग ॥२७॥

॥ लय ॥

सुरति सदा सन्मुष रहै, जहां तहां लै लीन ।
सहज रूप सुमिरण करै, निहकर्मी दादू दीन ॥ २८ ॥
सुरति सदा स्याबति रहै, तिन के मोटे भाग ।
दादू पीवै राम रस, रहै निरंजन लाग ॥ २९ ॥

॥ सूषिम सौंज ॥

दादू सेवा सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं लाइ ।
जहं अविनासी देव है, तहं सुरति बिना को जाइ॥३०॥

॥ बीनती ॥

दादू ज्यौं वै बरत गगन थैं टूटै, कहा धरणि कहं ठाम ।

लागी सुरति अंगथैं छूटै, सो कत जीवै राम ॥ ३१ ॥

॥ अध्यात्म ॥

सहज जोग सुष मैं रहै, दादू निर्गुण जाणि ।
गंगा उलटी फेरि करि, जमुना मांहैं आणि ॥ ३२ ॥

॥ लय ॥

परआत्म सो आतमा, ज्यौं जल उदिक समान ।
तन मन पाणी लौंण ज्यौं, पावै पद निर्बाण ॥ ३३ ॥
मनही सौं मन सेविये, ज्यौं जल जलहि समाइ ।
आत्म चेतन प्रेम रस, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥
छाडै सुरति सरीर कौं, तेज पुंज मैं आइ (४–१६१)
दादू ऐसैं मिलि रहै, ज्यौं जल जलहि समाइ ॥ ३५ ॥
यौं मन तजै सरीर कौं, ज्यौं जागत सो जाइ ।
दादू बिसरै देषतां, सहजि सदा ल्यौ लाइ ॥ ३६ ॥
जिहि आसणि पहिली प्राणथा, तिहि आसणि ल्यौ लाइ ।

---

(३१) नट लय लगाकर रस्सी पर आकाश में नाचता है, यदि उस की लय टूट जाय तो वह धरणि (पृथ्वी) पर आपड़ै, तैसे परमात्मा में लगी लय जो छूट जाय तो उस का जीवन कहां हो सकता है ?

(३२) गंगा = उठती स्वास । जमुना = बैठती स्वास ॥

(३३) आत्मा है सोई परमात्मा, जैसे जल और उदक दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक है। तन मन ब्रह्म में ऐसे मिल जाता है जैसे जल में लवण। इसी प्रकार से जीव निर्बाण पद को प्राप्त होता है ॥

(३६) सहजि सदा ल्यौ लाइ–सदा लय इस प्रकार से लगावो कि मन तजै (भूल जाय) शरीर को, जैसे निद्रा में शरीर की सुध नहीं रहती ।

जे कुछथा सोई भया, कछू न ब्यापै आइ ॥ ३७ ॥
तन मन अपणा हाथि करि, ताही सौं ल्यौ लाइ ।
दादू निर्गुण राम सौं, ज्यौं जल जलहि समाइ ॥ ३८ ॥

॥ उपजणि ॥

एक मना लागा रहै, अंति मिलैगा सोइ ।
दादू जाकै मनि बसै, नाकौं दर्सन होइ ॥ ३९ ॥
दादू निबहै त्यूं चलै, धीरैं धीरज मांहि ।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाकै नांहिं ॥ ४० ॥

॥ लय ॥

जब मन मृतक ह्वै रहै, इंद्री बल भागा ।
काया के सब गुण तजै, निरंजग लागा ॥ ४१ ॥
आदि अंति मधि एक रस, टूटै नहिं धागा ।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥ ४२ ॥
जब लग सेवग तन धरै, तब लग दूसर आइ ।
एकमेक ह्वै मिलि रहै, तौ रस पीवन थैं जाइ ॥ ४३ ॥
ये दून्यूं ऐसी कहैं, कीजै कौण उपाय ।
नां मैं एक न दूसरा, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ४४ ॥

इति लै कौ अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ ७ ॥

---

(३७) प्राण=जीव, आदि में इस का स्थान ब्रम्ह था, उसी में लय लगावै, जैसा ब्रम्ह रूप था वैसा ही हो जायगा, माया किसी तरह से उस पर असर न करेगी ।

(४३) यह प्रश्न रूपी साखी है, अर्थात् जब तक जीव तन धरे है तब तक वह ब्रह्म से भिन्न दूसरा है, यदि वह ब्रह्म में एक रूप ही होकर मिल जावे तो वह योगानन्द कैसे पाए कर सकता है ? इसका उत्तर अगली (४४ वीं) साखी में दादूजी ने दिया है कि ना मैं एक हूं ना दो, अर्थात् कह नहीं सकते कि एक है वा दो, क्योंकि निर्विशेष ब्रह्म में संख्यादि विशेषण लग नहीं सकते । हमारा कर्तव्य यह है कि उस में लय लगाये रहैं ॥

अथ निहकर्मी पतिव्रता कौ अङ्ग ॥ ८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

एक तुम्हारै आसिरै, दादू इहि बेसास ।
राम भरोसा तोर है, नहिं करणी की आस ॥ २ ॥

रहणी राजस ऊपजै, करणी आपा होइ ।
सब थैं दादू निर्मला, सुमिरण लागा सोइ ॥ ३ ॥

दादू मन अपणा लै लीन करि, करणी सब जंजाल ।
दादू सहजैं निर्मला, आपा मेटि संभाल ॥ ४ ॥

दादू सिधि हमारे सांइयां, करामाति करतार ।
रिधि हमारे राम है, आगम अलष अपार ॥ ५ ॥

गोब्यंद गोसांई तुम्हे अम्हंचा गुरू, तुम्हे अम्हंचा ज्ञान ।
तुम्हे अम्हंचा देव, तुम्हे अम्हंचा ध्यान ॥ ६ ॥

तुम्हे अम्हंची पूजा, तुम्हे अम्हंची पाती ।
तुम्हे अम्हंचा तीर्थ, तुम्हे अम्हंचा जाती ॥ ७ ॥

तुम्हे अम्हंचा नाद, तुम्हे अम्हंचा भेद ।
तुम्हे अम्हंचा पुराण, तुम्हे अम्हंचा बेद ॥ ८ ॥

तुम्हे अम्हंची जुगत, तुम्हे अम्हंचा जोग ।
तुम्हे अम्हंचा बैराग, तुम्हे अम्हंचा भोग ॥ ९ ॥

तुम्हे अम्हंची जीवनि, तुम्हे अम्हंचा जप ।
तुम्हे अम्हंचा साधन, तुम्हे अम्हंचा तप ॥ १० ॥

---

(२) तोर = तेरा ॥
(३) रहणी, करणी = कर्म करतूत ॥

तुम्हे अम्हंचा सील, तुम्हे अम्हंचा संतोष ।
तुम्हे अम्हंची मुकति, तुम्हे अम्हंचा मोष ॥ ११ ॥
तुम्हे अम्हंचा सिव, तुम्हे अम्हंची सकति ।
तुम्हे अम्हंचा आगम, तुम्हे अम्हंची उकति ॥ १२ ॥
तूं सति तूं अविगति, तूं अपरंपार, तूं निराकार, तुम्हंचा नाम ।
दादू चा बिश्राम, देहु देहु अवलंबन राम ॥ १३ ॥
दादू राम कहूं ते जोड़िबा, राम कहूं ते साषि ।
राम कहूं ते गाइबा, राम कहूं ते राषि ॥ १४ ॥
दादू कुल हमारे के सत्रा, सगा त सिरजनहार ।
जाति हमारी जगतगुर, परमेसुर परिवार ॥ १५ ॥
दादू एक सगा संसार मैं, जिन हम सिरजे सोइ ।
मनसा बाचा कर्मनां, और न दूजा कोइ ॥ १६ ॥

॥ सुमिरण नाम निरसंसै ॥

सांइं सन्मुष जीवतां, मरतां सन्मुष होइ ।
दादू जीवण मरण का, सोच करै जिनि कोइ ॥ १७ ॥

॥ पतिव्रत ॥

साहिब मिल्या त सब मिले, भेटैं भेटा होइ ।
साहिब रह्या तौ सब रहे, नहीं त नाहीं कोइ ॥ १८ ॥
सब सुष मेरे सांईयां, मंगल अति आनंद ।
दादू सजन सब मिले, जब भेंटे परमानंद ॥ १९ ॥

---

(१४) राम नाम का लेना ही मेरा पद जोड़ना है, वही मेरी साखी है, वही मेरा गाना है, वही मेरी धारणा है ॥

दादू रीझै राम परि, अनत न रीझै मन ।
मीठा भावै एक रस, दादू सोई जन ॥ २० ॥
दादू मेरे हिरदै हरि बसै, दूजा नांही और ।
कहौ कहां धौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥ २१ ॥
दादू नाराइण नैनां बसै, मनहीं मोहन राइ ।
हिरदा मांहैं, हरि बसै, आत्म एक समाइ ॥ २२ ॥
दादू तन मन मेरा पीव सौं, एक सेज सुष सोइ ।
गहिला लोग न जाण ही, पचि पचि आपा षोइ ॥२३॥
दादू एक हमारे उरि बसै, दूजा मेल्या दूरि ।
दूजा देषत जाइगा, एक रह्या भरपूरि ॥ २४ ॥
निहचल का निहचल रहै, चंचल का चलि जाइ ।
दादू चंचल छाडि सब, निहचल सौं ल्यौ लाइ ॥ २५ ॥
साहिब रहतां सब रह्या, साहिब जातां जाइ ।
दादू साहिब राषिये, दूजा सहज सुभाइ ॥ २६ ॥
मन चित मनसा पलक मैं, सांई दूरि न होइ ।
निहकामी निरषै सदा, दादू जीवनि सोइ ॥ २७ ॥

॥ कथनी बिना करणी ॥

जहां नांव तहं नीति चाहिये, सदा राम का राज ।

---

(२०) जन वही है जिस का मन एक रस परमेश्वर ही को मीठा समझै।
दृष्टान्त—दोहा—गुर दादू आंबेर मैं, तहां गया बाजींद ।
फूल सराहे देखि कर, ए सब मायानंद ॥
(२३) दृष्टान्त—सोरठा—चोखो एक चमार, पंढरपुर विठ्ठल हरी ।
दोनौं जीमत लार, मूढ़ न जानत तास गति ॥

निर्बिकार तन मन भया, दादू सीझे काज ॥ २८ ॥

सुंदरि बिलाप ॥

जिस की षूबी षूब सब, सोई षूब संभारि ।
दादू सुंदरि षूब सौं, नषसिष साज संवारि ॥ २९ ॥
दादू पंच अभूषण पीव करि, सोलह सबही ठांव ।
सुंदरि यहु सिंगार करि, लै लै पीव का नांव ॥ ३० ॥
यहु व्रत सुंदरि ले रहै, तौ सदा सुहागनि होइ ।
दादू भावै पीव कौं, तासमि और न कोइ ॥ ३१ ॥

॥ मन हरि भावरि ॥

साहिब जीका भावता, कोई करै कलि मांहि ।
मनसा वाचा क्रमना, दादू घटि घटि नांहि ॥ ३२ ॥

॥ पतिवृता निःकाम ॥

आज्ञा माहैं बैसै ऊठै, आज्ञा आवै जाइ ।
आज्ञा माहैं लेवै देवै, आज्ञा पहरै षाइ ॥ ३३ ॥
आज्ञा माहैं बाहरि भीतरि, आज्ञा रहै समाइ ।
आज्ञा माहैं तन मन राषै, दादू रह ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥
पतिव्रता गृह आपणै, करै षसम की सेव ।
ज्यौं राषै त्यौंहीं रहै, आज्ञाकारी टेव ॥ ३५ ॥

---

(२९) "सोई षूब संभारि" की जगह पुस्तक नं० १ में "सोई राम संभारि" है ॥

(३०) पंच आभूषणों और १६ सिंगारों की जगह परमात्मा ही को धारण करै, यह तात्पर्य है ॥

॥ सुंदरि विलाप ॥

दादू नीच ऊंच कुल सुंदरी, सेवा सारी होइ ।
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥ ३६ ॥
दादू जब तन मन सौंप्या राम कौं, तासनि का बिभचार ।
सहज सील संतोष सत, प्रेम भगति लै सार ॥ ३७ ॥
पर पुरिषा सब परहरै, सुंदरि देषै जागि । (२०–३८ । ३०–१६)
अपणा पीव पिछाण करि, दादू रहिये लागि ॥ ३८ ॥
आन पुरिष हूं बहनड़ी, परम पुरिष भर्त्तार । (२०–३६)
हूं अबला समझौं नहीं, तूं जाणै कर्त्तार ॥ ३६ ॥

॥ पतिव्रत ॥

जिस का तिस कौं दीजिये, सांई सन्मुष आइ ।
दादू नखसिष सौंपि सब, जिनि यहु बंध्या जाइ ॥४० ॥
सारा दिल सांई सौं राषै, दादू सोई सयान ।
जे दिल बंटै आपणा, सो सब मूढ़ अयान ॥ ४१ ॥

---

(३६) दृष्टांत–सदना अरु रैदास को, कुल कारण नहिं कोइ ।
प्रभु आये सब छाड़ि कै, बिप्र वैष्णव रोइ ॥
(३८) दृष्टांतः–सरजाती नृप की सुता, दई च्यवन को व्याहि ।
ते ती नौं जल में बड़े, पीछे पति गइ पाहि ॥
तीनौं=दो अश्विनी कुमार और च्यवन ॥
(३६) आन पुरिष हूं बहनड़ी = अन्य पुरुषों की मैं बहन हूं ॥
(४०) संपूर्ण शरीर (नखसिख) जिस (परमात्मा) का दिया हुआ है उसी को सौंपना चाहिये, ऐसा न हो कि वह प्रपंच में बंट जाय, यथा–
आपा सौंपै राम कौं, हरि अपनावै ताहि ।
जगंनाथ जगदीस बिन, आपो दीजै काहि ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू सारौं सौं दिल तोरि करि, सांई सौं जोरै ।
सांई सेती जोड़ि करि, काहे कौं तोरै ॥ ४२ ॥

॥ अनलगनि विभचार ॥

साहिब देवै राषणा, सेवग दिल चोरै ।
दादू सब धन साह का, भूला मन थोरै ॥ ४३ ॥

॥ पतिव्रत ॥

दादू मनसा बाचा क्रमनां, अंतरि आवै एक ।
ताकौं प्रत्तषि रामजी, बातैं और अनेक ॥ ४४ ॥
दादू मनसा बाचा क्रमनां, हिरदै हरि का भाव ।
अलष पुरिष आगै षड़ा, ताकै त्रिभुवन राव ॥ ४५ ॥
दादू मनसा बाचा क्रमनां, हरिजी सौं हित होइ ।
साहिब सन्मुष सांगि है, आदि निरंजन सोइ ॥ ४६ ॥
दादू मनसा बाचा क्रमनां, आतुर कारणि राम ।
सम्रथ सांई सब करै, परगट पूरै काम ॥ ४७ ॥
नारी पुरिषा देषि कर, पुरिषा नारी होइ ।
दादू सेवग रामका, सीलवंत है सोइ ॥ ४८ ॥

---

(४३)दृष्टांत—सोरठा—गोदलियो सुत जेट, सर्वस सौंप्यो तास कौं ।
करी मूढ़ मति नेव, थैली ले न्यारी धरी ॥

परमात्मा ने तन मन धन जीव को धरोहर (अमानत) सौंपा है परजीव शाह (परमात्मा) को भूल कर व्यर्थ कामों (प्रपंच) में धरोहर। को लगाता है॥

(४८)पति दृता अपने पति को देख कर प्रति में चित्त वाली होवै तैसै

॥ आनलगनि बिभचार ॥

पर पुरिषा रत बांझणी, जाणै जे फल होइ ।
जन्म बिगोवै आपणा, दादू नृफल सोइ ॥ ४९ ॥
दादू तजि भर्तारकौं, पर पुरिषा रत होइ ।
ऐसी सेवा सब करैं, राम न जाणौं सोइ ॥ ५० ॥

॥ पतिवृत ॥

नारी सेवग तब लगैं, जब लग सांई पास ।
दादू परसै आन कौं, ताकी कैसी आस ॥ ५१ ॥

॥ आनलगनि बिभचार ॥

दादू नारी पुरिष कौं, जाणैं जे बसि होइ ।
पीव की सेवा ना करै, कामाणिगारी सोइ ॥ ५२ ॥

॥ करुणा ॥

कीया मन का भावतां, मेटी आग्याकार ।
क्या ले मुष दिष लाइये, दादू उस भरतार ॥ ५३ ॥

पति अपनी स्त्री के चित्त वाला होवै । जैसे यह दोनों शीलवंत कहाते हैं तैसे ही जो सेवक परमेश्वर रूपी पति में अपना चित्त लगावै तो उस पर परमेश्वर भी अनुग्रह करता है । सोई भक्त शीलवंत है ॥

(५२) दृष्टान्त–हुरम जु गई फकीर पै, मोकौं जंतर देहु,
होइ पातसा मोर बस, साषी लिषि दई लेहु ॥

साषी–टामण टूमण हे सषी, भूलि करौ मति कोइ ।
पी, कहै त्यों कीजिये, आपैही बसि होइ ॥

(५३) आग्याकार = आज्ञाकारी = फर्मावर्दारी ॥

॥ आनलगनि बिभचार ॥

करामाति कलंक है, जाकै हिरदै एक ।
अति आनंद बिभचारणी, जाकै षसम अनेक ॥ ५४ ॥
दादू पतिब्रता कै एक है, बिभचारणि कै दोइ ।
षतिब्रता बिभचारणी, मेला क्यौं करि होइ ॥ ५५ ॥
पतिब्रता कै एक है, दूजा नांहीं आंन ।
बिभचारणि कै दोइ हैं, पर घर एक समान ॥ ५६ ॥

॥ सुंदरि सुहाग ॥

दादू पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग ।
जे जे जैसी ताहि सौं, षेलैं तिसही रंग ॥ ५७ ॥

॥ पतिव्रत ॥

दादू रहता राषिये, बहता देइ बहाइ ।
बहते संगि न जाइये, रहते सौं ल्यौ लाइ ॥ ५८ ॥
जिनि बाझै काहू कर्म सौं, दूजै आरंभ जाइ ।
दादू ऐकै मूल गहि, दूजा देइ बहाइ ॥ ५९ ॥
बावैं देषि न दाहिणै, तन मन सन्मुष राषि ।
दादू निर्मल तत्त गहि, सत्य सबद यहु साषि ॥ ६० ॥

---

(५४) करामात (संसारी वैभव, चमत्कार) को वह जन कलंक (दूषण) समझता है जिस के हृदय में एक (परमेश्वर) ही का इष्ट है। पर व्यभिचारी (विषयी) जन, जिन के अनेक (धनादि विषय भोग वा देवी देवतादि) इष्ट हैं, उस करामात से अति आनन्द मानते हैं ॥

(५७) "ये यथा मां प्रपद्यते तांस्तथैव भजाम्यहम्"। भ० गी०४—११॥

(५९) तात्पर्य—एक मूल परमेश्वर में चित लगाकर, किसी दूसरे काम में न उलझै ॥

दादू दूजा नैन न देखिये, श्रवण हुं सुनैं न जाइ ।
जिभ्या आन न बोलिये, अंगि न और सुहाइ ॥ ६१ ॥
चरणहु अनत न जाइये, सब उलटा मांहि समाइ ।
उलटि अपूठा आप मैं, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ६२ ॥
दादू दूजै अंतर होत है, जिनि आणै मन मांहि ।
तहं ले मन कौं राखिये, जहं कुछ दूजा नांहि ॥ ६३ ॥

॥ भर्म विधूसण ॥

भरम तिमर भाजै नहीं, रे जिय आन उपाइ ।
दादू दीपक साजि ले, सहजैं हीं मिटि जाइ ॥ ६४ ॥
दादू सो वेदन नहिं, बावरे, आन किये जे जाइ ।
सब दुष भंजन सांईया, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ ६५ ॥
दादू औषदि मूली कुछ नहीं, ये सब झूठी बात ।
जे औषादि ही जीविये, तौ काहे कौं मरि जात ॥ ६६ ॥

॥ पतिव्रत ॥

मूल गहै सो निहचल बैठा, सुष मैं रहै समाइ ।
डाल पान भरमत फिरै, बेदौं दिया बहाइ ॥ ६७ ॥
सौ धक्का सुनहां कौं देवै, घर बाहरि काढै ।
दादू सेवग राम का, दरबार न छाड़ै ॥ ६८ ॥

---

(६५) भर्म तिमिर रूपी वेदन (दुःख) ऐसा नहीं है, हे बावरे, जो आन (अन्य उपायों) से जाय ॥

(६६) दृष्टान्त—बादशाह मरती समय, सब ठाढ़े किय लाय ।
बैद शूर धन लोग कुल, सब हि देखते जाय ॥

(६८) सुनहां नाम कुत्ते का है, कुते को चाहे जितना मारौ, बाहर नि-

साहिब का दर छाडि करि, सेवग कहीं न जाइ ।
दादू बैठा मूल गहि, डालौं फिरै बलाइ ॥ ६६ ॥
दादू जब लग मूल न सींचिये, तब लग हरथा न होइ ।
सेवा निरफल सब गई, फिरि पछिताना सोइ ॥ ७० ॥
दादू सींचे मूल के, सब सींच्या बिस्तार ।
दादू सींचे मूल बिन, बादि गई बेगार ॥ ७१ ॥
सब आया उस एक मैं, डाल पांन फल फूल ।
दादू पीछैं क्या रह्या, जब निज पकड़्या मूल ॥ ७२ ॥
षेत न निपजै बीज बिन, जल सींचे क्या होइ ।
सब निरफल दादू राम बिन, जांनत है सब कोइ ॥७३॥
दादू जब मुष माहैं मेलिये, तब सबही तृपता होई ।
मुष बिन, मेले आन दिस, तृपति न मानै कोइ ॥७४॥
जब देव निरंजन पूजिये, तब सब आया उस मांहि ।
डाल पांन फल फूल सब, दादू न्यारे नांहि ॥ ७५ ॥
दादू टीका राम कौं, दूसर दीजै नांहि ।
ग्यान ध्यान तप भेष पष सब आयै उस मांहि ॥ ७६ ॥

कालौ तौ भी वह मालिक का घर नहीं छोड़ता है । तैसे दयाल जी कहते हैं परमेश्वर के भजन में चाहे जितनी विथा पड़ैं तौ भी साधक को भक्ति नहीं छोड़नी चाहिये ॥

(७४) मुप विन, मेले आन दिस, अर्थात् मुख के सिवाय अन्य जगह देने से तृप्ति नहीं होती ॥

(७६) टीका अर्थातु तिलक और जान दयानादि सब राम नाम के जप के अन्तर्गत हैं ।

साधू राषै राम कौं, संसारी माया ।
संसारी पालव गहै, मूल साधूं पाया ॥ ७७ ॥

॥ आनलगनि विभचार ॥

दादू जे कुछ कीजिये, अविगत बिन आराध ।
कहिबा सुणिबा देषिबा, करिबा सब अपराध ॥ ७८ ॥
सब चतुराई देषिये, जे कुछ कीजै आन ।
दादू आपा सौंपि सब, पीव कौं लेहु पिछान ॥ ७९ ॥

॥ पतिव्रत ॥

दादू दूजा कुछ नहीं, एक सत्ति करि जाणि ।
दादू दूजा क्या करै, जिन एक लिया पहिचाणि ॥८०॥
दादू कोई बांछै मुकति फल, कोइ अमरापुरि बास ।
कोई बांछै परम गति, दादू राम मिलन की प्यास ॥८१॥
तुम हरि हिरदै हेत सौं, प्रगटहु परमानंद ।
दादू देषै नैंन भरि, तब केता होइ अनंद ॥ ८२ ॥
प्रेम पियाला राम रस, हमकौं भावै येह ।
रिधि सिधि मांगैं मुकति फल, चाहैं तिनकौं देह ॥८३॥
कोटि बरस क्या जीवणां, अमर भये क्या होइ ।
प्रेम भगति रस राम बिन, का दादू जीवनि सोइ ॥८४॥
कछू न कीजै कामनां, सर्गुण निर्गुण होइ ।
थलटि जीवतैं ब्रह्म गति, सब मिलि मांनैं मोहि ॥८५॥

(७९) जो कदापि ब्रम्ह आराधन से बाहिर कोई क्रिया होवे, तो सम्पूर्ण विषयों में परमात्मा की अद्भुत चतुराई ही को निरखै और सर्व प्रकार से अहंता और ममता को त्याग कर सर्व में परमात्मा ही को अवलोकन करै ॥

(८०) दूजे शब्द से संसार की ओर इशारा है । सो संसार उसी समय तक भ्रमाता है जब तक पुरुष ब्रम्ह में लीन न हो जाय ॥

(८५) कामना के निवृत्त हुये पीछे सर्गुण (जीव) निर्गुण ब्रह्मरूप होजाता है॥

घट अजरावर ह्वै रहै, बंधन नांहीं कोइ ।
मुकता चौरासी मिटै, दादू संसै सोइ ॥ ८६ ॥

॥ लांबे रस ॥

निकटि निरंजन लागि रहु, जब लग अलष अभेव । ४–३१७ ।
दादू पीवै राम रस, निहकामी निज सेव ॥ ८७ ॥

॥ प्रचै पतिबृत ॥

सालोक संगति रैह, सामीप सन्मुष सोइ ।
सारूप सारीषा भया, साजोज एकै होइ ॥ ८८ ॥
राम रासिक वांछै नहीं, परम पदारथ चार ।
अठ सिधि नव निधि का करै, राता सिरजनहार ॥८९॥

॥ आनलगनि विभचार ॥

स्वारथ सेवा कीजिये, तार्थैं भला न होइ । १३–१३८ ।
दादू ऊसर बाहि करि, कोठा भरै न कोइ ॥ ९० ॥

(८६) घट (जीव) अजर अमर होकर रहता है उस को बन्धन कोई नहीं रहता, मुक्त होजाता है और चौरासी योनियों का जो संशय है सो मिट जाता है । ८५ और ८६ साखियों को मिला कर पढ़ना चाहिये । यह जो फल कहा है सो कामना के मिटने पर है ॥

(८७) जब तक अलख अभेव (परमात्मा) प्राप्त न हो ।

(८८) और ८९ को मिलाकर वांछै चार प्रकार की (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य । जो मुक्तियां द्वैतवादियों ने मानीं हैं सो " रामरासिक " चाहता नहीं, तैसे ही उस को अष्ट सिद्धियों और नव निद्धियों की भी इच्छा नहीं होती ।

८८ में चारों प्रकार की मुक्तियों के नाम दिये हैं, (१) सालोक्य मुक्ति वह है जिस में संग वास हो, (२) सामीप्य, जिस में ईश्वर के सन्मुख रहे, (३) सारूप्य, जिस में ईश्वर के सदृश होय (४) सायुज्य, ईश्वर में लय हो जावै ॥

सुत बित मांगैं बावरे, साहिब सी निधि मेलि ।
दादू वै निर्फल गये, जैसैं नागर बेलि ॥ ६१ ॥
फल कारनि सेवा करै, जाचै त्रिभवन राव । (१३–११६)
दादू सो सेवग नहीं, षेलै अपना डाव ॥ ६२ ॥
सहकामी सेवा करैं, मांगैं मुगध गंवार । (१३–१२०)
दादू अैसे बहुत हैं, फलके भूंचनहार ॥ ६३ ॥

॥ सुमिरण नाम माहात्म ॥

तन मन ले लागा रहै, राता सिरजन हार । (१३--१२१)
दादू कुछ मांगै नहीं, ते बिरला संसार ॥ ६४ ॥
दादू कहै सांई कौं संभालतां, कोटि विघन टालि जांहि ।
राई मांन बसंदरा, केते काठ जलांहि ॥ ६५ ॥

करतूति करम ॥

कर्मैं कर्म काटै नहीं कर्मैं कर्म न जाइ ।
कर्मैं कर्म छूटै नहीं, कर्मैं कर्म बंधाइ ॥ ६६ ॥

॥ इति निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ८ ॥

(६१) साहेब (परमात्मा) जैसी निधि त्यागि कर, मूर्ख जन पुत्रादिकों की याचना करते हैं उस से कल्याण नहीं होता ॥

(६४) इस साखी के पीछे सुमिरण के अंग की १२, १३, १४ और १५ वीं साखियां पुस्तक नं० १, २, और ३ में दोहराई गई हैं उन को पुस्तक नं० ४ थी और ५ वी के अनुसार यहां नहीं रक्खा ॥

अथ चितावणी को अंग ॥ ९ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो हम थैं जिनि होइ ।
सतगुर लाजै आपणा, साध न मानैं कोइ ॥ २ ॥
दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो सब परहरि प्रांण ।
मनसा बाचा कर्मना, जे तूं चतुर सुजाण ॥ ३ ॥
दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो जीव न कीजीरे ।
परहरि बिषै बिकार सब, अमृत रस पीजीरे ॥ ४ ॥
दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो बाट न बूझीरे ।
सांई सौं सनमुष रही, इस मन सौं झूझीरे ॥ ५ ॥
दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ ।
मनवां सूता नींद भरि, सांई संग जगाइ ॥ ६ ॥
दादू अचेत न होइये, चेतन सौं करि चित्त ।
ये अनहद जहां थैं ऊपजै, षोजौ तहं ही नित्त ॥ ७ ॥
दादू, जन ! कुछ चेत करि, सौदा लीजी सार ।
निपर कमाई न छूटणा, अपणे जीव बिचार ॥ ८ ॥

---

(५) "बाट" के बदले "बात" पुस्तक नं० २ में है ॥ इस साखी के पीछे चार साखी (नं० ४७–५० सुमिरण के अंग की) पुस्तक नं० ३ में अधिक लिखी हैं । अन्य पुस्तकों में वो यहां नहीं हैं ॥

(८) जन = हे जन । छूटणा = छोड़ना ॥

दादू कर सांई की चाकरी, ये हरि नाव न छोड़ ।
जाणा है उस देसकौं, प्रीति पिया सौं जोड़ ॥ ६ ॥
आपा पर सब दूरि कर, राम नाम रस लाग ।
दादू औसर जात है, जागि सकै तौ जाग ॥ १० ॥
बारबार यहु तन नहीं, नर नाराइण देह ।
दादू बहुरि न पाइये, जनम अमोलिक येह ॥ ११ ॥
एकाएकी राम सौं, कै साधू का संग ।
दादू अनत न जाइये, और काल का अंग ॥ १२ ॥
दादू तन मन के गुण छाड़ि सब, जब होइ निनारा ।
तब अपने नैनहुं देखिये, परगट पीव प्यारा ॥ १३ ॥
दादू झांती पाये पसु पिरी, अंदरि सो आहे, ।
होणी पाणे विच मैं; मिहर न लाहे ॥ १४ ॥
दादू झांती पाये पसु पिरी, हांणें लाइम बेर ।
साथ सभो ईह लियौ, पोइ पसंदो केर ॥ १५ ॥

इति चितावणी कौ अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ ६ ॥

---

(१४) झांती (झरोखा रूपी देह) पाई है, उस में पिरी (परमेश्वर) को पसु (पश्य = देख) होणी = अब । पाणे = आप। मिहर = कृपा । लाहे = उतारिये, छांडिये ॥

(१५) नर देह पाई है तिस में परमेश्वर को देख, ढील मत कर। साथी सब चले गये, तू पड़ा हुआ क्या देखता है ॥

अथ मन कौ अङ्ग ॥ १० ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू यहु मन बरजी बाहरे, घट मैं राषी घेरि ।
मन हस्ती माता बहै, अंकुस दे दे फेरि ॥ २ ॥
हस्ती छूटा मन फिरै, क्यूं ही बंध्या न जाइ ।
बहुत महावत पचि गये, दादू कलु न बसाइ ॥ ३ ॥
जहां थैं मन उठि चलै, फेरि तहां ही राषि ।
तहं दादू लै लीन करि, साध कहैं गुर साषि ॥४॥ (घ, ङ)
थोरैं थोरैं हटकिये, रहैगा ल्यौ लाइ ।
जब लागा उनमन सौं, तब मन कहीं न जाइ ॥ ५ ॥
आडा दे दे राम कौं, दादू राषै मन ।
साषी दे अस्थिर करै, सोइ साधू जन ॥ ६ ॥
सोई सूर जे मन गहै, निमष न चलने देइ ।
जबहीं दादू पग भरै, तबहीं पाकड़ि लेइ ॥ ७ ॥
जेती लहरि समंद की, तेते मनह मनोरथ मारि ।
बैसै सब संतोष करि, गहि आत्म एक बिचारि ॥ ८ ॥
दादू जे मुष मांहैं बोलता, श्रवणहु सुणता आइ ।
नैनहुं मांहैं देषता, सो अंतरि उरझाइ ॥ ९ ॥

---

(२) बरजी = बर्जिये, रोकिये ॥ राखी = राखिये ॥

(९) जब मन बोलने को, सुनने को, देखने को या अन्य इंद्रियों के विषयों की ओर प्रवृत्त हो, तो मन को अपने अंदर आत्मा ही में उरझावो ॥

दादू चम्बक देषि करि, लोहा लागै आइ ।
यौं मन गुण इंद्री एक सौं, दादू लीजै लाइ ॥ १० ॥
मन का आसण जे जिव जाणै, तौ ठौर ठौर सब सूझै ।
पंचौं आणि एक घरि राषै, तब अगम निगम सब बूझै ॥११॥
बैठे सदा एक रस पीवै, निरबैरी कत झूझै ।
आतमराम मिलै जब दादू, तब अंगि न लागै दूजै ॥१२॥
जब लग यहु मन थिर नहीं, तब लग परस न होइ ।
दादू मनवां थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ ॥ १३ ॥
दादू बिन अवलंबन क्यूं रहै, मन चंचल चलि जाइ ।
अस्थिर मनवां तौ रहै, सुमिरण सेती लाइ ॥ १४ ॥
मन अस्थिर करि लीजै नाम, दादू कहै तहां ही राम ॥१५॥
हरि सुमिरण सौं हेत करि, तब मन निहचल होइ ।
दादू बेध्या प्रेमरस, बीष न चालै सोइ ॥ १६ ॥
जब अंतरि उभर्या एक सौं, तब थाके सकल उपाइ ।
दादू निहचल थिर भया, तब चलि कहीं न जाइ ॥१७॥
दादू कउवा बोहिथ बैसि करि, मंझि समंदां जाइ ।
उडि उडि थाका देषि तब, निहचल बैठा आइ ॥१८॥

---

(१४) दृष्टांत— साध भूत दियो सेठ को, टहल करन के काज ।
बांस मंगाय गड़ाय करि, बड़ो काज यह आज ॥

(१८) कउवा रूपी मन देह अध्यास में बैठि कर संसार सागर में उड़ता है । जब कुछ सार नहीं पाता तब पीछे अपने आत्म स्वरूप में स्थित होता है, यथा—

यहु मन कागद की गुडी, उडि चढ़ी आकास ।
दादू भीगै प्रेमजल, तब आइ रहै हम पास ॥ १६ ॥

दादू षीला गारि का, निहचल थिर न रहाइ ।
दादू पग नहीं साच के, भरमैं दह दिसि जाइ ॥ २० ॥

तब सुष आनंद आतमा, जे मन थिर मेरा होइ ।
दादू निहचल राम सौं, जे करि जाणैं कोइ ॥ २१ ॥

मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनंद ।
दादू दरसन पाइये, पूरण परमानंद ॥ २२ ॥

॥ विषया बिरक्त ॥

दादू यौं फूटे थैं सारा भया, संधे संधि मिलाइ ।
बाहुड़ि बिषै न भूंचिये, तौ कबहूं फूटि न जाइ ॥ २३ ॥

दादू यहु मन भूला सो गली, नरक जाण के घाट ।
अब मन अबिगत नाथ सौं, गुरू दिषाई बाट ॥ २४ ॥

दादू मन सुध स्यावत आपणां, निहचल होवै हाथि ।
तौ इहां ही आनंद है, सदा निरंजन साथि ॥ २५ ॥

मन कउवा निश्चल भया, सतसंगति बोहिथ पाइ ।
जगन्नाथ जग सार नहिं, नांउ बिड़द परि आइ ॥

(२०) "षीला गारिका"=मट्टी का कीला स्थायी (दृढ़) नहीं होता । जो सच्चे परमात्मा के चरणों की शरण नहीं लेता सो भ्रमता ही रहता है ॥

(२१) करि जाणै = करना जानै ॥

(२४) परमेश्वर के मार्ग में लग कर यह मन नर्क घाट के जाने की गली भूल गया ॥

जब मन लागै राम सौं, तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणी लूंण ज्यूं, ऐसैं रहै समाइ ॥ २६ ॥
ज्यूं जल पैसै दूध मैं, ज्यूं पाणी मैं लूंण । २–७६ ॥
ऐसैं आतम राम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥ २७ ॥ घ,ङ
मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केस । १–७७ ॥
दादू विषै विकार सब, सतगुर के उपदेस ॥२८॥ग्व ग घ ङ
करुणा ॥
सो कुछ हमथैं ना भया, जापरि रीझै राम ।
दादू इस संसार मैं हम आये बेकाम ॥ २९ ॥
क्या मुंह ले हांसि बोलिये, दादू दीजै रोइ ।
जनम अमोलिक आपणा, चले अक्यारथ षोइ ॥ ३० ॥
जा कारणि जगि जीजिबे, सो पद हिरदै नाहिं ।
दादू हरि की भगति बिन, धिग जीवन कलि मांहि ॥३१॥
कीया मन का भांवता, मेटी आग्याकार ।
क्या ले मुष दिषलाइये, दादू उस भरतार ॥ ३२ ॥
इंद्री स्वारथ सब किया, मन मांगे सो दीन्ह ।
जा कारणि जगि सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह॥३३॥
कीया था इस काम कौं, सेवा कारणि साज ।
दादू भूला बंदगी, सरया न एकौ काज ॥ ३४ ॥
दादू बिषै बिकार सौं, जब लग मन राता । २–६६
तब लग चीति न आवई, त्रिभवन पति दाता ॥३५॥घङ

(३१) जीजिये = जीविये ॥

यहु मन कागद की गुडी, उडि चढ़ी आकास ।
दादू भीगै प्रेमजल, तब आइ रहै हम पास ॥ १९ ॥

दादू षीला गारि का, निहचल थिर न रहाइ ।
दादू पग नहीं साच के, भरमैं दह दिसि जाइ ॥ २० ॥

तब सुष आनंद आतमा, जे मन थिर मेरा होइ ।
दादू निहचल राम सौं, जे करि जाणैं कोइ ॥ २१ ॥

मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनंद ।
दादू दरसन पाइये, पूरण परमानंद ॥ २२ ॥

॥ विषया विरक्त ॥

दादू यौं फूटे थैं सारा भया, संधे संधि मिलाइ ।
बाहुड़ि बिधै न भूंचिये, तौ कबहूं फूटि न जाइ ॥ २३ ॥

दादू यहु मन भूला सो गली, नरक जाण के घाट ।
अब मन अबिगत नाथ सौं, गुरू दिषाई बाट ॥ २४ ॥

दादू मन सुध स्यावत आपणां, निहचल होवै हाथि ।
तौ इहां ही आनंद है, सदा निरंजन साथि ॥ २५ ॥

मन कउवा निश्चल भया, सतसंगति बोहिथ पाइ ।
जगन्नाथ जग सार नहिं, नांउ बिड़द परि आइ ॥

(२०) "षीला गारिका"=मट्टी का कीला स्थायी (दृढ़) नहीं होता । जो सच्चे परमात्मा के चरणों की शरण नहीं लेता सो भ्रमता ही रहता है ॥

(२१) करि जाणै = करना जानै ॥

(२४) परमेश्वर के मार्ग में लग कर यह मन नर्क घाट के जाने की गली भूल गया ॥

जब मन लागै राम सौं, तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणी लूंण ज्यूं, ऐसैं रहै समाइ ॥ २६ ॥
ज्यूं जल पैसै दूध में, ज्यूं पाणी में लूंण । २–७६ ॥
ऐसैं आतम राम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥ २७ ॥ घ,ङ
मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केस । १–७७ ॥
दादू विषै विकार सब, सतगुर के उपदेस ॥२८॥ग्व ग घ ङ
करुणा ॥
सो कुछ हमथैं ना भया, जापरि रीझै राम ।
दादू इस संसार मैं हम आये बेकाम ॥ २९ ॥
क्या मुंह ले हांसि बोलिये, दादू दीजै रोइ ।
जनम अमोलिक आपणा, चले अक्यारथ षोइ ॥ ३० ॥
जा कारणि जगि जीजिबे, सो पद हिरदै नाहिं ।
दादू हरि की भगति बिन, धिग जीवन कलि मांहि ॥३१॥
कीया मन का भांवता, मेटी आग्याकार ।
क्या ले मुष दिषलाइये, दादू उस भरतार ॥ ३२ ॥
इंद्री स्वारथ सब किया, मन मांगै सो दीन्ह ।
जा कारणि जगि सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह ॥३३॥
कीया था इस काम कौं, सेवा कारणि साज ।
दादू भूला बंदगी, सरया न एकौ काज ॥ ३४ ॥
दादू बिषै बिकार सौं, जब लग मन राता । २–६६
तब लग चीति न आवई, त्रिभवन पति दाता ॥३५॥घङ

(३१) जीजिये = जीविये ॥

दादू का जाणूं कब होइगा, हरि सुमिरण इकतार । २—६७।
का जाणूं कब छाडि है, यहु मन बिषै बिकार ॥३६॥कघङ

॥ मन प्रमोध ॥

बादिहि जनम गंवाइया, कीया बहुत बिकार ।
यहु मन अस्थिर ना भया, जहं दादू निजसार ॥ ३७ ॥

॥ विषिया अतृपति ॥

दादू जिनि विष पीवै बावरे, दिन दिन बाढ़ै रोग ।
देषत ही मरि जाइगा, तज विषिया रस भोग ॥३८॥कघ

आपा पर सब दूरि करि, राम नाम रस लाग । ६—१० ॥
दादू औसर जात है, जागि सकै तो जाग ॥३९॥कगघङ

॥ मनहरि भावरि ॥

दादू सब कुछ बिलसतां, षातां पीतां होइ ।
दादू मन का भावता, कहि समझावै कोइ ॥ ४० ॥

दादू मन का भावता, मेरी कहै बलाइ ।
साच राम का भावता, दादू कहै सुणि आइ ॥ ४१ ॥

ये सब मन का भावता, जे कुछ कीजै आन ।
मन गहि राषै एक सौं, दादू साध सुजान ॥ ४२ ॥

जे कुछ भावै राम कौं, सो तत कहि समझाइ ।
दादू मन का भावता, सब की कहै बनाइ ॥ ४३ ॥

॥ चानक उपदेश ॥

पैंडे पग चालै नहीं, होइ रह्या गालियार ।
राम राथि निबहै नहीं, पैबे कौं हुसियार ॥ ४४ ॥

॥ पर परमोध ॥

दादू का परमोधे आन कौं, आपण बहिया जात ।
औरौं कौं अमृत कहै, आपण ही विष षात ॥ ४५ ॥
दादू पंचौं ये परमोधि ले, इनहीं कौं उपदेस । १–१४६ ॥
यहु मन अपणा हाथि करि, तौ चेला सब देस ॥४६॥घड
दादू पंचौं का मुष मूल है, मुष का मनवां होइ ।
यहु मन राषै जतन करि, साध कहावै सोइ ॥ ४७ ॥
दादू जब लग मन के दोइ गुण, तब लग निपनां नांहि ।
द्वै गुण मन के मिटि गये, तब निपनां मिलि मांहि ॥४८॥
काचा पाका जब लगैं, तब लग अंतर होइ ।
काचा पाका दूरि करि, दादू एकै सोइ ॥ ॥ ४६ ॥

॥ मधि निपर्ष ॥

सहज रूप मन का भया, तब द्वै द्वै मिटी तरंग । १६—३॥
ताता सीला समि भया, तब दादू एकै अंग ॥ ५० ॥

॥ मन ॥

दादू बहु रूपी मन तब लगैं, जब लग माया रंग ।
जब मन लागा राम सौं, तब दादू एकै अंग ॥ ५१ ॥
हीरा मन परि राषिये, तब दूजा चढै न रंग ।
दादू यौं मन थिर भया, अविनासी के संग ॥ ५२ ॥

---

(४८) मन के दोइ गुण=शीतोष्णादि द्वंद, देखौ आगे साखी ५० वीं॥

(५१) हीरा रूपी निर्मल परमात्मा का ध्यान मन में रक्खैं, तो दूजा रंग (संसार का माया मोह) मन पर न चढ़ै । इस प्रकार अविनाशी के संग लगा हुआ मन आप स्थिर हो जाता है ॥

सुष दुष सब झांई पड़ै, तब लग काचा मन ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, तब मन भया रतन ॥ ५३ ॥
पाका मन डोलै नहीं, निहचल रहै समाइ ।
काचा मन दह दिसि फिरै, चंचल चहुं दिसि जाइ ॥५४॥

॥ विरक्तता ॥

सीप सुधा रस ले रहै, पिवै न षारा नीर ।
मांहै मोती नीपजै, दादू बंद सरीर ॥ ५५ ॥

॥ मन ॥

दादू मन पंगुल भया, सब गुण गये बिलाइ ।
है काया नौ जौबनी, मन बूढ़ा ह्वै जाइ ॥ ५६ ॥
दादू कछिब अपणै करि लिये, मन इंद्री निज ठौर। १–८६ ॥
नांइ निरंजन लागि रहु, प्राणी परहरि और ॥५७॥ क ग घ ङ

॥ जाचक ॥

मन इंद्री आंधा किया, घट मैं लहरि उठाइ ।
सांई सतगुर छाड़ि करि, देषि दिवानां जाइ ॥ ५८ ॥
दादू कहै–राम बिना मन रंक है, जाचै तीन्यूं लोक ।
जब मन लागा राम सौं, तब भागे दालिद्र दोष ॥५९॥
इंद्री का आधीन मन, जीव जंत सब जाचै ।
तिणें तिणें के आगैं दादू, तिहूं लोक फिरि नांचै ॥ ६० ॥

---

(५८) मन और इंद्रियों ने घट (हृदय) में लहरि (इच्छा) उठा कर अंधा किया है, जिस से परमेश्वर को भूल कर, देखौ, दीवानां (मूर्ख) फिरता है ॥

(६०) जाचै = सब से याचना करै । तिणें तिणें = क्षुद्र पदार्थ वा नीच जन ॥

इंद्री अपणै बासि करै, सो काहे जाचण जाइ ।
दादू अस्थिर आतमा, आसणि बैसै आइ ॥ ६१ ॥

मन मनसा दोन्यौं मिले, तब जीव कीया भांड़ ।
पंचौं का फेरया फिरै , माया नचावै रांड़ ॥ ६२ ॥

नकटी आगैं नकटा नाचै, नकटी ताल बजावै ।
नकटी आगैं नकटा गावै, नकटी नकटा भावै ॥ ६३ ॥

॥ आनलगानि बिभचार ॥

पांचौं इंद्री भूत हैं, मनवां षेतरपाल ।
मनसा देवी पूजिये, दादू तीन्यौं काल ॥ ६४ ॥

जीवत लूटैं जगत सब, मृत्तक लूटैं देव ।
दादू कहां पुकारिये, करि करि मूये सेव ॥ ६५ ॥

---

(६२) मन संकल्प विकल्परूप भाव, तिसकी ऊट पटांग मनसा (इच्छा) ज्यूं २ प्राप्त होती जाती हैं त्यूं २ जीव अनर्थ इच्छाओं को बढ़ाता हुआ भांड़ रूप (हीन दशा) को पहुंचता है। इस तरह से जीव को माया रांड पांचौं इंद्रियौं द्वारा भ्रमाती है ॥

(६३) नकटी=मनसा, नकटा=मन ॥

(६४) तीनौं काल (प्रभा मध्यान सायं) जगत जन इंद्रियौं को भूत प्रेतादि की तरह, मन को भैरवादि क्षेत्रपालों की तरह, और मनसा को देवी की तरह पूजते हैं ॥

(६५) यह तीनौं (इंद्रिय मन और मनसा) जीते जी (इस लोक में) सब जगत को और मरे पीछे (परलोक में) देवतौं को लूटते (ठगते) हैं। दादूजी कहते हैं कि किस को पुकार कर कहें, सब ही जन उन तीनौं की सेवा कर कर के मरते जाते हैं ॥

॥ मन ॥

अगनि धोम ज्यौं नीकलै, देषत सबै बिलाइ ।
त्यौं मन बिछुट्या रामसौं, दह दिसि बीषरि जाइ ॥६६॥
घर छाडे जब का गया, मन बहुरि न आया ।
दादू अगनि के धोम ज्यौं, षुर षोज न पाया ॥ ६७ ॥
सब काहू के होत है, तन मन पसरै जाइ ।
ऐसा कोई एक है, उलटा मांहि समाइ ॥ ६८ ॥
क्यौं करि उलटा आणिये, पसरि गया मन फेरि ।
दादू डोरी सहज की, यौं आणै घरि घेरि ॥ ६९ ॥
दादू साध सबद सौं मिलि रहै, मन राषै बिलमाइ ।
साध सबद बिन क्यौं रहै, तबहीं बीषरि जाइ ॥ ७० ॥
चंचल चहुं दिसि जात है, गुरुवाइक सौं बन्ध । १-८४
दादू संगति साधकी, षार ब्रह्म सौं संध ॥ ७१ ॥ ग घ ङ
एक निरंजन नांव सौं, कै साधू संगति मांहि ।
दादू मन बिलमाइये, दूजा कोई नांहि ॥ ७२ ॥
तन मैं मन आवै नहीं, निस दिन बाहरि जाइ ।
दादू मेरा जिव दुषी, रहै नहीं ल्यौ लाइ ॥ ७३ ॥
तन मैं मन आवै नहीं, चंचल चहुं दिसि जाइ ।

---

(७२) कै=अथवा, केतौ ॥

(६७) जब से मन घर छांड़ के गया तब से बहुरि न आया ॥

(६८) पसरै जाइ=पसरता जाय ॥

(६९) डोरी सहज की=पूर्वोक्त सहज उपाय (आत्म अभ्यास) रूपी डोरी ॥

दादू मेरा जिव दुषी, रहै न राम समाइ ॥ ७४ ॥
कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दह दिसि जाइ ।
राम नाम रोक्या रहै, नांही आन उपाइ ॥ ७५ ॥
यहु मन बहु बकवाद सौं, बाइ भूत व्है जाइ ।
दादू बहुत न बोलिये, सहजैं रहै समाइ ॥ ७६ ॥

सुमिरण नाम चितावनी ॥

भूला भौंदू फेरि मन, मूरिष मुग्ध गंवार ।
सुमिरि सनेही आपणा, आतम का आधार ॥ ७७ ॥
मन माणिक मूरिष राषिरे, जण जण हाथि न देहु ।
दादू पारिष जौहरी, राम साध दोइ लेहु ॥ ७८ ॥
दादू मार्‌या बिन मानैं नहीं, यहु मन हरि की आन । १–८६ ।
ज्ञान षड्ग गुरदेव का, तासंगि सदा सुजान ॥ ७९ ॥ ग घ ङ

मन ॥

मन मृगा मारै सदा , ताका मठिा मांस ।
दादू षाइबे कौं हिल्या, तार्थैं आन उदास ॥ ८० ॥

॥ मन प्रमोध ॥

कह्या हमारा मानि मन, पापी परहरि काम ।
विषिया का संग छाडि दे, दादू कहि रे राम ॥ ८१ ॥

---

(७८) हे मूर्ख ! माणक रूपी मन को बसकर, जन २ (विषयों) के हाथ में मत दे । दो पारख=एक माणक का जौहरी, (२) राम का पारख साधु जन ॥

(८०) मन रूपी मृगे को सदा मारै (जीतै, रोकै), तिस के रोकने में आनन्द होता है । जब इस मिठाई के खाने में पुरुष हिलजाय, तब अन्य भोगौं से वह उदास हो जाता है ॥

केता कहि समुझाइये, मानै नहीं निलज ।
मूरिष मन समझै नहीं, कीये काज अकज ॥ ८२ ॥

॥ साच ॥

मनहीं मंजन कीजिये, दादू दरपण देह ।
मांहै मूरति देखिये, इहिं औसरि करि लेह ॥ ८३ ॥

॥ आनलगनि विचार ॥

तबहीं कारा होत है, हरि बिन चितवत आन ।
क्या कहिये समझै नहीं, दादू सिषवत ज्ञान ॥ ८४ ॥

॥ साच ॥

दादू पाणी धोवैं बावरे, मन का मैल न जाइ ।
मन निर्मल तब होइगा, जब हरि के गुण गाइ ॥८५॥
दादू ध्यान धरें का होत हैं, जे मन नहिं निर्मल होइ ।
तौ बग सबहीं ऊधरैं, जे इहि बिधि सीझै कोइ ॥८६॥
दादू ध्यान धरें का होत है, जे मन का मैल न जाइ ।
बग मीनी का ध्यान धरि, पसू बिचारे षाइ ॥ ८७ ॥
दादू काले थैं धौला भया, दिल दरिया मैं धोइ ।
मालिक सेती मिलि रह्या, सहजैं निर्मल होइ ॥ ८८ ॥
दादू जिस का दर्पण ऊजला, सो दर्सण देषै मांहि ।
जिस की मैली आरसी, सो मुष देषै नांहि ॥ ८९ ॥

---

(८४) कारा = मलीन ॥
(८८) धौला = शुद्ध । दरिया = ध्यानादि साधन ॥
(८९) दर्पण = मन, अंतःकरण ॥

दादू निर्मल सुध मन, हरि रंगि राता होइ ।
दादू कंचन करि लिया, काच कहे नहिं कोइ ॥ ९० ॥
यहु मन अपना थिर नहीं, करि नहिं जाणैं कोइ ।
दादू निर्मल देव की, सेवा क्यौं करि होइ ॥ ९१ ॥
दादू यहु मन तीन्यूं लोक मैं, अरस परस सब होइ ।
देही की रष्या करै, हम जिनि भीटै कोइ ॥ ९२ ॥
दादू देह जतन करि राषिये, मन राष्या नहिं जाइ ।
उत्तिम मधिम बासना, भला बुरा सब षाइ ॥ ९३ ॥
दादू हाडौं मुष भर्‌या, चाम रह्या लपटाइ ।
मांहै जिभ्या मांस की, ताही सेती षाइ ॥ ९४ ॥
नऊ दुवारे नरक के, निसदिन बहै बलाइ ।
सुचि कहां लौं कीजिये, राम सुमिरि गुण गाइ ॥ ९५ ॥
प्राणी तन मन मिलि रह्या, इंद्री सकल बिकार ।
दादू ब्रह्मा सुद्र घरि, कहां रहै आचार ॥ ९६ ॥

(८०–९०) इन साखियों का सार यह है (१) सर्व कामनाओं और विषयों के संग का त्याग, (२) ईश्वर का चिंतन और ध्यान, अन्य पदार्थों के चिंतन वा संसर्ग से अन्तःकरण में कालख (मलीनता) उत्पन्न होती है, (३) वैराग्य और ईश्वरोपासना के परिपक्व होने से अन्तःकरण शुद्ध होता है तब परमात्मा की प्राप्ति संभव है । इस प्रकार से शुद्ध किया हुआ मन कंचनरूप होता है ॥

(९२) लोग देह का एक दूसरे से स्पर्श करने से संकोच करते हैं पर मन जगत में सर्वत्र स्पर्श करता है, उस का विचार कोई नहीं करता ॥

(९१–९६) इन साखियों में मन के शुद्ध करने पर ज़ोर दिया है ॥

दादू जीवै पलक मैं, मरतां कल्प बिहाइ ।
दादू यहु मन मसकरा, जिनि कोई पतियाइ ॥ ९७ ॥
दादू मूवा मन हम जीवत देष्या, जैसे मड़हट भूत ।
मूवां पीछैं उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत ॥ ९८ ॥
निहचल करतां जुग गये, चंचल तबहीं होइ ।
दादू पसरै पलक मैं यहु मन मारै मोंहि ॥ ९९ ॥
दादू यहु मन मींडका, जल सौं जीवै सोइ ।
दादू यहु मन रिंद है, जिनि रु पतीजै कोइ ॥ १०० ॥
मांहै सूषिम ह्वै रहै, बाहरि पसारै अंग ।
पवन लागि पौढ़ा भया, काला नाग भुवंग ॥ १०१ ॥

आसै विश्राम ॥

सुपिनां तब लग देषिये, जब लग चंचल होइ ।
जब निहचल लागा नांवसौं, तब सुपिना नांहीं कोइ ॥१०२॥

बहुधा जन शरीर की शुद्धि अशुद्धि का विशेष विचार करते हैं पर मन उन के सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं और विषयों के संग से मलीन होते हैं । दादू जी का कथन है कि जिज्ञासू को मन की शुद्धि के निमित्त विशेष उपाय कर ना चाहिये ॥

(९७–१०१) मन का शांत होकर पुनः चलायमान होना यहां बतलाया है । मेंढक सूखी ऋतुओं में अत्यंत शांत होते हैं पर वर्षाऋतु के आगमन से तुरंत बोलने लगते हैं । इसी प्रकार से मन शांत होकर बारंबार चलायमान होता है । इस हेतु से दादूजी कहते हैं कि मन को जीत कर साधन न छोड़ बैठे, किंतु साधन करता रहे, क्योंकि मन का कुछ भरोसा नहीं, क्या जानें फिर कब चेत उठे ॥ जैसे मेंढक नवीन जल पाकर जी उठते हैं तैसे ही मन विषयों के संयोग से पुनः चेत उठता है, अतः विषयों से मन को सदैव उपराम रखना उचित है ॥

जागत जहं जहं मन रहै, सोवत तहं तहं जाइ ।
दादू जे जे मनि बसै, सोइ सोइ देषै आइ ॥ १०३ ॥
दादू जे जे चिति बसै, सोइ सोइ आवै चीति ।
बाहरि भीतरि देषिये, जाही सेती प्रीति ॥ १०४ ॥
सावणि हरिया देषिये, मन चित ध्यान लगाइ ।
दादू केते जुग गये, तौभी हरद्या न जाइ ॥ १०५ ॥
जिस की सुरति जहां रहै, तिस का तहं विश्राम ।
भावै माया मोह मैं, भावै आतम राम ॥ १०६ ॥
जहं मन राषै जीवतां, मरतां तिस घरि जाइ ।
दादू बासा प्राण का, जहं पहली रह्या समाइ ॥ १०७॥
जहां सुरति तहं जीव है, जहं नांही तहं नांहि ।
गुण निर्गुण जहं राषिये, दादू घर बन मांहि ॥१०८॥
जहां सुरति तहं जीव है, आदि अंत अस्थान ।
माया ब्रह्म जहं राषिये, दादू तहं बिश्राम ॥ १०९ ॥
जहां सुरति तहं जीव है, जिवन मरण जिस ठौर ।
विष अमृत जहं राषिये, दादू नांही और ॥ ११० ॥
जहां सुरति तहं जीव है, जहं जाणै तहं जाइ ।
गम अगम जहं राषियै, दादू तहां समाइ ॥१११॥
मन मनसा का भाव है, अन्ति फलैगा सोई ।
जब दादू बाणक बण्या, तब आसै आसण होइ ॥११२॥
जप तप करणी करि गये, सरग पहूंते जाइ ।
दादू मन की बासना, नरकि पड़े फिरि आइ ॥ ११३ ॥

पाका काचा ह्वै गया, जीत्या हारै डाव ।
अंति काल गाफिल भया, दादू फिसले पांव ॥ ११४ ॥
दादू यहु मन पंगुल पंचदिन, सब काहू का होइ ।
दादू उतरि अकास थैं, धरती आया सोइ ॥ ११५ ॥
ऐसा कोई एक मन, मरै सो जीवै नांहि ।
दादू ऐसे बहुत हैं, फिरि आवैं कलि मांहि ॥ ११६ ॥
देषा देषी सब चले, पारि न पहुंच्या जाइ । (१३—७५)
दादू आसाणि पहल के, फिरि फिरि बैठे आइ ॥ ११७ ॥

॥ जग जन बिपरीत ॥

बरताणि एकै भांति सब, दादू संत असंत ।
भिन्न भाव अन्तर घणा, मनसा तहं गच्छन्त ॥ ११८ ॥
यहु मन मारै मोमिनां, यहु मन मारै मीर ।
यहु मन मारै साधिकां, यहु मन मारै पीर ॥ ११९ ॥
दादू मन मारे मुनियर मुये, सुर नर किये संघार ।
ब्रह्मा बिश्न महेस सब, राषे सिरजनहार ॥ १२० ॥
मन बाहे मुनियर बड़े, ब्रह्मा बिश्न महेस ।
सिध साधिक जोगी जती, दादू देस बिदेस ॥ १२१ ॥

---

(११८) वरताणि = वरताव ॥
(११९) मन बड़े २ जनों को मारता है ॥
(१२०) मन ने सब को हराया ॥
(१२१) "बाहे" = बहाये, डिगाये, अर्थात् उच्च दशा से नीच दशा में डाले ॥

॥ मनमुषी मान ॥

पूजा मान बड़ाइयां, आदर मांगै मन ।
राम गहै, सब परहरै; सोई साधू जन ॥ १२२ ॥
जहं जहं आदर पाइये, तहां तहां जिव जाइ ।
बिन आदर दीजै राम रस, छाडि हलाहल षाइ ॥१२३॥

॥ करणी बिना कथणी ॥

करणी किरका को नहीं, कथणी अनंत अपार ।
दादू यूं क्यूं पाइये, रे मन मूढ़ गंवार ॥ १२४ ॥

॥ जाया माया मोहनी ॥

दादू मन मृत्तक भया, इंद्री अपणै हाथ । १२ (—११७)
तौ भी कदे न कीजिये, कनक कामनी साथ ॥ १२५ ॥

॥ मन ॥

अब मन निरभै, घरि नहीं, भै में बैठा आइ ।
निरभै संग थैं बीछुट्या, तब काइर ह्वै जाइ ॥ १२६ ॥
जब मन मृत्तक व्है रहै, इंद्री बल भागा । (८—४१)
काया के सब गुण तजै, निरंजन लागा ॥१२७॥ क घ ङ
आदि अंत मधि एक रस, टूटै नहिं धागा । (८—४२)
दादू एकै रह गया, तब जाणी जागा ॥ १२८ ॥ क घ ङ
दादू मन के सीस मुष, हस्त पांव है जीव ।
श्रवण नेत्र रसना रटै, दादू पाया पीव ॥ १२९ ॥

---

(१२४) किरका को नहीं = लेश भी नहीं ।

(१२६) अब (मृतक अवस्था में) मन निर्भय है, जब इस घर (अवस्था) में न रहे, तब भय को प्राप्त होता है । निर्भय परमात्मा के संग से बिछुड़ा हो तब कायर हो जाता है ॥

जहं के नवाये सब नवैं, सोई सिर करि जाणि ।
जहं के बुलाये बोलिये, सोई मुष परवाणि ॥ १३० ॥
जहं के सुणाये सब सुणैं, सोई श्रवण सयाण ।
जहं के दिषाये देषिये, सोई नैन सुजाण ॥ १३१ ॥
दादू मन ही सौं मल ऊपजै, मन ही सौं मल धोइ ।(१–८८)
सीष चलै गुर साध की, तौ तूं निर्मल होइ ॥१३२॥ गघङ
दादू मन ही माया ऊपजै, मन ही माया जाइ ।
मन ही राता राम सौं, मन ही रह्या समाइ ॥ १३३ ॥
दादू मन ही मरणा ऊपजै, मन ही मरणा षाइ ।
मन अविनासी ह्वै रह्या, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥१३४॥
मन हीं सन्मुष नूर है, मन हीं सन्मुष तेज ।
मन ही सन्मुष जोति है, मन हीं सन्मुष सेज ॥१३५॥ घ
मन हीं सौं मन थिर भया, मन हीं सौं मन लाइ ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ॥१३६॥
इति मन कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १० ॥

---

(१३४) जन्म मरणादि सब मन की कल्पना है । यह तात्पर्य है ॥

(१०२–१३६) मन का आसै विश्राम । जैसी २ मन की मनसा होती है तैसा ही तैसा मन का विश्राम भी होता है । जो २ वस्तु मन चाहता है सोई सोई उस के चिंतन में रहती है । जिस २ की सुरत चिंतन वह करता है तहां ही तहां जीव जाता है । जो विषयों में लगता है वह संसार में डूबा रहता है । जो परमात्मा से नेह लगाता है सो परमात्मा को प्राप्त होता है । और मन के संस्कार बहुत काल तक रहते हैं, कालांतर में भी जाकर वासनायें फलीभूत होती हैं । वासनाओं के वश से पुरुष स्वर्ग से पुनः इस लोक

अथ सुषिम जन्म कौ अङ्ग ॥ ११ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू चौरासी लष जीव की, परकीरति घट मांहिं ।
अनेक जन्म दिन के करै, कोई जाणै नांहि ॥ २ ॥

को आता है । पर जिस ने दृढ़ साधन कर के विषय वासनाओं को दग्ध कर लिया है और सर्व प्रकार से परमात्मा में आश्रय लिया है वही इस संसार सागर से पार हो सकता है, जिज्ञासू को अपने कल्याण के निमित्त सर्व प्रकार की विषय वासनाओं को त्यागने में लगे रहना चाहिये, शनैः २ अभ्यास द्वारा ही सफलता संभव है ॥

मन बड़ा बलवान है, इस ने बड़े २ मुनियों को भी डिगा दिया है । दादूजी का उपदेश है कि मन और इंद्रियों को जीत भी लिया हो तौ भी "कनक कामिनी" का साथ न करै ॥ जब मन और इंद्रियां पूर्ण रूप से वश में आजांय और सर्व ओर से दृष्टि ब्रम्ह में एक रस लग जाय तभी जीव आत्म ज्ञान को प्राप्त होता है ॥

मन ही से जीव हीन दशा को प्राप्त होता है, मन ही से निर्मलता पाता है, मन ही अविनाशी ब्रम्ह दशा को पहुंचाता है, सो मन को निर्मल करना ही मुख्य साधन है ॥

(२) कबीर प्राण पिंड कौं ताजि चलै, मुआ कहे सब कोइ ।
जीव छतां जा मै मरै, सूत्तम लषै न कोइ ॥

दादू जेते गुण व्यापैं जीव कौं, ते ते ही अवतार ।
आवागवन यहु दूरि करि, सम्रथ सिरजनहार ॥ ३ ॥
सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापैं आइ ।
घट मांहैं जामैं मरै, कोई न जाणैं ताहि ॥ ४ ॥
जीव जन्म जाणैं नहीं, पलक पलक मैं होइ ।
चौरासी लष भोगवै, दादू लषै न कोइ ॥ ५ ॥
अनेक रूप दिन के करै, यहु मन आवै जाइ ।
आवागवन मन का मिटै, तब दादू रहै समाइ ॥ ६ ॥
निसबासुरि यहु मन चलै, सूषिम जीव संघार ।
दादू मन थिर कीजिये, आतम लेहु उबारि ॥ ७ ॥
कबहूं पावक, कबहूं पाणी, धर अंबर गुण बाइ ।
कबहूं कुंजर कबहूं कीड़ी, नर पसुवा ह्वै जाइ ॥ ८ ॥

॥ करणी विना कथणी ॥

सूकर स्वान सियाल सिंघ, सर्प रहैं घट मांहि । (१३–९३)
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जाणैं नांहि ॥ ९ ॥
इति सूषिम जन्म कौ अङ्ग संपूर्ण समाप्त ॥ ११ ॥

---

(३) एक अर्थ यह है कि हे सिरजनहार ! यह आवागमन तूं दूरि कर ॥
दूसरा अर्थ—हे जिज्ञासू ! यह आवागमन तूं दूरि करै तौ तू ही सिरजनहार होवै ॥

(५) भागवै = भोगै ॥

(७) रात दिन जो मनोर्थौं द्वारा जीव चलता हे सोई उसका संहार होकर चौरासी कराता है ॥

दृष्टांत—यह साखी चरचा समय, ढूंढ्या कै प्रति भाखि ।
गुर दादू के वचन सुनि, मस्तक चरणों राखि ॥

अथ माया कौ अङ्ग ॥ १२ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवै जाइ ।
दादू सुपिना देषिये, जागत गया विलाइ ॥ २ ॥
दादू माया का सुष पंचदिन, गर्व्यौ कहा गंवार ।
सुपिनै पायौ राजधन, जात न लागै बार ॥ ३ ॥
दादू सुपिनें सूता प्राणिया, कीये भोग बिलास ।
जागत झूठा ह्वै गया, ताकी कैसी आस ॥ ४ ॥
यौं माया का सुष मन करै, सेज्या सुंदरि पास ।
अंति काल आया गया, दादू होहु उदास ॥ ५ ॥
जे नांही सो देषिये, सूता सुपिनें मांहि ।
दादू झूठा ह्वै गया, जागै तौ कुछ नांहि ॥ ६ ॥
यहु सब माया मृग जल, झूठा झिलिमिलि होइ ।
दादू चिलका देषि करि, सति करि जाना सोइ ॥ ७ ॥

(२) साहिब सतस्वरूप है पर हम नहीं, अर्थात् हम शरीर रूप अथवा हमारा आपा (खुदी) सत नहीं, सब जगत जन्मता मरता है जैसे स्वप्ना स्वप्नकाल में प्रतीत होता है पर जागते ही बिलाय जाता है तैसे जगत भी बोध काल में बिलाय जाता है ॥

(७) मृग जल=मरु जल। बालू दूर से जलवत् प्रतीत होती है उस को

झूठा झिलिमिलि मृग जल, पाणी करि लीया ।
दादू जग प्यासा मरै, पसु प्राणी पीया ॥ ८ ॥

॥ पति पहचान ॥

छलावा छलि जाइगा, सुपिना बाजी सोइ ।
दादू देषि न भूलिये, यहु निज रूप न होइ ॥ ९ ॥

॥ माया ॥

सुपिनैं सब कुछ देषिये, जागै तौ कुछ नांहिं ।
ऐसा यहु संसार है, समझि देषि मन मांहिं ॥ १० ॥
दादू ज्यौं कुछ सुपिनैं देषिये, तैसा यहु संसार ।
ऐसा आपा जाणिये, फूल्यौ कहा गंवार ॥ ११ ॥
दादू जतन जतन करि राषिये, दिढ गहि आतम मूल ।
दूजा दृष्टि न देषिये, सब ही सैंबल फूल ॥ १२ ॥
दादू नैनहुं भरि नहिं देषिये, सब माया का रूप ।
तहं ले नैना राषिये, जहं है तत्त अनूप ॥ १३ ॥
हस्ती, हय, बर, धन देषि करि, फूल्यौ अंग न माइ ।

देख कर प्यासे मृग उस की ओर दौड़ते हैं, जब प्रथम देखे स्थान पर पहुंचते हैं तब वहां वालू ही पाते, पर कुछ दूर आगे का वालू फिर जलवत प्रतीत होता है । इसी तरह से वार २ मृग मरुजल के पीछे धावता है पर प्यास नहीं बुझा पाता ॥ इस प्रकार का मरुजलवत संसार है ॥

(८) पशुरूपी प्राणी मरुजलरूपी विषय भोग पीते हैं, तौ भी प्यासे ही रहते हैं ॥

(१२) सैंवल के फल में केवल कपास होती है कोई खाने के योग्य वस्तु नहीं होती ॥

भेरि दमामा एक दिन, सबही छाडे जाइ ॥ १४ ॥

दादू माया बिहड़ै देषतां, काया संगि न जाइ ।
कृतम बिहड़ै बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥ १५ ॥

दादू माया का बल देषि करि, आया अति अहंकार ।
अंध भया सूझै नहीं, का करि है सिरजनहार ॥ १६ ॥

॥ विरक्तता ॥

मन मनसा माया रती, पंच तत्त परकास ।
चौदह तीन्यूं लोक सब, दादू होइ उदास ॥ १७ ॥

माया देषे मन षुसी, हिरदै होइ बिगास ।
दादू यह गति जीव की, अंति न पूगै आस ॥ १८ ॥

मन की मूठि न मांडिये, माया के नीसाण ।
पीछैं ही पछिताहु गे, दादू षोटे बाण ॥ १९ ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

कुछ षातां कुछ षेलतां, कुछ सोवत दिन जाइ ।
कुछ विषिया रस बिलसतां, दादू गये बिलाइ ॥ २० ॥

॥ संगति कुसंगति ॥

मांषण मन पाहण भया, माया रस पीया ।
पाहण मन मांषण भया, राम रस लीया ॥ २१ ॥

---

(१४) फूल्यौ अंग न माइ=फूल कर अंग में नहीं समाता । भेरि दमामा = शहनाई बाजा ॥

(१७) चौदह भुवन और तीनौं लोक सब पांच भूतों के कार्य हैं, माया में रती मन की मनसा को इन से उदास करौ ॥

(१९) माया के निशान पर मनरूपी बाण को कमान पर (मूठि न मांडिये) संधान न करिये, अर्थात् मन को माया में न लगाइये ॥

दादू माया सौं मन बीगड़्या, ज्यौं कांजी करि दूध ।
है कोई संसार मैं, मन करि देवै सूध ॥ २२ ॥
गंदी सौं गंदा भया, यौं गंदा सब कोइ ।
दादू लागै षूब सौं, तो षूब सरीषा होइ ॥ २३ ॥
दादू माया सौं मन रत भया, विषै रसि माता ।
दादू साचा छाडि करि, झूठे रंगि राता ॥ २४ ॥
माया के संगि जे गये, ते बहुरि न आये ।
दादू माया डाकणी, इन केते षाये ॥ २५ ॥
दादू माया मोट बिकार की, कोइ न सकई डारि ।
बहि बहि मूये बापुरे, गये बहुत पचिहारि ॥ २६ ॥
दादू रूप राग गुण अणसरे, जहं माया तहं जाइ ।
विद्या अषिर पंडिता, तहां रहे घर छाइ ॥ २७ ॥
साध न कोई पग भरै, कबहूं राज दुवारि ।
दादू उलटा आप मैं, बैठा ब्रह्म बिचारि ॥ २८ ॥

॥ आसै विश्राम ॥

दादू अपणे अपणे घरि गये, आपा अंग बिचारि ।
सहकामी माया मिले, निहकामी ब्रह्म संभारि ॥ २९ ॥

माया ॥

दादू माया मगन जु ह्वै रहे, हम से जीव अपार ।
माया मांहैं ले रही, डूबे काली धार ॥ ३० ॥

---

(२६) सकई = सकै ॥
(२७) विद्वान् पंडित जन भी माया के रूपादि के अनुसार (पीछे) जाते हैं ॥
(३०) कालीधार = भयानक स्थल ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

दादू विषै के कारणैं रूपराते रहैं, नैंन नापाक यौं कीन्ह भाई।
बदीकी बात सुणत सारा दिन, श्रवण नापाक यौं कीन्ह जाई ॥३१॥
स्वाद के कारणैं लुब्धि लागी रहै, जिभ्या नापाक यौं कीन्ह षाई।
भोग के कारणैं भूष लागी रहै, अंग नापाक यौं कीन्ह लाई ॥ ३२ ॥

॥ माया ॥

दादू नगरी चैन तब, जब इक राजी होइ।
दोइ राजी दुष दुंद मैं, सुषी न बैसे कोइ ॥ ३३ ॥
इक राजी आनंद है, नगरी निहचल बास।
राजा परजा सुषि बसैं, दादू जोति प्रकास ॥ ३४ ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

जैसैं कुंजर काम बस, आप बंधाणा आइ।
ऐसैं दादू हम भये, क्यौं करि निकस्या जाइ ॥ ३५ ॥
जैसैं मर्कट जीभ रस, आप बंधाणा अंध।
ऐसैं दादू हम भये, क्यौं करि छूटै फंध ॥ ३६ ॥
ज्यौं सूवा सुष कारणैं, बंध्या मूरिष मांहिं।

---

(३३) इक राजी = एक का राज। दोइ राजी = दो का राज ॥

(३६) बंदर के पकड़ने की कहावत यह है। एक छोटे मुंह के बर्तन में चने डालकर बर्तन को इस प्रकार से जमीन में गाड़ देते हैं कि उस का मुंह खुला रहता है, बंदर उस बर्तन में चनों की खातिर सीधा हाथ डालता है और चनों की मुट्ठी बांध कर निकालना चाहता है, तब मुट्ठी बर्तन के मुख में अड़जाती है। बंदर न मुट्ठी खोल कर चनों को छोड़ता है, न उसका हाथ बाहर निकलता है, इतने में बंदर पकड़ लिया जाता है ॥

ऐसैं दादू हम भये, क्योंही निकसैं नाहिं ॥ ३७ ॥
जैसैं अंध अज्ञान गृह, बंध्या मूरिष स्वादि ।
ऐसैं दादू हम भये, जन्म गंवाया बादि ॥ ३८ ॥
दादू बूड़ि रह्या रे बापुरे, माया गृह के कूप ।
मोह्या कनक अरु कामिनी, नाना बिधि के रूप ॥३९॥

॥ सिसन स्वाद ॥

दादू स्वादि लागि संसार सब, देषत परलै जाइ ।
इंद्री स्वारथ, साच तजि, सबै बंधाणे आइ ॥ ४० ॥
बिष सुष मांहैं रमि रहे, माया हित चित लाइ ।
सोई संत जन ऊबरै, स्वाद छाडि गुण गाइ ॥ ४१ ॥

॥ आसक्तता मोह ॥

दादू झूठी काया झूठ घर, झूठा यहु परिवार ।
झूठी माया देषि करि, फूल्यौ कहा गंवार ॥ ४२ ॥

(३७ —३८) पोंगी वा फिरनी सूवा के बैठतेही नीचे फिर जाती है, सूवा ऊपर आने की कोशिश करता है तब पोंगी पुनः नीचे फिर जाती है। इस प्रकार जितनी बार सूवा ऊपर आता है उतनी ही बार पोंगी चक्कर खाती रहती है, चक्कर खाने से सूवा दुखी होता है और चिल्लाता है पर पोंगी छोड़ता नहीं, यदि छोड़ कर उड़जाय तो वह चक्कर स्वतः बंद होजांय। अपनी पकड़ और ऊपर आने की कोशिश से ही सुवा दुखी होता है । इसी रीति से मनुष्य संसार में आप बंध रहा है और दुःख मानता है, संसार से चित अलग करले तो इस के दुख का कारण दूर हो जाय ॥

(४०) जिस संसार का देखते ही प्रलय हो रहा है उस के स्वाद में इंद्रियों के भोगार्थ लग कर और परमात्मा को भूलकर मनुष्य माया में बंधते हैं ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू झूठा संसार, झूठा परिवार, झूठा घरबार
झूठा नरनारि, तहां मन मानैं,
झूठा कुल जात, झूठा पितमात, झूठा बंधभ्रात,
झूठा तन गात, सति करि जानैं ।
झूठा सब धंध, झूठा सब फंध, झूठा सब अंध,
झूठा जाचंद, कहा मधु छानैं;
दादू भागि, झूठ सब त्यागि, जागिरे जागि,
देषि दिवानैं ॥ ४३ ॥

॥ आसक्तता ॥

दादू झूठे तन कै कारनैं, कीये बहुत बिकार ।
गृह दारा धन संपदा, पूत कुटुंब परिवार ॥ ४४ ॥
ता कारणि हति आतमा, झूठ कपट अहंकार ।
सो माटी मिल जाइगा, बिसरया सिरजनहार ॥ ४५ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू जन्म गया सब देषतां, झूठी के सांगि लागि ।
साचे प्रीतम कौं मिलै, भागि सकै तौ भागि ॥ $\frac{४५}{२}$ ॥

---

(४३) जाचंद के स्थान में जाचंध पुस्तक नं० ३—४ में है ॥ मधुछानै = मधू छानै अर्थात् इन सब झूठे पदार्थों से तू क्या मिठास निकालेगा, अथवा हरि का मार्ग त्याग कर माया का मार्ग क्यों छानता है ?

(४६) गतम = गया । कतरंजनं = खोटा सुख देनेवाला ॥ " परा " के स्थान में परह मूल पुस्तकों में पाया जाता है ॥

दादू गतं गृहं, गतं धनं, गतं दारा सुत जोबनं ।
गतं माता, गतं पिता, गतं बंधु सज्जनं ॥
गतं आपा, गतं परा, गतं संसार कत रंजनं ।
भजसि भजसि रे मन, परब्रह्म निरंजनं ॥ ४६ ॥

॥ आसक्तता मोह ॥

जीवौं मांहै जिव रहै, ऐसा माया मोह ।
सांई सूधा सब गया, दादू नहि अंदोह ॥ ४७ ॥

॥ विरक्तता ॥

माया मगहर षेत षर, सदगति कदे न होइ ।
जे बंचैं ते देवता, राम सरीषे सोइ ॥ ४८ ॥
कालरि षेत न नीपजै, जे बाहै सौ बार । १३–१३८ ॥
दादू हाना बीज का, क्या पचि मरै गंवार ॥ ४९ ॥
दादू इस संसार सौं, निमष न कीजै नेह ।
जामण मरण आवटणा, छिन छिन दाझै देह ॥५०॥

---

(४७) जीवौं (स्त्री पुत्रादिकौं) में मनुष्य का जीव (मन) रहता है, ऐसा जो माया मोह तिस कर के सांई सूधा (परमेश्वर सहित) सब जीवन मूल की प्राप्ति का अवसर चला गया, दयालजी कहते हैं इस में कोई संदेह नहीं ॥

(४८) मगहर खेत काशी के समीप गंगापार है । कहावत है कि जो कोई जन मगहर में शरीर त्यागता है सो गधे का जन्म पाता है ॥ दयालजी कहते हैं कि मगहर खेत में मरा हुआ गधे (खर) की योनि को प्राप्त हो, किंतु माया प्रपंच में आसक्त पुरुष की सद्गति नहीं होती, इस प्रपंच से जो विरक्त हैं सो देवता हैं और राम (परमेश्वर) की सदृश हैं ॥

(५०) जामण मरण आवटणां = जीने मरने की दाह (अवटावन) ॥

॥ आसक्तता मोह ॥

दादू मोह संसार कौं, बिहरे तन मन प्राण ।
दादू छूटै ज्ञान करि, को साधू सन्त सुजाण ॥ ५१ ॥
मन हस्ती माया हास्तिनी, सघन बन संसार ।
तामैं निर्भै ह्वै रह्या, दादू मुग्ध गंवार ॥ ५२ ॥

॥ काम ॥

दादू काम कठिन घाटि चोर है, घर फोड़ै दिन रात ।
सोवत साह न जागई, तत्त वस्त ले जात ॥ ५३ ॥
काम कठिन घाटि चोर है, मूसै भरे भंडार ।
सोवतही ले जाइगा, चेतनि पहरे चार ॥ ५४ ॥
ज्यौं घुन लागै काठ कौं, लोहै लागै काट ।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट ॥ ५५ ॥

॥ कर्तृति कर्म ॥

राह गिलै ज्यौं चन्द कौं, गहण गिलै ज्यौं सूर ।
कर्म गिलै यौं जीव कौं, नषसिष लागै पूर ॥ ५६ ॥
दादू चन्द गिलै जब राह कौं, गहण गिलै जब सूर ।
जीव गिलै जब कर्म कौं, राम रह्या भरपूर ॥ ५७ ॥

---

(५१) पुस्तक नं० ३ में "संसार कौं" के बदले "संसार के" है। अर्थ यह है कि संसार का मोह तन मन प्राण को हर लेता है । तिस मोह से कोई संत सुजान आत्म तत्त्व के ज्ञान से छूटता है ॥

(५४) मूसै भरे भंडार = भरे हुए भंडार को चुराता है। चेतनि पहरे चार = चारौं पहर होशियार रहो ॥

(५७) जीव गिलै जब कर्म कौं=तत्त्वज्ञान करके जीव कर्मों का ग्रास कर

कर्म कुहाड़ा, अंग बन, काटत बारंबार ।
अपने हांथौं आप कौं, काटत है संसार ॥ ५८ ॥

॥ स्वकीय मित्रसत्रता ॥

आपै मारै आप कौं, यहु जीव बिचारा ।
साहिब राषणहार है, सो हितू हमारा ॥ ५९ ॥
आपै मारै आप कौं, आप आप कौं षाइ ।
आपै अपणा काल है, दादू कहि समझाइ ॥ ६० ॥

॥ कर्तृति कर्म ॥

मरिबे की सब ऊपजै, जीबे की कुछ नाहिं ।
जीबे की जाणैं नहीं, मरिबे की मन मांहिं ॥ ६१ ॥
बंध्या बहुत विकार सौं, सर्व पाप का मूल ।
ढाहै सब आकार कौं, दादू यहु अस्थूल ॥ ६२ ॥

॥ काम ॥

दादू यहु तौ दोजग देषिये, काम क्रोध अहंकार ।
राति दिवस जरिबौ करै, आपा अगनि बिकार ॥ ६३ ॥
विषै हलाहल षाइ करि, सब जग मरि मरि जाइ ।
दादू मुहरा नांव ले, रिदै राषि ल्यौ लाइ ॥ ६४ ॥

जाता है॥ जब तत्त्वज्ञान जीव को होता है तब राम ही राम भर पूर उस को दिखाई देता है ॥

(५९—६०) निषिद्ध कर्म करके जीव आप अपने को मारता है ॥

(६३) दोजग = दोज़ख = नर्क ॥

(६४) मुहरा = ज़हरमुहरारूपी राम नाम ॥

जेती बिषिया बिलसिये, तेती हत्या होइ ।
प्रतषि मांणस मारिये, सकल सिरोमणि सोइ ॥ ६५ ॥
बिषिया का रस मद भया, नर नारी का मास ।
माया माते मद पिया, किया जन्म का नास ॥ ६६ ॥
दादू भावै साकत भगत ह्वै, विषै हलाहल षाइ । (१३—१३३)
तहं जन तेरा रामजी, सुपिनै कदे न जाइ ॥ ६७ ॥
षाडा बूजी भगति है, लोहरवाड़ा मांहि ।
परगट पेड़ाइत बसैं, तहं संत काहे कौं जांहि ॥ ६८ ॥

॥ माया ॥

सांपणि एक सब जीव कौं, आगै पीछै षाइ ।
दादू कहि उपगार करि, कोइ जन ऊबरि जाइ ॥ ६९ ॥
दादू षाये सांपणी, क्यौं करि जीवैं लोग ।
राम मंत्र जन गारड़ी, जीवैं इहि संजोग ॥ ७० ॥
दादू माया कारणि जग मरै, पीव के कारणि कोइ ।
देषौ ज्यौं जग परजलै, निमष न न्यारा होइ ॥ ७१ ॥

---

(६५) विषय भोग (वीर्य का पतन करना) एक नर की हत्या की बराबर कहा है ॥ मनुष्य जीवों में शिरोमणि है ॥

(६७) भावै साकत (शाक्त) हो, भावै भगत (वैष्णव) हो, पर जो हलाहल (निशिद्ध) विषय भोग में फंसा है तिस के समीप जाना दयालजी वर्जित करते हैं ॥

(६८) लोहरवाड़ा एक ग्राम है, उस में ठग बसते थे । उन्होंने चाहा था कि संतों को निमंत्रण के बहाने बुलाय कर संतों के लटे पटे छीन लें। यह मनसूबा ठगों का दयालजी ने जान कर यह साखी कही थी ॥

(७१) देषौ ज्यौं जग परजलै = देखौ जिस प्रकार से यह जगत जल

॥ जाया माया मोहनी ॥

काल कनक अरु कामिनी, परहरि इन का संग ।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यौं दीपक जोति पतंग ॥७२॥
दादू जहां कनक अरु कामिनी, तहं जीव पतंगे जांहि ।
आगि अनंत, सूझै नहीं, जलि जलि मूये मांहि ॥ ७३ ॥

॥ चितकपटी ॥

घट मांहैं माया घणी, बाहरि त्यागी होइ ।
फाटी कंथा पहरि करि, चिहन करै सब कोइ ॥ ७४ ॥
काया राषै बंद दे, मन दह दिसि षेलै ।
दादू कनक अरु कामिनी, माया नहि मेलै ॥ ७५ ॥
दादू मन सौं मीठी मुष सौं षारी, माया त्यागी कहैं बजारी ॥७५½॥

॥ माया ॥

माया मंदिर मीच का, तामैं पैठा धाइ ।
अंध भया सूझै नहीं, साध कहैं समझाइ ॥ ७६ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू केते जलि मुये, इस जोगी की आगि ।
दादू दूरै बंचिये, जोगी के संगि लागि ॥ ७७ ॥

रहा है, तौ भी कोई एक क्षणमात्र भी इस माया से न्यारा नहीं होता ॥

(७४) घट मांहैं = मन के अंदर । फाटीकंथा = फकीरी बाना, चोला । चिहन = चैन ।

(७५ ½) बजारी (झूठे त्यागीजन) माया को मन में तो मीठी रखते हैं पर ऊपर से खारी बताया करते हैं ॥

(७७) जोगी की आगि = परमेश्वर की माया । माया से बच कर परमेश्वर (जोगी) के संग लगो ॥

॥ माया ॥

ज्यौं जल मैंणी मछली, तैसा यहु संसार ।
माया माते जीव सब, दादू मरत न बार ॥ ७८ ॥

दादू माया फोड़े नैन दोइ, राम न सूझै काल ।
साध पुकारे मेर चढ़ि, देषि अग्नि की झाल ॥ ७९ ॥

॥ जाया माया मोहनी ॥

बिना भुवंगम हम डसे, बिन जल डूबे जाइ ।
बिनहीं पावक ज्यौं जले, दादू कुछ न बसाइ ॥ ८० ॥

॥ विषिया अतृप्ति ॥

दादू अमृतरूपी आप है, और सबै विष झाल ।
राषणहारा राम है, दादू दूजा काल ॥ ८१ ॥

॥ जग भुलावनि ॥

बाजी चिहर रचाइ करि, रह्या अपरछन होइ ।
माया पट पड़दा दिया, ताथैं लषै न कोइ ॥ ८२ ॥

दादू बाहे देषतां ढिगही ढौरी लाइ ।
पिव पिव करते सब गये, आपा दे न दिषाइ ॥ ८३ ॥

मैं चाहूं सो ना मिलै, साहिब का दीदार ।
दादू बाजी बहुत है, नाना रंग अपार ॥ ८४ ॥

हम चाहैं सो ना मिलै, औ बहुतेरा आहि ।
दादू मन मानै नहीं, केता आवै जाहि ॥ ८५ ॥

---

(७८) मैंणी = मांहिली = जल में रहने वाली मछली जैसे जल में ही मग्न है तैसे संसार इत्यादि ॥

(८३) ईश्वर ने जीवों के ढिग (साथ) ढौरी (चाह) लगाकर, उन को जगत में बाहे (भ्रमाय) रक्खा है ॥ देखो शब्द १४० और १५४ ॥

बाजी मोहे जीव सब, हम कौं भुरकी बाहि ।
दादू कैसी करि गया, आपण रह्या छिपाइ ॥ ८६ ॥
दादू सांई सति है, दूजा भर्म बिकार ।
नांव निरंजन निर्मला, दूजा घोर अंधार ॥ ८७ ॥
दादू सो धन लीजिये, जे तुम्ह सेती होइ ।
माया बांधे केई मुये, पूरा पड़्या न कोइ ॥ ८८ ॥
दादू कहै—जे हम छाडैं हाथ थैं, सो तुम लिया पसारि ।
जे हम लेवैं प्रीति सौं, सो तुम दीया डारि ॥ ८९ ॥
दादू हीरा पग सौं ठेलि करि, कंकर कौं कर लीन्ह ।
पारब्रह्म कौं छाडि करि, जीवन सौं हित कीन्ह ॥९०॥
दादू सब को बणिजै पारषलि, हीरा कोई न ले ।
हीरा लेगा जौहरी, जो मांगै सो दे ॥ ९१ ॥

॥ माया ॥

दड़ी दोट ज्यौं मारिये, तिहूं लोक मैं फेरि ।
धुरि पहुंचे संतोष है, दादू चढ़िबा मेरि ॥ ९२ ॥

---

(८९) माया को संत जन त्यागते हैं, तिस को साधारण जन हाथ पसारि कर लेते हैं, परमतत्व को संत जन प्रीति से लेते हैं, उसको साधारण जन डाल देते हैं ॥

(९१) "पारषलि" = क्षार खली, तुच्छ चीजैं ॥

(९२) जैसे पुरुष दड़ी (गेंद) को दोट (चोट) लगाकर इधर उधर भ्रमाता है तैसे माया इस प्रपंच (जीवादि) को त्रिलोकी में भ्रमाती है। धुरि (अपने स्वरूप) में ही जीव स्थित हो करके संतोष पाता है, सो उसका मेरु पर चढ़ना (गुणातीत होना) है ॥

अनल पंषि आकास कौं, माया मेर उलंघि ।
दादू उलटे पंथ चढि, जाइ बिलंबे अंगि ॥ ९३ ॥
दादू माया आगैं जीव सब, ठाढ़े रहे कर जोड़ि ।
जिन सिरजे जल बूंद सौं, तासौं बैठे तोड़ि ॥ ९४ ॥
सुर नर मुनियर बसि किये, ब्रह्मा विश्न महेस ।
सकल लोक के सिर पड़ी, साधू के पग हेठ ॥ ९५ ॥
दादू माया चेरी संत की, दासी उस दरबारि ।
ठकुराणी सब जगत की, तीन्यूं लोक मंझारि ॥ ९६ ॥
दादू माया दासी संत की, साकत की सिरताज ।
साकत सेती भांडणी, संतौं सेती लाज ॥ ९७ ॥
चारि पदारथ मुकति बापुरी, अठ सिधि नौ निधि चेरी ।
माया दासी ताके आगैं, जहं भक्ति निरंजन तेरी ॥९८॥
दादू कहै, ज्यौं आवै त्यौं जाइ विचारी ।
बिलसी बितड़ी न माथैं मारी ॥ ९८ ½ ॥

(९३) जैसे अनल पक्षि आकाश से उतर कर, इधर उधर फिरता है, पीछे उलट कर आकाश में अपने स्थान ही में स्थित हो कर सुख पाता है, तैसे दादू जी कहते हैं कि माया मेर (प्रपंच) को उलंघि कर, उलटे पंथ(अन्तर मुख वृत्ति द्वारा) अपने स्वरूप में स्थित होवै ॥ यथा—

अनल पंषि कै चीकलैं (बच्चे ने) पडतां किया विचार ।
सुरति फेरि उलटा चल्या, जाइ मिल्या परिवार ॥
अनल अतीत चलै अति आतुर, तासमि गवन न होई ।
जन रजब यौं जगत उलंघै, बूझै बिरला कोई ॥

(९८) धर्म अर्थ काम मोक्ष, अष्ट सिद्धि नव निद्धि और माया, यह संपूर्ण उस की दासी हैं जिस में निरंजन देव की भक्ति है ॥

दादू माया सब गहले किये, चौरासी लष जीव ।
ताका चेरी क्या करै, जे रंगि राते पीव ॥ ९९ ॥

विरक्तता ॥

दादू माया बैरिणि जीव की, जिनि को लावै प्रीति ।
माया देषै नरक करि, यहु संतन की रीति ॥ १०० ॥

माया ॥

माया माते चकचाल करि, चंचल कीये जीव ।
माया माते मद पिया, दादू विसर्‌या पीव ॥ १०१ ॥

आन लगनि विभचार ॥

जणे जणे की, राम की, घर घर की, नारी ।
पतिव्रता नहिं पीव की, सो माथै मारी ॥ १०२ ॥
जण जण के उठि पीछैं लागै, घरि घरि भरमत डोलै ।
ताथैं दादू षाइ तमाचे, मांदल दुहु मुषि बोलै ॥ १०३ ॥

॥ विषय विरक्तता ॥

जे नर कामिनि परहरैं, ते छूटैं गर्भवास ।
दादू ऊंधे मुष नहीं, रहैं निरंजन पास ॥ १०४ ॥
रोक न राषै, झूठ न भाषै, दादू षरचै षाइ ।
नदी पूर प्रवाह ज्यौं, माया आवै जाइ ॥ १०५ ॥
सदिका सिरजनहार का, केता आवै जाइ ।

---

(१००) नरक करि = नरकवत् ॥
(१०२) माया घर २ की नारी है, इस हेतु से त्यागने योग्य है ॥
(१०४) ऊंधे मुष नहीं = उलटे मुख हों नहीं, अर्थात् जन्मैं नहीं ॥

दादू धन संचै नहीं, बैठ बुलावै षाइ ॥ १०६ ॥

॥ माया ॥

जोगणि ह्वै जोगी गहे, सोफणि व्है करि सेष ।
भगतणि व्है भगता गहे, करि करि नाना भेष ॥ १०७॥
बुधि बमेक बल हरणी, त्रय तन ताप उपावनी ।
अंगि अगनि प्रजालिनी, जीव घरबारि नचावनी ॥१०८॥
नाना विधि के रूप धरि, सब बांधे भामिनी ।
जग बिटंब परलै किया, हरिनाम भुलावनी ॥ १०९ ॥
बाजीगर की पूतली, ज्यौं मर्कट मोह्या ।
दादू माया राम की, सब जगत बिगोया ॥ ११० ॥

॥ सिसन स्वाद ॥

मोरा मोरी देषि करि, नाचै पंष पसारि ।
यौं दादू घर आंगणै, हम नाचे कैवारि ॥ १११ ॥

॥ पुरुष प्रकाशी ॥

दादू जिस घटि दीपक राम का, तिहिं घटि तिमर न होइ । (४-१९६, १५-८५)
उस उजियारे जोति के, सब जग देषै सोइ ॥ ११२ ॥ घ

॥ माया ॥

दादू जेहि घट ब्रह्म न प्रगटै, तहं माया मंगल गाइ ।
दादू जागै जोति जब, तब माया भरम बिलाइ ॥११३॥

॥ पति पहचान ॥

दादू जोति चमकै, तिरबरै, दीपक देषै लोइ ।

(१११) दीपक राम का = ब्रम्ह दृष्टि का कारण शुद्ध सत्व गुण, देखौ पृष्ठ ८५ ॥

चंद सूर का चांदिणा, पगार छलावा होइ ॥ ११४ ॥

॥ माया ॥

दादू दीपक देह का, माया परगट होइ ।
चौरासी लष पंषियां, तहां परैं सब कोइ ॥ ११५ ॥

॥ पुरुष प्रकाशी ॥

यहु घट दीपक साध का, ब्रह्म जोति परकास । (१५–७६)
दादू पंषी संतजन, तहां परैं निज दास ॥ ११६ ॥ घ

॥ जाया माया मोहनी ॥

दादू मन मृत्तक भया, इंद्री अपणै हाथि । (१०–१२५)
तौ भी कदे न कीजिये, कनक कामिनी साथि ॥११७॥ घ

॥ विषिया विरक्तता (पुरुष नारि संबंध) ॥

जाणैं बूझै जीव सब, त्रिया पुरिष का अंग ।
आपा पर भूला नहीं, दादू कैसा संग ॥ ११८ ॥

माया के घट साजि द्वै, त्रिया पुरिष धरि नांव ।
दोन्यूं सुन्दर षेलैं दादू, राषि लेहु बलि जांव ॥ ११९ ॥

बहण बीर सब देषिये, नारी अरु भर्तार ।
परमेसुर के पेट के, दादू सब परिवार ॥ १२० ॥

---

(११४) इस साखी में अंतर्मुख ध्यान से जो आत्म प्रकाश दीखता है सो बतलाया है, अर्थात् ब्रम्ह ज्योति कभी झिलमिल तिरवरे की भांति, कभी दीपक की शिखावत, कभी सूर्य चंद्र के प्रकाशवत, कभी छलावे के चमकारे की तरह प्रतीत होती है ॥

(११५) दीपक देह का = रजस्तमोगुण, चर्म दृष्टि ।
११६) दीपक साध का=सत्व–रजोगुण, आत्म दृष्टि । } देखौ पृष्ठ ८५

पर घर परहरि आपणी, सब एकै उणहार ।
पसु प्राणी समझैं नहीं, दादू मुग्ध गंवार ॥ १२१ ॥
पुरिष पलटि बेटा भया, नारी माता होइ ।
दादू को समझै नहीं, बड़ा अचंभा मोहि ॥ १२२ ॥
माता नारी पुरिष की, पुरिष नारि का पूत ।
दादू ज्ञान बिचारि करि, छाडि गये अवधूत ॥ १२३ ॥

॥ विषिया अतृप्ति ॥

ब्रह्मा विश्न महेस लौं, सुर नर उरझाया ।
विष का अमृत नांव धरि, सब किनहूं षाया ॥ १२४ ॥

॥ अध्यात्म ॥

दादू माया का जल पीवतां, व्याधी होइ बिकार ।
सेझै का जल पीवतां, प्राण सुषी सुधसार ॥ १२५ ॥

॥ विषिया अतृप्ति ॥

जीव गहिला, जीव बावला, जीव दिवाना होइ ।
दादू अमृत छाडि करि, विष पीवै सब कोइ ॥ १२६ ॥

(११८–१२३) इन साखियों का तात्पर्य यह है कि सब स्त्री पुरुष परस्पर अपने को भाई बहन समझ कर केवल परमेश्वर का भजन करैं । नारी और भर्तार का संबंध न करैं । क्योंकि जो एक जन्म में नारी होती है वही स्त्री दूसरे जन्म में उसी पुरुष की माता होजाती है, अथवा जो एक जन्म में माता हो वही दूसरे जन्म में नारी होजाती है; । ऐसा संबंध देख कर अवधूतों ने स्त्रियों का संग त्याग किया है ॥ दृष्टान्त–

साध जिमावण कारणैं, बणिक ले चल्यौ भवन ।
तीनि ठौर हंसि कै कही, भैंसो अज त्रिय मौन ॥

(१२४) यह साखी पुस्तक नं० १ के सिवाय और पुस्तकों में साखी १३३ वीं के पीछे आती है ॥

॥ माया ॥

माया मैली गुण मई, धरि धरि उज्जल नांव़ ।
दादू मोहै सबन कौं, सुर नर सबही ठांव़ ॥ १२७ ॥

॥ विषिया अतृप्ति ॥

विष का अमृत नांव़ धरि, सब कोई षावै़ ।
दादू षारा ना कहै, यहु अचिरज आवै़ ॥ १२८ ॥
दादू जे विष जारै षाइ करि, जिनि मुष मैं मेलै ।
आदि अंत परलै गये, जे विष सौं षेले ॥ १२९ ॥
जिन विष षाया ते मुये, क्या मेरा क्या तेरा ।
आगि पराई आपणी, सब करै नवेरा ॥ १३० ॥
दादू कहै—जिनि विष पीवै़ बावरे, दिन दिन बाढ़ै़ रोग ।
देषत ही मरि जाइगा, तजि विषिया रस भोग ॥ १३१ ॥
अपणा पराया षाइ विष, देषत ही मरि जाइ (१३–१३२)
दादू को जीवै़ नहीं, इहिं भोरैं जिनि षाइ ॥ १३२ ॥

॥ माया ॥

ब्रह्म सरीषा होइ करि, माया सौं षेलै ।
दादू दिन दिन देषतां, अपणे गुण मेलै ॥ १३३ ॥
माया मारै लात सौं, हरि कौं घालै हाथ ।
संग तजै सब झूठ का, गहै साच का साथ ॥ १३४ ॥
घर के मारे, बन के मारे, मारे सर्ग पयाल ।
सूषिम मोटा गूंथि करि, मांड्या माया जाल ॥ १३५ ॥

(१२९) जिस विष के खाने से जलन होती है, उस को मुख में न डालो ॥
(१३५) घर के = मनुष्य, बन के=पशु पक्षी, सर्ग पयाल ॥

विषिया अतृप्ति ॥

ऊभा सारं, बैठ बिचारं, संभारं जागत सूता ।
तीन लोक तत जाल बिडारण, तहां जाइगा पूता ॥१३६॥

मुये सरीषे व्है रहे, जीवण की क्या आस ।
दादू राम बिसारि करि, बांछै भोग बिलास ॥ १३७ ॥

कृतम कर्ता ॥

माया रूपी राम कौं, सब कोइ ध्यावै ॥
अलष आदि अनादि है, सो दादू गावै ॥ १३८ ॥

ब्रह्मा का बेद बिश्न की मूरति, पूजै सब संसारा ।
महादेव की सेवा लागै, कहां है सिरजनहारा ॥१३९॥

माया का ठाकुर किया, माया की महिमाइ ।
ऐसे देव अनंत करि, सब जग पूजन जाइ ॥ १४० ॥

के देवतादि । इन सबों को मूत्तम मोटे नाना प्रकार के जालों में फंसा कर, माया ने मारा है ॥

(१३६) दृष्टांत—गोरख सों माया बदी, ठग्यो मछंदर नाथ ।
बालक व्है माया ठगी, रांडी मींडत हाथ ॥

माया बोली—ऊभा मारूं बैठा मारूं, मारूं जागत सूता ।
तीन भवन भग जाल पसारूं कहां जायगा पूता ॥

गोरखनाथ—ऊभा खंडूं बैठा खडूं, खंडूं जागत सूता ।
तीन भवन ते भिन व्है खेलूं, तौ गोरख अवधूता ॥

इस साखी के " लोक" शब्द के बदले किसी २ पुस्तक में " भवन " आया है, " पूता " शब्द का अर्थ पवित्र है ॥

माया बैठी राम ह्वै, कहै मैंही मोहनराइ ।
ब्रह्मा विश्न महेस लौं, जोनी आवै जाइ ॥ १४१ ॥
माया बैठी राम ह्वै, ताकौं लषै न कोइ ।
सब जग मानै सत्ति करि, बड़ा अचंभा मोहि ॥ १४२ ॥
अंजन किया निरंजना, गुण निर्गुण जानै ।
धरचा दिषावै अधर करि, कैसैं मन मानै ॥ १४३ ॥
निरंजन की बात कहि, आवै अंजन मांहि ।
दादू मन मानै नहीं, सर्ग रसातलि जांहि ॥ १४४ ॥
कामधेन कै पटंतरै, करै काठ की गाइ ।
दादू दूध दूझै नहीं, मूरिष देहु बहाइ ॥ १४६ ॥
चिंतामणि कंकर किया, मांगै कछू न देइ ।
दादू कंकर डारि दे, चिंतामणि कर लेइ ॥ १४७ ॥
पारस किया पषान का, कंचन कदे न होइ ।
दादू आतमराम बिन, भूलि पड़चा सब कोइ ॥ १४८ ॥
सूरिज फटिक पषाण का, तासौं तिमर न जाइ ।
साचा सूरिज परगटै, दादू तिमर नसाइ ॥ १४९ ॥
मूरति घड़ी पषाण की, कीया सिरजनहार ।

---

(१४३) दृष्टांत—महमूद ढाहे देहुरा, जैन रच्यौ परपंच ।
चंबक चहुं दिसि गाड़ि कै, मुरति अधर धरि संच ॥

(१४५) देखौ १३—१०८ । क ग घ ङ ॥

(१४८) भाव कहै भगवंत का, पूजै आन अंदोह ।
जगन्नाथ पारस बिना, पथर न पलटै लोह ॥

दादू साच सूझै नहीं, यूं डूबा संसार ॥ १५० ॥

पुरिष बिदेसि, कामणि किया, उसही के उणहारि ।
कारिज को सीझै नहीं, दादू माथैं मारि ॥ १५१ ॥

कागद का माणस किया, छत्रपती सिरमौर ।
राजपाट साधै नहीं, दादू परहरि और ॥ १५२ ॥

सकल भवन भानै घड़ै, चतर चलावणहार ।
दादू सो सूझै नहीं, जिस का वार न पार ॥ १५३ ॥

॥ कर्ता साषी भूत ॥

दादू पहली आप उपाइ करि, न्यारा पद निर्बाण ।
ब्रह्मा विश्न महेस मिलि, बांध्या सकल बंधाण ॥ १५४ ॥ ङ

॥ कृतम कर्त्ता ॥

नांव नीति अनीति सब, पहली बांधे बंध ।
पसू न जाणै पारधी, दादू, रोपे फंध ॥ १५५ ॥

दादू बांधे वेद बिधि, भरम करम उरझाइ ।
मरजादा मांहै रहै, सुमिरण किया न जाइ ॥ १५६ ॥

॥ माया (नारी दोष निरूपण) ॥

दादू माया मीठी बोलणी, नइ नइ लागै पाइ ।

---

(१५०) "डूबा" की जगह पुस्तक नं० १ में "बूडा" है ॥

(१५१) विदेश में पुरुष, तिस की सूरत का पुतला उस की स्त्री बना कर देश में रक्खै, तो उस पुतले से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ॥

(१५५) पसू = जीव । पारधी = माया रूप शिकारी ॥

दादू पैसै पेट मैं, काढि कलेजा षाइ ॥ १५७ ॥
नारी नागणि जे डसे, ते नर मुये निदान ।
दादू को जीवै नहीं, पूछौ सबै सयान ॥ १५८ ॥
नारी नागणि एकसी, बाघणि बड़ी बलाइ ।
दादू जे नर रत भये, तिन का सर्बस षाइ ॥ १५९ ॥
नारी नैन न देषिये, मुष सौं नांव न लेइ ।
कानौं कामणि जिनि सुणै, यहु मन जाण न देइ ॥१६०॥
सुंदर षाये सांपणी, केते इहि कलि मांहि ।
आदि अंति इन सब डसे, दादू चेतै नांहिं ॥ १६१ ॥
दादू पैसै पेट मैं , नारी नागणि होइ ।
दादू प्राणी सब डसे, काढ़ि सकै ना कोइ ॥ १६२ ॥
माया सांपणि सब डसै, कनक कामणी होइ ।
ब्रह्मा बिश्न महेस लौं, दादू बचै न कोइ ॥ १६३ ॥
माया मारै जीव़ सब, षंड षंड करि षाइ ।
दादू घट का नास करि, रोवै जग पतियाइ ॥ १६४ ॥
बाबा बाबा कहि गिलै, भाई कहि कहि षाइ ।
पूत पूत कहि पी गई, पुरिषा जिनि पतियाइ ॥ १६५ ॥
ब्रह्मा विश्न महेस की, नारी माता होइ ।
दादू पाये जीव़ सब, जिनि रू पतीजै कोइ ॥ १६६ ॥

---

(१५७) मीठी बोलणी=मीठी बातें बोलने वाली। नइ नइ=नय नय, झुक २॥
दोहा—जयमल मुख थैं मीठी बोलनी, चालै मधुरी चाल ।
जे नर बैठे नेह करि, तिन के बुरे हवाल ॥
(१६४) रोवै जग पतियाइ=रोता हुआ पुनः जन माया में फंसता है ॥

माया बहुरूपी नटणी नाचै, सुर नर मुनि कौं मोहै ।
ब्रह्मा विश्न महादेव बाहै, दादू बपुरा को है ॥ १६७ ॥
माया पासी हाथि लै, बैठी गोप छिपाइ ।
जे कोइ धीजै प्राणियां, ताही के गलि बाहि ॥ १६८ ॥
पुरिषा पासी हाथि करि, कामणि के गलि बाहि ।
कामणि कटारी कर गहै, मारि पुरिष कौं षाइ ॥ १६९ ॥
नारी बैरणि पुरिष की, पुरिषा बैरी नारि ।
आंति काले दून्यूं मुये, दादू देषि बिचारि ॥ १७० ॥
नारि पुरिष कौं ले मुई, पुरिषा नारी साथ ।
दादू दून्यूं पचि मुये, कछू न आया हाथ ॥ १७१ ॥
भवरा लुब्धी बास का, कवलि बधाना आइ ।
दिन दस मांहै देषतां, दोन्यौं गये बिलाइ ॥ १७२ ॥
नारी पीवै पुरिष कौं, पुरिष नारि कौं षाइ ।
दादू गुर के ज्ञान बिन, दून्यूं गये बिलाइ ॥ १७३ ॥

इति माया कौ अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ १२ ॥

(१७१) " पचि मुये " के बदले "पचि गये" पुस्तक नं० २, ३, ४, और ५ में है ॥

अथ साच कौ अङ्ग ॥ १३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बन्दनं सर्व साधवा, प्राणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ अदया, हिंसा ॥

दादू दया जिन्हौं के दिल नहीं, बहुरि कहावैं साध ।
जे मुष उनका देषिये, तौ लागै बहु अपराध ॥ २ ॥
दादू मिहर मोहब्बत मनि नहीं, दिल के बज्र कठोर ।
काले काफिर ते कहिय, मोमिन मालिक और ॥ ३ ॥
दादू कोई काहू जीव की, करै आत्मा घात ।
साच कहूं संसा नहीं, सो प्राणी दोजगि जात ॥ ४ ॥
दादू नाहर सिंह सियाल सब, केते मूसलमान ।
मांस षाइ मोमिन भये, बड़े मियां का ज्ञान ॥ ५ ॥
दादू मांस अहारी जे नरा, ते नर सिंह सियाल ।
बग मांजर सुनहां सही, येता परतषि काल ॥ ६ ॥
दादू मुई मार माणस घणे, ते परतषि जमकाल
मिहर दया नहिं सिंह दिल, कूकर काग सियाल ॥ ७ ॥
मांस अहारी, मदु पिवै, बिषै बिकारी सोइ ।
दादू आत्मराम बिन, दया कहां थीं होई ॥ ८ ॥

---

(८) मद पीवै मूरति (जीव) हतै, रसन स्वाद कारि षांहिं ।
जगन्नाथ ते अवासि करि, दोजग ही कौं जांहिं ॥

लंगर लोग लोभ सौं लागैं, बोलैं सदा उन्हौं की भीर ।
जोर जुलम बीचि बटपारे, आदि अंति उनहीं सौं सीर ॥९॥
तन मन मारि रहे सांई सौं, तिन कौं देषि करैं ताज़ीर ।
ये बाड़ि बूझ कहां थैं पाई, ऐसी कजा अवलिया पीर ॥१०॥
बे मेहर गुम राह ग़ाफिल, गोश्त षुरदनी ।
बे दिल बदकार आलम, हयात मुरदनी ॥ ११ ॥

॥ साच ॥

छलि करि, बलि करि, धाइ करि, मारै जिंहि तिंहि फेरि ।
दादू ताहि न धीजिये, परणै सगी पतेरि ॥ १२ ॥

॥ अदया-हिंसा ॥

दादू दुनियां सौं दिल बांधि करि, बैठे दीन गंवाइ ।
नेकी नांव बिसारि करि, करद कमाया षाइ ॥ १३ ॥
दादू गल काटैं कलमां भरैं, अया बिचारा दीन ।
पांचौं बषत निमाज गुजारैं, स्याबति नहीं अकीन ॥१४॥
दुनियां के पीछैं पड़्या दौड़्या दौड़्या जाइ ।
दादू जिन पैदा किया, ता साहिब कौं छिटकाइ ॥१५॥
कुफर जे के मन मैं, मीयां मुसलमांन ।
दादू पेया झंग मैं, बिसारे रहिमान ॥ १६ ॥

---

(११) बे मेहर = निर्दयी । गुमराह = परमेश्वर के मार्ग से विमुख । गाफिल = अचेत । गोश्त खुरदनी = मांस खाना । बेदिल = खोटे दिल वाला । बदकार = खोटे काम करने वाला । आलम = दुनियां में फंसा हुआ । हयात मुरदनी = जीते ही मरा हुआ ॥

(१६) "पेया झंग मैं" = संसार रूपी झगड़े में पड़ कर ॥

आपस कौं मारै नहीं, पर कौं मारन जाइ ।
दादू आपा मारे बिना, कैसैं मिलै षुदाइ ॥ १७ ॥
भीतरि दुंदर भरि रहे, तिन कौं मारैं नांहिं ।
साहिब की अरवाह कौं, ताकौं मारन जांहिं ॥ १८ ॥
दादू मूये कौं क्या मारिये, मीयां मूई मार ।
आपस कौं मारै नहीं, औरौं कौं हुसियार ॥ १९ ॥

॥ साच ॥

जिस का था तिस का हुवा, तौ काहे का दोस ।
दादू बंदा बंदगी, मींयां ना कर रोस ॥ २० ॥
सेवग सिरजनहार का, साहिब का बंदा ।
दादू सेवा बंदगी, दूजा क्या धंधा ॥ २१ ॥
सो काफिर जे बोलै काफ, दिल अपणी नहिं राषै साफ ।
सांई कौं पहिचानैं नांहीं, कूड़ कपट सब उनहीं मांहीं ॥२२॥
सांई का फुरमान न मानैं, कहां पीव ऐसैं करि जानैं ।
मन आपणै मैं समझत नांहीं, निरषत चलै आपनी छांहीं ॥२३॥
जोर करै, मसकीन सतावै, दिल उस की मैं दर्द न आवै ।
सांई सेती नांहीं नेह, गर्व करै अति अपनी देह ॥२४॥
इन बातन क्यौं पावै पीव, परधन ऊपरि राषै जीव ।
जोर जुलम करि कुटंब सूं षाइ, सो काफिर दोजग मैं जाइ २५

---

(१७) आपस = आपनपौ, अहंकार, खुदी ॥
(१९) मीयां मूई मार = हे मियां ! आपे (खुदी) को मार ! यह संबोधन है ॥

॥ अदया-हिंसा ॥

दादू जा कौं मारण जाइये, सोई फिरि मारै ।
जा कौं तारन जाइये, सोई फिरि तारै ॥ २६ ॥
दादू नफस नांवसौं मारिये, गोसमाल दे पंद ।
दूई है सो दूरि करि, तब घर मैं आनंद ॥ २७ ॥

॥ साच (मुसलमान के लक्षण) ॥

मुसलमांन जु राषै मान, सांई का मानै फुरमान ।
सारौं कौं सुषदाई होइ, मुसलमान करि जानूं सोई ॥२८॥
दादू मुसलमान मिहर गहि रहै, सब कौं सुष, किसही नहि दहै ।
मुवा न षाइ, जिवत नहिं मारै, करै बंदगी राह संवारै॥ २९॥
सो मोमिन मनमैं करि जाणि, सति सबूरी बैसै आणि ।
चलै साच सवारै बाट, तिन कूं षुले भिस्त के पाट ॥३०॥
सो मोमिन मोम दिल होइ, सांई कौं पहिचानै सोइ ।
जोर न करै, हराम न षाइ, सो मोमिन भिसत मैं जाइ॥३१॥

॥ जैसा करना वैसा भरना ॥

जो हम नहीं गुजारते, तुम्ह कौं क्या भाई ।
सीर नहीं, कुछ बंदगी, कहु क्यूं फुरमाई ॥ ३१ ॥
अपने अमलौं छूटिये, काहू के नांहीं,

---

(२७) "घर" की जगह "घट" पुस्तक नं० ४-५ में है ॥
(२८) तुरसी टेरे कहत हौं, सुनियो संत सुजान ।
मोमिदान गजदान तैं, बड़ो दान सनमान ।
(३०) दया जिनौंके दिल बसै, दरदवंद दरवेस ।
तुरसी तिनि कौं होइ गो, भिस्त मांहिं परवेस ॥

सोई पीड़ पुकारसी, जा दूषै मांहीं ॥ ३३ ॥
कोई षाइ अघाइ करि, भूषे क्यौं भरिये ।
षूटी पूगी आन की, आपण क्यौं मरिये ॥ ३४ ॥
फूटी नाव़ समंद मैं, सब डूबण लागे ।
अपणां अपणां जीव़ ले, सब कोई भागे ॥ ३५ ॥
दादू सिरि सिरि लागी आपणे, कहु कौण बुझावै़ ।
अपणां अपणां साच दे, सांई कौं भावै़ ॥ ३६ ॥

॥ सुमिरण चितावणी ॥

साचा नांव़ अल्लाह का, सोई सति करि जाणि ।
निहचल करिले बंदगी, दादू सो परवाणि ॥ ३७ ॥
आवटकूटा होत है, औसर बीता जाइ ।
दादू कर ले बंदगी, राषणहार षुदाइ ॥ ३८ ॥
इस कलि केते व्है गये, हिंदू मूसलमान ।
दादू साची बंदगी, झूठा सब अभिमान ॥ ३९ ॥

॥ कथणी विना करणी ॥

पोथी अपणा प्यंड करि, हरि जस मांहैं लेष ।

---

(३१) जन गोपाल ने दादूजी के जीवन चरित्र में लिखा है कि हिंदू और मुसलमानों ने वाद विवाद करते हुए दादूजी से कहा कि "तुम न देवी देवतों की पूजा करते हो, न तीर्थ व्रत न रोज़ा निमाज़ गुज़ारते हो", तब उन के उत्तर में दादू जी ने ३२–३६ वीं साखियां कही थीं ॥

(३४) इस का भावार्थ यह है कि एक के पेटभर खाने से दूसरे (भूखे) का पेट नहीं भरता ; किसी दूसरे के दिन पूरे होने पर, हम नहीं मर सकते ॥

(३८) आवटकूटा होत है = तीन ताप करके सब जीव दुखी होते हैं ।

पंडित अपणा प्राण करि, दादू कथहु अलेष ॥ ४० ॥
काया कतेब बोलिये, लिपि राम्रूं रहिमान ।
मनवां मुल्लां बोलिये, सुरता है सुबहान ॥ ४१ ॥
दादू काया महल मैं निमाज गुजारूं, तहं और न आवन पावै ।
मन मणके करि तसबी फेरूं, तब साहिब के मन भावै ॥ ४२ ॥
दिल दरिया मैं गुसल हमारा, ऊजू करि चित लाऊं ।
साहिब आगै करूं बंदगी, बेर बेर बलि जाऊं ॥ ४३ ॥
दादू पंचौं संगि संभालूं सांई, तन मन तब सुष पाऊं ।
प्रेम पियाला पिवजी देवै, कलमा ये लै लाऊं ॥ ४४ ॥
सोभा कारण सब करै, रोजा बांग निमाज ।
मुवा ज एकौ आह सौं, जे तुझ साहिब सेती काज ॥ ४५ ॥
हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करै कलाप ।
मुल्लां तहां पुकारिये, जहं अरस इलाही आप ॥ ४६ ॥

(४०) अर्थ–अपने शरीर की पौथी करौ, तिस में हरि का यश लिखौ, उसका पढ़ने वाला अपना प्राण बनाओ, इस प्रकार की उपासना करके अलेख परमात्मा का कथन वा ध्यान करौ ॥

(४१) सुरता = श्रोता ॥

(४३) बलि जाऊं = अपने आप को अर्पण करूं ॥

(४४) पंच इंद्रियों के संग में सांई का ध्यान करता हूं । इस प्रकार का कलमा है जिस पर मैं लय लगाता हूं ॥

(४६) अर्थ–हे मुल्लां ! नित्य परमात्मा की सेवा में लगा रह, दुःख क्यों उठावै । बांग वहां दीजिये जहां परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन हो, बांग से तात्पर्य अनाहद शब्द से है सो ध्यान में उस समय सुनाई देता है जब वृत्ति परमात्मा में पूर्णरूप से लगजाती है ॥

हरदम हाजिर होंणा बाबा, जब लग जीवै बंदा ।
दाइम दिल सांई सौं साबित, पंच बषत क्या धंधा ॥४७॥

॥ हिंदु मुसलमानों का भ्रम ॥

दादू हिंदु मारग कहैं हमारा, तुरक कहैं रह मेरी ।
कहां पंथ है कहौ अलह का, तुम तौ ऐसी हेरी ॥ ४८॥

दादू दुई दरोग लोग कौं भावै, सांई साच पियारा ।
कौण पंथि हम चलैं कहौ धू, साधौ करौ बिचारा ॥४९॥

षंड षंड करि ब्रह्म कौं, षषि षषि लीया बांटि ।
दादू पूरण ब्रह्म तजि, बंधे भरम की गांठि ॥ ५० ॥

॥ मन विकार औषधि ॥

जीवत दीसै रोगिया, कहैं मूवां पीछैं जाइ ।
दादू दुंह के पाढ मैं ऐसी दारू लाइ ॥ ५१ ॥

---

(५०) "आंधरे नै हाथी देषि झगरो मचायो है" की कहावत के अनुकूल दयालजी ने यह साखी कही है, यथाः—

ब्रम्ह एक बहु भांति करि, जुवो २ अपनाइ ।
बिन बिचार जगंनाथ जन, भ्रम लागा भरमाइ ॥
द्वै षषि थापै दोइ दिस, करै अठै दिस निंद ।
रजब सांई सकल मैं, देषि दसौं दिस बंद ॥

(५१) जीते जी विषय वासनाओं से दग्ध रहें अथवा क्लेश दायक साधनों से दुखी रहें और कहें कि मरे पीछे मुक्त हो जांयगे, दयालजी का आशय है कि ऐसे साधन ठीक नहीं; उपाय वह करौ जिन से संसार रूपी पाढ (पहाड़) की दुंह (दाह) शांत हो, जैसा कि अगली (५२ वीं) साखी में कहा है ॥

सो दारू किस काम की, जाथैं दरद न जाइ।
दादू काटै रोग कौं, सो दारु ले लाइ ॥ ५२ ॥
दादू अनभै काटै रोग कौं, अनहद उपजै आइ। (४–२०७)
सेझै का जल निर्मला, पीवै रुचि ल्यौ लाइ ॥ ५३ ॥ ग घ ङ
सोई अनभै सोई उपजी, सोई सबद ततसार। (२८–१७)
सुणतां ही साहेब मिलै, मन के जांहिं विकार ॥ ५४ ॥ ग घ ङ

॥ चानक उपदेश ॥

औषद षाइ न पछि रहै, विषम ब्याधि क्यौं जाइ। (१–१५१)
दादू रोगी बावरा, दोस बैद कौं लाइ ॥ ५५ ॥ ग घ ङ
एक सेर का ठांवड़ा, क्योंही भर्‌या न जाइ।
भूष न भागी जीव की, दादू केता षाइ ॥ ५६ ॥
पसुवां की नाईं भरि भरि षाइ, व्याधि घणेरी बधती जाइ।
पसुवां की नाईं करै अहार, दादू बाढ़ै रोग अपार।
राम रसाइण भरि भरि पीवै, दादू जोगी जुगि जुगि जीवै ॥ ५७ ॥
दादू चारै चित दिया, चिंतामणि कौं भूलि।
जन्म अमोलिक जात है, बैठे मांझी फूलि ॥ ५८ ॥
भरी अधौड़ी भावठी, बैठा पेट फुलाइ।

(५२) जे तूं काट्यौ चाहै विषम व्याधि। तौ राम नाम निज औषध साधि ॥
अन्य— राम नाम निज औषद सारा ॥
(५३) रोग परमात्मा के साक्षात्कार रूपी अनुभव से कटते हैं। सो अनुभव अनहद शब्द के पीछे होता है। उस शब्द के साथ अमृत टपकता है सो साधक रुचि भर पीवै ॥ यह तात्पर्य अगली (५४ वीं) साखी से स्पष्ट है ॥
(५८) चारै=पशुओं के खाने पीने के पदार्थों में। मांझी = बीच ॥

दादू सूकर स्वान ज्यौं, ज्यौं आवै त्यौं षाइ ॥ ५६ ॥

॥ सिमन स्वाद ॥

दादू षाटा मीठा षाइ करि, स्वादि चित दीया ।
इन मैं जीव बिलंबिया, हरि नांव न लीया ॥ ६० ॥
भगति न जाणै राम की, इंद्री के आधीन ।
दादू बंध्या स्वाद सौं, ताथैं नांव न लीन ॥ ६१ ॥

॥ साच ॥

दादू अपणा नीका राषिये, मैं मेरा दिया बहाइ ।
तुझ अपणे सेती काज है, मैं मेरा भावै तीधरि जाइ ॥६२॥
जे हम जाणया एक करि, तौ काहे लोक रिसाइ ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगौं का क्या जाइ ॥ ६३ ॥

॥ करणी बिना कथनी ॥

दादू द्वै द्वै पद किये, साषी भी द्वै चारि ।

---

(५६) चमार की भट्ठी पर भरी अधौड़ी (कच्ची खाल) जैसे फूली हुई लटका करती है, वैसे स्वान शूकर की तरह अनियमित भोजन खाकर जो पेट फुलाते हैं सो अनुभवरूपी औषध नहीं पा सकते ॥

(६२) तात्पर्य—जिज्ञासू केवल रामजी का भजन ही करे, "मैं" और "मेरा" रूपी जो अहंकार है सो त्याग दे । अथवा हे वादी ! तू अपना धर्म नीका रख, मेरा सोच न कर ॥

(६३) दयालजी कहते हैं कि जो हम ने ब्रह्म और आत्मा को एक कर जाना है तो लोग (कर्मकांडी) हम से कलह क्यों करते हैं ? मैंने अपना स्वकीय तत्व निश्चय किया है, इस में लोगों का क्या जाता है । सोई पंचदशीकारों ने त्रिद्वीप के २७१ वें श्लोक में कहा है, यथा—

एवंच कलहः कुत्र संभवेत्कर्मिणो मम ।
विभिन्न विषयत्वेन पूर्वापर समुद्रवत ॥

हम कौं अनभै ऊपजी, हम ज्ञानी संसारि ॥ ६४ ॥
सुनि सुनि पर्चे ज्ञान के, साषी सबदी होइ ।
तबहीं आपा ऊपजै, हम सा और न कोइ ॥ ६५ ॥
सो उपज किस काम की, जे जण जण करै कलेस ।
साषी सुनि समझै साध की, ज्यौं रसना रस सेस ॥६६॥
दादू पद जोड़ै साषी कहै, बिषै न छाडै जीव ।
पानी घालि बिलोइये, तौ क्यौं करि निकसै घीव ॥६७॥
दादू पद जोड़े का पाइये, साषी कहे का होइ ।
सति सिरोमणि सांईयां, तत्त न चीन्हां सोइ ॥ ६८ ॥
कहिबे सुनिबे मन षुसी, करिबा औरै षेल ।
बातौं तिमर न भाजई, दीवा बाती तेल ॥ ६९ ॥
दादू करिबे वाले हम नहीं, कहिबे को हम सूर ।
कहिबा हम थैं निकटि है, करिबा हम थैं दूर ॥ ७० ॥

(६४–६५) यहां पर उन जनों का वृत्तांत है जो अज्ञान में पड़े हुये अपने आप को बड़े ज्ञानी समझते हैं, कहते हैं कि हम ने इतने पद वा साखी बनाई हैं, हम को अनुभव होगया, हम ज्ञानी हैं, अथवा ज्ञान के पर्चे (लेख) सुन २ कर शब्द रटने वाले होजाते हैं और अहंकार करते हैं कि हम सा और कोई नहीं है ॥

(६६) ऐसी अज्ञान की उत्पत्ति किस काम की ? केवल कलेश ही देनेवाली है । किंतु मनुष्य को उचित है कि साधुजनों की साखी सुन कर समझै और उस का रस ले जैसे शेषनाग सहस्र जिह्वा से स्वाद लेता है ॥

(६७) जो जन ज्ञान के पद साखी जोड़ते या कहते हैं किंतु विषयों (संसारी पदार्थों) को छोड़ते नहीं, उन का कर्तव्य भी व्यर्थ है, जैसे कि पानी को बिलोने से कोई घी नहीं पा सकता ॥

कहे कहे का होत है, कहे न सीझै काम ।
कहे कहे का पाइये, जब लग रिदै न आवै राम ॥ ७१॥

॥ चौंप (चाह) विन चौंप चर्चा ॥

दादू सुरता घरि नहीं, बकता बकै सु बादि ।
बकता सुरता एक रस, कथा कहावै आदि ॥ ७३ ॥
बकता सुरता घरि नहीं, कहै सुनै को राम ।
दादू यहु मन थिर नहीं, बादि बकै बेकाम ॥ ७४ ॥

॥ बिचार-दृढ़ज्ञान ॥

अंतरि सुरझे समझि करि, फिर न अरूझे जाइ ।
बाहरि सुरझे देषतां, बहुरि अरूझे आइ ॥ ७६ ॥

॥ झूठे गुरू ॥

आतम लावै आप सौं, साहिब सेती नांहिं ।
दादू को निपजै नहीं, दून्यूं निर्फल जांहिं ॥ ७७ ॥
तूं मुझ कौं मोटा कहै, हौं तुझै बड़ाई मान ।
सांई कौं समझै नहीं, दादू झूठा ज्ञान ॥ ७८ ॥

॥ कस्तूरिया मृग ॥

सदा समीप रहै संगि सन्मुष, दादू लषै न गूझ ।
सुपिनै ही समझै नहीं, क्यौं करि लहै अबूझ ॥ ७६ ॥

॥ वे परच विसनी ॥

दादू सेवग नांव बोलाइये, सेवा सुपिनै नांहिं ।

---

(७२) देखो ८-१४, ग घ ङ ॥
(७३) घरि नहीं = मन एकाग्र वा ठिकाने नहीं ॥
(७५) देखो १०-११७, ग घ ङ ॥
(८०) देखो १-१६, ग घ ङ ॥

नांव़ धराये का भया, जे एक नहीं मन मांहिं ॥ ८१ ॥
नांव़ धरावैं दास का, दासातन थैं दूरि ।
दादू कारिज क्यौं सरै, हरि सौं नहीं हजूरि ॥ ८२ ॥
भगत न होवै भगति बिन, दासातन बिन दास ।
बिन सेवा सेवग नहीं, दादू झूठी आस ॥ ८३ ॥
राम भगति भावै नहीं, अपनी भगति का भाव़ ।
राम भगति मुष सौं कहै, षेलै अपना डाव ॥ ८४ ॥
भगति निराली रहि गई, हम भूलि पड़े बन मांहिं ।
भगति निरंजन राम की, दादू पावै नांहि ॥ ८५ ॥
सो दसा कतहूं रही, जिंहिं दिसि पहुंचै साध ।
मैं तैं मूरिष गहि रहे, लोभ बड़ाई बाद ॥ ८६ ॥
दादू राम बिसारि करि, कीये बहु अपराध ।
लाजौं मारे संत सब, नांव़ हमारा साध ॥ ८७ ॥

॥ करणी बिना कथनी ॥

मनसा के पकवान सौं, क्यौं पेट भरावै ।
ज्यौं कहिये त्यौं कीजिये, तबहीं बनि आवै ॥ ८८ ॥
दादू मिश्री मिश्री कीजिये, मुष मीठा नांहीं ।
मीठा तबहीं होइगा, छिटकावै मांहीं ॥ ८९ ॥
दादू बातौं हीं पहुंचै नहीं, घर दूरि पयाना ।
मारग पंथी उठि चलै, दादू सोई सयाना ॥ ९० ॥
बातौं सब कुछ कीजिये, अंति कछू नहिं देषै ।

(८९) छिटकावै मांही = मुंह में डालै ।

मनसा वाचा कर्मना, तब लागै लेखै ॥ ६१ ॥

॥ समझ सुजानता—सब जीवों में ज्ञान ॥

दादू कासौं कहि समझाइये, सब को चतर सुजान ।
कीड़ी कुंजर आदि दे, नांहिन कोई अजान ॥ ६२ ॥

॥ करणी बिना कथनी ॥

सूकर स्वान सियाल सिंह, सर्प रहैं घट मांहि । (११–६)
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जाणैं नांहि ॥ ६३ ॥ घड

दादू सूना घट सोधी नहीं, पंडित ब्रह्मा पूत ।
आगम निगम सब कथैं, घर में नाचैं भूत ॥ ६४ ॥

पढ़े न पावै परमगति, पढ़े न लंघै पार ।
पढ़े न पहुंचै प्राणिया, दादू पीड़ पुकार ॥ ६५ ॥

दादू निवरे नांव बिन, झूठा कथैं गियान ।
बैठे सिर षाली करैं, पंडित बेद पुरान ॥ ६६ ॥

दादू केते पुस्तक पढ़ि मुये, पंडित वेद पुरान ।

---

(६२) सब को = सब कोई ॥

(६३) शूकर की प्रकृति लीनालीन का ग्रहण, स्वान का स्वजातीय पर भूंकना, सियाल की कायर वृत्ति, सिंह की क्रोध वृत्ति, सर्प की संशय वृत्ति, कुंजर की काम वृत्ति, कीड़ी का दूसरे के छिद्र देखना, दयालजी कहते हैं कि इन सब पशुओं के स्वभाव मनुष्यों के मन में वर्ता करते हैं, पर पांडे इस पर ध्यान नहीं देते ॥

(६४) पंडित लोग जो अपने आप को ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ की सदृश मानते हैं और अगम निगम (वेदशास्त्रों) का कथन करते हैं, तिनके घट (अन्तःकरण) सूने (विवेक रहित) हैं, और घर में नांचैं भूत = तिन में काम क्रोधादि वर्ता करते हैं ॥

केते ब्रह्मा कथि गये, नांहि न राम समान ॥ ६७ ॥
सब हम देख्या सोधि करि, बेद कुरानौं मांहि ।
जहां निरंजन पाइये, सो देस दूरि, इत नांहि ॥ ६८ ॥
पढ़ि पढ़ि थाके पंडिता, किनहूं न पाया पार । (२—८७)
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नांइ अधार ॥६६॥ ग घ ङ
काजी कजा न जानहीं, कागद हाथि कतेब ।
पढ़तां पढ़तां दिन गये, भीतरि नांहीं भेद ॥ १०० ॥
मसि कागद के आसिरे, क्यौं छूटै संसार ।
राम बिना छूटै नहीं, दादू भर्म बिकार ॥ १०१ ॥
कागद काले करि मुये, केते बेद पुरान ।
एकै अषिर पीव का, दादू पढ़ै सुजान ॥ १०२ ॥
दादू अषिर प्रेम का, कोई पढ़ेगा एक । (३—११८)
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढ़ैं अनेक ॥ १०३ ॥ ग घ ङ
दादू पाती प्रेम की, विरला बांचै कोइ । (३—११६)
वेद पुरान पुस्तक पढ़े, प्रेम बिना क्या होइ ॥१०४॥ ग घ ङ
दादू कहतां कहतां दिन गये, सुणतां सुणतां जाइ ।
दादू ऐसा को नहीं, कहि सुणि राम समाइ ॥ १०५ ॥

॥ मध्य निरपष ॥

मौन गहैं ते बावरे, बोलैं षरे अयान ।
सहजैं राते राम सौं, दादू सोई सयान ॥ १०६ ॥

॥ करुणा ॥

कहतां सुणतां दिन गये, ह्वै कछू न आवा ।

दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछितावा ॥ १०७ ॥

॥ सज्जन दुर्जन ॥

दादू कथणी और कुछ, करणी करैं कुछ और । (१२–१४५)
तिन थैं मेरा जिव डरै, जिन कैं ठीक न ठौर ॥ १०८ ॥

अंतरगति औरै कछू, मुष रसना कुछ और ।
दादू करणी और कुछ, तिनकौं नांहीं ठौर ॥ १०९ ॥

॥ मन परमोध ॥

राम मिलन की कहत हैं, करते कुछ औरे ।
ऐसैं पीव क्यौं पाइये, समझि मन बौरे ॥ ११० ॥

॥ बे षरच बिसनी ॥

दादू बगनी भंगा षाइ करि, मतवाले मांझी ।
पैका नांहीं गांठड़ी पातिसाही षांजी ॥ १११ ॥

दादू टोटा दालिदी, लाषौं का व्यौपार ।
पैका नांहीं गांठड़ी, सिरै साहूकार ॥ ११२ ॥

॥ मध्य निरपक्ष—सब मतों का निशाना एक ॥

दादू ये सब किस के पंथ मैं, धरती अरु असमान ।
पानी पवन दिन राति का, चंद सूर, रहिमान ॥ ११३ ॥

(१११–११२) ज्ञान ध्यान रंचक नहीं, नहीं सील संतोष ।
भगत कहावै राम को, मोहन व्यर्थ भरोस ॥
बातनि विघ्म न पोषिये, वस्तु नहीं बिन दाम ।
कर्तव्यता कीये सरै, जगंनाथ जन काम ॥
मोलि हींग दमरी जिती, मांगत लार कपूर ।
मन बिसनी तनि बे षरच, जगंनाथ जन कूर ॥

(११३-११६) यह चार साखियां प्रश्नोत्तरी हैं । इन प्रत्येक में प्रथम

ब्रह्मा विश्न महेस का, कौन पन्थ गुर देव ? ।
सांई सिरजनहार तूं, कहिये अलष अभेव ॥ ११४ ॥
महम्मद किस के दीन मैं, जबराईल किस राह ? ।
इन के मुर्सद पीर की, कहिये एक अलाह ॥ ११५ ॥
दादू ये सब किस के ह्वै रहे, यहु मेरे मन मांहि ? ।
अलष इलाही जगत गुर, दूजा कोई नांहि ॥ ११६ ॥

॥ पतिव्रत व्यभिचार ॥

दादू औरैं ही औला तकै, थीयां सदै बियंनि ।
सो तूं मीयां नां घुरैं, जो मीयां मीयंनि ॥ ११७ ॥

॥ सत असत गुर पारष लष्यन ॥

आई रोजी ज्यौं गई, साहिब का दीदार ।
गहला लोगौं कारणै, देषै नहीं गंवार ॥ ११८ ॥

प्रश्न हैं और पीछे उन के उत्तर ॥ ११३ वीं साखी में प्रश्न यह है कि पृथ्वी आकाश चंद्र सूर्यादि किस के पंथ में हैं ? उत्तर रहमान के पंथ में ॥

(११७) घुरै = भजै । मीयां मीयंनि = मियों का मियां । इस साखी का तात्पर्य यह है कि तू अन्य देवतों को क्यूं भजता है, मियों के मियां परमात्मा को क्यों नहीं भजता ॥

(११८) यह नरतन जो परमेश्वर ने दिया था सो वृथा ही गया । इस गहिले (पागल) गंवार मनुष्य ने स्त्री पुत्रादि लोगों के कारण परमेश्वर को नहीं देखा ॥

दृष्टांत—धर्म तज्यौ धन कारणै, नर निर्धन अज्ञान ।
ज्यूं बालक नग छाड़ि दे, देषै नेक मिठान ॥

(११९—१२१) देखौ ८-९२, ९३, ९४ ॥ ग घ ङ ॥

॥ पतिव्रत निहकाम ॥

दादू सोई सेवग राम का, जिसैं न दूजी चिंत ।
दूजा को भावै नहीं, एक पियारा मिंत ॥ १२२ ॥

॥ (जाति पांति) भ्रम विधूसण ॥

अपनी अपनी जाति सौं, सब को बैसैं पांति ।
दादू सेवग राम का, ताकै नहीं भरांति ॥ १२३ ॥
चोर अन्याई मसकरा, सब मिलि बैसैं पांति ।
दादू सेवग राम का, तिन सौं करैं भरांति ॥ १२४ ॥
दादू सूप बजायां क्यौं टलै, घरमैं बड़ी बलाइ ।
काल झाल इस जीव का, बातन ही क्यौं जाइ ॥१२५॥
सांप गया, सहनाण कौं, सब मिलि मारैं लोक ।
दादू ऐसा देषिये, कुल का डगरा फोक ॥ १२६ ॥
दादू दून्यूं भरम हैं, हिंदू तुरक गंवार ।
जे दुहुवां थैं रहित हैं, सो गहि तत्त विचार ॥ १२७ ॥
अपना अपना करि लिया, भंजन मांहैं बाहि ।
दादू एकै कूप जल, मन का भरम उठाइ ॥ १२८ ॥
दादू पानी के बहु नांव धरि, नाना बिधि की जाति ।
बोलणहारा कौन है, कहौ धौं कहां समाति ॥ १२९ ॥
जब पूरण ब्रह्म बिचारिये, तब सकल आतमा एक ।

---

(१२५) सूप बजाये = अयुक्त तुच्छ साधनों से घर की बड़ी बलायें (अंतःकरण की खोटी वासनायें) दूर नहीं होतीं । जैसे कोरी बातों से दुःख निवृत्त नहीं होता ॥

काया के गुण देखिये, तौ नाना बरण अनेक ॥ १३० ॥

॥ अमिट पाप प्रचंड ॥

भाव भगति उपजै नहीं, साहिब का परसंग ।
विषै विकार छूटै नहीं, सो कैसा सतसंग ॥ १३४ ॥

बासन बिषै बिकार के, तिनकौं आदरमान ।
संगी सिरजनहार के, तिनसौं गर्ब गुमान ॥ १३५ ॥

॥ अज्ञ स्वभाव अपलट ॥

अंधे कौं दीपक दिया, तौभी तिमर न जाइ ।
सोधी नहीं सरीर की, तासनि का समझाइ ॥ १३६ ॥

॥ सगुना निगुना कृतघ्नी ॥

दादू कहिये कुछ उपगार कौं, मानैं अवगुण दोष ।
अंधे कूप बताइया, सति न मानैं लोक ॥ १३७ ॥

कालरि षेत न नीपजै, जे बाहै सौ बार । (१२–४६)
दादू हाना बीज का, क्या पचि मरै गंवार ॥ १३८ ॥ ग घ ङ

॥ कृतम कर्ता—(मूर्ति पूजन की निंदा) ॥

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गंवाइ ।
अलष देव अंतरि बसै, क्या दूजी जागह जाइ ॥ १३९ ॥

पत्थर पीवैं धोइ करि, पत्थर पूजैं प्राण ।
अन्ति काल पत्थर भये, बहु बूड़े इहि ज्ञान ॥ १४० ॥

---

(१३१) देखौ १५–७७, ग घ ङ ॥

(१३२—१३३) देखौ १२–१३२ और ६७, क ग घ ङ ॥

(१३५) बासन = मनुष्य ॥

(१३७) सत पुरुष उपकार की बात कहते हैं, उस में भी कृतघ्नी जन दोष ही देखते हैं, जैसे अंधे को कुये से बचने की राह बतावैं, उसे भी लोग

कंकर बंध्या गांठड़ी, हीरे के बेसास ।
अंतिकाल हरि जौहरी, दादू सूत कपास ॥ १४१ ॥

॥ संस्कार आगम ॥

दादू पहली पूजे ढूंढ़सी, अब भी ढूंढस बाणि ।
आगैं ढूंढस होइगा, दादू सति करि जाणि ॥ १४२ ॥

॥ अमिट पाप प्रचंड ॥

दादू पैंडे पाप कै, कदे न दीजै पांव ।
जिहिं पैंडैं मेरा पिव मिलै, तिहिं पैंडै का चाव ॥ १४३ ॥
दादू सुकृत मारग चालतां, बुरा न कबहूं होइ ।
अमृत षातां प्राणिया, मुवा न सुनिये कोइ ॥ १४४ ॥

॥ भ्रम विधौंसण ॥

कुछ नाहीं का नांव क्या, जे धरिये सो झूठ ।
सुर नर मुनि जन बंधिया, लोका आवटकूट ॥ १४५ ॥
कुछ नाहीं का नांव धरि, भरम्यां सब संसार ।
साच झूठ समझै नहीं, ना कुछ किया विचार ॥ १४६ ॥

॥ कस्तूरिया मृग ॥

दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जांहि ।

सच नहीं मानते; भाव यह है कि ज्ञान के उपदेश को कृतघ्नी सच नहीं मानते ॥

(१४१) दृष्टांत, सोरठ—पति त्रिय सौंपि कपास, आप गयो परदेश कौं ।
कात्यो नांहि उदास, पति आवत परपंच रचि ॥

(१४५) जिस परमेश्वर में नाम रूप गुण क्रिया कुछ नहीं हैं उस का नाम क्या धरा जावे, जो कुछ धरें तो झूठ ही होगा । लोका आवटकूट कहिये लोक में घटी यंत्र (रहट) की तरह बारंबार जन्म मरण प्रवाह रूपी मिथ्या (कूट) प्रपंच, जिस में अपने स्वरूप के अज्ञान से सुर नर मुनि जन बंध रहे हैं ॥

केई मथुरा कौं चले, साहिब घटही मांहि ॥१४७॥ (घ ङ)
पूजनहारे पासि है, देही मांहैं देव । (४–२५८)
दादू ताकौं छाडि करि, बाहरि मांडी सेव ॥१४८॥ ग घ ङ

॥ भ्रम विधौंसण ॥

ऊपरि आलम सब करै, साधू जन घट मांहिं ।
दादू एता अंतरा, तातैं बनती नांहिं ॥ १४९ ॥
दादू सब थे एक के, सो एक न जाना ।
जणे जणे का ह्वै गया, यहु जगत दिवाना ॥ १५० ॥

॥ साच ॥

झूठा साचा करि लिया, विष अमृत जाना ।
दुष कौं सुष सब को कहै, ऐसा जगत दिवाना ॥१५१॥
सूधा मारग साच का, साचा होइ सो जाइ ।
झूठा कोई ना चलै, दादू दिया दिषाइ ॥ १५२ ॥
साहिब सौं साचा नहीं, यहु मन झूठा होइ ।
दादू झूठे बहुत हैं, साचा बिरला कोइ ॥ १५३ ॥
दादू साचा अंग न ठेलिये, साहिब मानै नांहिं ।
साचा सिर परि राषिये, मिलि रहिये तामांहिं ॥ १५४ ॥
जे कोइ ठेलै साच कौं, तौ साचा रहै समाइ ।
कौड़ी बर क्यौं दीजिये, रत्न अमोलिक जाइ ॥ १५५ ॥

---

(१४९) ऊपरि=बाह्य पूजा ॥
(१५०) दृष्टांत–संख पंचानन ना बज्यो, पंडुन के यज्ञ मांहि ॥
सब मिलि पूछी कृष्ण सौं, मम जन जीम्यो नांहि ॥
(१५५) जो कोई अनधिकारी (साच) सतोपदेश को न ग्रहण करै,

साचे साहिब कौं मिलै, साचे मारगि जाइ ।
साचे सौं साचा भया, तब साचे लिये बुलाइ ॥ १५६ ॥
दादू साचा साहिब सेविये, साची सेवा होइ ।
साचा दर्सन पाइये, साचा सेवग सोइ ॥ १५७ ॥
साचे का साहिब धणी, समर्थ सिरजनहार ।
पाषंड की यहु पृथमी, परपंच का संसार ॥ १५८ ॥
झूठौं परगट, साचा छानै, तिन की दादू राम न मानै ॥१५९॥
दादू पाषंडि पीव न पाइये, जे अंतरि साच न होइ ।
ऊपरि थैं क्यूंही रहौ, भीतरि के मल धोइ ॥ १६१ ॥
साच अमर जुगि जुगि रहै, दादू बिरला कोइ ।
झूठ बहुत संसार मैं, उतपति परलै होइ ॥ १६२ ॥
दादू झूठा बदलिये, साच न बदल्या जाइ ।
साचा सिर पर राखिये, साध कहै समझाइ ॥ १६३ ॥
साच न सूझै जब लगैं, तब लग लोचन अंध ।
दादू मुकता छाडि करि, गल मैं घाल्या फंध ॥ १६४ ॥
साच न सूझै जब लगैं, तब लग लोचन नांहि ।
दादू निरबंध छाडि करि, बंध्या द्वै पष मांहि ॥ १६५ ॥

तो (साचा) सतोपदेष्टा चुप कर बैठे । क्योंकि कौड़ियों के चाहने वालों को अमोलक रत्न देना वृथा है ॥

(१५८) जगत पाखंडी प्रपंची जनों को मानता है, सच्चे साध का मालिक परमेश्वर ही है ॥

(१६०) देखो ३-६८ । ग घ ङ ॥

एक साच सौं गह गही, जीवन मरण निबाहि ।
दादू दुषिया राम बिन, भावै तीधरि जाहि ॥ १७१ ॥
दादू भावै तहां छिपाइये, साच न छाना होइ । (२-११०)
सेस रसातल गगन धू, परगट कहिये सोइ ॥ १७२ ॥ (क ग)

॥ कामी नर ॥

दादू छानै छानै कीजिये, चौड़ैं परगट होइ ।
दादू पैसि पयाल मैं, बुरा करै जिनि कोइ ॥ १७३ ॥

॥ अदया हिंसा ॥

अनकीया लागै नहीं, कीया लागै आइ ।
साहिब कै दरि न्याव है, जे कुछ राम रजाइ ॥ १७४ ॥

॥ आत्मार्थी भेष ॥

सोइ जन साधू, सिध सो, सोइ सतवादी सूर ।
सोइ मुनियर दादू बड़े, सन्मुष रहणि हजूर ॥ १७५ ॥
सोइ जन साचे, सो सती, सोइ साधक सूजान ।
सोइ ज्ञानी, सोइ पंडिता, जे राते भगवान ॥ १७६ ॥
दादू सोइ जोगी, सोइ जंगमां, सोइ सोफी, सोइ सेष ।
सोइ सन्यासी सेवड़े, दादू एक अलेष ॥ १७७ ॥
सोई काजी, सोई मुल्लां, सोइ मोमिन मूसलमान ।
सोई सयाने सब भले, जे राते रहिमान ॥ १७८ ॥
राम नाम कौं बणिजन बैठे, तातैं मांडया हाट ।

(१६६-१७०) देखौ अंग २१ की ४३-४४ और अंग २० की २१, २२, २३ साखियां । क ग घ ङ ॥

सांई सौं सौदा करैं, दादू षोलि कपाट ॥ १७६ ॥

॥ सज्जन दुर्जन ॥

बिच के सिर षाली करैं, पूरे सुष संतोष ।
दादू सुध बुध आतमा, ताहि न दीजै दोष ॥ १८० ॥
सुध बुध सूं सुष पाइये, कै साध बमेकी होइ ।
दादू ये बिच के बुरे, दाधे रीगे सोइ ॥ १८१ ॥
जिनि कोई हरिनांव मैं, हम कौं हाना बाहि ।
तातैं तुम थैं डरत हूं, क्यौंही टलै बलाइ ॥ १८२ ॥

॥ परमार्थी ॥

जे हम छाडैं राम कौं, तौ कौन गहैगा ।
दादू हम नहिं उच्चरैं, तौ कौन कहैगा ॥ १८३ ॥

॥ कामी नर ॥

एक राम छाड़ै नहीं, छाडै सकल बिकार ।
दूजा सहजैं होइ सब, दादू का मत सार ॥ १८४ ॥
जे तूं चाहै राम कूं, तौ एक मना आराध ।
दादू दूजा दूरि करि, मन इंद्री कर साध ॥ १८५ ॥

---

(१८०) मध्यमावस्था के सिर खपाते हैं, पूरण ज्ञान वाले सुख संतोष संपन्न होते हैं। आत्मा शुद्ध बुद्ध है उसको कोई दोष नहीं लगता ॥

(१८१) दाधे रीगे = दग्ध (तपायमान) रहि गये ॥

(१८३) दृष्टांत—गुर दादू आमेर तैं, चले सीकरी जांइ ।
मार्ग चलत काहें सिपन सौं, तब यह साखि सुनाइ ॥

(१८५) एक मना आराध=एकाग्र चित्त से आराधन कर ॥

॥ विरक्तता ॥

कबीर विचारा कह गया, बहुत भांति समझाइ ।
दादू दुनिया बावरी, ताके संगि न जाइ ॥ १८६ ॥

॥ सूषिम मारग ॥

पावहिंगे उस ठौर को, लंघैंगे यहु घाट ।
दादू क्या कहि बोलिये, अजहूं विचही बाट ॥ १८७ ॥

॥ साच ॥

साचा राता साच सौं, झूठा राता झूठ ।
दादू न्यारा नवेरिये, सब साधौं कौं पूछ ॥ १८८ ॥

॥ सज्जन दुर्जन ॥

जे पहुंचे ते कहि गये, तिन की एकै बात ।
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जात ॥ १८६ ॥
जे पहुंचे ते पूछिये, तिन की एकै बात ।
सब साधौं का एकमत, ये बिच के बारह बाट ॥ १६० ॥
सबै सयाने कहि गये, पहुंचे का घर एक ।
दादू मारग मांहिले, तिन की बात अनेक ॥ १६१ ॥
सूरिज साषी भूत है, साच करै परकास ।
चोर डरै चोरी करै, रैनि तिमर का नास ॥ १६३ ॥

---

(१६०) ते = तिन से ॥

(१६१) पहुंचे = पहुंचने । मारग मांहिले = बिचले मार्ग वाले । पुस्तक नं० ३, ४ और ५ में "मांहिले" की जगह "मांहिके" है ॥

(१६२) देखौ १–१४८ । क ग घ ङ ॥

चोर न भावै चांदिणां, जिनि उजियारा होइ ।
सूते का सब धन हरौं, मुझै न देषै कोइ ॥ १६४ ॥

॥ संस्कार आगम ॥

घटि घटि दादू कहि समझावै, जैसा करै सो तैसा पावै ।
को काहू का सीरी नांहीं, साहिब देषै सब घट मांहीं ॥ १६५ ॥

॥ इति साच कौ अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ १३ ॥

अथ भेष कौ अङ्ग ॥ १४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ पतिव्रत निहकाम ॥

दादू बूड़ै ज्ञान सब, चतराई जलि जाइ ।
अंजन मंजन फ़ूकि दे, रहै राम ल्यौ लाइ ॥ २ ॥
राम विना सब फीके लागैं, करणी कथा गियान ।
सकल अविर्था कोटि करि, दादू जोग धियान ॥ ३ ॥

॥ इंद्रियार्थी भेष ॥

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता सूर अनेक ।
दादू भेष अनंत हैं, लागि रह्या सो एक ॥ ४ ॥

(१६५) इस साखी का द्वितीयार्द्ध पुस्तक नं० ३—४ में नहीं है ॥

कोरा कलस अवाह का, ऊपरि चित्र अनेक ।
क्या कीजै दादू बस्त बिन, ऐसे नाना भेष ॥ ५ ॥
बाहरि दादू भेष बिन, भीतरि बस्त अगाध ।
सो ले हिरदै राषिये, दादू सन्मुष साध ॥ ६ ॥
दादू भांडा भरि धरि वस्त सूं, ज्यौं महिंगे मोलि विकाइ ।
षाली भांडा बस्त बिन, कौड़ी बदलै जाइ ॥ ७ ॥
दादू कनक कलस विष सूं भरया, सो किस आवै काम ।
सो धनि कूटा चाम का, जामैं अमृत राम ॥ ८ ॥
दादू देषै वस्त कौं, बासन देषै नांहिं ।
दादू भीतरि भरि धरया, सो मेरे मन मांहिं ॥ ९ ॥
दादू जे तूं समझै तौ कहूं, साचा एक अलेष ।
डाल पान तजि, मूल गहि, क्या दिषलावै भेष ॥ १० ॥
दादू सब दिषलावैं आप कूं, नाना भेष बणाइ ।
जहं आपा मेटन हरि भजन, तिहिं दिसि कोई न जाइ ॥११॥
सो दसा कतहूं रही, जिहिं दिसि पहुंचे साध ।
मैं तैं मूरिष गहि रहे, लोभ बड़ाई बाद ॥ ११½ ॥ ग घ ङ

(५) कुम्हार की भट्टी का कोरा घड़ा, चाहे अनेक चित्रदार भी हो पर उस में कोई वस्तु न हो, तो वह खाली देखने ही का होता है । तैसे भक्ति-हीन भेषधारी केवल देखने ही के होते हैं ॥

(८) सोने का कलश यदि विष से भरा हो तो वह किस काम का । कुटे हुये चमड़े का कुप्पा, यदि अमृत से भरा हो, तो वह धन्य है ॥ अर्थात् जिस साधू ने रामरूपी अमृत अपने अंदर सञ्चय किया है, वह कृतकृत्य है पर जिस ने केवल ऊपर से भेष बना रक्खा है वह किसी अर्थ का नहीं है ॥

दादू भेष बहुत संसार मैं, हरिजन बिरला कोइ ।
हरिजन राता राम सूं, दादू एकै होइ ॥ १२ ॥
हीरै रीझै जौहरी, षलि रीझै संसार ।
स्वांगि साध बहु अंतरा, दादू सति बिचार ॥ १३ ॥
स्वांगि साध बहु अंतरा, जेता धरणि अकास ।
साधू राता रामसौं, स्वांगी जगत की आस ॥ १४ ॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू बिरला कोइ ।
जैसैं चंदन वावना, बनि बनि कहीं न होइ ॥ १५ ॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू कोई एक ।
हीरा दूरि दिसंतरा, कंकर और अनेक ॥ १६ ॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साधू सोधि सुजाण ।
पारस परदेसौं भया, दादू बहुत पषाण ॥ १७ ॥
दादू स्वांगी सब संसार है, साध समंदां पार ।
अनल पंषि कहं पाइये, पंषी कोटि हजार ॥ १८ ॥
दादू चंदन वन नहीं, सूरन के दल नांहिं ।
सकल समंदि हीरा नहीं, त्यौं साधू जग मांहिं ॥ १९ ॥
जे सांई का ह्वै रहै, सांई तिस का होइ ।
दादू दूजी बात सब, भेष न पावै कोइ ॥ २० ॥

(१९) जैसे वनों में चंदन का वृक्ष विरला होता है, तैसे साधू जग में विरला ही मिलता है ॥

(२०) जो संपूर्ण विषयों से मन को मोड़ कर केवल परमेश्वर में ही अनन्य भक्ति वाला होता है तिस को ही परमेश्वर मिलता है । अन्य उपायों (भेषादि) से परमेश्वर नहीं मिलता ॥

दादू स्वांग सगाई कुछ नहीं, राम सगाई साच ।
दादू नाता नांव का, दूजै अंगि न राच ॥ २१ ॥
दादू एकै आतमा, साहिब है सब मांहि ।
साहिब कै नाते मिलै, भेष पंथ के नांहि ॥ २२ ॥
दादू माला तिलक सूं कुछ नहीं, काहू सेती काम ।
अंतरि मेरे एक है, आहि निसि उस का नाम ॥ २३ ॥

॥ अमिट पाप प्रचंड ॥

भगत भेष धरि मिथ्या बोलै, निंद्या पर अपवाद ।
साचे कौं झूठा कहै, लागै बहु अपराध ॥ २४ ॥
दादू कबहूं कोई जिनि मिलै, भगत भेष सूं जाइ ।
जीव जन्म का नास है, कहै अमृत, विष षाइ ॥ २५ ॥

॥ चित कपटी ॥

दादू पहुंचे पूत बटाऊ होइ करि, नट ज्यूं काछ्या भेष ।
षबरि न पाई षोज की, हम कूं मिल्या अलेष ॥ २६ ॥
दादू माया कारणि मूंड मुंडाया, यहु तौ जोग न होई ।
पारब्रह्म सूं पर्चा नांहीं, कपटि न सीझै कोई ॥ २७ ॥

---

(२६) राम पूत साध कहाय कर, नट का सा भेष धारण कर, बटाऊ होकर चल पड़ते हैं, परमेश्वर का खोज तो जानते नहीं पर कहते हैं कि हम ने अलेख को जान लिया है ॥ यथा–

सारदूल को स्वांग करि, कूकर की कर्तूति ।
तुरसी तापैं चाहई, कीरति बिजै बिभूति ॥

(२७) कपटि न सीझै कोई = कपट से कोई कार्य नहीं सिद्ध होता है ॥

॥ अनलगनि बिभिचार ॥

पीव न पावै बावरी, रचि रचि करै सिंगार ।
दादू फिरि फिरि जगत सूं, करैगी बिभचार ॥ २८ ॥
प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे सिंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यूं मानै भर्तार ॥ २९ ॥
दादू जग दिषलावै बावरी, षोड़स करै सिंगार ।
तहं न संवारै आप कूं, जहं भीतरि भर्तार ॥ ३० ॥

॥ इंद्रियार्थी भेष ॥

सुध बुध जीव धिजाइ करि, माला संकल वाहि ।
दादू माया ज्ञान सूं, स्वामी बैठा षाइ ॥ ३१ ॥
जोगी जंगम सेवड़े, बोध सन्यासी सेष । (१६–४७)
षट दर्सन दादू राम बिन, सबै कपट के भेष ॥ ३२ ॥
दादू सेष मसाइक औलिया, पैकंबर सब पीर ।
दर्सन सूं परसन नहीं, अजहूं बैली तीर ॥ ३३ ॥
दादू नाना भेष बनाइ करि, आपा देषि दिषाइ ।
दादू दूजा दूरि करि, साहिब सूं ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥
दादू देषा देषी लोक सब, केते आवैं जांहिं ।
राम सनेही ना मिलैं, जे निज देषैं मांहिं ॥ ३५ ॥
दादू सब देषैं अस्थूल कौं, यहु ऐसा आकार ।
सूषिम सहज न सूझई, निराकार निर्धार ॥ ३६ ॥

(३१) मीठे वचनों से मनुष्यों को चुपकार कर, माला रूपी ज़ंजीर उन के गले में डालि कर, झूठा ज्ञान देते हुये, स्वामी बनकर भेषधारी खाते हैं ॥

॥ पारिष अपारिष ॥

दादू बाहिर का सब देषिये, भीतरि लष्या न जाइ ।
बाहरि दिषावा लोक का, भीतरि राम दिषाइ ॥ ३७ ॥
दादू यहु परिष सराफी ऊपली, भीतरि की यहु नांहि ।
अंतर की जानैं नहीं, तातैं षोटा षांहि ॥ ३८ ॥
दादू झूठा राता झूठ सूं, साचा राता साच ।
एता अंध न जानहीं, कहं कंचन कहं काच ॥ ३९ ॥

॥ इंद्रियार्थी भेष ॥

दादू सचु बिन सांईं ना मिलै, भावै भेष बनाइ ।
भावै करवत उरध मुषि, भावै तीरथ जाइ ॥ ४० ॥
दादू साचा हरि का नांव है, सो ले हिरदै राषि ।
पाषंड प्रपंच दूरि करि, सब साधौं की साषि ॥ ४१ ॥

॥ आपा निरद्वेष ॥

हिरदै की हरि लेइगा, अंतरजामी राइ ।
साच पियारा राम कूं, कोटिक करि दिषलाइ ॥ ४२ ॥
दादू मुष की ना गहै, हिरदै की हरि लेइ ।
अंतरि सूधा एक सूं, तौ बोल्यां दोस न देइ ॥ ४३ ॥

---

(४०) करवत उरध मुषि = काशी करवत (आरे से कटकर प्राण त्याग)

(४३) जो कोई मुख से कहता है उस पर ईश्वर ध्यान नहीं देता, किंतु जो उस के हृदय में हो, उस पर ध्यान देता है । यथा दृष्टांत—

दोहा—संत दोय इक ठौर थे, इक कपटी इक शुद्ध ।
शुद्ध राम कौं गालि दे, कपटी स्तुति अबुद्ध ॥

॥ इंद्रियार्थी भेष ॥

सब चतराई देखिये, जे कुछ कीजे आन ।
मन गहि राखै एक सूं, दादू साध सुजान ॥ ४४ ॥

॥ आत्मार्थी भेष ॥

सबद सुई, सूरति धागा, काया कंथा लाइ ।
दादू जोगी जुगि जुगि पहिरै, कबहूं फाटि न जाइ ॥४५॥

ज्ञान गुरू का गूदड़ी, सबद गुरू का भेष ।
अतीत हमारी आत्मा, दादू पंथ अलेष ॥ ४६ ॥

इसक अजब अबदालहै, दरदवंद दरवेस ।
दादू सिक्का सबुर है, अकलि पीर उपदेस ॥ ४७ ॥

इति भेष कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १४ ॥

---

(४७) इसक = प्रेम । अजब = अद्भुत । अबदाल = सिद्धि व करामात । दरदवंद = विरहीजन । दरवेस = साधु । सिका = चिन्ह, भेष । सबुर = संतोष, अकलि पीर उपदेस = बुद्धिमानों का यह उपदेश है कि परमेश्वर के प्रेम ही को सिद्धि समझै । परमेश्वर के विरह में दर्दवंद रहे सोई साधुत्व है, और संतोष ही भेष चिन्ह वा बाना है ॥ यथा—

सुंदर राता एक सौं, दिल सौं दूजा नेस ।
इसक मुहब्बत बंदगी, सो कहिए दरवेस ॥

अथ साध कौ अङ्ग ॥ १५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ साध महिमा ॥

दादू निराकार मन सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव ।
जे पूजै आकार कौं, तौ साधू प्रतषि देव ॥ २ ॥
दादू भोजन दीजै देह कौं, लीया मनि विश्राम ।
साधू कै मुषि मेलिये, पाया आतमराम ॥ ३ ॥
ज्यौं यहु काया जीव की, त्यौं सांई के साध ।
दादू सब संतोषिये, मांहैं आप अगाध ॥ ४ ॥

॥ सतसंग माहात्म ॥

साधू जन संसार मैं, भवजल बोहिथ अंग ।
दादू केते ऊधरे, जेते बैठे संग ॥ ५ ॥
साधू जन संसार मैं, सीतल चंदन वास ।
दादू केते ऊधरे, जे आये उन पास ॥ ६ ॥
साधू जन संसार मैं, हीरे जैसा होइ ।
दादू केते ऊधरे, संगति आये सोइ ॥ ७ ॥
साधू जन संसार मैं, पारस परगट गाइ ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ ॥ ८ ॥

रूष बिरष बनराइ सब, चंदन पासैं होइ ।
दादू बास लगाइ करि, किये सुगंधे सोइ ॥ ९ ॥
जहां अरंड अरू आक थे, तहं चंदन ऊग्या मांहिं ।
दादू चन्दन करि लिया, आक कहै को नांहिं ॥ १० ॥
साध नदी, जल रामरस, तहां पषालै अंग ।
दादू निर्मल मल गया, साधू जन के संग ॥ ११ ॥

॥ परमार्थी ॥

साधू बरषैं रामरस, अमृत बाणी आइ ।
दादू दर्सन देषतां, त्रिविध ताप तन जाइ ॥ १२ ॥

॥ साध संग महिमा ॥

संसार बिचारा जात है, बहिया लहरि तरंग ।
भेरै बैठा ऊबरै, सत साधू के संग ॥ १३ ॥
दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति मांहिं ।
दादू सहजैं पाइये, कबहूं निर्फल नांहिं ॥ १४ ॥
दादू नेड़ा परम पद, करि साधू का संग ।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागै रंग ॥ १५ ॥
दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति होइ ।
दादू सहजैं पाइये, स्यावत सन्मुष सोइ ॥ १६ ॥
दादू नेड़ा परम पद, साधू जन के साथ ।
दादू सहजैं पाइये, परम पदारथ हाथ ॥ १७ ॥
साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि का भाव ।
दादू संगति साध की, जब हरि करै पसाव ॥ १८ ॥

साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि का हेत ।
दादू संगति साध की, कृपा करै तब देत ॥ १६ ॥
साध मिलै तब ऊपजै, प्रेम भगति रुचि होइ ।
दादू संगति साध की, दया करि देवै सोइ ॥ २० ॥
साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि की प्यास ।
दादू संगति साध की, अविगत पुरवै आस ॥ २१ ॥
साध मिलै तब हरि मिलै, सब सुष आनंद मूर ।
दादू संगति साध की, राम रह्या भरपूर ॥ २२ ॥

॥ चौप चर्चा ॥

परम कथा उस एक की, दूजा नांहीं आन ।
दादू तन मन लाइ करि, सदा सुरति रसपान ॥ २३ ॥

॥ साध सपरस (स्पर्श) बिनती ॥

प्रेम कथा हरि की कहै, करै भगति ल्यौ लाइ ।
पिवै पिलावै रामरस, सो जन मिलवौ आइ ॥ २४ ॥
दादू पिवै पिलावै रामरस, प्रेम भगति गुण गाइ ।
नित प्रति कथा हरि की करै, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥२५॥
आन कथा संसार की, हमहिं सुणावै आइ ।
तिस का मुष दादू कहै, दई न दिषाई ताहि ॥ २६ ॥
दादू मुष दिषलाई साध का, जे तुमहीं मिलवै आइ ।
तुम मांही अंतर करै, दई न दिषाई ताहि ॥ २७ ॥
जब दरवौ तब दीजियौ, तुम पै मांगौं येहु ।

(२७) दिषलाई = दिखलाइये । दिषाई = दिखाइये ॥

दिन प्रति दर्सन साध का, प्रेम भगति दिढ़ देहु ॥ २८ ॥
साध सपीड़ा मन करै, सतगुर सबद सुणाइ ।
मीरां मेरा मिहरि करि, अंतर बिरह उपाइ ॥ २९ ॥

॥ सज्जन ॥

ज्यौं ज्यौं होवै त्यौं कहै, घटि बधि कहै न जाइ ।
दादू सो सुध आतमा, साधू परसै आइ ॥ ३० ॥

॥ सतसंग महिमा ॥

साहिब सौं सन्मुष रहै, सतसंगति मैं आइ ।
दादू साधू सब कहैं, सो निरफल क्यूं जाइ ॥ ३१ ॥
ब्रह्म गाइ त्रिय लोक मैं, साधू अस्थन पान ।
मुष मारग अमृत झरै, कत ढूंढै दादू आन ॥ ३२ ॥
दादू पाया प्रेम रस, साधू संगति मांहि ।
फिरि फिरि देषै लोक सब, यहु रस कतहूं नांहिं ॥ ३३ ॥
दादू जिस रस कूं मुनियर मरैं, सुरनर करैं कलाप ।
सो रस सहजैं पाइये, साधू संगति आप ॥ ३४ ॥
संगति बिन सीझै नहीं, कोटि करै जे कोइ ।
दादू सतगुर साध बिन, कबहूं सुध न होइ ॥ ३५ ॥

---

(२९) साध "सतगुर सबद" (परमोपदेश) सुनाय कर, मन में मुमुक्षुता दृढ़ करै, जिस से परमात्मा से मिलने की चाह उत्पन्न हो ॥

(३२) अस्थन = स्तन = थन = गाय के थन ॥

अमी पताल न पाइये, ना ससि संग अकास ।
प्रत्यषि अमी जु पाइये, जैमल साधू पास ॥

दादू नेड़ा दूर थैं, अविगत का आराध ।
मनसा बाचा कर्मना, दादू संगति साध ॥ ३६ ॥
सर्ग न सीतल होइ मन, चंद न चंदन पास ।
सीतल संगति साध की, कीजै दादू दास ॥ ३७ ॥
दादू सीतल जल नहीं, हेम न सीतल होइ ।
दादू सीतल संत जन, राम सनेही सोइ ॥ ३८ ॥

॥ साध बे परवाही ॥

दादू चंदन कदि कह्या, अपना प्रेम प्रकास ।
दह दिसि परगट ह्वै रह्या, सीतल गंध सुबास ॥ ३९ ॥
दादू पारस कदि कह्या, मुझ थी कंचन होइ ।
पारस परगट ह्वै रह्या, साच कहै सब कोइ ॥ ४० ॥

॥ नर बिडरूप (हठीजन) ॥

तन नहिं भूला, मन नहिं भूला, पंच न भूला प्राण ।
साध सबद क्यूं भूलिये, रे मन मूढ़ अजाण ॥ ४१ ॥

॥ साध महिमा ॥

रत्न पदारथ माणिक मोती, हीरौं का दरिया ।
चिंतामणि चित राम धन, घट अमृत भरिया ॥ ४२ ॥
समर्थ सूरा साध सो, मन मस्तक धरिया ।
दादू दर्सन देषतां, सब कारिज सरिया ॥ ४३ ॥
धरती अंबर राति दिन, रवि ससि नांवैं सीस ।
दादू बलि बलि वारणे, जे सुमिरैं जगदीस ॥ ४४ ॥
चंद सूर सिजदा करैं, नांव अलह का लेंइ ।

दादू जिमीं असमान सब, उन पावौं सिर देंइ ॥ ४५ ॥
जे जन राते राम सौं, तिन की मैं बलि जांव़ ।
दादू उन पर व़ारणे, जे लागि रहे हरि नांव़ ॥ ४६ ॥

॥ साध पारिष लष्यन ॥

जे जन हरि के रंगि रंगे, सो रंग कदे न जाइ ।
सदा सुरंगे संत जन, रंग मैं रहे समाइ ॥ ४७ ॥
दादू राता राम का, अविनासी रंग मांहिं ।
सब जग धोबी धोइ मरै, तौभी छूटै नांहिं ॥ ४८ ॥
साहिब किया सो क्यौं मिटै, सुंदर सोभा रंग ।
दादू धोव़ै बाव़रे, दिन दिन होइ सुरंग ॥ ४९ ॥

॥ साध परमार्थी (परोपकारी) ॥

परमारथ कौं सब किया, आप सवारथ नांहिं ।
परमेसुर परमारथी, कै साधू कलि मांहिं ॥ ५० ॥
पर उपगारी संत सब, आये इहि कलि मांहिं ।
पिव़ैं पिलावैं रामरस, आप सवारथ नांहिं ॥ ५१ ॥
पर उपगारी संत जन, साहिब जी तेरे ।
जाती देषी आत्मा, राम कहि टेरे ॥ ५२ ॥
चंद सूर पाव़क पव़न, पाणी का मत सार ।
धरती अंबर राति दिन, तरव़र फलैं अपार ॥ ५३ ॥
छाजन भोजन परमारथी, आतम देव अधार ।
साधू सेव़ग राम के, दादू पर उपगार ॥ ५४ ॥

॥ साध साषीभूत ॥

जिस का तिस कौं दीजिये, सुकृत परउपगार ।
दादू सेवग सो भला, सिरि नहिं लेवै भार ॥ ५५ ॥
परमारथ कूं राषिये, कीजै परउपगार ।
दादू सेवग सो भला, निरंजन निरकार ॥ ५६ ॥
सेवा सुकृत सब गया, मैं मेरा मन मांहिं ।
दादू आपा जब लगै, साहिब मानै नांहिं ॥ ५७ ॥

॥ साध पारष लष्यन ॥

साध सिरोमणि सोधिले, नदी पूरि परि आइ ।
सजीवनि साम्हां चढै, दूजा बहिया जाइ ॥ ५८ ॥

॥ सज्जन दुर्जन ॥

जिन के मस्तकि मणि बसै, सो सकल सिरोमणि अंग ।
जिन के मस्ताकि माणि नहीं, ते विष भरे भवंग ॥५९॥

---

(५६) दृष्टांत, दोहा—गोरष ग्यारह बेर बिक्यो, परमारथ के काज ।
बिक्यो मुरतज़ा अली मरद, बार अठारह साज ॥

(५८) संसाररूपी नदी है, तिस में विषयरूपी प्रवाह है, जैसे मछली प्रवाह को तोड़ती हुई सामने चढ़ती है तैसे जो विषयों में अनुराग त्याग कर संसार के प्रवाह के विरुद्ध चलते हैं सोई सजीवन हैं । अन्य संसार सागर में बहे जाते हैं ॥

(५९) यहां सज्जन और दुर्जन में फर्क उनके ज्ञान पर रक्खा है, तिस में दृष्टांत सर्प का दिया है । अर्थात् जैसे मणिवाला सर्प शिरोमण होता है तैसे ज्ञानवान अथवा भक्तिवान संत पूजनीय है ॥

ठठाभषर सौं चली, माई दरसन काज ।
यह साखी तासौं कही, गुर दादू सिरताज ॥

॥ साध महिमा ॥

दादू इस संसार मैं, ये द्वै रतन अमोल ।
इक सांई अरु संतजन, इन का मोल न तोल ॥ ६० ॥
दादू इस संसार मैं, ये द्वै रहे लुकाइ ।
रामसनेही संतजन, औ बहुतेरा आइ ॥ ६१ ॥
सगे हमारे साध हैं, सिरपर सिरजनहार । (१–१४०)
दादू सतगुर सो सगा, दूजा धंध बिकार ॥ ६२ ॥ ख ग घ ङ

॥ साध पारिष लष्यन ॥

जिन के हिरदै हरि बसै, सदा निरंतर नांउं ।
दादू साचे साध की, मैं बलिहारी जांउं ॥ ६३ ॥
साचा साध दयाल घट, साहिब का प्यारा ।
राता माता रामरस, सो प्राण हमारा ॥ ६४ ॥

॥ सज्जन विपरीत (संसार से) ॥

दादू फिरता चाक कुंभार का, यूं दीसै संसार ।
साधू जन निहचल भये, जिन के राम अधार ॥ ६५ ॥

॥ सतसंग महिमा ॥

जलती बलती आत्मा, साध सरोवर जाइ ।
दादू पीवै रामरस, सुख मैं रहै समाइ ॥ ६६ ॥

॥ कृत्म कर्ता ॥

कांजी मांहैं भेलि करि, पीवै सब संसार ।
कर्ता केवल निर्मला, को साधू पीवणहार ॥ ६७ ॥

---

(६७) विषय भोग आत्मक कांजी में मिलाकर संसारी जन रामरस पीते हैं । पर कोई एक बिरला साधू जन निर्मल रामरस पीता है ॥

॥ संगति कुसंगति फल ॥

दादू असाध मिलै अंतर पड़ै, भाव भगति रस जाइ ।
साध मिलै सुष ऊपजै, आनन्द अंगि न माइ ॥ ६८ ॥
दादू साधू संगति पाइये, राम अमी फल होइ ।
संसारी संगति पाइये, विष फल देवै सोइ ॥ ६९ ॥
दादू सभा संत की, सुमति उपजै आइ ।
साकत की सभा बैसतां, ज्ञान काया थैं जाइ ॥ ७० ॥

॥ जगजन विपरीत ॥

दादू सब जग दीसै एकला, सेवग स्वामी दोइ ।
जगत दुहागी राम बिन, साध सुहागी सोइ ॥ ७१ ॥
दादू साधू जन सुषिया भये, दुनिया कूं बहु दंद ।
दुनी दुषी हम देषतां, साधन सदा अनंद ॥ ७२ ॥
दादू देषत हम सुषी, सांई के संगि लागि ।
यौं सो सुषिया होइगा, जाके पूरे भाग ॥ ७३ ॥

॥ रस ॥

दादू मीठा पीवै रामरस, सोभी मीठा होइ ।
सहजैं कड़वा मिटि गया, दादू निर्विष सोइ ॥ ७४ ॥

॥ साध पारष लष्यन ॥

दादू अंतरि एक अनंत सूं, सदा निरंतर प्रीति ।

---

(६८) अंतर = भेद, फरक, विपरीतभाव । न माइ = न अमावै ॥
(७१) सब जग राम के भजन बिना अकेला दुहागी प्रतीत होता है, सेवक (भक्त) राम सहित सुहागी है ॥
(७२) हम देषतां = हमारे देखते हुये ।

जिहि प्राणी प्रीतम बसै, सो बैठा त्रिभवन जीति ॥७५॥

॥ साध महिमा माहात्म ॥

दादू मैं दासी तिंहिं दास की, जिंहिं सांगि षेलै पीव ।
बहुत भांति करि वारणै, तापरि दीजै जीव ॥ ७६ ॥ ख

॥ भरम विधूसण ॥

दादू लीला राजा राम की, षेलैं सब ही संत । (१३–१३१)
आपा पर एकै भया, छूटी सबै भरंत ॥ ७७ ॥

॥ जगजन विपरीत ॥

दादू आनंद सदा अडोल सूं, राम सनेही साध ।
प्रेमी प्रीतम कूं मिलै, यहु सुष अगम अगाध ॥ ७८ ॥

॥ पुरुष प्रकाशी ॥

यहु घट दीपक साध का, ब्रह्म जोति परकास । (१२–११६)
दादू पंषी संत जन, तहां परैं निज दास ॥ ७९ ॥

---

(७५) अपने अंतर (भीतर) जो एक अनंत परमात्मा से सदा प्रीति रखता है, सो त्रिभुवन को जीति बैठा ॥

(७७) दृष्टांत—टौंक पधारे महोच्छय, आप लगाये भोग ।
तब सिष पूछी जब कही, या साषी यह जोग ॥

टौंक में एक महोत्सव था, वहां भोजन सामग्री भीड़ के लिये कम थी । दयालजी ने भोग लगाया तौ सामग्री अटूट हो गई, इस का भेद टीलाजी (दयालजी के शिष्य) ने पूछा, उस के उत्तर में यह साखी दयालजी ने कही ॥

(७९) ब्रम्ह जोति का प्रकाश साधुओं का दीपक है, जिस में पतंगों की तरह संत जन (निजदास) जा पड़ते हैं, अर्थात् लय लगाते हैं ॥

घर बन मांहैं राषिये, दीपक जोति जगाइ ।
दादू प्राण पतंग सब, जहं दीपक तहं जाइ ॥ ८० ॥
घर बन मांहैं राषिये, दीपक जलता होइ ।
दादू प्राण पतंग सब, जाइ मिलैं सब कोइ ॥ ८१ ॥
घर बन मांहैं राषिये, दीपक प्रगट प्रकास ।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं उस पास ॥ ८२ ॥
घर बन मांहैं राषिये, दीपक जोति सहेत ।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं उस हेत ॥ ८३ ॥
जिंहिं घटि परगट राम है, सो घट तज्या न जाइ ।
नैंनहुं मांहैं राषिये, दादू आप नसाइ ॥ ८४ ॥
जिंहिं घटि दीपक राम का, तिंहिं घटि तिमर न होइ । (५-११६, १२-११२)
उस उजियारे जोति के, सब जग देषै सोइ ॥ ८५ ॥ खगघड,

॥ साध अबिहड़ ॥

कबहुं न बिहड़ै सो भला, साधू दिढ मति होइ ।
दादू हीरा एक रस, बांधि गांठड़ी सोइ ॥ ८६ ॥

(८०-८३) ऐसी प्रकाश रूपी वृत्ति को लगाते हुये, चाहे घर में रहो चाहे बन में, प्राण मनादि सब पतंगों की तरह उस जोति में आ पड़ेंगे ॥

(८४) जिस साधु की वृत्ति में ब्रम्ह जोति का साक्षात्कार है उस वृत्ति को छोड़ना न चाहिये, किंतु उस प्रकाश को नैनों (अंतर्मुख वृत्ति) के सन्मुख रखना चाहिये, आपा को नसाइ (त्याग) कर के ॥

(८६) ऊपर कही हुई वृत्ति से कभी अलग न हो, सो भला साधु इस साधन में दृढ़ रहे और हीरा रूपी ब्रम्ह प्रकाश में एक रस लय लगाकर अमूल्य तत्व का मालिक हो ॥

॥ साध पारष लष्यन ॥

गरथ न बांधै गांठड़ी, नहिं नारी सौं नेह ।
मन इंद्री अस्थिर करै, छाड़ि सकल गुण देह ॥ ८७ ॥
निराकार सौं मिलि रहै, अषंड भगति करि लेह ।
दादू क्यौंकर पाइये, उन चरणौं की षेह ॥ ८८ ॥
साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
दादू पंक परसै नहीं, कर्म न लागै कोइ ॥ ८९ ॥
साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
सुनि सरोवर हंसला, दादू बिरला कोइ ॥ ९० ॥
साहिब का उनहार सब, सेवग मांहैं होइ ।
दादू सेवग साध सो, दूजा नाहीं कोइ ॥ ९१ ॥
जब लग नैंन न देषिये, साध कहैं ते अंग ।
तब लग क्यौं करि मानिये, साहिब का परसंग ॥ ९२ ॥
दादू सोइ जन साधू सिध सो, सोई सकल सिरमौर ।
जिहिं के हिरदै हरि बसै, दूजा नाहीं और ॥ ९३ ॥
दादू औगुण छाडै गुण गहै, सोई सिरोमणि साध ।
गुण औगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥ ९४ ॥

---

(८७) दृष्टांत, दोहा—गल मैं पहरै गूदड़ी, गांठ न बांधै दाम ।
शेष भावदीं (वहाउद्दीन) यौं कहै, मैं तिसकौं करौं सलाम ॥

(९१) पीछे ८८ वीं साखी में जो कहा है कि साधू निराकार परमेश्वर में लयलीन रहे । उस अवस्था को प्राप्त हुये पीछे साधु जिस दशा को प्राप्त होता है सो इस साखी से बताते हैं । साहेब में लयलीन साधु साहिब की उनहार (सदृश) हो जाता है, परमेश्वर से वह दूजा (न्यारा) नहीं रहता ॥

॥ जगजन विपरीत ॥

दादू सींधव फटक पषाण का, ऊपरि एकै रंग ।
पानी मांहैं देषिये, न्यारा न्यारा अंग ॥ ९५ ॥
दादू सींधव कै आपा नहीं, नीर षीर परसंग ।
आपा फटक पषाण कै, मिलै न जल कै संग ॥ ९६ ॥
दादू सब जग फटक पषाण है, साधू सींधव होइ ।
सींधव एकै ह्वै रह्या, पानी पत्थर दोइ ॥ ९७ ॥

॥ साध परमार्थी ॥

को साधू जन उस देस का, आया इहि संसार ।
दादू उस कौं पूंछिये, प्रीतम के समचार ॥ ९८ ॥
समाचार सति पीव़ के, को साध कहैगा आइ ।
दादू सीतल आतमा, सुष मैं रहै समाइ ॥ ९९ ॥
साध सबद सुष बरषि हैं, सीतल होइ सरीर ।
दादू अंतरि आत्मा, पीवै हरि जल नीर ॥ १०० ॥
दादू दत दरबार का, को साधू बांटै आइ ।
तहां रामरस पाइये, जहं साधू तहं जाइ ॥ १०१ ॥

॥ चौप चर्चा ॥

दादू सुरता सनेही राम का, सो मुझ मिलवहु आणि ।
तिस आगैं हरिगुण कथूं, सुनत न करई काणि ॥ १०२ ॥

॥ साध परमार्थी ॥

दादू सबही मृतक समान हैं, जीया तबहीं जाणि ।

---

(१०२) न करई काणि=खोट व कसर न निकालै ॥

दादू छांटा अमी का, को साधू बाहै आणि ॥ १०३ ॥
सबही मृत्तक व्है रहे, जीवैं कौन उपाइ ।
दादू अमृत रामरस, को साधू सींचै आइ ॥ १०४ ॥
सबही मृत्तक मांहि हैं, क्यौं करि जीवैं सोइ ।
दादू साधू प्रेमरस, आणि पिलावै कोइ ॥ १०५ ॥
सबही मृत्तक देखिये, किहिं विधि जीवै जीव ।
साध सुधारस आणि करि, दादू बरिषै पीव ॥ १०६ ॥
हरिजल बरिषे, बाहिरा, सूके काया षेत ।
दादू हरिया होइगा, सींचणहार सुचेत ॥ १०७ ॥

॥ कुसंगति ॥

गंगा जमुना सुरसती, मिलैं जब सागर मांहि ।
षारा पानी ह्वै गया, दादू मीठा नांहिं ॥ १०८ ॥
दादू राम न छाड़िये, गहिला तजि संसार ।
साधू संगति सोधि ले, कुसंगति संग निवार ॥ १०९ ॥
दादू कुसंगति सब परहरी, मात पिता कुल कोइ ।
सजन सनेही बंधवा, भावै आपा होइ ॥ ११० ॥

---

(१०३) कोई साधू उपदेशरूपी अमृत का छिड़काव करै, तब मनुष्य जीवै ॥

(१०७) हरि जल (सुधारस= आत्मोपदेश) के बरसते ही बाहिरा (वायु = काम क्रोध तृष्णा ईर्षादि) करके सूखे हुये काया रूपी खेत, हरे हो जांयगे, यदि सींचने वाला (साधक) सचेत हो ॥

(११०) दृष्टांत–भरथ मात कौं तजि दियौ, पिता तज्यौ प्रहलाद ।
गोप्यां पति, नुज लंकपती, अज आयो तजि साध ॥

अर्थ—जैसे भरथ ने माता को त्यागा, प्रहलाद ने पिता को, गोपियों ने

अज्ञान मूर्ष हितकारी, सज्जनो समो रिपुः ।
ज्ञात्वा त्यजंति ते, निरामयी मनोजितः ॥ १११ ॥
कुसंगति केते गये, तिन का नांव न ठांव ।
दादू ते क्यौं ऊधरैं, साध नहीं जिस गांव ॥ ११२ ॥
भाव भगति का भंग करि, बटपारे मारहिं वाट ।
दादू द्वारा मुकति का, षोलैं जड़ैं कपाट ॥ ११३ ॥

॥ सतसंग महिमा माहात्म ॥

साध संगति अंतर पड़ै, तौ भागैगा किस ठौर ।
प्रेम भगति भावै नहीं, यहु मन का मत और ॥ ११४ ॥
दादू राम मिलन के कारणे, जे तूं धरा उदास ।
साधू संगति सोधि ले, राम उन्हौं के पास ॥ ११५ ॥

॥ पुरष प्रकासी (संतमहिमा) ॥

ब्रह्मा संकर सेस मुनि, नारद ध्रू सुषदेव ।
सकल साध दादू सही, जे लागे हरि सेव ॥ ११६ ॥
साध कवल हरि बासनां, संत भवर संग आइ ।
दादू परिमल ले चले, मिले राम कौं जाइ ॥ ११७ ॥

॥ साध सजन ॥

दादू सहजैं मेला होइगा, हम तुम हरि के दास ।

अपने पतियों को, रावण को विभीषण ने, तैसे आज संपूर्ण कुटुम्ब को त्याग कर साधू आया ॥

(१११) मूर्ख मित्र और सज्जन बैरी । इन दोनों को समान जानकर मोह से रहित मन को जीतने वाले त्याग देते हैं ॥

अंतरगति तौ मिलि रहे, फुनि परगट परकास ॥ ११८ ॥

॥ साध महिमा ॥

दादू मम सिर मोटे भाग, साधूं का दर्सन किया ।
कहा करै जम काल, राम रसाइण भरि पिया ॥ १२१ ॥

॥ साध समर्थता ॥

दादू एता अविगत आप थैं, साधूं का अधिकार ।
चौरासी लष जीव का, तन मन फेरि संवार ॥ १२२ ॥
विष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी ।
बांका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी ॥ १२३ ॥
दादू ऊरा पूरा करि लिया, षारा मीठा होइ ।
फूटा सारा करि लिया, साध बमेकी सोइ ॥ १२४ ॥
बंध्या मुक्ता करि लिया, उरझ्या सुरझि समान ।

---

(११८) दृष्टांत—जगजीवनजी टहलड़ी, आंधी थे गुरदेव ।
ताहि समै साषी लिषी, जगजीवन प्रति भेव ॥

(११९-२०) देखौ ४-२६२ और २६६ । ख ग घ ङ ॥

(१२१) दृष्टांत दोहा—आप निराणे गुहा में, संतन दियो दिदार ।
तब या साषी पद कह्यौ, राम कली मधसार ॥

(१२३) विषयासक्त रूपी विष के त्याग से परमात्मरूपी अमृत प्राप्त हुआ । मन की समता से संसार की जलनरूपी पावक के शांत हुये, पानी रूपी शीतलता प्राप्त हुई । इन प्रकारों से जिस ने टेढ़े मार्ग को सीधा कर लिया सो साधु विज्ञानी है ॥

(१२४-१२६) इन तीनों साषियों का भी संसाररूपी बंधन से मुक्त होकर परमानन्द की प्राप्ति तात्पर्य है । सर्व प्रकार से मलीन अंतःकरण को निर्मल करके परमात्मा में सुरति को स्थायी करना ही परम पुरुषार्थ है ॥

बैरी मिंता करि लिया, दादू उत्तिम ज्ञान ॥ १२५ ॥
झूठा साचा करि लिया, काचा कंचनसार ।
मैला निर्मल करि लिया, दादू ज्ञान विचार ॥ १२६ ॥

॥ अमिट पाप ॥

काया कर्म लगाइ करि, तीरथ धोवै आइ ।
तीर्थ मांहै कीजिये, सो कैसें करि जाइ ? ॥ १२७ ॥
जहं तिरिये तहं डूबिये, मन मैं मैला होइ ।
जहं छूटै तहं बंधिये, कपटि न सीझै कोइ ॥ १२८ ॥

॥ सतसंग महिमा ॥

दादू जब लग जीविये, सुमिरण संगति साध ।
दादू साधू राम बिन, दूजा सब अपराध ॥ १२९ ॥

इति साध कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १५ ॥

अथ मधि कौ अङ्ग ॥ १६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू द्वै पष रहिता सहज सो, सुष दुष एक समान ।
मरै न जीवै सहज सो, पूरा पद निर्वाण ॥ २ ॥
सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग । (१०—५०)
ताता सीला सामि भया, तब दादू एकै अंग ॥३॥ (ख ग घ ङ)

सुष दुष मनि मानै नहीं, राम रंगि राता ।
दादू दून्यूं छांडि सब, प्रेम रसि माता ॥ ४ ॥
मति मोटी उस साध की, द्वै पष रहित समान ।
दादू आपा मेटि करि, सेवा करै सुजान ॥ ५ ॥
कछू न कहावै आप कौं, काहू संगि न जाइ ।
दादू निर्पष ह्वै रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ६ ॥
सुष दुष मनि मानै नहीं, आपा पर सम भाइ ।
सो मन मन करि सेविये, सब पूरण ल्यौ लाइ ॥ ७ ॥
नां हम छाडैं नां गहैं, ऐसा ज्ञान बिचार ।
मधि भाइ सेवैं सदा, दादू मुकति दुवार ॥ ८ ॥
सहज सूंनि मन राषिये, इन दून्यूं के मांहिं । (७–९)
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भै नांहिं ॥९॥ (ख ग घ ङ)
आपा मेटै मृत्तिका, आपा धरै अकास ।
दादू जहं जहं द्वै नहीं, मधि निरंतरि बास ॥ १० ॥

(५) मति मोटी = मति श्रेष्ठ ॥

(७) "सो मन" = आपा पर में सम बुद्धि ॥

(१०) संतजन मृतिकारूपी शरीर में आपा (अध्यास, गौरोहं, स्थूलोहं इत्यादि) को त्यागते हैं, आकाश रूपी व्यापक ब्रह्मरूप आत्मा में आपा धरते हैं, अर्थात् "ब्रह्माहमस्मि" वृत्ति का अभ्यास करते हैं। सो दयालजी कहते हैं कि जहां दोनौं-गृहण और त्यागरूप वृत्ति नहीं हैं, सोई मध्य निरंतर बास (स्व स्वरूप में स्थिति) है ॥

अथवा भूमि आपा रहित है और आकाश आपा सहित है । तहां संत जनौं के हृदय में वह दोनौं ही पक्ष नहीं हैं किंतु वे स्व स्वरूप ही में वर्तते हैं ॥

॥ ध्येय-परमस्थान निरूपण ॥

नहीं मृतक नहिं जीवता, नहिं आवै नहिं जाइ । (६–२२)
नहिं सूता नहिं जागता, नहिं भूषा नहिं षाइ ॥ ११ ॥ खगघङ ॥

दादू इस आकार थैं, दूजा सूषिम लोक ।
ताथैं आगैं और है, तहंवां हरिष न सोक ॥ १२ ॥

दादू हद छाड़ि बेहद मैं, निर्भै निर्पष होइ ।
लागि रहै उस एकसौं, जहां न दूजा कोइ ॥ १३ ॥

दादू दूजै अंतर होत है, जिनि आणै मन मांहिं । (८–६३)
तहां ले मन कौं राषिये, जहं कुछ दूजा नाहिं ॥ १४ ॥ खगघङ ॥

निराधार घर कीजिये, जहं नाहीं धरणि अकास ।
दादू निहचल मन रहै, निर्गुण के बेसास ॥ १५ ॥

मन चित मनसा आतमा, सहज सुरति ता मांहिं । (४–२८६)
दादू पंचूं पूरिले, जहं धरती अंबर नांहिं ॥ १६ ॥ खगघङ ॥

अधर चाल कबीर की, आसंघी नहिं जाइ ।
दादू डाकै मृग ज्यूं, उलटि पड़ै भुइ आइ ॥ १७ ॥

---

(१२) स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि से परे जो चेतन है वह हर्ष शोक से रहित है ॥

(१३) "हद्द" के बदले "हद" मूल पुस्तकों से लिखा है । हद्द एक तो हिंदु मुसलमान की वा अन्य मतवादी की त्याग कर स्वतंत्र होना । दूसरी हद्द पिंड ब्रम्हंड को छोड़ कर शुद्ध ब्रम्ह में लयलीन होना ॥

(१५) निराधार = परमात्मा जो धरती और आकाश दोनौं से निराला है ॥

(१७) कबीर की चाल अधर (अनाधार) है, सो कोई साधारण तौर से चल नहीं सकता । दादूजी कहते हैं कि जो कोई कूदै भी तो मृग की तरह उछल कर नीचे ही पड़ता है ॥

दादू रहणि कबीर की, कठिन बिषम यहु चाल ।
अधर एकसौं मिलि रह्या, जहां न झंपै काल ॥ १८ ॥
निराधार निज भगति करि, निराधार निज सार ।
निराधार निज नांव ले, निराधार निरकार ॥ १९ ॥
निराधार निज रामरस, को साधू पीवणहार ।
निराधार निर्मल रहै, दादू ज्ञान बिचार ॥ २० ॥
जब निराधार मन रहि गया, आत्म के आनंद ।
दादू पीवै राम रस, भेटै परमानंद ॥ २१ ॥

॥ माया ॥

दुह बिचि राम अकेला आपै, आवण जाण न देई ।
जहं के तहं सब राषे दादू, पारि पहूंते सेई ॥ २२ ॥

॥ मधि निर्पष ॥

चलु दादू तहं जाइये, जहं मरै न जीवै कोइ ।
आवागवन भै को नहीं, सदा एक रस होइ ॥ २३ ॥
चलु दादू तहं जाइये, जहं चंद सूर नहिं जाइ ।
राति दिवस की गमि नहीं, सहजैं रह्या समाइ ॥ २४ ॥

दृष्टांत—कोउ पंथधारी कही, चलें कबीर जु चाल ।
तब साषी स्वामी कही, मूढ़ बसे क्यूं ताल ॥

(२१) जब निराधार परमात्मा में मन स्थिर हो जाय, तब आत्मा को आनंद हो, जीव रामरस पीवै और परमानंद को प्राप्त हो ॥

(२२) माया जन कै बीच हरि, भिन्न २ गुन चीन ।
जगजीवन सोइ ऊबरै, जिन परि किर्पा कीन ॥

अर्थ—माया और संत के बीच रामजी आड़े होकर संत के मन को माया में जाने नहीं देते, तब संत पार पहुंचता है ॥

चलु दादू तहं जाइये, माया मोह थैं दूरि ।
सुष दुष को व्यापै नहीं, अविनासी घर पूरि ॥ २५ ॥
चलु दादू तहं जाइये, जहं जम जौरा को नांहिं ।
काल मीच लागै नहीं, मिलि रहिये ता मांहिं ॥ २६ ॥
एक देस हम देषिया, तहं रुति नहिं पलटै कोइ ।
हम दादू उस देस के, जहं सदा एक रस होइ ॥ २७ ॥
एक देस हम देषिया, जहं बस्ती ऊजड़ नांहिं ।
हम दादू उस देस के, सहज रूप ता मांहिं ॥ २८ ॥
एक देस हम देषिया, नहिं नेड़े नहिं दूरि ।
हम दादू उस देस के, रहे निरंतरि पूरि ॥ २९ ॥
एक देस हम देषिया, जहं निस दिन नाहीं घाम ।
हम दादू उस देस के, जहं निकटि निरंजन राम ॥ ३० ॥
बारह मासी नीपजै, तहां किया परवेस ।
दादू सूका ना पड़ै, हम आये उस देस ॥ ३१ ॥
जहं बेद कुरान की गमि नहीं, तहां किया परवेस ।
तहं कछु अचिरज देषिया, यहु कुछ औरै देस ॥ ३२ ॥

॥ घर बन ॥

ना घरि रह्या न बन गया, ना कुछ किया कलेस । (१–७४)
दादू मनहीं मन मिल्या, सतगुर के उपदेस ॥ ३३ ॥ खगघड ॥
काहे दादू घरि रहै, काहे बन षंडि जाइ ।
घर बन रहिता राम है, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥

(२६) जम जौरा को नांहि = काल जरावस्थादि कोई बिकार नहीं हैं ॥
(३१) बारह मासी नीपजै = बारहु महीने जहां फसल लगी रहे ॥

दादू जिनि प्राणी करि जाणिया, घर बन एक समान ।
घर मांहैं बन ज्यौं रहै, सोई साध सुजान ॥ ३५ ॥
सब जग मांहैं एकला, देह निरंतर बास ।
दादू कारणि राम के, घर बन मांहि उदास ॥ ३६ ॥
घर बन मांहैं सुष नहीं, सुष है सांई पास ।
दादू तासौं मन मिल्या, इन थैं भया उदास ॥ ३७ ॥
नां घरि भला न बन भला, जहां नहीं निज नांव (२–७८)
दादू उनमन मन रहै, भला त सोई ठांव ॥३८॥ खगधड॥
बैरागी बन मैं बसै, घरबारी घर मांहिं ।
राम निराला रहि गया, दादू इन मैं नांहिं ॥ ३९ ॥

॥ सुमिरण नाम निरसंसै ॥

दीन दुनी सदिके करूं, टुक देषण दे दीदार (३–४०)
तन मन भी छिन छिन करूं, भिसत दोजग भी वार ॥४०॥ खगधड
दादू जीवन मरण का, मुझ पछितावा नांहिं ।
मुझ पछितावा पीव का, रह्या न नैनहुं मांहिं ॥ ४१ ॥
सुरग नरक संसै नहीं, जीवन मरण भै नांहिं ।
राम विमुष जे दिन गये, सो सालैं मन मांहिं ॥ ४२ ॥
सुरग नरक सुष दुष तजे, जीवन मरण नसाइ ।
दादू लोभी राम का, को आवै को जाइ ॥ ४३ ॥

॥ मधि निर्पष ॥

दादू हिंदू तुरक न होइबा, साहिब सेती काम ।
षट दर्सन के संगि न जाइबा, निर्पष कहिबा राम ॥४४॥

(४४) साहिब = परमात्मा । षट दर्सन = जोगी जंगमादि ॥

षट दर्सन दून्यूं नहीं, निरालंब निज बाट ।
दादू एकै आसिरै, लंघै औघट घाट ॥ ४५ ॥
दादू ना हम हिंदू होंहिंगे, ना हम मुसलमान ।
षट दर्सन मैं हम नहीं, हम राते रहिमान ॥ ४६ ॥
जोगी जंगम सेवड़े, बुध संन्यासी सेष । (१४–३२)
षट दर्सन दादू राम बिन, सबै कपट के भेष ॥४७॥ खगषंड॥
दादू अलह राम का, द्वै पष थैं न्यारा ।
रहिता गुण आकार का, सो गुरू हमारा ॥ ४८ ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू मेरा तेरा बावरे, मैं तैं की तजि बाणि ।
जिन यहु सब कुछ सिरजिया, करि ताही का जाणि ॥४९॥
दादू करणी हिंदू तुरक की, अपणी अपणी ठौर ।
दुहुं बिचि मारग साध का, यहु संतौं की रह और ॥५०॥
दादू हिंदू तुरक का, द्वै पष पंथ निवारि ।
संगति साचे साध की, सांई कौं संभारि ॥ ५१ ॥
दादू हिंदू लागे देहुरै, मुसलमान मसीति ।
हम लागे एक अलेष सौं, सदा निरंतर प्रीति ॥ ५२ ॥
न तहां हिंदू देहुरा, न तहां तुरक मसीति ।
दादू आपै आप है, नहीं तहां रह रीति ॥ ५३ ॥

---

(४८) राम राम हिंदू कहैं, तुरक रहीम रहीम ।
जगंनाथ या नांव का, पावैं मरम फ़हीम ॥
(४९) अनवय–ताही का जाणि करि, मैं तैं की तज बाणि ॥

यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुर दिया दिषाइ । (१–७५)
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥ ५४ ॥ गधङ॥
दून्यूं हाथी ह्वै रहे, मिलि रस पिया न जाइ ।
दादू आपा मेटि करि, दून्यूं रहैं समाइ ॥ ५५ ॥
भैभीत भयानक ह्वै रहे, देष्या निर्पष अंग ।
दादू एकै ले रह्या, दूजा चढ़ै न रंग ॥ ५६ ॥
जाणै बूझै साच है, सब को देषण धाइ ।
चाल नहीं संसार की, दादू गह्या न जाइ ॥ ५७ ॥
दादू पष काहू के ना मिलै, निर्पष निर्मल नांव ।
सांई सौं सनमुष सदा, मुकता सब हीं ठांव ॥ ५८ ॥
दादू जब थैं हम निर्पष भये, सबै रिसाने लोक ।
सतगुर के परसाद थैं, मेरे हरष न सोक ॥ ५९ ॥

---

(५४) मनुष्य शरीर ही मसजिद है और वही शरीर मंदिर । यह दादूजी का कथन है । पालथी मारकर दोनों बांहें ऊंची करने से शरीर मसजिद रूप प्रतीत होता है और हाथों को तले ऊपर पालथी पर रखने से मंदिर रूप हो जाता है । इस प्रकार से दादूजी ने हाथ ऊपर नीचे करके मसीत और मंदिर का रूप शरीर में बतलाया । तात्पर्य यह है आत्मा और परमात्मा दोनों का बास शरीर में है । और परमात्मा की उपासना शरीर के अंदर ही उत्तम रीति की बतलाई है ॥

(५६) दयालजी कहते हैं कि हमारे निर्पक्ष व्यौहार को देख कर हिंदू मूसलमान दोनों भयानक हो रहे हैं; इस अर्थ को आगे ५९ वीं साखी में स्पष्ट रूप से कहते हैं ॥

(५७) लोक रीति के विरुद्ध सच को जान बूझ कर भी कोई ग्रहण नहीं करता ॥

निर्पष ह्वै करि पष गहै, नर्क पड़ैगा सोइ ।
हम निर्पष लागे नांव सौं, कर्ता करै सो होइ ॥ ६० ॥

॥ हरि भरोस ॥

दादू पष काहू के नां मिलै, निहकामी निर्पष साध ।
एक भरोसे राम के, षेलै षेल अगाध ॥ ६१ ॥

॥ मधि ॥

दादू पषा पषी संसार सब, निर्पष बिरला कोइ ।
सोई निर्पष होइगा, जाकै नांव निरंजन होइ ॥ ६२ ॥

अपने अपने पंथ की, सब को कहै बढ़ाइ ।
ताथैं दादू एक सौं, अंतर गति ल्यौ लाइ ॥ ६३ ॥

दादू द्वै पष दूरि करि, निर्पष निर्मल नांव ।
आपा मेटै हरि भजै, ताकी मैं बलि जांव ॥ ६४ ॥

॥ सजीवन ॥

दादू तजि संसार सब, रहै निराला होइ ।
अविनासी के आसरै, काल न लागै कोइ ॥ ६५ ॥

॥ मछर ईर्षा ॥

कलिजुग कूकर कलि मुहां, उठि उठि लागै धाइ ।
दादू क्यूं करि छूटिये, कलिजुग बड़ी बलाइ ॥ ६६ ॥

॥ निंदा ॥

काला मुंह संसार का, नीले कीये पांव ।
दादू तीनि तलाक दे, भावै तीधर जाव ॥ ६७ ॥

दादू भाव हीण जे पृथमी, दया बिहूणा देस ।
भगति नहीं भगवंत की, तहं कैसा परवेस ॥ ६८ ॥

(६८) भक्ति भक्त भगवंत को, जहां नहीं लवलेश ।
जगंनाथ ते त्यागिये, ॥

जे बोलौं तौ चुप कहैं, चुप तौ कहैं पुकार ।
दादू क्यूं करि छूटिये, ऐसा है संसार ॥ ६९ ॥

॥ मधि ॥

न जाणौं, हांजी, चुप गहि, मेटि अग्नि की झाल ।
सदा सजीवनि सुमिरिये, दादू बंचै काल ॥ ७० ॥

॥ पंथा पंथी ॥

पंथि चलैं ते प्राणिया, तेता कुल ब्यौहार ।
निर्पष साधू सो सही, जिन कै एक अधार ॥ ७१ ॥
दादू पंथौं परि गये, बपुरे बारह बाट ।
इन के संगि न जाइये, उलटा अविगत घाट ॥ ७२ ॥

॥ आशय विश्राम ॥

दादू जागे कौं आया कहैं, सूते कौं कहैं जाइ ।
आवण जाणा झूठ है, जहं का तहां समाइ ॥ ७३ ॥

इति मधि कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १६ ॥

---

(७०) काल से बचने के लिये सदा परमात्मा के सुमिरण में लगा रहे। संसार के झगड़ों की आग से बचने के निमित्त चुप रहे या कहे कि मैं नहीं जानता या हां में हां मिला दे । यथा—

चंचल बानी श्रवण सुनि, मुनिजन पकरी मौन ।
साधू छांह सुमेर की, रज्जब डिगै न पौन (से) ॥

(७२) "बपुरे" की जगह "बपड़े" पुस्तक नं० १ और ३ में है ॥

(७३) पुरुष जब सोकर जागता है तब आत्मा नेत्र स्थान में स्थित

अथ सारग्राही कौ अङ्ग ॥ १७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू साधू गुण गहै, औगुण तजै बिकार ।
मान सरोवर हंस ज्यूं, छाडि नीर गहि सार ॥ २ ॥
हंस गियानी सो भला, अंतरि राखै एक ।
विष मैं अमृत काढ़ि ले, दादू बड़ा बमेक ॥ ३ ॥
पहिली न्यारा मन करै, पीछै सहज सरीर ।
दादू हंस विचार सौं, न्यारा कीया नीर ॥ ४ ॥

होता है सो आत्मा का आगमन कहाता है, जब पुरुष सोता है तब स्वप्नावस्था में आत्मा कंठस्थान में होता है और सुषुप्ति में हृदय स्थान में, तिसको निर्गमन कहते हैं, अर्थात् जब सोये पुरुष के नेत्र खुलते हैं तब आत्मा का आना कहाता है जब पुरुष के नेत्र मुंद जाते हैं तब आत्मा गया कहाता है । यह गमनागमन चिदाभास निष्ठ है । "आवण जाणा झूठ है" यह दयालजी ने कूटस्थ दृष्टि को लेकर कहा है । सो कूटस्थ व्यापक है, यही तात्पर्य अंतिम पद (जहं का तहां समाइ) से निकलता है ॥

(२) साधू सब जीवों के गुण तो ग्रहण करै, पर अवगुण किसी के देखै नहीं । तैसे अपने हृदय में भले २ गुण धारण करै और आसुरी संपदा को त्यागता जाय ॥

(४) स्थूल देह में जो आत्मा का अध्यास है उस को पहले निकाल दे, अर्थात् देह में सर्व प्रकार से आपनपौ छोड़ कर अपने आप को नित्य अवि-

आपै आप प्रकासिया, निर्मल ज्ञान अनन्त ।
षीर नीर न्यारा किया, दादू भजि भगवंत ॥ ५ ॥
षीर नीर का संत जन, न्याव नबेरै आइ ।
दादू साधू हंस बिन, भेल सभेलै जाइ ॥ ६ ॥
दादू मन हंसा मोती चुणै, कंकर दीया डारि ।
सतगुर कहि समझाइया, पाया भेद बिचारि ॥ ७ ॥
दादू हंस मोती चुणैं, मानसरोवर जाइ ।
बगुला छीलरी बापुड़ा, चुणि चुणि मछली षाइ ॥ ८ ॥
दादू हंस मोती चुगैं, मानसरोवर न्हाइ ।
फिरि फिरि बैसैं बापुड़ा, काग करंकां आइ ॥ ९ ॥
दादू हंस परषिये, उत्तिम करणी चाल ।
बगुला बेसैं ध्यान धरि, परतषि कहिये काल ॥ १० ॥
उजल करणी हंस है, मैली करणी काग ।
मधिम करणी छाडि सब, दादू उत्तिम भाग ॥ ११ ॥

नाशी सर्व व्यापक सर्वरूप मानै । देह के रहने या न रहने के भय और संशय सब त्याग दे । पीछे शरीर संबंधी सब व्यौहार सहज हो जांयगे ॥

(५) पिछली साखी के अनुसार वर्तते हुये आप ही आप अनंतरूपी आत्मा का निर्मल ज्ञान प्रकाश होगा । देह अध्यास का त्याग और आत्मतत्व में स्थित होना ही सच्चा भजन है ॥

(६) "भेल सभेलै" = सकाम भक्ति, जगतासक्त वृत्ति ।

(७) मोती = आत्मतत्व । कंकर = सांसारिक वैभव ॥

(८) मानसरोवर = सत्संग । बगुला = कपटी ध्यानी । छीलर = तलैयारूपी कुसंग । मछली = विषय भोग ॥

(९) काग = कार्मीजन । करंकां = तुच्छ भोग, निस्सार सूखी खाल ॥

(११) भाग=भाग्य ॥

दादू निर्मल करणी साध की, मैली सब संसार।
मैली मधिम ह्वै गये, निर्मल सिरजनहार ॥ १२ ॥
दादू करणी ऊपरि जाति है, दूजा सोच निवारि।
मैली मधिम ह्वै गये, उजल ऊंच बिचारि ॥ १३ ॥
उजल करणी राम है, दादू दूजा धंध।
का कहिये समझै नहीं, चारौं लोचन अंध ॥ १४ ॥
दादू गऊ बच्छ का ज्ञान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ।
सींग पूंछ पग परहरै, अस्थन लागै धाइ। १५ ॥
दादू काम गाइ के दूध सौं, हाड़ चाम सौं नाहिं।
इहि विधि अमृत पीजिये, साधू के मुष मांहि ॥ १६ ॥

॥ सुमिरण नाम ॥

दादू काम धणी के नांव सौं, लोगन सूं कुछ नाहिं।
लोगन सौं मन ऊपली, मन की मन हीं मांहि ॥ १७ ॥
जाकै हिरदै जैसी होइगी, सो तैसी ले जाइ।
दादू तूं निर्दोष रहु, नांव निरन्तर गाइ ॥ १८ ॥

---

(१२) मैली मधिम है गये = मैली करणी वाले मध्यम हो गये। निर्मल करणी वाले सिरजनहार को प्राप्त हुये ॥

(१३) जाति = कुल, जाति ॥

(१४) चारौं लोचन अंध = अत्यंत मूर्ख। श्रुति स्मृति और दो चर्म-चक्षु, यह चार लोचन कहाते हैं ॥

(१५) सार गहै जगंनाथ जन, ले असार संसार ॥
भाव भजन पै बच्छ ज्यूं, चींचर रुधिर बिकार ॥

(१८) जिसके हृदय में जीवत काल जैसी बासना होती है वैसी ही

दादू साध सबै करि देषणां, असाध न दीसै कोइ ।
जिहिं के हिरदै हरि नहीं, तिहिं तनि टोटा होइ ॥१६॥
साधू संगति पाइये, तब दूंदर दूरि नसाइ ।
दादू बोहिथ बैसि करि, डूंडै निकटि न जाइ ॥ २० ॥
जब परम पदारथ पाइये, तब कंकर दीया डारि ।
दादू साचा सो मिलै, तब कूड़ा काच निवारि ॥ २१ ॥
जब जीवनमूरी पाइये, तब मरिबा कौण बिसाहि ।
दादू अमृत छाडि करि, कौण हलाहल षाहि ॥ २२ ॥
जब मानसरोवर पाइये, तब छीलर कूं छिटकाइ ।
दादू हंसा हरि मिले, तब कागा गये बिलाइ ॥ २३ ॥

॥ उभै असमाव ॥

जहं दिनकर तहं निस नहीं, निस तहं दिनकर नांहिं ।
दादू एकै द्वै नहीं, साधन के मत मांहिं ॥ २४ ॥

बासना मरे पीछे उस के साथ जाती है । इस विचार से दयालजी कहते हैं सर्व बासनाओं से निर्दोष रहो, अर्थात् त्याग दो ॥

(१६) कबीर साकत को नहीं, सबै बैंबौं जाणि ।
जा तन राम न उच्चरै, ताही तन कौं हानि ॥

(२०) साधू की संगत मिलै तब दूंदर (द्वंद = द्वैतभाव) नाश होय । दयालजी कहते हैं कि बोहिथ (जहाज़) में बैठ कर डोंगे (छोटी नाव) की कोई परवाह नहीं करता, अर्थात् सब आनंदों के मूल आत्मानंद को पाकर ज्ञानी संसारी पदार्थों की तरफ नहीं देखते ॥

(२१) कूड़ा काच = झूठा कांच = संसार ॥

(२३) कागा = संसार रूपी बंधन ॥

(२४) इस का आशय यह है । जहां ज्ञान है वहां अज्ञान नहीं, जहां

दादू एकै घोड़ै चढि चलै, दूजा कोतिल होइ ।
दुहु घोड़ौं चढि बैसतां, पारि न पहुंता कोइ ॥ २५ ॥

इति सारग्राही कौ अंग सपूर्ण समाप्त ॥ १७ ॥

अज्ञान है वहां ज्ञान नहीं। अर्थात् जिस के मन में परमात्मा की निष्ठा है उस के मन में संसार का मोह नहीं, और जिस को संसार प्यारा है उस को परमात्मा में प्रेम नहीं ॥ यथा—

तुरसी जहां राम तहं कामना, कैसे धूं ठहराइ ।
रवि अरु रजनी एक सम, हम कहुं देषे नांहि ॥

(२५) परमार्थ और व्यौहार की यहां दयालजी ने दो घोड़ौं से उपमा दी है, जैसे मनुष्य दो घोड़ौं पर सवार होकर पार नहीं जा सकता, तैसे परमार्थ और व्यवहार दोनौं को बराबर नहीं साध सकता है। दयालजी की बाणी का सार यह है कि परमार्थ मनुष्य का मुख्य साधन है, यहां भी दयालजी कहते हैं परमार्थ रूपी घोड़े पर मनुष्य चढ़ै और दूसरे व्यौहार रूपी घोड़े को अपने साथ कोतल रक्खै। यही सिद्धांत संसार सागर से पार उतारनेवाला है। आत्म तत्त्व हमारा मूल है, उसका संपादन परमावश्यक है तैसे ही उसके संपादन में शरीर का पालन पोषण भी ज़रूर है, यदि हम केवल संसार ही में फस जावैं जैसे कि जगत फंस रहा है, तौ परमार्थ बिसरता है। यदि परमार्थ ही में लगकर व्यौहार को छोड़ बैठैं तौ शरीर के निर्वाह में और आत्मसंपादन में कठिनता होती है, इन हेतुओं से परमार्थ को मुख्य सन्मुख रखकर व्यौहार को कोतल की तरह पीछे रखना उचित है। मुख्य आत्म तत्त्व है, उस के पीछे व्यौहार है, इन दोनौं के पलड़े करीब २ बराबर रखने चाहिये, आत्म तत्त्व का पलड़ा थोड़ासा झुका (अधिक) रहना चाहिये, संपादन दोनौं का आवश्यक है, उनमें से एक दूसरे का सहकारी है और जब दोनौं को उचित रीति से संपादन करते हैं तभी दोनौं की प्राप्ति में हम उन्नति पाते हैं ॥

अथ विचार कौ अंग ॥ १८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ प्रज्ञान परचै ॥

दादू जल मैं गगन, गगन मैं जल है, पुनि वै गगन निरालं ।
ब्रह्म जीव इंहिं विधि रहै, ऐसा भेद विचारं ॥ २ ॥

ज्यूं दर्पन मैं मुष देषिये, पानी मैं प्रतिब्यंब ।
ऐसैं आत्मराम है, दादू सब ही संग ॥ ३ ॥

॥ साच ॥

जब दर्पन मांहैं देषिये, तब अपना सूझै आप ।
दर्पन बिन सूझै नहीं, दादू पुनि रु पाप ॥ ४ ॥

---

(२) इस साखी का पूरा अर्थ "स्वामी दादूदयाल के जीवनचरित्र और उपदेश" नामक दूसरी पुस्तक में दिया जायगा, जैसे आकाश मंडल में जल होता है और उसी जल में आकाश व्यापक होता है तौ भी जल की गमनागमन क्रिया से आकाश गीला नहीं होता, तैसे ही आकाशवत ब्रम्ह व्यापक है और जीव में रहता है और जीव ब्रम्ह में रहता ॥

(३) जैसे दर्पन में वा पानी ही में मुख का प्रतिबिंब दिखाई देता है, तैसे आत्मा ही में राम प्रतीत होता है, अर्थात् सब जीवों के अंतःकरण रूपी दर्पण वा जल में परमेश्वर का प्रतिबिंब (चिदाभास) पड़कर अंतःकरण को चेतनता देता है ॥

(४) अंतःकरण रूपी उपाधी से पुण्य पाप रूपी संसार प्रतीत होता है,

॥ ज्ञान परचै ॥

जींयें तेल तिलंनि मैं, जींयें गंध फुलंन्न ।
जींयें माषण षीर मैं, ईयें रबु रूहंनि ॥ ५ ॥
ईयें रबु रूहंनि मैं, जींयें रूह रगंनि ।
जींयें जेरौ सूर मां, ठंढो चंद्र बसंनि ॥ ६ ॥
दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर मैं सोइ ।
दिल मांहैं दिलदार है, और न दूजा कोइ ॥ ७ ॥
मीत तूम्हारा तुम्ह कने, तुमहीं लेहु पिछाणि ।
दादू दूरि न देषिये, प्रतिबिंब ज्यूं जाणि ॥ ८ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू नाल कवंल जल ऊपजै, क्यूं जुदा जल मांहिं ।
चंदहि हित चित प्रीतड़ी, यौं जल सेती नांहिं ॥ ९ ॥

यदि अंतःकरण न हो तो संसार भी प्रतीत न हो, जैसे दर्पणरूपी उपाधी बिना प्रतिबिंब भान नहीं होता ॥

(५-६) जैसे तेल तिलों में, जैसे सुगंध फूलों में, जैसे मक्खन दूध में, जैसे रूह रगों (नाड़ियों) में, जैसे प्रकाश सूर्य में, जैसे शीतलता चंद्र में है, तैसे परमात्मा रूहों (जीवात्माओं) में व्यापक है ॥

(७) जिस पुरुष ने अपने हृदय को मंदिर बनाया है, तिस हृदयरूपी मंदिर में सो परमात्मा है, सोई दिलदार (मित्र) है और कोई दूसरा नहीं ॥

(९) नालकवल (कुमोदनी, नार) जल में उपजती है पर जल से जुदी क्यों ? उत्तर—कुमोदनी की प्रीति चंद्रमा से है जल से नहीं, इस हेतु से कुमोदनी जल से जुदी रहती है ॥

दोहा—जल में बसै कुमोदनी, चंदा बसै अकास ।
जो जाहू के मन बसै, सो ताहू के पास ॥

तैसे ही परमात्मा से जो हम प्रीति रक्खैं तौ संसार से स्नेह कम हो जाय ॥

अथ विचार कौ अंग ॥ १८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ प्रज्ञान परचै ॥

दादू जल मैं गगन, गगन मैं जल है, पुनि वै गगन निरालं ।
ब्रह्म जीव इंहिं विधि रहै, ऐसा भेद विचारं ॥ २ ॥

ज्यूं दर्पन मैं मुष देषिये, पानी मैं प्रतिब्यंब ।
ऐसैं आत्मराम है, दादू सब ही संग ॥ ३ ॥

॥ साच ॥

जब दर्पन मांहैं देषिये, तब अपना सूझै आप ।
दर्पन बिन सूझै नहीं, दादू पुनि रु पाप ॥ ४ ॥

---

(२) इस साखी का पूरा अर्थ "स्वामी दादूदयाल के जीवनचरित्र और उपदेश" नामक दूसरी पुस्तक में दिया जायगा, जैसे आकाश मंडल में जल होता है और उसी जल में आकाश व्यापक होता है तौ भी जल की गमनागमन क्रिया से आकाश गीला नहीं होता, तैसे ही आकाशवत ब्रम्ह व्यापक है और जीव में रहता है और जीव ब्रम्ह में रहता ॥

(३) जैसे दर्पन में वा पानी ही में मुख का प्रतिबिंब दिखाई देता है, तैसे आत्मा ही में राम प्रतीत होता है, अर्थात् सब जीवों के अंतःकरण रूपी दर्पण वा जल में परमेश्वर का प्रतिबिंब (चिदाभास) पड़कर अंतःकरण को चेतनता देता है ॥

(४) अंतःकरण रूपी उपाधी से पुण्य पाप रूपी संसार प्रतीत होता है,

॥ ज्ञान परचै ॥

जींयें तेल तिलंनि मैं, जींयें गंध फुलंन्न ।
जींयें माषण षीर मैं, ईंयें रबु रूहंनि ॥ ५ ॥
ईंयें रबु रूहंनि मैं, जींयें रूह रगंनि ।
जींयें जेरौ सूर मां, ठंढो चंद्र बसंनि ॥ ६ ॥
दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर मैं सोइ ।
दिल मांहैं दिलदार है, और न दूजा कोइ ॥ ७ ॥
मीत तूम्हारा तुम्ह कने, तुमहीं लेहु पिछाणि ।
दादू दूरि न देषिये, प्रतिबिंब ज्यूं जाणि ॥ ८ ॥

॥ विरक्तता ॥

दादू नाल कंवल जल ऊपजै, क्यूं जुदा जल मांहिं ।
चंदहि हित चित प्रीतड़ी, यौं जल सेती नांहिं ॥ ९ ॥

यदि अंतःकरण न हो तो संसार भी प्रतीत न हो, जैसे दर्पणरूपी उपाधी बिना प्रतिबिंब भान नहीं होता ॥

(५–६) जैसे तेल तिलों में, जैसे सुगंध फूलों में, जैसे मक्खन दूध में, जैसे रूह रगों (नाड़ियों) में, जैसे प्रकाश सूर्य में, जैसे शीतलता चंद्र में है, तैसे परमात्मा रूहों (जीवात्माओं) में व्यापक है ॥

(७) जिस पुरुष ने अपने हृदय को मंदिर बनाया है, तिस हृदयरूपी मंदिर में सो परमात्मा है, सोई दिलदार (मित्र) है और कोई दूसरा नहीं ॥

(९) नालकवल (कुमोदनी, नार) जल में उपजती है पर जल से जुदी क्यों ? उत्तर—कुमोदनी की प्रीति चंद्रमा से है जल से नहीं, इस हेतु से कुमोदनी जल से जुदी रहती है ॥

दोहा—जल में बसै कुमोदनी, चंदा बसै अकास ।
जो जाहू के मन बसै, सो ताहू के पास ॥

तैसे ही परमात्मा से जो हम प्रीति रक्खैं तौ संसार से स्नेह कम हो जाय ॥

दादू एक बिचार सौं, सब थैं न्यारा होइ ।
मांहै है पर मन नहीं, सहज निरंजन सोइ ॥ १० ॥
दादू गुण निर्गुण मन मिलि रह्या, क्यूं बेगर ह्वै जाइ ।
जहं मन नाहीं सो नहीं, जहां मन चेतन सो आहि ॥११॥

॥ बिचार ॥

दादू सबहीं व्याधि की, औषधि एक बिचार ।
समझे थैं सुष पाइये, कोइ कुछ कहौ गंवार ॥ १२ ॥
दादू इक निर्गुण इक गुण मई, सब घटि ये द्वै ज्ञान ।
काया का माया मिलै, आत्म ब्रह्म समान ॥ १३ ॥
दादू कोटि अचारिन एक बिचारी, तऊ न सरभरि होइ ।
आचारी सब जग भर्‌या, बिचारी बिरला कोइ ॥ १४ ॥
दादू घट मैं सुष आनंद है, तब सब ठाहर होइ ।
घट मैं सुष आनंद बिन, सुषी न देष्या कोइ ॥ १५ ॥

---

(१०) निरंजन परमात्मा स्वभाव (सहजरूप) से जीव के अंदर है, पर मनुष्य का मन उस में नहीं लगता, विचार करके सब संसार से न्यारा हो कर परमात्मा से मिलता है ॥

(११) गुण निर्गुण में मन मिल रहा है सो किस तरह से जुदा होय ?

उत्तर–जिस वस्तु में मन नहीं है सो वस्तु उसकी दृष्टि में है नहीं, जहां मन चेतन (लगा हुआ) है सो ही वस्तु प्रतीत होती है । इस रीति से परमात्मा में मन लगाने से संसार छूट जाता है ॥

(१३) सब शरीरों में निर्गुण और सगुण दो ज्ञान हैं, तिस में सगुण (माया) रूप काया (स्थूल शरीर) है और निर्गुण आत्मा ब्रम्ह समान है॥

(१४) कोटि आचार वालों की एक भी विचारवान से सरभरि (तुलना) नहीं होती ॥

॥ विरक्तता ॥

काया लोक अनंत सब, घट मैं भारी भीर ।
जहां जाइ तहं संगि सब, दरिया पैली तीर ॥ १६ ॥
काया माया ह्वै रही, जोधा बहु बलिवंत ।
दादू दुस्तर क्यूं तिरै, काया लोक अनंत ॥ १७ ॥
मोटी माया तजि गये, सूषिम लीयें जाइ ।
दादू को छूटै नहीं, माया बड़ी बलाइ ॥ १८ ॥
दादू सूषिम मांहिले, तिन का कीजै त्याग ।
सब तजि राता राम सौं, दादू यहु बैराग ॥ १९ ॥
गुणातीत सो दरसनी, आपा धरै उठाइ ।
दादू निर्गुण राम गहि, डोरी लागा जाइ ॥ २० ॥

(१६) काया लोक (शरीर) असंख्य हैं तिन में काम, क्रोध, पाप पुण्यादि भरे हैं । जिस योनि में जीव जाता है तहां वो उस के संग जाते हैं ॥

(१७) काया एक बड़ी माया (इंद्रजाल) बन रही है, तिस में कामादिक बड़े योद्धा बसते हैं । यह संसार बड़ा कठिन है । इससे कैसे पार उतरा जाय, क्योंकि काया लोक असंख्य हैं । इस साखी के "दुस्तर" शब्द के बदले मूल पुस्तकों में "दूतर" वा "दुरतर" आया है ॥

(१८) "मोटी माया" = घरबारादि । सूषिम = राग द्वेषादि मनोराज्य ॥

सकल कुसंगी काष मैं, क्या छाडैं घरबार ।
रजब जीव जीवै नहीं, मांहै मारनहार ॥
काया सौं कामनि तजै, मन भुगतै रनिवास ।
रजब बपु बन षंड मैं, चाहै महल अवास ॥
नारी मांहैं नर घनें, नर मैं नारि अनंत ।
महिलायत मन मांहिली, तजै सु साधू संत ॥

(२०) गुणातीत पुरुष जिसका अहंकार छूट गया है, जो निर्गुण राम

प्यंड मुक्ति सब को करै, प्राण मुक्ति नहिं होइ ।
प्राण मुक्ति सतगुर करै, दादू बिरला कोइ ॥ २१ ॥

॥ शिष्य जिज्ञासा—प्रश्न ॥

दादू षुध्या त्रिषा क्यूं भूलिये, सीत तपति क्यूं जाइ ।
क्यूं सब छूटै देह गुण, सतगुर कहि समझाइ ॥ २२ ॥

॥ उत्तर ॥

मांही थैं मन काढ़ि करि, ले राषै निज ठौर ।
दादू भूलै देह गुण, बिसरि जाइ सब और ॥ २३ ॥

नांव़ भुलावै देह गुण, जीव़ दसा सब जाइ ।
दादू छाडै नांव़ कौं, तौ फिरि लागै आइ ॥ २४ ॥

दादू दिन दिन राता राम सौं, दिन दिन अधिक सनेह ।
दिन दिन पीवै रामरस, दिन दिन दर्पण देह ॥ २५ ॥

दादू दिन दिन भूलै देह गुण, दिन दिन इंद्री नास ।
दिन दिन मन मनसा मरै, दिन दिन होइ प्रकास ॥ २६ ॥

॥ सजीवन ॥

देह रहै संसार मैं, जीव़ राम के पास । (२६-२३)

में रत है और "डोरी लागा जाइ" उसी मार्ग में चल रहा है, सो महात्मा दर्शनों के योग्य है ॥

(२१) स्थूल शरीर की मुक्ति भोजन छाजन द्वारा सब कोई कर लेता है, पर उससे लिंग शरीर की मुक्ति नहीं होती । यह (प्राण) मुक्ति यथार्थ ज्ञान से कोई बिरला ही सद्गुरू देता है ॥

(२३) देहादिकों में जो मन का अध्यास है सो छोड़ कर मन को अपने स्वरूप में स्थिर करे ॥

(२४) नांव=राम नाम का सुमिरण ॥

(२५) दर्पण देह = दर्पणवत अंतःकरण स्वच्छ होता जाय ॥

दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुष त्रास ॥ २७ ॥
काया की संगति तजै, बैठा हरिपद मांहि । (२६–२४)
दादू निर्भै ह्वै रहै, कोइ गुण व्यापै नाहिं ॥ २८ ॥
काया मांहैं भै घणा, सब गुण व्यापैं आइ ।
दादू निरभै घर किया, रहै नूर मैं जाइ ॥ २९ ॥
षड़ग धार विष ना मरै, कोइ गुण व्यापै नाहिं ।
राम रहै त्यूं जन रहै, काल झाल जल मांहि ॥ ३० ॥

॥ बिचार ॥

सहज विचार सुष मैं रहै, दादू बड़ा बमेक ।
मन इंद्री पसरैं नहीं, अंतरि राषै एक ॥ ३१ ॥
मन इंद्री पसरैं नहीं, अहिनिसि एकै ध्यान ।
पर उपगारी प्राणिया, दादू उत्तिम ज्ञान ॥ ३२ ॥
दादू आपा उरझे उरझिया, दीसै सब संसार । (१–१३२)
आपा सुरझे सुरझिया, यहु गुर ज्ञान विचार ॥३३॥(खगधङ)
दादू मैं नाहीं तब नांव क्या, कहा कहावै आप ।
साधौ कहौ विचारि करि, मेटहु तन की ताप ॥ ३४ ॥

---

(२८) काया की संगति = काया में अध्यास ॥

(३०) नूर = आत्मप्रकाश में प्रवेश हुआ पुरुष न तलवार की धार से मर सकता है ना विष से, न उसमें कोई गुण व्यापि सकता है । जैसे राम रहता है तैसे वह पुरुष भी रहता है, काल की लपट जैसे जल को नहीं दाह कर सकती है अथवा काल की लपट अपने ही भीतर जल कर शांत हो जाती है॥

(३४) जब अहंभाव ममभाव–मेरा तेरा पन–मन से मिट गया, तब जीव सर्व में अपने आप को और सर्व को अपने आप में देखता है । इस दृष्टि के

जब समझ्या तब सुरझिया, उलटि समाना सोइ ।
कछू कहावै जब लगै, तब लग समझि न होइ ॥ ३५ ॥
जब समझ्या तब सुरझिया, गुर मुषि ज्ञान अलेष ।
उर्ध कवल मैं आरसी, फिरि करि आपा देष ॥ ३६ ॥
प्रेम भगति दिन दिन बधै, सोई ज्ञान बिचार ।
दादू आतम सोधि करि, माथि करि काढ्या सार ॥ ३७ ॥
दादू जिहि विरियां यहु सब कुछ भया, सो कुछ करौ बिचार ।
काजी पंडित बावरे, क्या लिषि बंधे भार ॥ ३८ ॥
दादू जब यहु मन हीं मन मिल्या, तब कुछ पाया भेद ।

स्थिर हुये पर नामादिक भेद नहीं देखता और सर्व में आपामयी देखकर संपूर्ण राग द्वेष क्रोध ईर्षा भय संशयादि दुःख संतापों से मुक्त हो जाता है ॥

(३५) इस प्रकार की समझ (ज्ञान) उत्पन्न हुये पीछे जगत के जंजालों से (जिनमें पहले अपने आप उलझ रहा था—जैसे सूवा पक्षी पोंगी पर, बंदर मटकी में मूठी बांधकर) छूट जाता है, किंतु जब तक मन में कुछ भी आपा है वा मान बड़ाई की इच्छा है अथवा भय क्रोध बंध मोक्ष का संदेह है, तब तक निःसंशय ज्ञान नहीं समझना चाहिये ।

(३६) उर्धकवल=हृत्पुण्डरीक रूपी दर्पण में अंतर्मुख वृत्ति फेरि कर अपने आत्म स्वरूप में दृष्टि रक्खै ॥

(३८) दृष्टांत—गुर दादू गये सीकरी, तहं यहु साषी भाषि ।
उत्तर भयो न किसी तैं, बषनौं उत्तर आषि ॥

यथा—संसैप्रश्न—काजी पंडित बूझिया, किन ज्वाब न दीया ।
बषनां बरियां कौन थी, जब सब कुछ कीया ॥
उत्तर—जिहि बरियां यहु सब भया, सो हम किया विचार ।
बषनां बरियां षुसी की, कर्ता सिर्जनहार ॥

दादू ले करि लाइये, क्या पढ़ि मरिये बेद ॥ ३९ ॥
पाणी पावक, पावक पाणी, जाणै नहीं अजाण ।
आदि अंति बिचार करि, दादू जांण सुजांण ॥ ४० ॥
सुष मांहैं दुष बहुत हैं, दुष मांहैं सुष होइ ।
दादू देषि बिचारी करि, आदि अंति फल दोइ ॥ ४१ ॥
मीठा षारा, षारा मीठा, जाणै नहीं गंवार ।
आदि अंत गुण देषि करि, दादू किया बिचार ॥ ४२ ॥
कोमल कठिन कठिन है कोमल, मूरिष मर्म न बूझै ।
आदि अंति बिचार करि, दादू सब कुछ सूझै ॥ ४३ ॥
पहली प्राण बिचार करि, पीछै पग दीजै ।
आदि अंति गुण देषि करि, दादू कुछ कीजै ॥ ४४ ॥
पहली प्राण बिचार करि, पीछै चलिये साथ ।
आदि अंति गुण देषि करि, दादू घाली हाथ ॥ ४५ ॥
पहली प्राण बिचार करि, पीछै कुछ कहिये ।
आदि अंति गुण देषि करि, दादू निज गहिये ॥ ४६ ॥

---

(३९) "ले करि लाइये"=मन को अंतर्मुख वृत्ति में लगाइये; यही सर्व साधनों का सार है और वेद के पठन मात्र से उत्तम है । यहां वेद की निंदा नहीं है किंतु तोते की तरह पठन को व्यर्थ दिखाया है ॥

(४०) पानी से काष्टादिक की उत्पत्ति होती है और काष्टादिक से अग्नि होती है । अग्नि से जल की उत्पत्ति प्रसिद्ध है । आदि और अंत संपूर्ण जगत का केवल परब्रह्म है, उसको सुजान ज्ञानी जानते हैं ।

(४१–४३) विषय सुख में दुःख बहुत हैं, तपादिक में जो दुःख होता है उस का परिणाम सुख है ।

(४४) पहली प्राण = किसी कार्य के आरंभ में पहली स्वास लेते ही ॥

पहली प्राण बिचार करि, पीछै आवै जाइ ।
आदि अंति गुण देषि करि, दादू रहै समाइ ॥ ४७ ॥
दादू सोचि करै सो सूरिवां, करि सोचै सो कूर ।
करि सोच्यां मुष स्याम ह्वै, सोचि कियां मुष नूर ॥४८॥ क ख ग
जे मति पीछै ऊपजै, सो मति पहिली होइ ।
कबहुं न होवै जी दुषी, दादू सुषिया सोइ ॥ ४९ ॥
आदि अंति गाहन किया, माया ब्रह्म बिचार ।
जहं का तहं ले दे धरया, दादू देत न बार ॥ ५० ॥

इति बिचार कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १८ ॥

———— :o: ————

(५०) इस अंग की आदि साखी से अंत पर्यंत, दयालजी कहते हैं, हमने गाहन विचार (माया और ब्रम्ह का निरूपण) किया है, माया और ब्रम्ह के लक्षण जो मिले हुये प्रतीत होते हैं तिन को जुदे जुदे जहां के तहां बताये हैं, जिनके समझने में विचारवानों को बार न होगी । अथवा जिन महात्माओं ने माया ब्रम्ह का आदि अंत रूपी गाहन विचार करके जैसा है तैसा निश्चय किया है, उन को मुक्त होने में बार (देर) नहीं है ॥

अथ बेसास कौ अङ्ग ॥ १६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू सहजैं सहजैं होइगा, जे कुछ रचिया राम ।
काहे कौं कलपै मरै, दुषी होत बे काम ॥ २ ॥
सांई किया सो ह्वै रह्या, जे कुछ करै सो होइ ।
कर्ता करै सो होत है, काहे कलपै कोइ ॥ ३ ॥
दादू कहै—जे तैं किया सो ह्वै रह्या, जे तूं करै सो होइ ।
करण करावण एक तूं, दूजा नांहीं कोइ ॥ ४ ॥
दादू सोइ हमारा सांईयां, जे सब का पूरणहार ।
दादू जीवण मरण का, जाकै हाथ बिचार ॥ ५ ॥
दादू सर्ग भवन पाताल मधि, आदि अंत सब सिष्ट ।
सिरजि सबनि कौं देत है, सोई हमारा इष्ट ॥ ६ ॥
दादू करणहार कर्ता पुरिष, हम कौं कैसी चिंत ।
सब काहू की करत है, सो दादू का मिंत ॥ ७ ॥
दादू मनसा वाचा कर्मणा, साहिब का बेसास ।
सेवग सिरजनहार का, करै कौन की आस ॥ ८ ॥
सुरम न आवै जीव कूं, अणकीया सब होइ ।

(४) करण करावण = करनेवाला करानेवाला ॥

दादू मारग मिहर का, बिरला बूझै कोइ ॥ ९ ॥
दादू उदिम औगुण को नहीं, जे करि जाणै कोइ ।
उदिम मैं आनंद है, जे सांई सेती होइ ॥ १० ॥
दादू पूरणहारा पूरसी, जो चित रहसी ठांम ।
अंतर थैं हरि उमंगसी, सकल निरंतर राम ॥ ११ ॥
पूरिक पूरा पासि है, नाहीं दूरि गंवार ।
सब जानत है बावरे, देबे कौं हुसियार ॥ १२ ॥
दादू च्यंता राम कौं, समरथ सब जाणै ।
दादू राम संभालि ले, च्यंता जिनि आणै ॥ १३ ॥
दादू च्यंता कीयां कुछ नहीं, च्यंता जीव कूं षाइ ।
हूंणा था सो ह्वै रह्या, जाणा है सो जाइ ॥ १४ ॥

॥ पोष प्रतिपाल रत्तक ॥

दादू जिन पहुंचाया प्राण कौं, उदर उर्ध मुषि षीर ।
जठर अगनि मैं राषिया, कोमल काया सरीर ॥ १५ ॥

---

(९) जीव को शर्म भी नहीं आती कि परमेश्वर अपने आप "अण-कीया" (बिना जीव के प्रयत्न के) सब का भरण पोषण कर रहा है । उस की इस मेहर (कृपा) को कोई बिरला ही जानता है ॥

(१०) परमात्मा से मिलने का ही उद्यम सब से उत्तम उद्यम है ॥

(११) पूरणहारा (परमेश्वर) सब कुछ पूरसी (पूरण करेगा) यदि मनुष्य को पूरण विश्वास है, यथा—

दृष्टांत—बंदैं जल तट बैठि कै, कीन गाढ़ विश्वास ।
लहूं मतीरा (तर्बूज़) गोद मैं, प्रभु भेजे लषि दास ॥

(१२) पूरिक = अन्न देनेवाला, पालन करनेवाला । पूरा = व्यापक ॥

(१५) उदर उर्ध मुषि = माता के पेट में, यथा—

मात पिता गमि नांहि, मांहि तहं षीर पियायो ।

सो समरथ संगी सांगि रहै, बिकट घाट घट भीर ।
सो सांई सूं गह गही, जिनि भूलै मन बीर ॥ १६ ॥
गोबिंद के गुण चीति करि, नैन बैन पग सीस ।
जिन मुष दीया कान कर, प्राणनाथ जगदीस ॥ १७ ॥
तन मन सौंज संवारि सब, राषै बिसवा बीस ।
सो साहिब सुमिरै नहीं, दादू भानि हदीस ॥ १८ ॥
दादू सो साहिब जिनि बीसरै, जिन घट दीया जीव ।
गर्भवास मैं राषिया, पालै पोषै पीव ॥ १९ ॥
दादू राजिक रिजक लीये षड़ा, देवै हाथौं हाथ ।
पूरिक पूरा पासि है, सदा हमारै साथ ॥ २० ॥
हिरदै राम संभालि ले, मन राषै बेसास ।
दादू समरथ सांईयां, सब की पूरै आस ॥ २१ ॥
दादू सांई सबन कौं, सेवग ह्वै सुष देइ ।
अया मूढ़ मति जीव की, तौभी नांव न लेइ ॥ २२ ॥
दादू सिरजनहारा सबन का, ऐसा है सामर्थ ।
सोई सेवग ह्वै रह्या, जहं सकल पसारैं हथ ॥ २३ ॥

---

(१६) कठिन स्थान में जहां घट (शरीर) को पीड़ा पड़ती है तहां वह परमेश्वर ही संग रहता है । उस सांई से गह गही (प्रीति कर) और उसका यश मत भूल ॥

(१८) जो परमात्मा तेरे तन मन आचार को संभाल कर अच्छी तरह से रखता है । उसका तूं हदीस (मर्यादा) तोड़ कर सुमिरण नहीं करता ॥

(२२) परमात्मा सब जीवों को सेवक की तरह सुख देता है, पर जीव ऐसा मूढ़ है कि उसका नाम भी नहीं लेता ॥

धनि धनि साहिब तू बड़ा, कौन अनूपम रीति ।
सकल लोक सिर सांईयां, है करि रह्या अतीत ॥ २४ ॥
दादू हूं बलिहारी सुरति की, सब की करै संभाल ।
कीड़ी कुंजर पलक मैं, करता है प्रतिपाल ॥ २५ ॥

॥ छाजन भोजन ॥

दादू छाजन भोजन सहज मैं, संइयां देइ सो लेइ ।
ताथैं अधिका और कुछ, सो तूं कांइ करेइ ॥ २६ ॥
दादू टूका सहज का, संतोषी जन षाइ ।
मृतक भोजन गुरमुषी, काहे कलपै जाइ ॥ २७ ॥
दादू भाड़ा देह का, तेता सहजि बिचारि ।
जेता हरि बिचि अंतरा, तेता सबै निवारि ॥ २८ ॥
दादू जल दल राम का, हम लेवैं परसाद ।
संसार का समझैं नहीं, अबिगत भाव अगाध ॥ २९ ॥
परमेसुर के भाव का, एक कणूंका षाइ ।
दादू जेता पाप था, भरम कर्म सब जाइ ॥ ३० ॥

---

(२७) मृतक भोजन गुरमुषी = गुर आज्ञाकारी संतोषी जन क्यों पदार्थों की याचना करै । मांगा पदार्थ मृतक अन्न कहाता है, देखो मनुस्मृति अ० ४ श्लोक ४ ॥

(२८) जितने पदार्थ शरीर के निर्वाहार्थ आवश्यक हैं उनको अनायास से ग्रहण करे, जो कुछ परमात्मा के बीच अंतरा डालै, सो सब त्याग दे ॥

(२९-३०) विष्णुरात्मा तथैवान्नं परिणामश्चवै यथा ।
सत्येन तेन मे भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदन्तथा ॥

दादू कौण पकावै कौण पीसै, जहां तहां सीधा ही दीसै ॥३१॥

दादू जे कुछ षुसी षुदाइ की, होवैगा सोई ।
पचि पचि कोई जिनि मरै, सुणि लीज्यौ लोई ॥ ३२ ॥

दादू छूटि षुदाइ, कहीं को नाहीं, फिरिहौ पिरथी सारी ।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, साधू सबद बिचारी ॥ ३३ ॥

दादू बिना राम कहीं को नाहीं, फिरिहौ देस विदेसा ।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, सुणि यहु साध संदेसा ॥ ३४ ॥

दादू सिदक सबूरी साच गहि, स्यावति राषि अकीन । (२३–६)
साहिब सौं दिल लाइ रहु, मुरदा ह्वै मसकीन ॥ ३५ ॥ ङ

दादू अणवंछित टूका षात हैं, मर्महि लागा मन ।
नांव निरंजन लेत हैं, यौं निर्मल साधू जन ॥ ३६ ॥

अणवंछ्या आगैं पड़ै, पिरच्या बिचारि रु षाइ ।
दादू फिरै न तोड़ता, तरवर ताकि न जाइ ॥ ३७ ॥

अणवंछ्या आगैं पड़ै, पीछैं लेइ उठाइ ।
दादू के सिरि दोस यहु, जे कुछ राम रजाइ ॥ ३८ ॥

अणवंछी अजगैब की, रोजी गगन गिरास ।
दादू साति करि लीजिये, सो सांई के पास ॥ ३८½ ॥ (कखगघ)

॥ कर्ता कसौटी ॥

मीठे का सब मीठा लागै, भावै विष भरि देइ ।
दादू कड़वा ना कहै, अमृत करि करि लेइ ॥ ३९ ॥

---

(३१) सीधा = सिद्धान्न, बनी तैयार भोजन सामग्री ॥
(३३) दूजी दहणि = द्वैत की दाह ॥

बिपति भली हरि नांव सौं, काया कसौटी दुष ।
राम बिना किस काम का, दादू संपति सुष ॥ ४० ॥

॥ बेसास, संतोष ॥

दादू एक बेसास बिन, जियरा डांवां डोल ।
निकटि निधि दुष पाइये, चिंतामणी अमोल ॥ ४१ ॥

दादू बिन बेसासी जीयरा, चंचल, नाहीं ठौर ।
निहचै निहचल ना रहै, कछू और की और ॥ ४२ ॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, सर्ग न वांछी धाइ ।
नरक कने थी ना डरी, हुवा सो होसी आइ ॥ ४३ ॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, जिनि वांछै सुष दुष ।
सुष मांगैं दुष आइसी, पै पिव न बिसारी मुष ॥ ४४ ॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, जे कुछ कीया पीव ।
पल बधै न छिन घटै, ऐसी जाणी जीव ॥ ४५ ॥

दादू होणा था सो ह्वै रह्या, और न होवै आइ ।
लेणा था सो ले रहे, और न लीया जाइ ॥ ४६ ॥

ज्यूं रचिया त्यूं होइगा, काहे कौं सिरि लेह ।
साहिब ऊपरि राषियै, देषि तमासा येह ॥ ४७ ॥

॥ पतिव्रत निःकाम ॥

ज्यूं जाणौ त्यूं राषियौ, तुम सिरि ढाली राइ ।

---

(४१) विश्वास के विना चित्त डामाडोल रहता है और मनुष्य दुःख पाता है यद्यपि अमोल चिंतामणी निधिरूपी परमात्मा उसके अंदर ही है ॥

(४३) होनहार है सो हो रहा है, दौड़ करके स्वर्ग की इच्छा नहीं करनी, नर्क से डरना नहीं, नियत हुआ है सो होवेगा ॥

(४५) ऐसी जाणी जीव = जीव ऐसा जानै अथवा जीव ऐसा निश्चय करै ॥

दूजा को देषौं नहीं, दादू अनत न जाइ ॥ ४८ ॥
ज्यूं तुम भावै त्यूं षुसी, हम राजी उस बात ।
दादू के दिल सिदक सूं, भावै दिन कूं रात ॥ ४९ ॥
दादू करणहार जे कुछ किया, सो बुरा न कहणा जाइ ।
सोई सेवग संत जन, रहिबा राम रजाइ ॥ ५० ॥

॥ बेसास संतोष ॥

दादू करणहार जे कुछ किया, सोई हूं करि जाणि । (६-२६)
जे तूं चतुर सयाणा जाण राइ, तौ याही परवाणि॥५१(खगघङ)
दादू कर्ता हम नहीं, कर्ता औरै कोइ ।
कर्ता है सो करैगा, तूं जिनि कर्ता होइ ॥ ५२ ॥

॥ हरि भरोस ॥

कासी तजि मगहर गया, कबीर भरोसै राम ।
सैंदे ही सांई मिल्या, दादू पूरे काम ॥ ५३ ॥
दादू रोजी राम है, राजिक रिजक हमार ।
दादू उस परसाद सौं, पोष्या सब परिवार ॥ ५४ ॥
पंच संतोषे एक सौं, मन मतिवाला मांहि ।
दादू भागी भूष सब, दूजा भावै नाहिं ॥ ५५ ॥
दादू साहिब मेरे कपड़े, साहिब मेरा षाण ।
साहिब सिर का ताज है, साहिब पिंड पराण ॥ ५६ ॥

---

(४८) तुम्हारे सिर (आधीन) ढाली (रक्खी) यह राइ (बात) ॥

(५३) कहावत है कि व्यासजी ने श्राप दिया था कि मगहर खेत में जो मरै सो गधे का जन्म पाता है । कबीरजी ने काशी से जाकर मगहर में शरीर छोड़ा था । तिस बात को यहां इंगित किया है ॥

(५५) पंच इंद्रियां और मतवाला मन एक राम भजन से शांत किये ॥

॥ बिनती ॥

सांई सत संतोष दे, भाव भगति बेसास । (३४–२६)
सिदक सबूरी साच दे, मांगै दादू दास ॥ ५७ ॥

॥ इति बेसास कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ १६ ॥

अथ पीव पिछाण कौ अंग ॥ २० ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
सारौं के सिरि देषिये, उस परि कोई नांहिं ।
दादू ज्ञान बिचारि करि, सो राष्या मन मांहिं ॥ २ ॥
सब लालौं सिरि लाल है, सब पूबौं सिरि पूब ।
सब पाकौं सिरि पाक है, दादू का महबूब ॥ ३ ॥
परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरंजनम् । (१–२)
निराकारं निर्मलं, तस्य दादू बंदनम् ॥ ४ ॥

---

(२) दृष्टांत—नेम लियो रजपूत इक, सब सिर हो तेहिं सेउं ।
नृप तजि, त्याग्यौ बादशाह, साहिब सेवहि लेउं ॥
(३) व्यापक ब्रम्ह अषंड अनावृत, बाहर भीतरि अंतरजामी ।
ओर न छोर अनंत कहैं गुन, याही तैं सुंदर है घन नामी ॥
ऐसो प्रभू जिनके सिरि ऊपरि, क्यूं परि है तिन की कहुं पामी ॥

एक तत्त ता ऊपरि इतनी, तीनि लोक ब्रह्मंडा ।
धरती गगन पवन अरु पानी, सप्त दीप नौ षंडा ॥ ५ ॥
चंद सूर चौरासी लष, दिन अरु रैंणी, रचिले सप्त समंदा ।
सवा लाष मेर गिर पर्वत, अठार भार तीर्थ व्रत, ता ऊपर मंडा ।
चौदह लोक रहैं सब रचनां, दादू दास तास घरि बंदा ॥ ६ ॥
दादू जिनि यहु एती करि धरी, थंभ विन राषी ।
सो हम कौं क्यूं बीसरै, संत जन साषी ॥ ७ ॥
दादू जिन प्राण पिंड हम कौं दिया, अंतरि सेवैं ताहि । (२–२४)
जे आवै औसाण सिरि, सोई नांव संवाहि ॥ ८ ॥ घङ ।
दादू जिन मुझ कौं पैदा किया, मेरा साहिब सोइ ।
मैं बंदा उस राम का, जिनि सिरज्या सब कोइ ॥ ९ ॥
दादू एक सगा संसार मैं, जिनि हम सिर्जे सोइ ।
मनसा वाचा कर्मना, और न दूजा कोइ ॥ १० ॥ ङ ॥
जे था कंत कबीर का, सोई वर वरि हूं ।
मनसा वाचा कर्मना, मैं और न करि हूं ॥ ११ ॥

(५) एक तत्त ता ऊपरि इतनी = एक ब्रम्ह तिसके आसरे इतनी सृष्टि है ॥

(७) बीसरै = विसारै, भूलै । संतजन साषी = संतजन साक्षी हैं ॥

(८) जिसने हमको प्राण और शरीर दिया है, उसी की अंतःकरण से सेवा करैं । जब कभी औसाण (अवसर) मिलै, तब उसी के नाम को संबाहैं–संभालैं ॥

(१०) देखौ १–१४० भी ॥

(११) दृष्टांत–नृप पूछी आंबेर के, बायां को यो ब्याहि ।
जो पति वरयो कबीरजी, सो करि वरयो निचाहि ॥

दादू सब का साहिब एक है, जाका परगट नांव़ ।
दादू सांई सोधि ले, ताकी मैं बलि जांव़ ॥ १२ ॥
साचा सांई सोधि करि, साचा राषी भाव़ ।
दादू साचा नांव़ ले, साचे मारग आव़ ॥ १३ ॥
साचा सतगुर सोधि ले, साचे लीजै साध । (१–५४)
साचा साहिब सोधि करि, दादू भगति अगाध ॥१४॥ ग घ ङ ॥
जामै मरै सु जीव़ है, रमिता राम न होइ ।
जामण मरण थैं रहित है, मेरा साहिब सोइ ॥ १५ ॥
उठै न बैसै एक रस, जागै सोवै नांहिं ।
मरै न जीवै जगत गुर, सब उपजि षपै उस मांहिं ॥ १६ ॥
नां वहु जामै नां मरै, ना आवै गर्भवास ।
दादू ऊंधे मुष नहीं, नर्क कुंड दस मास ॥ १७ ॥
कृतम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहिं जाइ ।
पूरण निहचल एक रस, जगति न नाचै आइ ॥ १८ ॥
उपजै, बिनसै, गुण धरै, यहु माया का रूप ।
दादू देषत थिर नहीं, षिण छांहीं षिण धूप ॥ १९ ॥
जे नाहीं सो ऊपजै, है सो उपजै नांहिं ।
अलष आदि अनादि है, उपजै माया मांहिं ॥ २० ॥

---

(१५) जीव़ = साभास अंतःकरण । साहिब = ब्रम्ह ॥
(१८) कृतम = किया (बनाया) हुआ ॥
(१९) यह साखी केवल जीव़ के लक्षण बताती है ॥
(२०) संसार जो वास्तव में है नहीं सो उपजता प्रतीत होता है, ब्रह्म बस्तु है सो उपजता नहीं, अलप (जो लखने में आवै नहीं) और आदि अनादि (उत्पत्ति रहित) है, जो कुछ उपजता है सो माया ही में है ॥

॥ प्रश्न ॥

जे यहु करता जीव था, संकट क्यूं आया ?
कर्मों के बसि क्यूं भया, क्यूं आप बंधाया ? ॥ २१ ॥
क्यूं सब जोनी जगत मैं, घर बार नचाया ।
क्यूं यह कर्ता जीव है, पर हाथि बिकाया ? ॥ २२ ॥

॥ उत्तर–जीव लक्षण ॥

दादू कृतम काल बसि, बंध्या गुण मांहीं ।
उपजै बिनसै देषतां, यहु कर्ता नांहीं ॥ २३ ॥
ज़ाती नूर अल्लाह का, सिफ़ाती अरवाह ।
सिफ़ाती सिजदा करै, ज़ाती बे परवाह ॥ २४ ॥
परम तेज परापरं, परम जोति परमेसुरं ।
सुयं ब्रह्म सदई सदा, दादू अविचल अस्थिरं ॥ २५ ॥
अविनासी साहिब सति है, जे उपजै बिनसै नांहिं ।
जेता कहिये काल मुष, सो साहिब किस मांहिं ॥ ३२ ॥
सांई मेरा सति है, निरंजन निरकार ।
दादू बिनसै देषतां, झूठा सब आकार ॥ ३३ ॥

(२३) कर्तृम (जीव) काल के वश, गुणों में बंधा हुआ, प्रत्यक्ष उपजता और बिनशता है, सो जगत का कर्ता नहीं ॥

(२४) ज़ाती = स्वतंत्र । सिफ़ाती = परतंत्र ॥

(२५–२८) देखौ ४ थे अंग की १०४, ५, ६ और १०७ साखियां । ग घ ङ ॥

(३०–३१) देखौ ४–२५४, २५५ । क ग घ ङ ॥

(३२) जेता कहिये काल मुष = जितने पदार्थ नाशवान हैं सो साहिब नहीं ॥

राम रटणि छाडै नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचैं ही अटकै नहीं, कला कोटि दिषलाइ ॥ ३४ ॥ ग ॥
उरैं हीं अटकै नहीं, जहां राम तहं जाइ ।
दादू पावै परम सुष, बिलसै बस्त अघाइ ॥ ३५ ॥
दादू उरै हीं उरझे घणे, मूये गल दे पास ।
अैन अंग जहं आप था, तहां गये निज दास ॥ ३६ ॥

॥ जगत भुलावन ॥

सेवा का सुष प्रेमरस, सेज सुहाग न देइ ।
दादू बाहै दास कौं, कह दूजा सब लेइ ॥ ३७ ॥

पति पहचान ॥

लोहा माटी मिलि रह्या, दिन दिन काई षाइ ।
दादू पारस राम बिन, कतहूं गया बिलाइ ॥ ४० ॥
लोहा पारस परसि करि, पलटै अपना अंग ।
दादू कंचन ह्वै रहै, अपने सांई संग ॥ ४१ ॥
दादू जिहिं परसें पलटै प्राणिया, सोई निज करि लेह ।
लोहा कंचन ह्वै गया, पारस का गुण येह ॥ ४२ ॥

---

(३७) सेवा (प्रेमाभक्ति) का सुख है प्रेमरस वा सेज सुहाग, तिस प्रेमाभक्ति को न देकर, दूजा सब (प्रेमाभक्ति अतिरिक्त) रिद्धि सिद्धि धनादिकों का लालच देकर मंद भक्तों को जगत बाहे (बहकाय देता है) और प्रेमाभक्ति से प्रच्युत कर देता है ॥

(३८-३९) देखो ८-३८ और ३९ । ग ङ ॥

(४०) लोहा=जीव । माटी मिलि रह्या = देह अभिमान में फंसा हुआ ॥

(४३—४४) देखो २८ वें अंग की २ और ३ । ख ग ग ङ ॥

॥ परचै जिज्ञासा उपदेश ॥

दह दिसि फिरै सो मन है, आवै जाइ सो पवन। (२७–८)
राषणहारा प्राण है, देषणहारा ब्रह्म ॥ ४५ ॥

इति पीव पिछाण कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २० ॥

अथ समर्थाई कौ अङ्ग ॥ २१ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू कर्ता करै त निमष मैं, कीड़ी कुंजर होइ।
कुंजर थैं कीड़ी करै, मेटि सकै नहिं कोइ ॥ २ ॥
दादू कर्ता करै त निमष मैं, राई मेर समान।
मेर कौं राई करै, तौ को मेटै फुरमान ॥ ३ ॥
दादू कर्ता करै त निमष मैं, जल मांहै थल थाप।
थल मांहैं जलहर करै, ऐसा समर्थ आप ॥ ४ ॥
दादू कर्ता करै त निमष मैं, ठाली भरै भंडार।
भरिया गहि ठाली करै, ऐसा सिरजनहार ॥ ५ ॥

---

(४५) दशों दिशावों में फिरनेवाला मन है, स्वास प्रस्वास ले सो पवन है, तीनौ अवस्थाओं में जो जीवित रखता है सो प्राण है। जीव साक्षी (कूटस्थ) ब्रह्म है ॥

(३) कबीर सांई सौं सब होइगा, बंदे थैं कुछ नांहि।
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहि ॥

दादू धरती कौं अंबर करै, अंबर धरती होइ ।
निस अंधियारी दिन करै, दिन कौं रजनी सोइ ॥ ६ ॥
मृतक काढ़ि मसाण थैं, कहु कौन चलावै ।
अविगत गति नहिं जाणिये, जगि आणि दिषावै ॥ ७ ॥
दादू गुप्त गुण परगट करै, परगट गुप्त समाइ ।
पलक मांहि भानै घड़ै, ताकी लषी न जाइ ॥ ८ ॥

॥ पोष पाल रक्षक ॥

दादू सोई सही साबित हुवा, जा मस्तकि कर देइ ।
गरीब निवाजै देषतां, हरि अपणा करि लेइ ॥ ९ ॥

॥ मुक्तम मार्ग ॥

दादू सब ही मार्ग सांइयां, आगैं एक मुकाम ।
सोई सनमुष करि लिया, जाही सेती काम ॥ १० ॥

॥ पोष प्रतिपाल रक्षक ॥

मीरां मुझ सौं मिहर करि, सिर पर दीया हाथ ।
दादू कलिजुग क्या करै, सांई मेरा साथ ॥ ११ ॥ ङ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

दादू सम्रथ सब विधि सांइया, ताकी मैं बलि जांऊं ।
अंतर एक जु सो बसै, औरां चित्त न लांऊं ॥ १२ ॥
दादू मारग मेहर का, सुषी सहज सौं जाइ ।
भौ सागर थैं काढ़ि करि, अपणे लिये बुलाइ ॥ १३ ॥

---

(१०) सब मार्गों का मुकाम (ठिकाना) एक परमेश्वर ही है । तिन मार्गों में से हमने वही स्वीकार किया जिससे अपना काम है ॥

(१३) अपणे लिये बुलाइ = अपने समीप कर लिया ॥

दादू जे हम चितवैं, सो कछू न होवै आइ ।
सोई कर्ता सति है, कुछ औरै करि जाइ ॥ १४ ॥
एकूं लेइ बुलाइ करि, एकूं देइ पठाइ ।
दादू अद्भुत साहिबी, क्योंही लषी न जाइ ॥ १५ ॥
ज्यूं राषै त्यूं रहैंगे, अपणैं बलि नांहीं ।
सबै तुम्हारै हाथि है, भाजि कत जाहीं ॥ १६ ॥
दादू डोरी हरि कै हाथि है, गल मांहै मेरै ।
बाजीगर का बांदरा, भावै तहां फेरै ॥ १७ ॥
ज्यूं राषै त्यूं रहैंगे, मेरा क्या सारा ।
हुक्मी सेवग राम का, बंदा बेचारा ॥ १८ ॥
साहिब राषै तौ रहै, काया मांहै जीव ।
हुक्मी बंदा उठि चलै, जबहिं बुलावै पीव ॥ १९ ॥

॥ पति पहिचान ॥

षंड षंड परकास है, जहां तहां भरपूर ।
दादू कर्ता करि रह्या, अनहद बाजैं तूर ॥ २० ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

दादू दादू कहत है, आपै सब घट मांहिं ।
अपणी रुचि आपै कहै, दादू थैं कुछ नांहिं ॥ २१ ॥

---

(१८) सारा = बस ॥

(२१) कवित्त-करौली के देस मधि, रामत करण काज,
स्वामीजी पधारे तहां, निकंदन काल के ।
जहां २ जांइ, तहां २ कहैं यही, बैन प्रिय लागैं मन में कृपाल के ।
जदपि अदेह राम, देह धारि ठाढ़े भये, ओत पोत चाहैं जन, प्यारे भक्त लाल के ॥
दादू कहै राम कहौ, राम कहै दादू कहौ, दादूराम दादूराम, रटि रहे बाल के ॥

हम थैं हुवा न होइगा, ना हम करणे जोग ।
ज्यूं हरि भावै त्यूं करै, दादु कहैं सब लोग ॥ २२ ॥

॥ पतिव्रत निहकाम ॥

दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहेब एक ।
सो हम कौं क्यूं बीसरै, जे जुग जाहिं अनेक ॥ २३ ॥

॥ समर्थ साषीभूत ॥

आप अकेला सब करै, औरों के सिर देइ ।
दादू सोभा दास कौं, अपना नांव न लेइ ॥ २४ ॥
आप अकेला सब करै, घट मैं लहरि उठाइ ।
दादू सिरि दे जीव के, यौं न्यारा ह्वै जाइ ॥ २५ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

ज्यूं यहु समझै त्यूं कहौ, यहु जीव अज्ञानी ।
जेती बाबा तैं कही, इन एक न मानी ॥ २६ ॥
दादू पर्चा मांगैं लोग सब, कहैं हम कौं कुछ दिषलाइ ।
समरथ मेरा सांइयां, ज्यूं समझैं त्यूं समझाइ ॥ २७ ॥
दादू तन मन लाइ करि, सेवा दिढ़ करि लेइ ।
ऐसा समरथ राम है, जे मांगै सो देइ ॥ २८ ॥

दृष्टांत–रामति करतां बालकां, दादू दादू भाषि ।
हरि परगट कियो भक्त कौं, सदनां सिवरी साषि ॥
(२२) कबीर ना कुछ किया न करि सक्या, ना करणे जोग्य सरीर ।
जे कुछ किया सु हरि किया, ताथैं भया कबीर ॥
(२६–२७) दृष्टांत–साहपुरे दादू गये, ले गया साहति लोक ।
परचा की मन मैं रही, चलत दिषाये दोक ॥

॥ समर्थ साषीभूत ॥

समूथ सो सेरी समझाइनैं, करि अणकरता होइ ।
घटि घटि व्यापक पूरि सब, रहै निरंतर सोइ ॥ २९ ॥
रहै नियारा सब करै, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अंति भानै घड़ै, ऐसा समूथ सोइ ॥ ३० ॥

॥ कर्ता साषीभूत ॥

सुरम नहीं सब कुछ करै, यौं कलि धरी बणाइ ।
कौतिगहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ ॥ ३१ ॥
लिपै छिपै नहिं सब करै, गुण नहिं व्यापै कोइ ।
दादू निहचल एकरस, सहजैं सब कुछ होइ ॥ ३२ ॥
बिन गुण व्यापे सब किया, समूथ आपै आप ।
निराकार न्यारा रहै दादू पुन्य न पाप ॥ ३३ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

समिता के घरि सहज मैं, दादू दुबिध्या नांहिं ।
सांई समूथ सब किया, समझि देषि मन मांहिं ॥ ३४ ॥
पैदा कीया घाट घड़ि, आपै आप उपाइ । (२२--१३)
हिकमति हुनर कारीगरी, दादू लषी न जाइ ॥ ३५ ॥ घङ ॥
जंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार । (२२--१४)
पंचौं का रस नाद है, दादू बोलणहार ॥ ३६ ॥ घङ ॥

---

(२९) हे समर्थ ! सो सेरी (रहस्य--मार्ग) हम को समझाइये कि जिस से आप सब कुछ करते हो तौ भी अकर्ता हो ।

दोहा--कबीर पूछै राम कौं, सकल भुवन पति राइ ।
सकल करि अलगा रहो, सो विधि अंमहिं बताइ ॥

(३१) सुरम= श्रम ॥

पंच ऊपना सबद थैं, सबद पंच सौं होइ । (२२–१५)
सांई मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ ३७ ॥ घङ॥
है, तौ रती, नहीं, तौ नाहीं, सब कुछ उतपति होइ ।
हुक्मैं हाजिर सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ ३८ ॥
नहीं तहां थैं सब किया, आपै आप उपाइ ।
निज तत न्यारा ना किया, दूजा आवै जाइ ॥ ३९ ॥
नहीं तहां थैं सब किया, फिरि नांहीं ह्वै जाइ । (२३–५७)
दादू नाहीं होइ रहु, साहिब सौं ल्यौ लाइ॥ ४०॥ घङ॥
दादू षालिक षेलै षेल करि, बूझै बिरला कोइ ।
ले करि सुषिया ना भया, देकरि सुषिया होइ ॥ ४१ ॥
देबे की सब भूष है, लेबे की कुछ नांहिं ।
सांई मेरे सब किया, समझि देषि मन मांहिं ॥ ४२ ॥
दादू जे साहिब सिरजै नहीं, तौ आपै क्यूं करि होइ ।
जे आपै ही ऊपजै, तो मरि करि जीवै कोइ ॥ ४३ ॥

॥ कर्तूत कर्म ॥

कर्म फिरावै जीव कौं, कर्मों कौं करतार ।
करतार कौं कोई नहीं, दादू फेरनहार ॥ ४४ ॥

इति समर्थाई कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २१ ॥

———:o:———

अथ सबद कौ अंग ॥ २२ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं ही सब जाइ ।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाइ ॥ २ ॥
दादू सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष ।
सबदैं ही अस्थिर भया, सबदैं भागा सोक ॥ ३ ॥
दादू सबदैं ही सूषिम भया, सबदैं सहज समान ।
सबदैं हीं निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ज्ञान ॥ ४ ॥
दादू सबदैं ही मुक्ता भया, सबदैं समझै प्राण ।
सबदैं ही सूझै सबै , सबदैं सुरझै जाण ॥ ५ ॥

॥ सृष्टि क्रम ॥

दादू ओंकार थैं ऊपजै, अरस परस संजोग ।
अंकुर बीज द्वै पाप पुण्य, इहि विधि जोग रु भोग ॥ ६ ॥
ओंकार थैं ऊपजै, बिनसै बहुत बिकार ।
भाव भगति लै थिर रहै, दादू आतमसार ॥ ७ ॥
पहली कीया आप थैं, उतपति ओंकार ।
ओंकार थैं ऊपजे, पंच तत्त आकार ॥ ८ ॥
पंच तत्त थैं घट भया, बहु विधि सब विस्तार ।
दादू घट थैं ऊपजे, मैं तैं बरण बिचार ॥ ९ ॥

एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ ।
आगैं पीछैं तौ करै, जे बल हीणा होइ ॥ १० ॥
निरंजन निराकार है, ओंकार आकार ।
दादू सब रंग रूप सब, सब बिधि सब विस्तार ॥ ११ ॥
आदि सबद ओंकार है, बोलै सब घट मांहिं ।
दादू माया विस्तरी, परम तत्त यहु नांहिं ॥ १२ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

पैदा कीया घाट घड़ि, आपै आप उपाइ । (२१--३५)
हिकमत, हुनर कारीगरी, दादू लषी न जाइ ॥ १३ ॥ क ॥
जंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार । (२१--३६)
पंचौं का रस नाद है, दादू बोलनहार ॥ १४ ॥ क ॥
पंच ऊपना सबद सौं, सबद पंच सौं होइ । (२१--३७)
सांई मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ १५ ॥ क ॥
दादू एक सबद सौं ऊनवै, बरषन लागै आइ ।

---

(१०) यह साखी अकबरशाह बादशाह के प्रश्न के उत्तर में कही थी । बादशाह का प्रश्न यह था कि पहिले आप की पैदाइश हुई या बाद की, अथवा ज़मीन या आसमान की, अथवा पुरुष या स्त्री की ॥

(१४) देह तंबूरा, हाड़ जठर, जीभ तार तेंहि लाग ।
सुंदर चेतन चतुर बिन, कौन बजावन हार ॥

पांचौं (पंच तत्वों) का रस (कारण) नाद (ओंकार) है, सो कार्य-रूप (जीव) होकर बोलता है । देखो छान्दोग्य उपनिषद् के पहिले प्रपाठक प्रथम खंड का दूसरा मंत्र ॥

(१५) पंच तत्त्व ओंकार शब्द से उत्पन्न हुये और ओंकार शब्द का उच्चारण पंचभूतात्मक शरीर से होता है ॥

एक सबद सौं बीषरै, आप आप कौं जाइ ॥ १६ ॥
दादू साध सबद सौं मिलि रहै, मन राषै बिलमाइ ।
साध सबद बिन क्यूं रहै, तबहीं बीषरि जाइ ॥ १७ ॥
दादू सबद जरै सो मिलि रहै, एक रस पूरा ।
काइर भाजै जीव ले, पग मांडै सूरा ॥ १८ ॥
सबद बिचारै, करणी करै, राम नाम निज हिरदै धरै ।
काया मांहै सोधै सार, दादू कहै लहै सो पार ॥ १९ ॥
दादू काहे कौड़ी पराचिये, जे पैकै सीझै काम ।
सबदौं कारिज सिध भया, तौ सुरम न दीजै राम ॥२०॥
दादू सबद बाण गुर साध के, दूरि दिसंतर जाइ । (१–२८)
जिहिं लागे सो ऊबरै, सूते लिये जगाइ ॥ २१ ॥ ॥ गघङ ॥
दादू राम रिदै रस भेलि करि, को साधू सबद सुणाइ ।
जाणौ कर दीपक दिया, भरम तिमर सब जाइ ॥ २२ ॥
दादू बाणी प्रेम की, कवल बिगासैं होइ ।
साध सबद माता कहै, तिन सबदौं मोह्या मोहिं ॥२३॥
दादू हरि भुरकी बाणी साध की, सो परियौ मेरे सीस ।

---

(१६) जैसै परमेश्वर की एक शब्दरूपी आज्ञा से मेघौं की उन्नति, वृष्टि और बिखर जाना होता है, तैसे ही सृष्टि स्थिति और प्रलय होता है ॥

(२०) जहां शब्द ही से कार्य बन जाय तहां धन का खर्चना व्यर्थ है। तैसे ही रामभजन से मोक्षरूपी कार्य की सिद्धि हो जाय तो अनेक प्रकार के तपादि श्रम क्यों करै ॥

(२३) पुस्तक नं० १ में "माता कहै" के बदले "माता रहै" है ॥

छूटै माया मोह थैं, प्रेम भजन जगदीस ॥ २४ ॥
दादू भुरकी राम है, सबद कहै गुर ज्ञान ।
तिन सबदौं मन मोहिया, उन मन लागा ध्यान ॥२५॥
दादू बाणी ब्रह्म की, अनभै घटि परकास । (४–२०८)
राम अकेला रहि गया, सबद निरंजन पास ॥२६॥ खगघङ ॥
सब्दौं मांहै राम धन, जे कोई लेइ बिचारि ।
दादू इस संसार मैं, कबहुं न आवै हारि ॥ २७ ॥
दादू राम रसाइन भरि धर्‌या, साधन सबद मंझारि ।
कोइ पारिष पीवै प्रीति सौं, समझै सबद बिचारि ॥२८॥
सबद सरोवर सूभर भर्‌या, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिन के अषिल सरीर ॥ २९ ॥
सबदौं मांहै राम रस, साधौं भरि दीया ।
आदि अंति सब संत मिलि, यौं दादू पीया ॥ ३० ॥

॥ गुरमुष कसौटी ॥

पाणी मांहै राषिये, कनक कलंक न जाइ । (१–१०५)
दादू साचा सबद दे, ताइ अगनि मैं बाहि ॥ ३१ ॥ खगघङ ॥

---

(२४) साध के मुखारविंद से हरि के नामरूपी भुरकी (चुटकी) मेरे शिर पर पड़े । जिससे माया मोह छूटै और जगदीश का प्रेम सहित भजन हो ॥

(२८) साधौं ने शब्द के अंदर रामरूपी रसायन भर धरी है उस शब्द को विचार कर और समझ कर कोई परखने वाला ही प्रीति से पीता है ॥

(२९) शब्दरूपी सरोवर में ब्रम्हानंदरूपी निर्मल नीर सूभर (भले प्रकार से) भरा है । तिसको जो प्रीति से पीवै तिसका शरीर (तन मन) ब्रम्ह में समा जाय ॥

(३१) सोने का मैल पानी से नहीं धुलता है, किंतु अग्नि में ताव देने

कारिज को सीझै नहीं, मीठा बोलै बीर ।
दादू साचे सबद बिन, कटै न तन की पीर ॥ ३२ ॥

॥ सबद ॥

दादू गुण तजि निर्गुण बोलिये, तेता बोल अबोल ।
गुण गहि आपा बोलिये, तेता कहिये बोल ॥ ३३ ॥
साचा सबद कबीर का, मीठा लागै मोहिं ।
दादू सुनतां परम सुष, केता आनंद होइ ॥ ३४ ॥

॥ इति सबद कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २२ ॥

अथ जीवत मृतक कौ अंग ॥ २३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

से सोना शुद्ध होता है, तैसे सतगुर के उपदेश से संसार रूपी मल निवृत्त होता है ॥

(३२) पुस्तक नं० २, ३ और ५ में निम्नलिखित साखी ३२ वीं और ३३ वीं साखियों के बीच में लिखी है परन्तु पुस्तक नं० १ और ४ में (जो सब से पुरानी हैं) यह साखी नहीं है ॥

सबद बंधाणा साह कै, ताथैं दादू आया ।
दुनियां जीवी बापुड़ी, सुख दरसन पाया ॥

इसका तात्पर्य यह है कि साह (परमेश्वर) की आज्ञा से दादूजी जगत में आये, जिनके दर्शन से सुख हुआ और दुनियां बेचारी का जीवन हुआ ॥

धरती मत आकास का, चंद सूर का लेइ ।
दादू पानी पवन का, राम नाम कहि देइ ॥ २ ॥
दादू धरती ह्वै रहै, तजि कूड़ कपट हंकार ।
सांई कारण सिरि सहै, ताकौं परतषि सिरजनहार ॥ ३ ॥
जीवत माटी मिलि रहै, सांई सन्मुष होइ ।
दादू पहली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ ॥ ४ ॥

॥ दीनता ग़रीबी ॥

आपा गर्ब गुमान तजि, मद मंछर हंकार ।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार ॥ ५ ॥
मद मंछर आपा नहीं, कैसा गर्ब गुमान ।
सुपिनै ही समझै नहीं, दादू क्या अभिमान ॥ ६ ॥
झूठा गर्ब गुमान तजि, तजि आपा अभिमान ।
दादू दीन गरीब ह्वै, पाया पद निर्बाण ॥ ७ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

दादू भाव भगति दीनता अंग, प्रेम प्रीति सदा तिहि संग ॥ ८ ॥
तब साहिब कौं सिजदा किया, तब सिर धरया उतारि । (२४-३८)
यौं दादू जीवत मरै, हिरस हवा कूं मारि ॥ १० ॥ ख गघङ ॥

---

(२) धर्ती का गुण क्षमा, आकाश की निर्लेपता, चंद्रमा की शीतलता, सूर्य का तेजस्वीपना, पानी की निर्मलता, पवन की अनाशक्ति । इन गुणों को मनुष्य धारण करै और राम नाम का भजन करता रहै ॥

(३) "सांई कारण सिरि सहै" = सर्व में एक परमात्मा को अवलोकन करता हुआ शब्दापिशब्द सुखदुःखादि को सहन करै ॥

(६) देखौ बेसास के अंग की ३५ वीं साखी । खगघ ॥

राव रंक सब मरहिंगे, जीवै नाहीं कोइ ।
सोई कहिये जीवता, जे मरि जीवा होइ ॥ ११ ॥
दादू मेरा बैरी मैं मुवा, मुझै न मारै कोइ ।
मैं ही मुझ कौं मारता, मैं मर जीवा होइ ॥ १२ ॥
दादू आपा जब लगै, तबलग दूजा होइ । (४–४७)
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नाहीं कोइ ॥१३॥ खगघड॥
बैरी मारे मरि गये, चित थैं बिसरे नांहिं ।
दादू अजहूं साल है, समझि देष मन मांहिं ॥ १४ ॥
॥ उभै असमाव ॥
दादू तौ तूं पावै पीव कौं, जे जीवत मृतक होइ ।
आप गंवाये पिव मिलै, जानत है सब कोइ ॥ १५ ॥
दादू तौ तूं पावै पीव कौं, आपा कछू न जान ।
आपा जिस थैं ऊपजै, सोई सहज पिछान ॥ १६ ॥
दादू तौ तूं पावै पीव कौं, मैं मेरा सब षोइ ।
मैं मेरा सहजैं गया, तब निर्मल दर्सन होइ ॥ १७ ॥

---

(१२) "मैं" नाम अहंकार अथवा ममभाव का है, तिस को मार कर जीव (अमर) होय । तथा—

रजब मुये जु मारते, बिनसैं बैरी पंच ।
तब ताकौं व्यापै नहीं, जरा मरण जम अंच ॥

(१४) बैरी=काम क्रोध मन इंद्रियादिक । इनको मार भी ले, पर जितने काल इनके मार लेने का अभिमान फुरता है तब तक मन में साल (दुःख) अवश्य रहता है ॥

(१५) आप=मैं तैं रूपी भेदज्ञान ॥

(१६) आपा=ममभाव । इसकी उत्पत्ति स्फुरित ब्रह्म से है, सो आदि सत्ता ब्रह्म को सहज (सम) रूप चीन्ह ले ॥

मैं ही मेरे पोट सिरि, मरिये ताके भार ।
दादू गुर परसाद सौं, सिर थैं धरी उतार ॥ १८ ॥
मेरे आगैं मैं षड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ ॥ १९ ॥

॥ सूषिम मार्ग ॥

दादू जीवत मृतक होइ करि, मारग मांहैं आव ।
पहली सीस उतारि करि, पीछे धरिये पांव ॥ २० ॥
दादू मारग साध का, षरा दुहेला जाण ।
जीवत मृतक ह्वै चलै, राम नाम नीसाण ॥ २१ ॥
दादू मारग कठिन है, जीवत चलै न कोइ ।
सोई चलि है बापुरा, जे जीवत मृतक होइ ॥ २२ ॥
मृतक होवै सो चलै, निरंजन की बाट ।
दादू पावै पीव कौं, लंघै औघट घाट ॥ २३ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

दादू मृतक तबहीं जाणिये, जब गुण इंद्री नांहिं ।
जब मन आपा मिटि गया, तब ब्रह्म समाना मांहिं ॥ २४ ॥
दादू जीवत हीं मरि जाइये, मरि मांहै मिलि जाइ ।
सांई का संग छाडि करि, कौण सहै दुष आइ ॥ २५ ॥
दादू कदि यहु आपा जाइगा, कदि यहु बिसरै और । (१–६१)
कदि यहु सूषिम होइगा, कदि यहु पावै ठौर ॥ २६ ॥ खगषड ॥

---

(१८) "पोट" की जगह "मोट" अधिक पुस्तकों में है ॥

(१९) मन की स्फुरता के शांत हुये केवल ब्रह्म ही रह जाता है । देखो आगे साखियां २४ और ३० ॥

॥ उभै असमावं ॥

दादू आपा कहा दिषाइये, जे कुछ आपा होइ ।
यहु तो जाता देषिये, रहता चीन्हौ सोइ ॥ २७ ॥
दादू आप छिपाइये, जहां न देषै कोइ ।
पिव कौं देषि दिषाइये, त्यौं त्यौं आनंद होइ ॥ २८ ॥

॥ आपा निर्दोष ॥

दादू अंतर गति आपा नहीं, मुष सौं मैं तैं होइ ।
दादू दोस न दीजिये, यौं मिलि षेलैं दोइ ॥ २९ ॥
जे जन आपा मेटि करि, रहै राम ल्यौ लाइ ।
दादू सब ही देषतां, साहिब सौं मिलि जाइ ॥ ३० ॥

॥ दीनता गरीबी ॥

गरीब गरीबी गहि रह्या, मसकीनी मसकीन ।
दादू आपा मेटि करि, होइ रह्या ले लीन ॥ ३१ ॥

॥ उभै असमावं ॥

मैं हौं मेरी जब लगै, तब लग बिलसै षाइ ।
मैं नाहीं मेरी मिटै, तब दादू निकटि न जाइ ॥ ३२ ॥
दादू मना मनी सब ले रहे, मनी न मेटी जाइ ।
मना मनी जब मिटि गई, तबहीं मिलै षुदाइ ॥ ३३ ॥
दादू मैं मैं जालि दे, मेरे लागौ आगि ।
मैं मैं मेरा दूरि करि, साहिब के संगि लागि ॥ ३४ ॥

॥ मन मुषी (यथेष्ट) मान ॥

दादू षोई आपणी, लज्या कुल की कार ।
मान बड़ाई पति गई, तब सन्मुष सिरजनहार ॥ ३५ ॥

॥ उभै असमावं ॥

दादू मैं नाहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ ।

मैं तैं पड़दा मिटि गया, तब ज्यौं था त्यौं ही होइ ॥ ३६ ॥

॥ परचै करुणा बिनती ॥

नूर सरीषा करि लिया, बंदौं का बंदा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीषा गंदा ॥ ३७ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

दादू सीष्यूं प्रेम न पाइये, सीष्यूं प्रीति न होइ ।
सीष्यूं दर्द न ऊपजै, जब लग आप न षोइ ॥ ३८ ॥
कहिबा सुणिबा गत भया, आपा पर का नास ।
दादू मैं तैं मिटि गया, पूरण ब्रह्म प्रकास ॥ ३९ ॥
दादू सांई कारण मांस का, लोही पानी होइ ।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोइ ॥ ४० ॥
तन मन मैदा पीसि करि, छांणि छांणि ल्यौ लाइ ।
यौं बिन दादू जीव का, कबहूं साल न जाइ ॥ ४१ ॥
पीसे ऊपरि पीसिये, छांणे ऊपरि छाणि ।

---

(३७) मुझ = ममभाव, अहंकार, खुदी ॥

(३८) आप = आपा ॥

(४०) अस्थि की जगह अस्त मूल पुस्तकों में है । इस साखी पर मंकण ऋषि का एक दृष्टांत है जिन्हों ने तप करते २ अपना रक्त सुखा दिया, यहां तक कि अंगुली में ज़ख्म लगने पर केवल पानी निकला, रक्त का लेश नहीं । तब शिवजी उन पर प्रसन्न हुये । यथा—

मंकण ऋषि कै जल भयो, नाच्यौ सिव समझाइ ।
त्यूं रजबजू नै कही, गुर आज्ञा इक आइ ॥

(४१) तन मन को अत्यंत वस किये बिना और राम में लय लगाये बिना, जीव के दुःखों का नाश नहीं होता ॥

तौ आतम कण ऊबरै, दादू ऐसी जाण ॥ ४२ ॥
पहली तन मन मारिये, इन का मर्दै मान ।
दादू काढ़ै जंत्र मैं, पीछै सहज समान ॥ ४३ ॥
काटे ऊपरि काटिये, दाधे कौं दौं लाइ ।
दादू नीर न सींचिये, तौ तरवर बधता जाइ ॥ ४४ ॥
दादू सबकौं संकुट एक दिन, काल गहैगा आइ ।
जीवत मृतक ह्वै रहै, ताके निकटि न जाइ ॥ ४५ ॥
दादू जीवत मृतक ह्वै रहै, सब को विरकत होइ ।
काढौ काढौ सब कहैं, नांव न लेवै कोइ ॥ ४६ ॥

॥ जरना ॥

सारा गहिला ह्वै रहै, अंतरजामी जाणि ।
तौ छूटै संसार थैं, रस पीवै सारंगपाणि ॥ ४७ ॥
गुंगा गहिला बावरा, सांई कारण होइ ।
दादू दिवाना ह्वै रहै, ताकौं लषै न कोइ ॥ ४८ ॥

---

(४२) तन मन को बार बार निग्रह करने से आत्मतत्व का प्रकाश होता है ॥

(४३) "सहज समान" की जगह दूसरी पुस्तक में "सज सामान" है ॥

(४६) जीवत मृतक ऐसा होय कि माता पितादि सब जन उस से विरक्त होजांय, "काढ़ौ काढ़ौ" कहैं। ("कहैं" के बदले किसी किसी पोथी में "करैं" है) और निकले पीछे कोई उस का नाम भी न ले ॥

(४७) "सारंगपाणि" लिखित पुस्तकों में "सारंगप्राण" है । सारंग= धनुष हाथ में रखनेवाले रामजी, श्री भगवान, तिनका भजन रूपी रस पीवै ॥ इस साखी पर यह दृष्टांत दिये हैं:—

ऋषभदेव बोले नहीं, गहिले ह्वै जड़ भरथ ।
बाल्मीक बावल भये, ॥

॥ जीवत मृतक ॥

जीवत मृतक साधकी, बाणी का परकास ।
दादू मोहे रामजी, लीन भये सब दास ॥ ४६ ॥

॥ उभै असमाव ॥

दादू जे तूं मोटा मीर है, सब जीवों मैं जीव ।
आपा देषि न भूलिये, षरा दुहेला पीव ॥ ५० ॥
आपा मेटि समाइ रहु, दूजा धंधा बादि ।
दादू काहे पचि मरै, सहजैं सुमिरण साधि ॥ ५१ ॥
दादू आपा मेटे एक रस, मन अस्थिर लै लीन ।
अरस परस आनंद करै, सदा सुषी सो दीन ॥ ५२ ॥
दादू है को भै घणां, नाहीं कौं कुछ नाहिं । (४–४६)
दादू नाहीं होइ रहु, अपणे साहिब मांहि ॥५३॥ खगघङ ॥
दादू मैं नाहीं तहं मैं गया, एकै दूसर नाहिं । (४–४५)
नाहीं कूं ठाहर घणी, दादू निज घर मांहि ॥५४॥ खगघङ ॥
जहां राम तहं मैं नहीं, मैं तहं नाहीं राम । (४–४४)
दादू महल बारीक है, द्वै कूं नाहीं ठाम ॥ ५५ ॥ खगघङ ॥
बिरह अगिन का दाग दे, जीवत मृतक गोर । (३–६७)
दादू पहली घर किया, आदि हमारी ठौर ॥ ५६॥ खगघङ ॥

॥ ईश्वर समर्थाई ॥

नहीं तहां थैं सब किया, फिर नाहीं ह्वै जाइ । (२१–४०)
दादू नाहीं होइ रहु, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ५७ ॥ क ॥

(४६) "सब दास" की जगह चौथी पुस्तक में "निजदास" है ॥

॥ सुमिरण नाम निःसंशय ॥

हमौं हमारा करि लिया, जीवत करणी सार ।
पीछै संसा को नहीं, दादू अगम अपार ॥ ५८ ॥

॥ मधि निर्पष ॥

माटी मांहै ठौर करि, माटी माटी मांहिं ।
दादू समि करि राषिये, द्वै पष दुबिधा नांहिं ॥ ५९ ॥

इति जीवत मृतक कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २३ ॥

अथ सूरातन कौ अङ्ग ॥ २४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ सूर सती साध निर्णय ॥

साचा सिर सौं षेल है, यह साधू जन का काम ।
दादू मरणा आसंघै, सोई कहेगा राम ॥ २ ॥

---

(५९) देखौ साखी ४ इसी अंग की । "राषिये" की जगह "देषिये" पुस्तक नं० ४—५ में है ॥

(२) पिछले अंग में जीवत मृतक होने का उपदेश आया है, मरना मारना काम शूरवीरौं का है । इस हेतु से दयालजी इस अंग में साधु की शूरबीरता बतलाते हैं । बाह्य बैरियौं का रण में जीतना शारीरिक बल का काम है, तैसे अंतर मन का जीतना आत्मिक बल पर निर्भर है, बाहुबल से रण का जीतना सहज है किंतु मन की कल्पनाओं को शांत करना सच्चे शूरबीर का काम है ॥

राम कहैं ते मरि कहैं, जीवत कह्या न जाइ ।
दादू ऐसैं राम कहि, सती सूर सम भाइ ॥ ३ ॥
जब दादू मरिबा गहै, तब लोगों की क्या लाज ।
सती राम साचा कहै, सब ताजि पति सौं काज ॥ ४ ॥

॥ सूरबीर कायर ॥

दादू हम काइर कड़वा करि रहे, सूर निराला होइ ।
निकसि षड़ा भैदान मैं, ता सम और न कोइ ॥ ५ ॥

॥ सूर सती साध निरनै ॥

मडा न जीवै तो संगि जलै, जीवै तो घर आण ।
जीवन मरण राम सौं, सोई सती करि जाण ॥ ६ ॥
जन्म लगैं बिभचारणी, नष सिष भरी कलंक ।
पलक एक सन्मुष जली, दादू धोये अंक ॥ ७ ॥
स्वांग सती का पहरि करि, करै कुटंब का सोच ।
बाहरि सूरा देषिये, दादू भीतरि पोच ॥ ८ ॥
दादू सती त सिरजनहार सौं, जलै बिरह की झाल ।
ना वहु मरै न जलि बुझै, ऐसैं संगि दयाल ॥ ९ ॥
जे मुझ होते लाष सिर, तौ लाषौं देती वारि ।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपै नारि ॥ १० ॥

---

(५) कड़वा = खड़ग = चलने की तैयारी ॥

(६) यह साखी दादूजी ने उस समय अपने शिष्यों से कही थी जब वे आंबेर से अकबरशाह के पास चले थे और शिष्य बादशाह के भय का संदेह करते थे, इस साखी का तात्पर्य यह है कि सती का प्राण त्यागना पति के निमित्त, शूरबीर का धन कीर्ति के निमित्त, साधु का भगवत के निमित्त, श्रेष्ठ है ॥

सती जलि कोइला भई, मुये मड़े की लार ।
यौं जे जलती राम सौं, साचे संगि भर्तार ॥ ११ ॥
मुये मड़े सौं हेत क्या, जे जीव कि जाणै नांहिं ।
हेत हरी सौं कीजिये, जे अंतरजामी मांहिं ॥ १२ ॥

॥ सूरवीर-काइर ॥

सूरा चढ़ि संग्राम कौं, पाछा पग क्यौं देइ ।
साहिब लाजै भाजतां, धृग जीवन दादू तेइ ॥ १३ ॥
सेवग सूरा राम का, सोई कहेगा राम ।
दादू सूर सन्मुष रहै, नहिं काइर का काम ॥ १४ ॥
काइर कामि न आवई, यहु सूरे का षेत ।
तन मन सौंपै राम कौं, दादू सीस सहेत ॥ १५ ॥
जब लग लालच जीव का, तब लग निर्भै हुवा न जाइ ।
काया माया मन तजै, तब चौड़े रहै बजाइ ॥ १६ ॥
दादू चौड़े में आनंद है, नांव धर्‌या रणजीत ।
साहिब अपना करि लिया, अंतर गति की प्रीति ॥ १७ ॥
दादू जे तुझ काम करीम सौं, तौ चौहटै चढ़ि करि नाच ।
झूठा है सो जाइगा, निहचै रहसी साच ॥ १८ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

राम कहैगा एक कोइ, जे जीवत मृतक होइ ।
दादू ढूंढे पाइये, कोटी मध्ये कोइ ॥ १९ ॥

॥ सूर सती साध निर्णय ॥

सूरा पूरा संत जन, सांई कौं सेवै ।

(१९) "कोटी" की जगह पुस्तक नं० ३, ४, ५ में "कोटे" है। कोटि = करोड़ ॥

दादू साहिब कारणै, सिर अपणां देवै ॥ २० ॥
सूरा झूझै षेत मैं, सांई सन्मुष आइ ।
सूरे कौं सांई मिलै, तब दादू काल न षाइ ॥ २१ ॥
मरिबे ऊपरि एक पग, करता करै सो होइ ।
दादू साहिब कारणै, तालाबेली मोहि ॥ २२ ॥

॥ हरि भरोसा ॥

दादू अंग न षैंचिये, कहि समझाऊं तोहि ।
मोंहिं भरोसा राम का, बंका बाल न होइ ॥ २३ ॥
बहुत गया थोड़ा रह्या, अब जिव सोच निवार ।
दादू मरणा मांडि रहु, साहिब के दरबार ॥ २४ ॥

॥ सूरबीर-काइर ॥

जीवूं का संसा पड़्या, को का कौं तारै ।
दादू सोई सूरिवां, जे आप उबारै ॥ २५ ॥
जे निकसै संसार थैं, सांई की दिसि धाइ ।
जे कबहूं दादू बाहुड़ै, तौ पीछै मारया जाइ ॥ २६ ॥
दादू कोइ पीछैं हेला जिनि करै, आगैं हेला आव ।
आगैं एक अनूप है, नहिं पीछैं का भाव ॥ २७ ॥

---

(२३) समरभूमि में जाकर अंग को संकोचित नहीं करना ॥
(२४) मरणा मांडि रहु = मरने के लिये तैयार रहो ॥
(२५) जीवूं का संसा = जीवों को संशय ॥
(२७) तात्पर्य यह है कि साधक सूर आगे आने की पुकार (अनाहद शब्द) सुन कर आगे ही चलता जाय, पीछे न फिरै, अर्थात् ज्यों २ अंतर्मुख वृत्ति बढ़ती जाय त्यों २ वृत्ति को भीतर ही बढ़ाता जाय, बाह्य विषयों की ओर न उलटने दे ॥

पीछैं कौं पग ना भरै, आगैं कौं पग देइ ।
दादू यहु मत सूर का, अगम ठौर कौं लेइ ॥ २८ ॥
आगा चलि पीछा फिरै, ताका मुंह मदीठ ।
दादू देषै दोइ दल, भागै देकरि पीठ ॥ २९ ॥
दादू मरणां मांडि करि, रहै नहीं ल्यौ लाइ ।
काइर भाजै जीव ले, आरणि छांड़े जाइ ॥ ३० ॥
सूरा होइ सुमेर उलंघै, सब गुण बंध्या छूटै ।
दादू निर्भै ह्वै रहै, काइर तिण न टूटै ॥ ३१ ॥

॥ सूर सती साध निर्णय ॥

श्वप केसरि काल कुंजर, बहु जोध मारग मांहि ।
कोटि मैं कोइ एक ऐसा, मरण आसंधि जांहि ॥ ३२ ॥
दादू जब जागै तब मारिये, बैरी जिय के साल ।
मनसा डायनि काम रिपु, क्रोध महाबलि काल ॥ ३३ ॥
पंच चोर चितवत रहीं, माया मोह विषझाल ।
चेतन पहरै आपणैं, कर गहि षड़ग संभाल ॥ ३४ ॥
काया कबज कमान करि, सार सबद करि तीर ।
दादू यहु सर सांधि करि, मारै मोटे मीर ॥ ३५ ॥
काया कठिन कमान है, षांचै बिरला कोइ ।

---

(२९) मुंह मदीठ = मुंह देखने के अयोग्य ॥ "आगा" की जगह "आधा" पुस्तक नं० २, ३, ४, ५ में है ॥

(३२) सर्पासिंहादि (काम क्रोधादि) अनेक विघ्न सन्मार्ग में हैं ॥

(३५) काया की कमान से राम नाम का तीर मीर (परमेश्वर) को लक्ष करै ॥

मारै पंचौं मृगला, दादू सूरा सोइ ॥ ३६ ॥
जे हरि कोप करै इन ऊपरि, तौ काम कटक दल जांहिं कहां।
लालच लोभ क्रोध कत भाजैं, प्रगट रहे हरि जहां तहां ॥३७॥

॥ जीवत मृतक ॥

तब साहिब कौं सिजदा किया, जब सिर धरत्या उतारि। (२३-१०)
यौं दादू जीवत मरै, हिरस हवा कौं मारि। ३८ ॥

॥ मुरातन ॥

दादू तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका।
जिसका तिसकौं सौंपिये, सोच क्या जी का ॥ ३९ ॥
जे सिर सौंप्या रामकौं, सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसकै हाथ ॥ ४० ॥
जिसका है तिसकौं चढ़ै, दादू ऊरण होइ।
पहली देवै सो भला, पीछै तौ सब कोइ ॥ ४१ ॥
सांई तेरे नांव परि, सिर जीव करूं कुरबान।
तन मन तुम परि वारणैं, दादू प्यंड पराण ॥ ४२ ॥
अपणे सांई कारणे, क्या क्या नहिं कीजै।
दादू सब आरंभ तजि, अपणा सिर दीजै ॥ ४३ ॥
सिर कै साटै लीजिये, साहिब जी का नांव।
पैलै सीस उतारि करि, दादू मैं वलि जांव ॥ ४४ ॥
पैलै सीस उतारि करि, अधर एक सौं आइ।
दादू पावै प्रेम रस, सुष मैं रहै समाइ ॥ ४५ ॥

---

(३६) पंचौं मृगला = पंच इन्द्रियां ॥
(३९) "सौंपिये" की जगह "दीजिये" पुस्तक नं० २, ५ में है ॥

॥ मरण भय निवारण ॥

दादू मरणे थीं तूं मति डरै, सब जग मरता जोइ ।
मिलि करि मरणा राम सौं, तौ कलि अजरावर होइ ॥४६॥
दादू मरणे थीं तूं मति डरै, मरणां अति निदान ।
रे मन मरणा सिरज्यया, कहिले केवल राम ॥ ४७ ॥
दादू मरणें थीं तूं मति डरै, मरणा पहुंच्या आइ ।
रे मन मेरा राम कहि, बेगा बार न लाइ ॥ ४८ ॥
दादू मरणे थीं तूं मति डरै, मरणा आजि कि काल्हि ।
मरणा मरणा क्या करै, बेगा राम संभालि ॥ ४९ ॥
दादू मरणा षूब है, निपट बुरा बिभचार ।
दादू पति कौं छाड़ि करि, आन भजै भर्तार ॥ ५० ॥
दादू तन थैं कहा डराइये, जे बिनसि जाइ पल बार ।
काइर हुवां न छूटिये, रे मन हो हुसियार ॥ ५१ ॥
दादू मरणा षूब है, मरि मांहै मिलि जाइ ।
साहिब का संग छांडि करि, कौन सहै दुष आइ ॥५२॥ ङ ॥

॥ सूरातन ॥

दादू मांहैं मन सौं झूझ करि, ऐसा सूरा बीर ।
इंद्री अरि दल भानि सब, यौं कलि हुवा कबीर ॥५३॥
सांई कारण सीस दे, तन मन सकल सरीर ।
दादू प्राणी पंच दे, यौं हरि मिल्या कबीर ॥५४॥ ङ ॥
सबै कसौटी सिर सहै, सेवग सांई काज ।
दादू जीवनि क्यौं तजै, भाजै हरि कौं लाज ॥ ५५ ॥

(५५) इस साखी में दयालजी कहते हैं कि परमेश्वर की प्राप्ति के नि-

सांई कारण सब तजै, जन का ऐसा भाव ।
दादू राम न छाडिये, भावै तन मन जाव ॥ ५६ ॥

॥ पतिव्रत निष्काम ॥

दादू सेवग सो भला, सेवै तन मन लाइ ।
दादू साहिब छाडि करि, काहू संगि न जाइ ॥ ५७ ॥
पतिव्रता पति पीव कौं, सेवै दिन अरु राति ।
दादू पतिकूं छाडि करि, काहू संगि न जात ॥ ५८ ॥

॥ मूरातन ॥

सोरठा—दादू मरिबो एकजु बार, अमर झुकेड़े मारिये ।
तौ तिरिये संसार, आतम कारिज सारिये ॥ ५९ ॥
दादू जे तूं प्यासा प्रेमका, तौ जीवन की क्या आस ।
सिरकै साटै पाइये, तौ भरि भरि पीवै दास ॥ ६० ॥

॥ काइर ॥

मन मनसा जीते नहीं, पंच न जीते प्राण ।
दादू रिप जीते नहीं, कहैं हम सूर सुजाण ॥ ६१ ॥
मन मनसा मारै नहीं, काया मारण जाहि ।
दादू बांबी मारिये, सर्प मरै क्यौं मांहि ॥ ६२ ॥

॥ मूरातन ॥

दादू पाषर पहरि करि, सब को झूझण जाइ ।
अंगि उघाड़े सूरिवां, चोट मुहैं मुंह षाइ ॥ ६३ ॥

मित्त सब तरह के दुःख सेवक को सहने चाहिये । अपनी जीवनरूपी प्रेमा भक्ति को क्यों तजै ? इस बात की लाज परमेश्वर ही को है ॥

जब झूझै तब जाणिये, काछि षड़े क्या होइ ।
चोट मुंहैं मुंह षाइगा, दादू सूरा सोइ ॥ ६४ ॥
सूरातन सहजैं सदा, साच सेल हथियार ।
साहिब कै बल झूझतां, केते किये सुमार ॥ ६५ ॥
दादू जब लग जिय लागै नहीं, प्रेम प्रीति के सेल ।
तब लग पिव क्यौं पाइये, नहिं बाजीगर का षेल ॥ ६६ ॥
दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तौ किस कौं सैंतै जीव ।
सिर कै साटै लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ॥ ६७ ॥
दादू महा जोध मोटा बली, सो सदा हमारी भीर ।
सब जग रूठा क्या करै, जहां तहां रणधीर ॥ ६८ ॥
दादू रहते पहते रामजन, तिन भी मांड्या झूझ ।
साचा मुंह मोड़ै नहीं, अर्थ इताही बूझ ॥ ६९ ॥

॥ हरि भरोस ॥

दादू कांधै सबल के, निर्बाहैगा ओर ।
आसणि अपनै ले चल्या, दादू निहचल ठौर ॥ ७० ॥

॥ सूरातन ॥

दादू क्या बल कहा पतंग का, जलत न लागै बार ।
बल तौ हरि बलवंत का, जीवैं जिहिं आधार ॥ ७१ ॥
रावण हारा राम है, सिर ऊपरि मेरे ।
दादू केते पचि गये, बैरी बहुतेरे ॥ ७२ ॥

---

(६५) सूर बीर अपने तन को सदा सजा रखता है, सांच रूपी सेल (भाला) हाथ में रखके साहेब के बल से युद्ध करता हुआ, कितने ही कामादिक को परास्त करता है ॥

॥ सूरातन विनती ॥

दादू बलि तुम्हारे बापजी, गिणत न राणा राव ।
मीर मलिक प्रधान पति, तुम बिन सबही बाव ॥ ७३ ॥
दादू राषी राम पर, अपणी आप संबाहि ।
दूजा को देखूं नहीं, ज्यौं जाणैं त्यौं निर्बाहि ॥ ७४ ॥
तुम बिन मेरे को नहीं, हमकौं राषनहार ।
जे तूं राषै सांईयां, तौ कोई न सकै मार ॥ ७५ ॥
सब जग छाडै हाथ थैं, तौ तुम जिनि छाडहु राम ।
नहिं कुछ कारिज जगत सौं, तुमहीं सेती काम ॥ ७६ ॥

॥ सूरातन ॥

दादू जाते जिवथैं तौ डरूं, जे जिव मेरा होइ ।
जिन यहु जीव उपाइया, सार करैगा सोइ ॥ ७७ ॥
दादू जिनकौं सांई पधरा, तिन बंका नाहीं कोइ ।
सब जग रूठा क्या करै, राषणहारा सोइ ॥ ७८ ॥
दादू साचा साहिब सिर ऊपरै, तती न लागै बाव ।
चरण कवल की छाया रहै, कीया बहुत पसाव ॥ ७९ ॥

॥ विनती ॥

दादू कहै जे तूं राषै सांइया, तौ मारि सकै ना कोइ ।
बाल न बंका करि सकै, जे जग बैरी होइ ॥ ८० ॥
दादू राषण हारा राषै, तिसैं कौन मारै ।
उसै कौन डबोवै, जिसै सांइ तारै ॥
कहै दादू सो कबहूं न हारै, जे जन सांई संभारै ॥८१॥
निर्भै बैठा राम जपि, कबहूं काल न षाइ ।

जब दादू कुंजर चढ़ै, तब सुनहां झषि जाइ ॥ ८२ ॥
काइर कूकर कोटि मिलि, भौंकै अरु भागै ।
दादू गरवा गुरमुषी, हस्ती नहिं लागै ॥ ८३ ॥

इति सूरातन कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २४ ॥

अथ काल कौ अङ्ग ॥ २५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
काल न सूझै कंध पर, मन चितवै बहु आस ।
दादू जीव जाणै नहीं, कठिन काल की पास ॥ २ ॥
दादू काल हमारे कंध चढ़ि, सदा बजावै तूर ।
काल हरण करता पुरिष, क्यौं न संभालै सूर ॥ ३ ॥
जहं जहं दादू पग धरै, तहां काल का फंध ।
सिर ऊपर सांधे षड़ा, अजहुं न चेतै अंध ॥ ४ ॥
दादू काल गिरासन का कहिये, काल रहित कहि सोइ ।
काल रहित सुमिरण सदा, बिना गिरासन होइ ॥ ५ ॥

(५) काल के ग्रास सभी जन हैं उनकी क्या कहें, जो कोई काल से बचा हो तो उसकी कहनी चाहिये । सो काल से बचा (बिना गिरासन) वही है जो सदा काल रहित (अमर) परमात्मा के सुमिरण में रत है ॥

दादू मरिये राम बिन, जीजै राम संभाल ।
अमृत पीवै आत्मा, यौं साधू बंचै काल ॥ ६ ॥
दादू यहु घट काचा जल भरया, बिनसत नाहीं बार ।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गंवार ॥ ७ ॥
फूटी काया जाजरी, नव ठाहर काणी ।
तामैं दादू क्यौं रहै, जीव सरीषा पाणी ॥ ८ ॥
बाव भरी इस पाल का, झूठा गर्व गुमान ।
दादू बिनसै देषतां, तिस का क्या अभिमान ॥ ९ ॥
दादू हम तौ मूये मांहिं हैं, जीवण कार भरंम ।
झूठे का क्या गरबवा, पाया मुझ मरंम ॥ १० ॥
यहु बन हरिया देषिकर, फूल्यौ फिरै गंवार ।
दादू यहु मन मृगला, काल अहेड़ी लार ॥ ११ ॥
सबहीं दीसै काल मुषि, आपै गहि करि दीन्ह ।
बिनसै घट आकार का, दादू जे कुछ कीन्ह ॥ १२ ॥
काल कीट तन काठ कौं, जुरा जनम कूं षाइ ।
दादू दिन दिन जीवकी, आव घटंती जाइ ॥ १३ ॥
काल गिरासै जीव कौं, पल पल सासैं सास ।
पग पग मांहैं दिन घड़ी, दादू लषै न तास ॥ १४ ॥

---

(१०) हम तौ मरे हुओं की कोटि में हैं, जो शरीर को ज़िंदा मानते हैं उन्हीं को यह संसार रूपी भ्रम है । झूठी काया का वह गर्व नहीं करता जिसने आत्मा का भेद पाया है ॥

"कार" की जगह पु० नं० २ में "कारु" है । "गरबवा" की जगह पु० नं० २-३ में "गारिबा" वा "गारबा" है ॥

पग पलक की सुधि नहीं, सास सबद क्या होइ ।
कर मुष मांहै मेल्हतां, दादू लषै न कोइ ॥ १५ ॥
दादू काया कारवीं, देषत ही चलि जाइ ।
जब लग सास सरीर मैं, राम नाम ल्यौ लाइ ॥ १६ ॥
दादू काया कारवीं, मोहिं भरोसा नांहिं ।
आसण कुंजर सिरि छत्र, बिनासि जाहिं षिण मांहिं ॥ १७ ॥
दादू काया कारवीं, पड़त न लागै बार ।
बोलणहारा महल मैं, सो भी चालणहार ॥ १८ ॥
दादू काया कारवीं, कदे न चालै संग ।
कोटि बरस जे जीवणा, तऊ होइला भंग ॥ १९ ॥
कहतां सुनतां देषतां, लेतां देतां प्राण ।
दादू सो कतहूं गया, माटी धरी मसाण ॥ २० ॥
सींगी नाद न बाजहीं, कत गये सो जोगी ।
दादू रहते मढ़ी मैं, करते रस भोगी ॥ २१ ॥
दादू जियरा जाइगा, यहु तन माटी होइ ।
जे उपज्या सो बिनसि है, अमर नहीं कलि कोइ ॥२२॥
दादू देही देषतां, सब किस ही की जाइ ।

---

(१५) किसी को यह भरोसा नहीं है कि अगले क्षण में क्या होगा ॥
(१६) काया कारवीं । दृष्टांत—
चार पुरुष भाड़े लई, बणिक कोठड़ी चारि ।
कहि भाड़ो हमरो यहै, कबहूं देउं निकारि ॥
(२१) दृष्टांत—गुर दादू आंबेर थे, ढिग जोगी के थान ।
इक दिन सींगी ना बजी, मरिगौ जोगी जान ॥

जब लग सास सरीर मैं, गोविंद के गुण गाइ ॥ २३ ॥
दादू देही पाहुणी, हंस बटाऊ मांहिं ।
का जाणौं कब चालिसी, मोहिं भरोसा नांहिं ॥ २४ ॥
दादू सब को पाहुणां, दिवस चारि संसार ।
अवसर अवसर सब चले, हम भी इहै विचार ॥ २५ ॥

॥ भयमई– पंथ विषमता ॥

सब को बैठे पंथ सिरि, रहे बटाऊ होइ ।
जे आये ते जाहिंगे, इस मारग सब कोइ ॥ २६ ॥
बेग बटाऊ पंथ सिरि, अब विलंब न कीजै ।
दादू बैठा क्या करै, राम जपि लीजै ॥ २७ ॥
संझ्या चलै उतावला, बटाऊ बनषंड मांहि ।
बरियां नाहीं ढील की, दादू बेगि घरि जांहि ॥ २८ ॥
दादू करह पलाणि करि, को चेतन चढ़ि जाइ ।
मिलि साहिब दिन देषतां, सांझ पड़ै जिनि आइ ॥२९॥
पंथ दुहेला दूरि घर, संग न साथी कोइ ।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यौं सुष सोइ ॥ ३० ॥
लंघण के लकु घणा, कपर चाट डीन्ह ।
अला पांधी पंध में, बिहंदा आहीन ॥३१ ॥

॥ काल चितावणी ॥

दादू हंसतां रोवतां पाहुणा, काहू छाडि न जाइ ।
काल पड़ौ सिर ऊपरै, आवणहारा आइ ॥ ३२ ॥

(३२) पाहुणा (दामाद) हंसती हुई अथवा रोती हुई लड़की को छोड़ नहीं जाता । तैसे ही आने वाला काल सिर पर सवार है ॥

दादू जोरा बैरी काल है, सो जीव न जानै ।
सब जग सूता नींदड़ी, इस तानै बानै ॥ ३३ ॥
दादू करणी काल की, सब जग परलै होइ ।
राम विमुष सब मरि गये, चेति न देषै कोइ ॥ ३४ ॥
साहिब कौं सुमिरै नहीं, बहुत उठावै भार ।
दादू करणी काल की, सब परलै संसार ॥ ३५ ॥
सूता काल जगाइ करि, सब पैसैं मुष मांहिं ।
दादू अचिरज देषिया, कोई चेतै नांहिं ॥ ३६ ॥
सब जीव बिसाहैं काल कौं, करि करि कोटि उपाइ ।
साहिब कौं समझैं नहीं, यौं परलै ह्वै जाइ ॥ ३७ ॥
दादू कारण काल के, सकल संवारै आप ।
मीच बिसाहैं मरण कौं, दादू सोग संताप ॥ ३८ ॥
दादू अमृत छाडि करि, विषै हलाहल षाइ ।
जीव बिसाहै काल कौं, मूढ़ा मरि मरि जाइ ॥ ३९ ॥
निर्मल नांव बिसारि करि, दादू जीव जंजाल ।
नहीं तहां थैं करि लिया, मनसा मांहै काल ॥ ४० ॥
सब जग छेली, काल कसाई, कर्द लिये कंठ काटै ।
पंच तत्त की पंच पंषरी, षंड षंड करि बांटै ॥ ४१ ॥
काल झाल में जग जलै, भाजि न निकसै कोइ ।

---

(३६) दृष्टांत—दोय पुरुष मग जात थे, देख्यौ सोवत नाग ।
एक बरजतैं लात दी, षात मरयौ वही जाग (जगह) ॥
(४०) दृष्टांत – विद्या पढ़ी सजीवनी, काल बंचणी नांहिं ।
जगजीवन गुर ज्ञान बिन, पड़या सिंह मुष मांहिं ॥

दादू सरणैं साच कै, अभै अमर पद होइ ॥ ४२ ॥
सब जग सूता नींद भरि, जागै नाहीं कोइ ।
आगै पीछै देखिये, प्रतषि परलै होइ ॥ ४३ ॥

॥ आसक्तिता मोह ॥

ये सजन दुर्जन भये, अंति काल की बार ।
दादू इन मैं को नहीं, बिपति बटावणहार ॥ ४४ ॥
संगी सजण आपणां, साथी सिरजनहार ।
दादू दूजा को नहीं, इहि कलि इहि संसार ॥ ४५ ॥

॥ काल चितावणी ॥

ए दिन बीते चलि गये, वै दिन आये धाइ ।
राम नाम बिन जीव कौं, काल गरासै जाइ ॥ ४६ ॥
जे उपज्या सो बिनसि है, जे दीसै सो जाइ ।
दादू निर्गुण राम जप, निहचल चित्त लगाइ ॥ ४७ ॥
जे उपज्या सो बिनसि है, कोई थिर न रहाइ ।
दादू बारी आपणी, जे दीसै सो जाइ ॥ ४८ ॥
दादू सब जग मरि मरि जात है, अमर उपावणहार ।
रहता रमता राम है, बहता सब संसार ॥ ४९ ॥

॥ सजीवन ॥

दादू कोइ थिर नहीं, यहु सब आवै जाइ ।
अमर पुरिस आपै रहै, कै साधू ल्यौ लाइ ॥ ५० ॥

॥ काल चितावणी ॥

यहु जग जाता देखि करि, दादू करी पुकार ।
घड़ी महूरत चालनां, राखै सिरजनहार ॥ ५१ ॥

दादू विष सुष मांहै षेलतां, काल पहूंच्या आइ ।
उपजै बिनसै देषतां, यहु जग यौंहीं जाइ ॥ ५२ ॥
राम नाम बिन जीव जे, केते मुये अकाल ।
मीच बिना जे मरत हैं, तार्थें दादू साल ॥ ५३ ॥

॥ कठोरता ॥

सर्प सिंह हस्ती घणां, राकस भूत परेत ।
तिस बन मैं दादू पड्या, चेतै नहीं अचेत ॥ ५४ ॥
पूत पिता थैं बीछुट्या, भूलि पड्या किस ठौर ।
मरै नहीं उर फाटि करि, दादू बड़ा कठोर ॥ ५५ ॥

॥ काल चितावणी ॥

जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै, आव घटै तन छीजै ।
अंति काल दिन आइ पहूंता, दादू ढील न कीजै ॥ ५६ ॥
दादू अवसर चलि गया, बरियां गई बिहाइ ।
कर छिटकें कहं पाइये, जन्म अमोलिक जाइ ॥ ५७ ॥
दादू गाफिल ह्वै रह्या, गहिला हुवा गंवार ।
सो दिन चीति न आवई, सोवै पांव पसार ॥ ५८ ॥
दादू काल हमारा कर गहै, दिन दिन षैंचत जाइ ।
अजहुं जीव जागै नहीं, सोवत गई बिहाइ ॥ ५९ ॥
सूता आवै सूता जाइ, सूता षेलै सूता षाइ ।
सूता लेवै सूता देवै, दादू सूता जाइ ॥ ६० ॥

---

(५७) कर छिटकें = हाथ से छूटे ।
(६०) सूता = अज्ञान दशा में ।

दादू देषत हीं भया, स्याम बर्ण थैं सेत।
तन मन जोबन सब गया, अजहुं न हरिसौं हेत ॥ ६१ ॥
दादू झूठे के घर देषि करि, झूठे पूछे जाइ।
झूठे झूठा बोलते, रहे मसाणौं आइ ॥ ६२ ॥
दादू प्राण पयाणा करि गया, माटी धरी मसांण।
जालण हारे देषि करि, चेतैं नहीं अजांण ॥ ६३ ॥
दादू केइ जाले केइ जालिये, केई जालन जांहिं।
केई जालन की करैं, दादू जीवन नाहिं ॥ ६४ ॥
केई गाड़े केइ गाड़िये, केई गाड़न जांहिं।
केई गाडन की करैं, दादू जीवन नाहिं ॥ ६५ ॥
दादू कहै—उठ रे प्राणी जाग जिव, अपना सजन संभाल।
गाफिल नींद न कीजिये, आइ पहूंता काल ॥ ६६ ॥
समरथ की सरणा तजै, गहै आनकी ओट।
दादू बलिवत कालकी, क्यौं करि बंचै चोट ॥ ६७ ॥

॥ सजीवन ॥

अविनासीकै आसरै, अजरावरकी ओट।
दादू सरणै साचकै, कदे न लागै चोट ॥ ६८ ॥

॥ काल चितावणी ॥

मूसा भागा मरण थैं, जहां जाइ तहं गोर।

---

(६२) इस साखी का तात्पर्य यह है कि झूठे व्यौहारों में जन आयु व्यतीत करते हैं।

(६५) दृष्टांत—कही पादशाह मोंहि कों मीच न याद रहाय।
लाय बीरबल बोड़ (कबर खोदनेवाले) बहु, खड़े दिखाये आय ॥

दादू सर्ग पयाल सब, कठिन काल का सोर ॥ ६९ ॥
सब मुष मांहैं काल के, मांड्या माया जाल ।
दादू गोर मसाण मैं, झंषै सर्ग पयाल ॥ ७० ॥
दादू मड़ा मसाण का, केता करै डफान ।
मृतक मुरदा गोर का, बहुत करै अभिमान ॥ ७१ ॥
राजा राणा राव मैं, मैं षानों सिर षान ।
माया मोह पसारै एता, सब धरती असमान ॥ ७२ ॥
पंच तत्त का पूतला, यहु पिंड संवारा ।
मंदिर माटी मांस का, बिनसत नाहीं बारा ॥ ७३ ॥
हाड़ चाम का प्यंजरा, बिचि बोलणहारा ।
दादू तामैं पैसि करि, बहु किया पसारा ॥ ७४ ॥
बहुत पसारा करि गया, कुछ हाथि न आया ।
दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछिताया ॥ ७५ ॥
माणस जल का बुदबुदा, पानी का पोटा ।
दादू काया कोट मैं, मैं बासी मोटा ॥ ७६ ॥
बाहरि गढ़ निर्भै करै, जीवे के तांई ।
दादू मांहैं काल है, सो जाणै नांहीं ॥ ७७ ॥

॥ चित कपटी ॥

दादू साचै मत साहिब मिलै, कपट मिलैगा काल ।
साचै परम पद पाइये, कपट काया मैं साल ॥ ७८ ॥

॥ काल चितावणी ॥

मन ही मांहैं मीच है, सारौं के सिर साल ।

(७१) तात्पर्य—यह मरनहारा जीव कितने २ अभिमान करता है ॥

जे कुछ व्यापै राम बिन, दादू सोई काल ॥ ७९ ॥
दादू जेती लहरि बिकार की, काल कवल मैं सोइ ।
प्रेम लहरि सो पीव की, भिन्न भिन्न यौं होइ ॥ ८० ॥
दादू काल रूप मांहैं बसै, कोई न जाणै ताहि ।
यह कूड़ी करणी काल है, सब काहू कूं षाइ ॥ ८१ ॥
दादू विष अमृत घट मैं बसै, दून्यूं एकै ठांव ।
माया बिषै बिकार सब, अमृत हरि का नांव ॥ ८२ ॥
दादू कहां महम्मद मीर था, सब नबियों सिरताज ।
सो भी मरि माटी हुवा, अमर अलह का राज ॥ ८३ ॥
केते मरि माटी भये, बहुत बड़े बलवंत ।
दादू केते ह्वै गये, दानां देव अनंत ॥ ८४ ॥
दादू धरती करते एक डग, दरिया करते फाल ।
हाकौं पर्वत फाड़ते, सो भी षाये काल ॥ ८५ ॥
दादू सब जग कंपै काल थैं, ब्रह्मा विश्न महेस ।
सुरनर मुनिजन लोक सब, सर्ग रसातल सेस ॥ ८६ ॥
चंद सूर धर पवन जल, ब्रह्मंड षंड परवेस ।
सो काल डरै करतार थैं, जै जै तुम आदेस ॥ ८७ ॥
पवना पानी धरती अंबर, विनसै रवि ससि तारा ।
पंच तत्त सब माया बिनसै, मानिष कहा बिचारा ॥ ८८ ॥
दादू विनसैं तेज के, माटी के किस मांहिं ।

---

(८५) बावनजी ने एक डग पृथ्वी का किया, समुद्र फलांग हनुमान जी की ॥

अमर उपावणहार है, दूजा कोई नांहिं ॥ ८९ ॥
प्राण पवन ज्यौं पतला, काया करै कमाइ । (४–१९९)
दादू सब संसार मैं, क्यौं ही गह्या न जाइ ॥ ९० ॥ खगधङ ॥
नूर तेज ज्यौं जोति है, प्राण पिंड यौं होइ । (४–२००)
दिष्टि मुष्टि आवै नहीं, साहिब के बस सोइ ॥ ९१ ॥ खगधङ ॥

॥ स्वकीय मित्र शत्रुता ॥

मनहीं मांहैं ह्वै मरै, जीवै मनहीं मांहिं । (३५–१२)
साहिब साषीभूत है, दादू दूसण नांहिं ॥ ९२ ॥
आपै मारै आप कौं, आप आप कौं पाइ । (१२–५९)
आपै अपना काल है, दादू कहि समझाइ ॥ ९३ ॥ खगधङ ॥
आपै मारै आप कौं, यहु जीव बिचारा । (१२–६०)
साहिब राषणहार है, सो हितू हमारा ॥ ९४ ॥ खगधङ ॥

॥ मत्सर ईर्षा ॥

दीसै माणस प्रत्यष काल । (३३–१२)
ज्यौं करि त्यौं करि दादू टाल ॥ ९५ ॥ क ॥

॥ इति काल कौ अंग संपूर्ण समास ॥ २५ ॥

---

(८९) तेज के = चंद्र सूर्य तारे देवते । माटी के = मनुष्यादि ॥
(९२) "मन ही माहिं ह्वै मरै" की जगह "मन ही माहिं मीच है" पुस्तक नं० ४ में है ॥

अथ सजीवन कौ अङ्ग ॥ २६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू जे तूं जोगी गुरमुषी, तौ लेना तत्त बिचारि ।
गहि आवध गुर ज्ञान का, काल पुरिस कौं मारि॥ २ ॥
नाद बिंद सौं घट भरै, सो जोगी जीवै ।
दादू काहे कौं मरै, राम रस पीवै ॥ ३ ॥
साधू जनकी बासना, सबद रहै संसार ।
दादू आत्म ले मिलै, अमर उपावणहार ॥ ४ ॥
राम सरीषे ह्वै रहै, यहु नाहीं उनहार ।
दादू साधू अमर है, बिनसै सब संसार ॥ ५ ॥
जे कोइ सेवै राम कौं, तौ राम सरीषा होइ ।
दादू नाम कबीर ज्यौं, साषी बोलै सोइ ॥ ६ ॥
अर्थि न आया सो गया, आया सो क्यौं जाइ ।

---

(४) साधू जन की बासना (रहन) और सबद (बोल चाल) तौ संसारभाव से रहती है किंतु आत्म उन का अमर उपावणहार परमात्मा में लीन होता है ॥

(५) यहु "नाहीं" उनहार = यही अहंता ममता रहित मोक्ष का स्वरूप है, देखौ परचा के अंग की ४६ वीं साखी ।

(६) नाम कबीर ज्यौं = जैसे नामदेव और कबीरजी हुये ॥

दादू तन मन जीवतां, आपा ठौर लगाइ ॥ ७ ॥
पहली था सो अब भया, अब सो आगैं होइ । (७–७½)
दादू तीन्यूं ठौर की, बिरला बूझै कोइ ॥ ८ ॥
जे जन बेधे प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव ।
उलटि समाने आप मैं, अंतर नाहीं पीव ॥ ९ ॥

॥ दया बिनती ॥

दादू कहै–सब रंग तेरे, तैं रंगे, तूंहीं सब रंग मांहिं ।
सब रंग तेरे, तैं किये, दूजा कोई नांहिं ॥ १० ॥

॥ सजीवन ॥

छूटै दंद तौ लागै बंद, लागै बंद तौ अमरकंद,
अमरकंद दादू आनंद ॥ ११ ॥
प्रश्न–कहं जमजौरा भंजिये, कहां काल कौ डंड ।
कहां मीच कौं मारिये, कहां जुरा मत षंड ॥ १२ ॥
उत्तर–अमर ठौर अविनासी आसन, तहां निरंजन लागि रहे ।
दादू जोगी जुगि जुगि जीवै, काल व्याल सब सहज गये ॥ १३ ॥
रोम रोम लै लाइ धुनि, ऐसैं सदा अषंड ।
दादू अविनासी मिलै, तौ जम कौं दीजै डंड ॥ १४ ॥
दादू जुरा काल जामण मरण, जहां जहां जिव जाइ ।

---

(७) जो जन राम भजन में नहीं लगे, सो इस संसार में आकर वृथा ही गये । जो राम भजन में लग गये सो वृथा नहीं जाते । सो दयालजी कहते हैं कि तन मन अहंभाव को जीते जी ठौर (परमेश्वर में) लगाना उचित है ॥

(११) दंद=रागद्वेषादि द्वंद । बंद=ध्यान । अमरकंद=मोक्ष ।

भगति पराइण लीन मन, ताकौं काल न षाइ ॥ १५ ॥
मरणा भागा मरण थैं, दुषैं नांठा दुष।
दादू भै सौं भै गया, सुषैं छूटा सुष ॥ १६ ॥

॥ मुक्ति अमोल ॥

जीवत मिले सो जीवते, मूयें मिलि मरि जाइ।
दादू दून्यूं देषि करि, जहं आपै तहं लाइ ॥ १७ ॥

॥ सजीवन ॥

दादू साधन सब किया, जब उनमन लागा मन।
दादू अस्थिर आतमा, यौं जुग जुग जीवै जन॥ १८ ॥
रहते सेती लागि रहु, तौ अजरावर होइ।
दादू देषि बिचारि करि, जुदा न जीवै कोइ ॥ १९ ॥
जेती करणी कालकी, तेती परहरि प्राण।
दादू आतमराम सौं, जे तूं षरा सुजाण ॥ २० ॥
बिष अमृत घटमैं बसै, बिरला जाणै कोइ।
जिन बिष षाया ते मुये, अमर अमी सौं होइ ॥ २१ ॥
दादू सबही मरि रहे, जीवै नांहीं कोइ।
सोई कहिये जीवता, जे कलि अजरावर होइ ॥ २२ ॥
देह रहै संसार मैं, जीव राम के पास। (१८–२१)
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुषत्रास ॥२३॥ खगधड ॥

---

(१६) हर्ष शोक से रहित हुआ ॥
(१७) जीवत है परमात्मा, उस से अतिरिक्त सब मुवा कहाता है ॥
(१८) अस्थिर = स्थिर का भाषा उच्चारण है ॥
(१९) रहते सेती = सदा रहनेवाले परमात्मा के साथ ॥

काया की संगति तजै, बैठा हरिपद मांहिं । (१८–२८)
दादू निर्भै ह्वै रहै, कोइ गुण व्यापै नांहिं ॥ २४ ॥ खगघड ॥
दादू तजि संसार सब, रहै निराला होइ ।
अविनासी कै आसिरै, काल न लागै कोइ ॥ २५ ॥
जागहु लागहु रामसौं, रैनि बिहानी जाइ ।
सुमिर सनेही आपणा, दादू काल न षाइ ॥ २६ ॥
दादू जागहु लागहु राम सौं, छाड़हु विषै विकार ।
जीवहु पीवहु रामरस, आतम साधन सार ॥ २७ ॥
॥ सुमिरण नाम निःसंशय ॥
मरै त पावै पीव कौं, जीवत बंचै काल ।
दादू निर्भै नांव ले, दून्यौं हाथि दयाल ॥ २८ ॥
दादू मरणे कौं चल्या, सजीवन के साथि ।
दादू लाहा मूल सौं, दून्यौं आये हाथि ॥ २९ ॥
॥ करुणा ॥
दादू जाता देषिये, लाहा मूल गंवाइ ।
साहिब की गति अगम है, सो कुछ लषी न जाइ ॥ ३० ॥
॥ सजीवन ॥
साहिब मिलै तो जीविये, नहीं तो जीवैं नांहिं ।
भावै अनंत उपाव करि, दादू मूवौं मांहिं ॥ ३१ ॥
सजीवनि साधै नहीं, तातैं मरि मरि जाइ ।
दादू पीवै रामरस, सुष मैं रहै समाइ ॥ ३२ ॥
दिन दिन लहुड़े हूंहिं सब, कहैं मोटा होता जाइ ।
दादू दिन दिन ते बढ़ैं, जे रहे राम ल्यौ लाइ ॥ ३३ ॥

न जाणूं हांजी चुप गहि, मेटि अग्नि की झाल। (१६—७०)
सदा सजीवन सुमिरिये, दादू बंचै काल ॥ ३४ ॥

॥ मुक्ति अमोष=जीवन्मुक्ति ॥

दादू जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुकता होइ ।
जीवत काटै कर्म सब, मुकति कहावै सोइ ॥ ३५ ॥
दादू जीवत ही दूतर तिरै, जीवत लंघै पार ।
जीवत पाया जगत गुर, दादू ज्ञान बिचार ॥ ३६ ॥
जीवत जगपति कौं मिलै, जीवत आत्मराम ।
जीवत दर्सन देषिये, दादू मन बिसराम ॥ ३७ ॥
जीवत पाया प्रेमरस, जीवत पिया अघाइ ।
जीवत पाया स्वाद सुष, दादू रहे समाइ ॥ ३८ ॥
जीवत भागे भरम सब, छूटे कर्म अनेक ।
जीवत मुकत सदगत भये, दादू दर्सन एक ॥ ३९ ॥
जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ ॥ ४० ॥
जीवत दूतर ना तिरे, जिवत न लंघे पार ।
जीवत निरभै ना भये, दादू ते संसार ॥ ४१ ॥
जीवत प्रगट ना भया, जीवत पर्चा नांहि ।

---

(३४) सजीवन जो परमात्मा है, जिस के विषय यह नहीं कह सकते कि हम उसे जानते हैं अथवा नहीं जानते (यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह), जिस के विषय में चुप ही धारण करना पड़ता है, ऐसे अमार परमात्मा का सदैव सुमिरण करते हुये हम संसार की दाह को मिटाकर, काल से बचते हैं ॥

जीवत न पाया पीव कौं, बूड़े भौजल मांहिं ॥ ४२ ॥
जीवत पद पाया नहीं, जीवत मिले न जाइ ।
जीवत जे छूटे नहीं, दादू गये बिलाइ ॥ ४३ ॥
दादू छूटै जीवतां, मूवां छूटै नांहिं ।
मूवां पीछैं छूटिये, तौ सब आये उस मांहिं ॥ ४४ ॥
मूवां पीछैं मुकति बतावैं, मूवां पीछैं मेला ।
मूवां पीछैं अमर अभै पद, दादू भूले गहिला ॥ ४५ ॥
मूवां पीछैं बैकुंठ बासा, मुवां सुरग पठावैं ।
मूवां पीछैं मुकति बतावैं, दादू जग बौरावैं ॥ ४६ ॥
मूवां पीछैं पद पहुंचावैं, मूवां पीछैं तारैं ।
मूवां पीछैं सद्गति होवैं, दादू जीवत मारैं ॥ ४७ ॥
मूवां पीछैं भगति बतावैं, मूवां पीछैं सेवा ।
मूवां पीछैं संजम राषैं, दादू दोजग देवा ॥ ४८ ॥

॥ सजीवन ॥

दादू धरती क्या साधन किया, अंबर कौन अभ्यास ।
रवि ससि किस आरंभ थैं, अमर भये निज दास ? ॥ ४९ ॥
साहिब मारे ते मुये, कोई जीवै नांहिं ।
साहिब राषे ते रहे, दादू निज घर मांहिं ॥ ५० ॥
जे जन राषे रामजी, अपनै अंगि लगाइ ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, जे कोटि काल झषि जाइ ॥ ५१ ॥

इति सजीवन कौ अंग सम्पूर्ण समाप्त ॥ २६ ॥

अथ पारिष को अंग ॥ २७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ साधुत्व परीक्षा ॥

दादू मन चित आतम देषिये, लागा है किस ठौर ।
जंहं लागा तैसा जाणिये, का देषै दादू और ॥ २ ॥
दादू साध परषिये, अंतर आतम देष ।
मन मांहैं माया रहै, कै आपै आप अलेष ॥ ३ ॥
दादू मन की देषि करि, पीछै धरिये नांव ।
अंतरगति की जे लषैं, तिन की मैं बलि जांव ॥ ४ ॥
दादू बाहर का सब देषिये, भीतरि लष्या न जाय । १४–३७
बाहरि दिषावा लोक का, भीतरि राम दिषाइ ॥ ५ ॥ खगघङ॥
यहु परष सराफी ऊपली, भीतर की यहु नांहिं ।
अंतर की जाणैं नहीं, ताथैं षोटा षांहिं ॥ ६ ॥ घ ।
दादू जे नांहीं सो सब कहैं, है सो कहै न कोइ ।
षोटा षरा परषिये, तब ज्यौं था त्यौं ही होइ ॥ ७ ॥
दह दिस फिरै सो मन है, आवै जाइ सो पवन । (२०–४५)
रापणहारा प्राण है, देषणहारा ब्रह्म ॥ ८ ॥ खगघङ ॥
घट की भानि अनीति सब, मनकी मेटि उपाधि ।

दादू परहर पंचकी, राम कहैं ते साध ॥ ९ ॥
अरथ आया तब जाणिये, जब अनरथ छूटै ।
दादू भांडा भरम का, गिरि चौड़ै फूटै ॥ १० ॥
दादू दूजा कहिबे कौं रह्या, अंतर डार्‌या धोइ ।
ऊपर की ये सब कहैं, मांहिं न देखै कोइ ॥ ११ ॥
दादू जैसे मांहैं जीव रहै, तैसी आवै बास ।
मुषि बोलै तब जाणिये, अंतर का परकास ॥ १२ ॥
दादू ऊपर देषि करि, सब को राषै नांव ।
अंतरगति की जे लखैं, तिनकी मैं बलि जांव ॥ १३ ॥

॥ जगजन विपरीति ॥

तन मन आत्म एक है, दूजा सब उनहार । (२९–२०)
दादू मूल पाया नहीं, दुबिध्या भर्म बिकार ॥ १४ ॥
काया के सब गुण बंधे, चौरासी लष जीव । (२९–२१)
दादू सेवग सो नहीं, जे रंग राते पीव ॥ १५ ॥
काया के बासि जीव सब, ह्वै गये अनंत अपार ।
दादू काया बसि करै, निरंजन निरकार ॥ १६ ॥
पूरण ब्रह्म बिचारिये, तब सकल आत्मा एक । (२९–२९)
काया के गुण देषिये, तौ नाना बरण अनेक ॥ १७ ॥ खगधड ॥

---

(१४) सब जीवों के तन मन आत्मा और सब लक्षण समान हैं । जिस ने मूल तत्व नहीं पाया है उस को दुविधा भ्रमादि प्रतीत होते हैं ॥

(१५) जो पीव के रंग में रत हैं वो काया के दुःखादि गुणों में बंधैं नहीं ॥

(१६) "व्है गये अनंत अपार" की जगह पहली पुस्तक में "आत्म इस आकार" है ॥

॥ नर विडरूप ॥

मति बुद्धि बमेक बिचार बिन, माणस पसू समान।
समझाया समझै नहीं, दादू परम गियान ॥ १८ ॥
सब जीव प्राणी भूत हैं, साध मिलै तब देव।
ब्रह्म मिलै तब ब्रह्म हैं, दादू अलष अभेव ॥ १९ ॥

॥ करतूति कर्म ॥

दादू बंध्या जीव है, छूटा ब्रह्म समान।
दादू दोनौं देषिये, दूजा नांहीं आन ॥ २० ॥
कर्मौं के बस जीव है, कर्म रहित सो ब्रह्म।
जहं आत्म तहं पर आत्मा, दादू भागा भर्म ॥ २१ ॥

॥ पारिष अपारिष ॥

काचा उछलै ऊफणै, काया हांडी मांहिं।
दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नांहिं ॥ २२ ॥
दादू बांधे सुर नवाये बाजैं, एह्वा सोधि रु लीज्यौ।
राम सनेही साध हाथे, बेगा मोकलि दीज्यौ ॥ २३ ॥
प्राण जौहरी पारिषू, मन षोटा ले आवै।
षोटा मनकै माथै मारै, दादू दूरि उड़ावै ॥ २४ ॥
श्रवणा हैं नैना नहीं, ताथैं षोटा षांहिं।
ज्ञान बिचार न ऊपजै, साच झूठ समझांहिं ॥ २५ ॥

॥ साच ॥

दादू साचा लीजिये, झूठा दीजै डारि।

---

(२३) दृष्टांत—गुर दादू गुजरात थैं, मंगवाये मंजीर।
तब यह साषी लिषदई, सुनि लाये शिष धीर ॥

साचा सन्मुष राषिये, झूठा नेह निवारि ॥ २६ ॥
साचे कूं साचा कहै, झूठे कूं झूठा ।
दादू दुबिध्या को नहीं, ज्यौं था त्यौं दीठा ॥ २७ ॥

॥ पारिष अपारिष ।

दादू हीरे कौं कंकर कहैं, मूरिष लोग अजान ।
दादू हीरा हाथि ले, परषैं साध सुजान ॥ २८ ॥
हीरा कौड़ी ना लहै, मूरिष हाथि गंवार । (४-१६१)
पाया पारिष जौंहरी, दादू मोल अपार ॥ २६ ॥ गघ ॥
अंधे हीरा परषिया, कीया कौड़ी मोल । (४--१६२)
दादू साधू जौंहरी, हीरे मोल न तोल ॥ ३० ॥ गघ ॥

॥ सगुरा निगुरा ॥

सगुरा निगुरा परषिये, साध कहैं सब कोइ ।
सगुरा साचा निगुरा झूठा, साहिब के दरि होइ ॥३१॥
सगुरा सति संजम रहै, सन्मुष सिरजनहार ।
निगुरा लोभी लालची, भूंचै बिषै विकार ॥ ३२ ॥

॥ कर्ता कसौटी ॥

षोटा षरा परषिये, दादू कसि कसि लेइ ।
साचा है सो राषिये. झूठा रहण न देइ ॥ ३३ ॥

॥ पारिष अपारिष ॥

षोटा षरा करि देवै पारिष, तौ कैसैं बनि आवै ।
षरे षोटे का न्याव नबेरै, साहिब के मन भावै ॥ ३४ ॥
दादू जिन्हैं ज्यौं कही तिन्हैं त्यौं मानी, ज्ञान बिचार न कीन्हां ।
षोटा षरा जिव परषि न जानैं, झूठ साच करि लीन्हां ॥३५॥

॥ कर्ता कसौटी ॥

जे निधि कहीं न पाइये, सो निधि घरि घरि आहि ।
दादू मंहगे मोल बिन, कोई न लेवै ताहि ॥ ३६ ॥
षरी कसौटी कीजिये, बाणी बधती जाइ ।
दादू साचा परषिये, मंहगे मोलि बिकाइ ॥ ३७ ॥
दादू राम कसै, सेवग षरा, कदे न मोड़ै अंग ।
दादू जब लग राम है, तब लग सेवग संग ॥ ३८ ॥
दादू कसि कसि लीजिये, यहु ताते परिमान ।
षोटा गांठि न बांधिये, साहिब के दीवान ॥ ३९ ॥
दादू षरी कसौटी पीव की, कोइ बिरला पहुंचनहार ।
जे पहुंचे ते ऊबरे, ताइ किये ततसार ॥ ४० ॥
दुर्बल देही निर्मल बाणी, दादू पंथी ऐसा जाणी ॥४१॥ कखघङ ॥
दादू साहिब कसै सेवग परा, सेवग कौं सुष होइ ।
साहिब करै सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ ॥ ४२ ॥
दादू ठग आंबैरि मैं, साधौं सौं कहियो ।
हम सरणाई राम की, तुम नीके रहियो ॥ ४३ ॥ कखघङ ॥

॥ इति पारिष कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २७ ॥

---

(३९) "ताते परिमान" = गरम (कड़ी) कसौटी ॥

(४०) ताइ किये ततसार = अग्नि में तपाये हुये स्वर्ण की भांति शुद्ध किये ॥

अथ उपजणि कौ अङ्ग ॥ २८ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ विचार ॥

दादू माया का गुण बल करै, आपा उपजै आइ । (२०—४४)
राजस तामस सातगी, मन चंचल ह्वै जाइ ॥ २ ॥
आपा नाहीं बल मिटै, त्रिबिधि तिमिर नहिं होइ। (२०—४३)
दादू यहु गुण ब्रह्म का, सुंनि समाना सोइ ॥ ३ ॥

(२-३) आदि सत्ता परब्रम्ह है, तिसकी शक्ति वा प्रभा (चमक) माया है। जैसे प्रभा हीरे से अलग नहीं, तैसे माया ब्रम्ह से भिन्न नहीं, किंतु ब्रम्हरूप ही है। शांत अवस्था में मूल सत्ता का नाम ब्रम्ह है, वही अपनी ज्ञान (प्रभा) रूपी माया के स्वाभाविक प्रदीप्त होने से स्फुरित होकर अहं २, अनेकोहं, जीवोहं, इत्यादि नाना प्रकार के प्रपंच खड़े करता है। अपनी चमक का प्रतिबिंब अपने ही प्रकाश में पड़कर दूसरे नये प्रकाश को खड़ा करता है। इस नये प्रतिबिंब रूपी प्रकाश में फिर उसी प्रतिबिंब का प्रतिबिंब पड़कर तीसरा प्रकाश बन जाता है, इसी प्रकार से अनेक प्रतिबिंबों के दुगुने प्रतिबिंब होकर असंख्य प्रकाश खड़े होते हैं, ज्यौं २ यह प्रतिबिंब एक दूसरे प्रतिबिंब के सन्मुख होकर मिलते जाते हैं त्यौं २ उनका बल बढ़ता जाता है, जैसे एक सूर्य के अनेक सूर्य दर्पणों में प्रतिबिंब द्वारा प्रतीत होते हैं, तैसे मूल सत्ता का स्वयं प्रकाश स्व प्रभा में स्वाभाविक पड़कर नाना जीवरूपी प्रतिबिंब बना देता है। उन में नाना प्रकार की क्रियायें होती प्रतीत होती हैं। इस प्रकार से ब्रम्ह अपनी सत्ता से आप ही अपने आप को नाना रूप से

॥ उपजण ॥

दादू अनभै उपजी गुणमयी, गुण ही पै लेजाइ ।
गुणहीं सौं गहि बंधिया, छूटै कौन उपाइ? । ४ ॥
द्वै पष उपजी परहरै, निर्पष अनभै सार ।
एक राम दूजा नहीं, दादू लेहु बिचार ॥ ५ ॥
दादू काया ब्यावर गुणमयी, मन मुष उपजै ज्ञान ।
चौरासी लष जीवकौं, इस माया का ध्यान ॥ ६ ॥
आतम बोध बंझ का बेटा, गुरमुषि उपजै आइ । (१–२१)
दादू पंगुल पंच बिन, जहां राम तहं जाइ ॥ ७ ॥ खगघड ॥
आतम मांहैं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान । (१–२०)
कृतम जाइ उलंघि करि, जहां निरंजन थान ॥ ८ ॥ खगघड ॥
आतम उपजि अकास की, सुणि धरती की बाट ।
दादू मारग गैब का, कोई लषै न घाट ॥ ९ ॥
आतम बोधी अनभई, साधू निर्पष होइ ।

देखता है । इस लीला को यथार्थ जानना ही आत्मज्ञान (अपने आप को जानना) है । यह विषय विस्तार से दयालजी के जीवनचरित्र और उपदेश नामक ग्रंथ में लिखा जायगा ॥

(४) स्वयं प्रकाशरूप परमात्मा अपनी स्वाभाविक स्फुरता से गुणमय सृष्टि को उत्पन्न करता है, ज्यौं २ चेतन स्फुरता बढ़ती है त्यौं २ गुण प्रधान प्रपंच पसरता जाता है । प्रपंच में जीव (चिदाभास) गुणौं करके बंध रहा है, सो किस प्रकार से छूटै ?

(५) उपजी हुई संपूर्ण द्वैतभाव की कल्पनाओं का त्याग कर, सर्व प्रपंच में एक अद्वैत शांत पूर्णानंद रूप सत्ता ही को मानै और उसी विचार में लीन रहै, तब गुण के बंधनौं से छूटै ॥

दादू राता राम सौं, रस पीवैगा सोइ ॥ १० ॥
प्रेम भगति जब ऊपजै, निहचल सहज समाधि ।
दादू पीवै रामरस, सतगुर के परसाद ॥ ११ ॥
प्रेम भगति जब ऊपजै, पंगुल ज्ञान बिचार ।
दादू हरिरस पाइये, छूटैं सकल बिकार ॥ १२ ॥
दादू भगति निरंजन राम की, अविचल अविनासी । (४–२४४)
सदा सजीवनि आतमा, सहजैं परकासी ॥ १३ ॥ खगधड ॥
दादू बंझ बियाई आत्मा, उपज्या आनंद भाव ।
सहज सील संतोष सत, प्रेम मगन मन राव ॥ १४ ॥

॥ निंदा ॥

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग मांहिं ।
दादू पहुंचे पंथ चलि, कहैं यहु मारग नांहिं ॥ १५ ॥

॥ उपजणि ॥

पहिले हम सब कुछ किया, भर्म कर्म संसार ।
दादू अनभै ऊपजी, राते सिरजनहार ॥ १६ ॥
सोई अनभै सोई उपजी, सोई सबद तत सार । (१३–५४)
सुणतां हीं साहिब मिलै, मन के जांहिं बिकार ॥ १७ ॥ क ॥

॥ परिचय जिज्ञासा उपदेश ॥

पारब्रह्म कह्या प्राण सौं, प्राण कह्या घट सोइ ।

---

(१४) बंझ बियाई आत्मा = बंझ बुद्धि से आत्मज्ञान उपजता है ।

(१५) जब हम पहले अज्ञान दशा में जगत व्यौहारों में वर्तते थे, तब उसी को हम सन्मार्ग समझते थे और सन्मार्ग को ऊजड़ मानते थे । जब हम को ज्ञान दशा में सन्मार्ग प्राप्त हुआ, तब जगत व्यौहार ऊजड़ दीखने लगा ॥

दादू घट सब सौं कह्या, विष अमृत गुण दोइ ॥ १८ ॥
दादू मालिक कह्या अरवाह सौं, अरवाह कह्या औजूद ॥
औजूद आलम सौं कह्या, हुकम षबर मौजूद ॥ १९ ॥

॥ उपजणि ॥

दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनभै उपजी होइ ।
जैसा है तैसा कहै, दादू बिरला कोइ ॥ २० ॥

इति उपजणि कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २८ ॥

अथ दया निर्बैरता कौ अंग ॥ २९ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार ।
निर्बैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ॥ २ ॥

---

(१८) इस साखी में दयालजी ने ज्ञान की परंपरा संप्रदाय बतलाई है, अर्थात् परब्रम्ह ने प्राण (हिरण्यगर्भ) को उपदेश किया, हिरण्यगर्भ ने जीवों को उपदेश किया, पीछे जीवों ने अपने २ शिष्यों को उपदेश किया, इस प्रकार से विष अमृत (प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गों) का उपदेश संसार में चला आया है ।

अथवा स्वयंप्रकाश परब्रम्ह से प्राण चेतन हुये, प्राणों से शरीर चेतन हुये, शरीर से विहित प्रतिसिद्ध सेवनात्मक अमृतविष रूपी धर्माधर्म का ज्ञान संपादित हुआ ॥

दादू निर्बैरी निज आत्मा, साधन का मत सार ।
दादू दूजा राम बिन, बैरी मंझि बिकार ॥ ३ ॥
निर्बैरी सब जीव सौं, संत जन सोई ।
दादू एकै आत्मा, बैरी नहिं कोई ॥ ४ ॥
सब हम देष्या सोधि करि, दूजा नांहीं आन ।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान ॥ ५ ॥
दादू नारि पुरिष का नांउं धरि, इहिं संसै भर्मि भुलान ।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान ॥ ६ ॥
दादू दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान ।
दोनौं भाई नैन हैं, हिंदू मूसलमान ॥ ७ ॥
दादू कै दूजा नहीं, एकै आतमराम । (१--१४१)
सतगुर सिर परि साध सब, प्रेम भगति बिश्राम ॥८॥ खगधड ।
दादू संसा आरसी, देषत दूजा होइ ।
भर्म गया दुबिध्या मिटी, तब दूसर नांहीं कोइ ॥ ९ ॥

(३) दूसरी साखी में कहा है कि सब जीवों से निर्वैरता रखना ही सार मत है । सो निर्वैरता कैसी हो ? जैसी अपने आप से प्रत्येक जीव रखता है, अर्थात् सब जीवों को अपनी सदृश प्रिय मानना ही उचित है । आत्मराम (अपने आप ब्रह्म स्वरूप) के सिवाय जो द्वैत प्रतीति है सोई अपना बैरी (दुःखदायी) मन का विकार (दोष) है ॥

(९) कुत्ता जैसे शीशे में अपना स्वरूप देख कर दूसरे जीव का भ्रम करके भूंकता है, तैसे ही हम (चिदाभास) अपनी अंतःकरण रूपी उपाधी द्वारा एक अद्वैत चेतन की स्व प्रभा में अनेक प्रतिबिंब (चिदाभास) देख कर द्वैतभाव मान बैठे हैं । जब यह द्वैत भ्रम छूटै तब सर्वत्र आत्मा ही आत्मा (आप ही आप) प्रतीत हो ॥

किस सौं बैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नांहिं ।
जिस के अंग थैं ऊपजे, सोई है सब मांहिं ॥ १० ॥
सब घटि एकै आत्मा, जानै सो नीका ।
आपा पर मैं चीन्हि ले, दर्सन है पीवका ॥ ११ ॥
काहे कौं दुष दीजिये, घटि घटि आतमराम ।
दादू सब संतोषिये, यह साधू का काम ॥ १२ ॥
काहे कौं दुष दीजिये, सांई है सब मांहिं ।
दादू एकै आत्मा, दूजा कोई नांहिं ॥ १३ ॥
साहिवजी की आत्मा, दीजै सुष संतोष ।
दादू दूजा को नहीं, चौदह तीनौं लोक ॥ १४ ॥
दादू जष प्राण पिछाणै आप कौं, आत्म सब भाई ।
सिरजनहारा सबन का, तासौं ल्यौ लाई ॥ १५ ॥
आत्मराम विचारि करि, घटि घटि देव दयाल ।
दादू सब संतोषिये, सब जीऊं प्रतिपाल ॥ १६ ॥
दादू पूरण ब्रह्म विचारि ले, दुर्तीभाव करि दूर ।
सब घटि साहिब देषिये, राम रह्या भरपूर ॥ १७ ॥
दादू मंदिर काच का, मर्कट सुनहां जाइ ।
दादू एक अनेक ह्वै, आप आप कौं षाइ ॥ १८ ॥

---

(११) "मैं" की जगह "मम" पुस्तक नं० ५ में है ॥

(१८) जैसे कांच के मंदिर में बंदर अथवा कुत्ता अपनी मूरत कांच में देख कर, और जानवरों के होने का भ्रम करता है तैसे मनुष्य अपने आत्मरूप का प्रतिबिंब जुदे २ अंतःकरणों (चिदाभासों) में देख कर एक दूसरे से विरोध करते हैं, और यह नहीं जानते कि परछांही रूपी दूसरे जीव अपने ही प्रतिबिंब हैं ॥

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार ।
दादू मूल बिचारिये, तौ दूजा कौन गंवार ॥ १६ ॥
तन मन आत्म एक है, दूजा सब उनहार । २७--१४ ॥
दादू मूल पाया नहीं, दुविधा भर्म बिकार ॥२०॥खगघङ॥
कायाके बसि जीव सब, है गये अनंत अपार । २७--१६ ॥
दादू काया बासि करि, निरंजन निरकार ॥ २१ ॥ खगघङ॥

॥ अदया हिंसा—वनस्पतियों में जीव भाव ॥

दादू सूका सहजैं कीजिये, नीला भानै नांहिं ।
काहे कौं दुष दीजिये, साहिब है सब मांहिं ॥ २२ ॥

॥ दया निरवैरता ॥

घट घट के उणहार सब, प्राण परस है जाइ ।
दादू एक अनेक है, बरतै नाना भाइ ॥ २३ ॥
आये एकंकार सब, सांईं दिये पठाइ ।
दादू न्यारे नांव धरि, भिन्न भिन्न है जाइ ॥ २४ ॥
आये एकंकार सब, सांईं दिये पठाइ ।
आदि अंति सब एक है, दादू सहज समाइ ॥ २५ ॥
आत्म देव अराधिये, विरोधिये नहिं कोइ ।
आराधैं सुष पाइये, विरोधैं दुष होइ ॥ २६ ॥

---

(२२) सब वनस्पतियों में भी परमेश्वर है । हरे पेड़ को ताड़ें नहीं, सूखे को काम में भले लावैं ॥

(२३) जा घट की उनिहार है जैसी, ता घट चेतन तैसोइ दीसै ।
हाथी की देह में हाथी सो मानत, चींटी की देह मैं चींटी की रीसै ॥
सिंह की देह मैं सिंह सो मानत, कीस की देह में मानत कीसै ।
जैसी उपाधि भई जहं सुंदर, तैसोहि होइ रह्यो नख सीसै ॥

ज्यौं आपै देखै आप कौं, यौं जे दूसर होइ ।
तौ दादू दूसर नहीं, दुष न पावै कोइ ॥ २७ ॥ खगधड ॥
दादू सम करि देषिये, कुंजर कीट समान ।
दादू दुविध्या दूरि करि, तजि आपा अभिमान ॥२८॥

॥ अदया हिंसा ॥

दादू पूरण ब्रह्म बिचारिये, तब सकल आत्मा एक। (२७--१७)
काया के गुण देषिये, तौ नाना बरण अनेक ॥२९॥ खग धड ॥
दादू अरस षुदाय का, अजरावर का थान ।
दादू सो क्यौं दाहिये, साहिब का नीसाण ॥ ३० ॥
दादू आप चिणावै देहुरा, तिसका करहि जतन ।
प्रत्यष परमेसुर किया, सो भानै जीव रतन ॥ ३१ ॥
मसीति संवारी माणसौं, तिसकौं करैं सलाम ।
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहैं मूसलमान ॥ ३२ ॥
दादू जंगल मांहैं जीव जे, जग थैं रहैं उदास ।
भै भीत भयानक रातिदिन, निहचल नांहीं बास ॥३३॥
बाचा बंधी जीव सब, भोजन पानी घास ।
आतमज्ञान न ऊपजै, दादू करहि बिनास ॥ ३४ ॥
काला मुंह करि करद का, दिल थैं दूरि निवार ।

---

(२७) जैसे हम अपने आपको देखते हैं, वैसे ही जो हम औरों को भी देखैं (क्योंकि दूसरा वास्तव में कोई है नहीं) तो कोई दुःख न पावै ॥

(३०) अजरामर खुदा का अर्श (उत्तम स्थान) जीवों का शरीर है, तिसका हिंसन दयालजी करते हैं ॥

सब सूरति सुबहान की, मुल्लां ! मुग्ध न मार ॥ ३५ ॥
गला गुसेका काटिये, मियां मनी कौं मारि ।
पंचौं बिसामिल कीजिये, ये सब जीव उबारि ॥ ३६ ॥
बैर बिरोधैं आतमा, दया नहीं दिल मांहिं ।
दादू मूरति रामकी, ताकौं मारन जांहिं ॥ ३७ ॥

॥ दया निरवैरता ॥

कुल आलम यके दीदम, अरवाहे इषलास ।
बद अमल बदकार दूई, पाक यारां पास ॥ ३८ ॥
भावहीण जे पृथमी, दया बिहूणां देस । (१६–६८)
भगति नहीं भगवंत की, तहं कैसा परवेस ॥ ३९ ॥ खगघङ ॥
काल झाल थैं काढ़ि करि, आतम अंगि लगाइ ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत षाइ ॥ ४० ॥
दादू बुरा न बांछै जीवका, सदा सजीवन सोइ ।
परलै बिषै बिकार सब, भाव भगति रत होइ ॥ ४१ ॥

---

(३५) हे मुल्लां, दीन पशुओं को मत मार ॥

(३८) दृष्टांत—दादूजी आंबेर थे, तुर्क संगोती ल्याय ।
तासन या साखी कही, लज्जित व्है उठिजाय ॥

कुल (संपूर्ण) आलम (संसार) यके (एक) दीदम (देखता हूं) अरवाहे (जीव) इषलास (मित्र हैं) बद अमल (खोटे काम) बदकार (खोटे काम) दुई (द्वैतभाव से होते हैं) पाक (पवित्र परमेश्वर) यारां (हम मित्रों) के पास (समीप) है ॥

(४०) मन को विषयरूपी काल झाल से निकाल कर आत्मा में लगाय कर जीवों पर दया रक्खै, सोई अमृत का खाना है ॥

(४१) परलै = नाशवान ॥

॥ मंछर ईर्षा ॥

ना को बैरी नाको मीत, दादू राम मिलन की चीत ॥ ४२ ॥

॥ इति दया निर्वैरता को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ २६ ॥

अथ सुन्दरी को अङ्ग ॥ ३० ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ सुन्दरि विलाप ॥

आरतिवंती सुंदरी, पल पल चाहै पीव ।
दादू कारणि कंत के, तालाबेली जीव ॥ २ ॥
रतिवंती आरति करै, राम सनेही आव । (३–२)
दादू अवसर अब मिलै, यहु बिरहनि का भाव ॥३॥ खगधड ॥
काहे न आवहु कंत घरि, क्यों तुम रहे रिसाइ ।
दादू सुंदरि सेज परि, जन्म अमोलिक जाइ ॥ ४ ॥
आतम अंतरि आव तूं, या है तेरी ठौर ।
दादू सुंदरि पीव तूं, दूजा नांहीं और ॥ ५ ॥
दादू पीव न देख्या नैन भरि, कंठि न लागी धाइ ।
सती नहिं गालि बांह दे, बिचहीं गई बिलाइ ॥ ६ ॥
सुरति पुकारै सुंदरी, अगम अगोचर जाइ ।

दादू बिरहनि आतमा, उठि उठि आतुर धाइ ॥ ७ ॥
सांईं कारणि सेज संवारी, सब थैं सुंदर ठौर ।
दादू नारी नाह बिन, आणि बिठाये और ॥ ८ ॥
कोइ अवगुण मन बस्या, चित थैं धरी उतार ।
दादू पति बिन सुंदरी, हांढै घर घर बार ॥ ९ ॥

॥ आनलगनि (परपुरुष) व्यभिचार ॥

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूंठे सिंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यौं मानै भर्तार ॥ १० ॥
प्रेम लहरि की पालकी, आतम बैसै आइ । (४—२७८)
दादू षेलै पीव सौं, यहु सुष कह्या न जाइ ॥११॥ खगधड ॥

॥ सुंदरी विलाप ॥

दादू हूं सुष सूती नींद भरि, जागै मेरा पीव ।
क्यौं करि मेला होइगा, जागै नांहीं जीव ॥ १२ ॥
सषी न षेलै सुंदरी, अपने पीव सौं जागि ।
स्वाद न पाया प्रेम का, रही नहीं उर लागि ॥ १३ ॥
पंच दिहाड़े पीव सौं, मिलि काहे ना षेलै ।
दादू गहिली सुंदरी, क्यौं रहै अकेलै ॥ १४ ॥

---

(७) सुरति (वृत्ति) रूपी सुंदरी अगम अगोचर पति के पास जाने की पुकार करती है ॥

(८) आणि बिठाये और=और पुरुष कहिये संसार के विषय भोगों से नेह जोड़ लिया ॥

(९) अवगुण देखकर पति ने सुंदरी से कृपा खैंच ली, तब वह विषयों में भटकती फिरी ॥

(१०) क्यौं मानै भर्तार=ऐसी व्यभिचारिणी को भर्तार क्यों स्वीकार करै ॥

सषी सुहागनि सब कहैं, हूंर दुहागनि आहि ।
पिव का महल न पाइये, कहां पुकारौं जाइ ॥ १५ ॥
सषी सुहागनि सब कहैं, कंत न बूझै बात ।
मनसा बाचा कर्मणा, मुछि मुछि जिव जात ॥ १६ ॥
सषी सुहागनि सब कहैं, पिव सौं परस न होइ ।
निसि बासुरि दुष पाइये, यहु बिथा न जाणै कोइ ॥१७॥
सषी सुहागनि सब कहैं, प्रगट न षेलै पीव ।
सेज सुहाग न पाइये, दुषिया मेरा जीव ॥ १८ ॥
पर पुरिषा सब परिहरै, सुंदरि देषै जागि । (८—३८ / २०-३८)
अपणा पीव पिछाणि करि, दादू रहिये लागि ॥१९॥ खगषड॥

॥ आनलगनि व्यभिचार ॥

पुरष पुरातन छाड़ि करि, चली आन के साथ ।
सो भी संग थैं बीछट्या, षड़ी मरोड़ै हाथ ॥ २० ॥

॥ सुंदरी बिलाप ॥

सुंदरि कबहूं कंत का, मुष सौं नांव न लेइ ।
अपणे पिव के कारणैं, दादू तन मन देइ ॥ २१ ॥
नैन बैन करि वारणैं, तन मन प्यंड परान ।
दादू सुंदरि बलि गई, तुम परि कंत सुजान ॥ २२ ॥
तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यंड परान ।
सब कुछ तेरा, तूं है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥ २३ ॥
पंच अभूषन पीव करि, सोलह सबही ठांव । (८—३०)

---

(२१) मुष सौं नांव न लेइ = पति से कभी विमुख न हो अथवा पति का मान रक्खै ॥

सुंदरि यहु सिंगार करि, लै लै पीव क नांव ॥२४॥ खगघङ ॥
यहु व्रत सुंदरि ले रहै, तौ सदा सुहागनि होइ । (८–३१)
दादू भावै पीव कौं, तासमि और न कोइ ॥२५॥ खगघङ ॥
सुंदरि मोहै पीव कौं, बहुत भांति भर्तार ।
त्यौं दादू रिझवै राम कौं, अनंत कला कर्तार ॥ २६ ॥
दादू नीच ऊंच कुल सुंदरी, सेवा सारी होइ । (८–३६)
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥२७॥ खगघङ ॥
नदिया नीर उलंघि करि, दरिया पैली पार ।
दादू सुंदरि सो भली, जाइ मिलै भर्तार ॥ २८ ॥

॥ सुंदरी सोहाग ॥

प्रेम लहरि गहि ले गई, अपने प्रीतम पास ।
आतम सुंदरि पीव कौं, बिलसै दादू दास ॥ २९ ॥
सुंदरि कौं सांई मिल्या, पाया सेज सुहाग ।
पीव सौं षेलै प्रेमरस, दादू मोटे भाग ॥ ३० ॥
दादू सुंदरि देह मैं, सांई कौं सेवै ।
राती आपणे पीव सौं, प्रेमरस लेवै ॥ ३१ ॥
दादू निर्मल सुंदरी, निर्मल मेरा नाह ।
दून्यौं निर्मल मिलि रहे, निर्मल प्रेम प्रवाह ॥ ३२ ॥
तेज पुंज की सुंदरी, तेज पुंज का कंत । (४--१०९)
तेज पुंज की सेज पर, दादू बन्या बसंत ॥ ३३ ॥ खगघङ ॥

---

(२८) संसार रूपी नदी के जल रूपी विषयों की कामनाओं को त्याग कर, बाह्य विषयों से परे जो परमात्म दृष्टि है, तिसमें वृत्ति को जोड़ै ॥

सांई सुंदरि सेज परि, सदा एक रस होइ ।
दादू षेलै पीव सौं, तासमि और न कोइ ॥ ३४ ॥

॥ इति सुंदरी कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३० ॥

अथ कस्तूरिया मृग कौ अंग ॥ ३१ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू घटि कस्तूरी मृग के, भर्मत फिरै उदास ।
अंतरि गति जाणै नहीं, ताथैं सूंघै घास ॥ २ ॥
दादू सब घट मैं गोबिंद है, संगि रहै हरिपास ।
कस्तूरी मृग मैं बसै, सूंघत डोलै घास ॥ ३ ॥
दादू जीव न जानै राम कौं, राम जीव के पास ।
गुर के सब्दौं बाहिरा, ताथैं फिरै उदास ॥ ४ ॥
दादू जा कारणि जग ढूंढिया, सो तौ घट ही मांहिं ।
मैं तैं पड़दा भरम का, ताथैं जानत नांहिं ॥ ५ ॥
दादू दूरि कहैं ते दूरि हैं, राम रह्या भरपूरि ।

---

(२) घटि कस्तूरी मृग के=मृग के शरीर में ही कस्तूरी है ॥
(४) बाहिरा=बहिरा, बधिर ॥

नैनहुं बिन सूझै नहीं, ताथैं रवि कत दूरि ॥ ६ ॥
दादू ओडो ह्वेा पाण सैं, न लधाऊं मंझ ।
न जातां ऊपाण मैं तांई क्या ऊपंध ॥ ७ ॥
दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जांहिं ।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घटही मांहिं ॥ ८ ॥
दादू सब घट मांहैं रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ ।
सोई बूझै राम कौं, जे राम सनेही होइ ॥ ९ ॥
सदा समीप रहै सांगि सनमुष, दादू लषै न गूझ। (१३—७९)
सुपिनैंहीं समझै नहीं, क्यूं करि लहै अबूझ ॥१०॥ खगघड।
दादू जड़मति जीव जाणै नहीं, परम स्वाद सुष जाइ ।
चेतनि समझै स्वाद सुष, पीवै प्रेम अघाइ ॥ ११ ॥
जागत जे आनंद करै, सो पावै सुष स्वाद ।
सूतैं सुष ना पाइये, प्रेम गंवाया बाद ॥ १२ ॥
दादू जिसका साहिब जागणा, सेवग सदा सुचेत ।
सावधान सनमुष रहै, गिरि गिरि पड़ै अचेत ॥ १३ ॥
दादू सांईं सावधान, हमहीं भये अचेत ।

---

(६) अंधा यह नहीं कह सकता कि सूर्य कितनी दूरि है, तैसे अज्ञ जन नहीं जानते कि व्यापक परमेश्वर कहां है ॥

(१२) प्रेम की जगह "जनम" पुस्तक नं० ४, ५ में है ॥ जागत = आत्मानंद में जो सचेत रहे । सूतैं=अज्ञान में ॥

(१३) जिसका साहिब (मालिक) जागणा (होशियार) होता है, सो सेवक भी सचेत रहता है । सावधान हमेशा मुसतैद रहता है, गिरता पड़ता अचेत ही है ॥

प्राणी राषि न जाणहीं, तातैं निर्फल षेत ॥ १४ ॥

॥ सगुना निगुना कृतघनी ॥

दादू गोबिंद के गुण बहुत हैं, कोई न जाणै जीव ।
अपणी बूझै आप गति, जे कुछ कीया पीव ॥ १५ ॥

॥ इति कस्तूरिया मृग कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३१ ॥

अथ निंद्या कौ अंग ॥ ३२ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ मत्सर ईर्षा ॥

साधू निर्मल मल नहीं, राम रमै सम भाइ ।
दादू अवगुण काढ़ि करि, जीव रसातल जाइ ॥ २ ॥

दादू जबहीं साध सताइये, तबहीं ऊंध पलट ।
आकास धसै धरती षिसै, तीनौं लोक गरक ॥ ३ ॥

॥ निंदा ॥

दादू जिहिं घरि निंद्या साध की, सो घर गये समूल ।

---

(१४) हमारा मालिक (सांई) तो सावधान है, किंतु अचेत हमहीं हैं, क्योंकि जीव आत्मतत्व का रक्षण नहीं जानता, इसी से खेत रूपी जीव निष्फल (दुःखी) होता है ॥

(२) जो जन साधु में अवगुण बताता है सो रसातल को जाता है ॥

तिनकी नीव़ न पाइये, नांव़ न ठांव़ न धूल ॥ ४ ॥
दादू निंद्या नांव़ न लीजिये, सुपिनैहीं जिनि होइ ।
ना हम कहैं न तुम सुनौं, हम जिनि भाषैं कोइ ॥ ५ ॥
दादू निंद्या कीये नर्क है, कीट पड़ैं मुष मांहिं ।
राम बिमुख जामैं मरैं, भग मुष आवैं जांहिं ॥ ६ ॥
दादू निंदक बपुरा जिनि मरै, पर उपगारी सोइ ।
हम कूं करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥ ७ ॥
दादू जिहि विधि आत्म उधरै, परसै प्रीतम प्राण ।
साध सबद कूं निंदणां, समझैं चतुर सुजाण ॥ ८ ॥

॥ मछर (मत्सर) ईर्षा ॥

अणदेष्या अनरथ कहैं, कलि प्रथमी का पाप ।
धरती अंबर जब लगैं, तब लग करैं कलाप ॥ ९ ॥
अणदेष्या अनरथ कहैं, अपराधी संसार ।
जदि तादि लेषा लेइगा, समर्थ सिरजनहार ॥ १० ॥
दादू डरिये लोक थैं, कैसी धरहिं उठाइ ।
अणदेषी अजगैब की, ऐसी कहैं बनाइ ॥ ११ ॥

॥ अमिट पाप प्रचंड ॥

दादू अमृत कूं विष, विष कूं अमृत, फेरि धरैं सब नांव़ ।
निर्मल मैला, मैला निर्मल, जाहिंगे किस ठांव़ ॥ १२ ॥

॥ मछर ईर्षा ॥

दादू साचे कूं झूठा कहैं, झूठे कूं साचा ।
राम दुहाई काढ़िये, कंठ थैं बाचा ॥ १३ ॥

(८) साध शब्द की निंदा का फल (पाप) चतुर्सुजान समझते हैं ॥

दादू झूठ न कहिये साच कूं, साच न कहिये झूठ ।
दादू साहिब मानैं नहीं, लागैं पाप अपूट ॥ १४ ॥
दादू झूठ दिषावैं साच कूं, भयानक भैभीत ।
साचा राता साच सौं, झूठ न आनै चीत ॥ १५ ॥
साचे कूं झूठा कहैं, झूठा साच समान ।
दादू अचिरज देषिया, यहु लोगौं का ज्ञान ॥ १६ ॥

॥ निंद्या ॥

दादू ज्यौं ज्यौं निंदै लोग बिचारा, त्यौं त्यौं छीजै रोग हमारा ॥ १७ ॥

॥ इति निंद्या कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३२ ॥

अथ निगुणां कौ अंग ॥ ३३ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधबा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ सगुणा, निगुणा, कृतघ्नी ॥

दादू चंदन बावना, बसै बटाऊ आइ ।
सुषदाई सीतल किये, तीन्यूं ताप नसाइ ॥ २ ॥
काल कुहाड़ा हाथि ले, काटन लागा धाइ ।
ऐसा यहु संसार है, डाल मूल ले जाइ ॥ ३ ॥

(२-३) चंदन के वृक्ष के तले कोई बटाऊ (पथिक) आ बैठा, वृक्ष की शीतलता से सुख पाया॥ यह गुण चंदन में देखकर वह पुरुष फिर आया

॥ अज्ञ स्वभाव अपलट ॥

सतगुर चंदन बावना, लागे रहैं भवंग ।
दादू विष छाड़ै नहीं, कहा करै सतसंग ॥ ४ ॥
दादू कीड़ा नर्ककां, राष्या चंदन मांहिं ।
उलटि अपूठा नर्कमैं, चंदन भावै नांहिं ॥ ५ ॥
सतगुर साध सुजान है, सिषका गुण नहिं जाइ ।
दादू अमृत छाड़ि करि, विषै हलाहल षाइ ॥ ६ ॥
कोटि बरस लौं राषिये, बंसा चंदन पास ।
दादू गुण लीये रहै, कदे न लागै बास ॥ ७ ॥
कोटि बरस लौं राषिये, पत्थर पानी मांहिं ।
दादू आड़ा अंग है, भीतर भेदै नांहिं ॥ ८ ॥
कोटि बरस लौं राषिये, लोहा पारस संग ।
दादू रोम का अंतरा, पलटै नांहीं अंग ॥ ९ ॥
कोटि बरसलौं राषिये, जीव ब्रह्म संगि दोइ ।
दादू मांहैं बासना, कदे न मेला होइ ॥ १० ॥

॥ सगुणा, निगुणा, कृतघ्नी ॥

मूसा जलता देषि करि, दादू हंस दयाल ।

और पेड़ की सेवा करने के बदले उस को काट गिराया । दयालजी कहते हैं कि ऐसा कृतघ्नी यह संसार है ॥ यथा—

यथा गजपतिः श्रांतः छायार्थी वृक्षमाश्रितः ।
विश्रम्य तं द्रुमं हंति, तथा नीचः समाश्रयम् ॥

(५) नर्क = मैला, सड़ा गोबरादि ॥

मान सरोवर ले चल्या, पंषां काटै काल ॥ ११ ॥
दीसै माणस प्रत्यष काल, । (२५–६५)
ज्यौं करि त्यौं करि दादू टाल ॥ १२ ॥ गघड ॥
सब जीव भुवंगम कूप मैं, साधू काढ़ै आइ ।
दादू बिषहरि बिष भरै, फिर ताही कौं षाइ ॥ १३ ॥
दादू दूध पिलाइये, बिषहर बिष करि लेइ ।
गुणका औगुण करि लिया, ताही कौं दुष देइ ॥ १४ ॥

॥ अज्ञ स्वभाव अपलट ॥

बिनहीं पावक जलि मुवा, जवासा जल मांहिं ।
दादू सूकै सींचतां, तौ जल कौं दूषण नांहिं ॥ १५ ॥

॥ सगुणा, निगुणा, कृतघ्नी ॥

सुफल बिरष परमार्थी, सुष देवै फल फूल ।
दादू ऊपर बैसि करि, निगुणां काटै मूल ॥ १६ ॥
दादू सगुणां गुण करै, निगुणां मानैं नांहिं ।
निगुणां मरि निरफल गया, सगुणां साहिब मांहिं ॥१७॥
निगुणां गुण मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ ।

---

(११) दुर्ज्जनस्य स्वभावोऽयं, पर कार्य विनाशकः ।
हस्ते च किं समायाति, मूषकस्य वस्त्र भक्षणात् ॥
(१३) यह संसार रूपी कूप भुवंग (सर्प) रूपी जीवों से भरा है ॥
दुर्ज्जनानां भुजङ्गानामङ्गनानां च भूभुजाम् ।
विश्वास कृतानामपि, प्रायो विश्रब्धव्यं न सर्वदा ॥
(१६) पत्र पुष्पफलछाया, मूलवल्कलदारुभिः ।
धन्या महीरूहा येभ्यो, निराशा यांति नार्थिनः ॥

दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ॥ १८ ॥
दादू सगुणां लीजिये, निगुणां दीजै डारि ।
सगुणां सन्मुष राषिये, निगुणां नेह निवारि ॥ १९ ॥
सगुणां गुण केते करै, निगुणां न मानै एक ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणां नर्क अनेक ॥ २० ॥
सगुणां गुण केते करै, निगुणां नाषै ढाहि ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणां निरफल जाइ ॥ २१ ॥
सगुणां गुण केते करै, निगुणां न मानैं कोइ ।
दादू साधू सब कहैं, भला कहां थैं होइ ॥ २२ ॥
सगुणां गुण केते करै, निगुणां न मानै नीच ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणां के सिर मीच ॥ २३ ॥
साहिब जी सब गुण करै, सतगुर के घटि होइ ।
दादू काढ़े काल मुषि, निगुणां न मानै कोइ ॥ २४ ॥
साहिब जी सब गुण करै, सतगुर मांहैं आइ ।
दादू राषै जीव दे, निगुणां मेटे जाइ ॥ २५ ॥
साहिब जी सब गुण करै, सतगुर का दे संग ।
दादू परलै राषिले, निगुणां न पलटै अंग ॥ २६ ॥
साहिब जी सब गुण करै, सतगुर आड़ा देइ ।
दादू तारै देषतां, निगुणां गुण नहिं लेइ ॥ २७ ॥
सतगुर दीया राम धन, रहै सुबुधि बताइ ।
मनसा बाचा कर्मणा, बिलसै बितड़ै षाइ ॥ २८ ॥

---

(२६) पुस्तक नं० ३-४ में "न पलटै" की जगह "पलटै" है ॥

कीया कृत मेटै नहीं, गुण हीं मांहिं समाइ ।
दादू बधै अनंत धन, कबहूं कदे न जाइ ॥ २६ ॥

॥ इति निगुणां कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३३ ॥

अथ बिनती कौ अंग ॥ ३४ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ करुणा ॥

दादू बहुत बुरा किया, तुम्हैं न करना रोष ।
साहिब समाई का धनी, बंदे कौं सब दोष ॥ २ ॥
दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुख कह्या न जाइ ।
निर्मल मेरा सांइयां, ताकौं दोष न लाइ ॥ ३ ॥
सांई सेवा चोर मैं, अपराधी बंदा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीषा गंदा ॥ ४ ॥
तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर ।
पल पल का मैं गुनहीं तेरा, बकसहु औगुण मोर ॥५॥
महा अपराधी एक मैं, सारे इहि संसार ।

---

(२६) दृष्टांत–विद्या लई नृप भील पैं, फिरि राख्यौ गुरभाव ।
गई नहीं नृप के रही, यौं मति चूकौ भाव ॥

औगुण मेरे अति घणे, अंत न आवै पार ॥ ६ ॥
बे मरजादा मिति नहीं, ऐसे किये अपार ।
मैं अपराधी बापजी, मेरे तुमही एक अधार ॥ ७ ॥
दोष अनेक कलंक सब, बहुत बुरा मुझ मांहिं ।
मैं कीये अपराध सब, तुम थैं छाना नांहिं ॥ ८ ॥
गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहां हम जांहिं ।
दादू देष्या सोधि सब, तुम बिन कहिं न समांहिं ॥ ९ ॥
आदि अंत लौं आय करि, सुकृत कछू ना कीन्ह ।
माया मोह मद मंछरा, स्वाद सबै चित दीन्ह ॥ १० ॥

॥ बिनती ॥

काम क्रोध संसै सदा, कबहूं नांव न लीन ।
पाषंड प्रपंच पाप मैं, दादू ऐसैं षीन ॥ ११ ॥
दादू बहु बंधन सौं बंधिया, एक बिचारा जीव ।
अपने बल छूटै नहीं, छोड़नहारा पीव ॥ १२ ॥
दादू बंदीवान है, तू बंदि छोड़ दीवान ।
अब जिनि राषौ बांदि मैं, मीरां मेहरबान ॥ १३ ॥
दादू अंतरि कालिमां, हिरदै बहुत बिकार ।
परगट पूरा दूरि कर, दादू करै पुकार ॥ १४ ॥

(६) दृष्टांत—पाप पुण्य का चौंतरा, नृपति किये पुर बाह्य ।
सब दुनिया पुण्य के चढ़ी, दूजे संत बिराज ॥
दुनिया अपने को पुण्यवान ही दिखाती है, केवल संतजन अपने को परमेश्वर के अपराधी समझते हैं ॥

(१४) परगट पूरा दूरिकर = अंतर के सब बिकारों को प्रगट कर, छिपे न रख ॥

सब कुछ व्यापै रामजी, कुछ छूटा नांहीं ।
तुम्ह थैं कहा छिपाइये, सब देषौ मांहीं ॥ १५ ॥
सबल साल मन मैं रहैं, राम बिसरि क्यौं जाइ ।
यहु दुष दादू क्यौं सहै, सांईं करौ सहाइ ॥ १६ ॥
राषणहारा राष तूं, यहु मन मेरा राषि ।
तुम बिन दूजा को नहीं, साधू बोलैं साषि ॥ १७ ॥
माया बिषै बिकार थैं, मेरा मन भागै ।
सोई कीजै सांइयां, तूं मीठा लागै ॥ १८ ॥
सांईं दीजै सो रती, तूं मीठा लागै ।
दूजा षारा होइ सब, सूता जीव जागै ॥ १९ ॥
जे साहिब कूं भावै नहीं, सो हम थैं जिनि होइ । (९–२)
सतगुर लाजै आपणा, साध न मानै कोइ ॥ २० ॥ गघङ ॥
ज्यौं आपै देषै आप कौं, सो नैना दे मुझ ।
मीरां मेरा मेहर कर, दादू देषै तुझ ॥ २१ ॥

॥ करुणा ॥

दादू पछितावा रह्या, सके न ठाहर लाइ ।
अरथि न आया राम के, यहु तन योंही जाइ ॥ २२ ॥
कहतां सुणतां दिन गये, ह्वै कछू न आवा । (१३–१०७)
दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछितावा ॥ २३ ॥ खगघङ ॥
सो कुछ हम थैं ना भया, जापरि रीझै राम । (१०–२९)

---

(१५) सब कुछ व्यापै रामजी = हे रामजी ! काम क्रोधादि सब मुझ में वर्त रहे हैं ॥

(२२) सके न ठाहर लाइ = एकाग्रचित्त होकर राम नाम में हम न लग सके ॥

दादू इस संसार मैं, हम आये बेकाम ॥ २४ ॥ खगघङ ॥

॥ बिनती ॥

दादू कहै--दिन दिन नौतम भगति दे, दिन दिन नौतम नांव़।
दिन दिन नौतम नेह दे, मैं बलिहारी जांव़ ॥ २५ ॥
सांई सत संतोष दे, भाव भगति बिसवास । (१६—५७)
सिदक सबूरी साच दे, मांगै दादू दास ॥ २६ ॥ खगघङ ॥
सांई संसै दूरि कर, करि संक्या का नास ।
भानि भरम दुबिध्या दुष दारुण, समता सहज प्रकास ॥ २७ ॥

॥ दया बिनती ॥

नांहीं परगट ह्वै रह्या, है सो रह्या लुकाइ ।
संइयां पड़दा दूरि कर, तूं ह्वै परगट आइ ॥ २८ ॥
दादू माया परगट ह्वै रही, यौं जे होता राम ।
अरस परस मिलि षेलते, सब जिव़ सब ही ठाम ॥ २६ ॥
दया करै तब अंगि लगावै, भगति अषंडित देवै ।
दादू दर्सन आप अकेला, दूजा हरि सब लेवै ॥ ३० ॥
दादू साध सिषावैं आत्मा, सेवा दिढ़ करि लेहु ।
पारब्रह्म सौं बीनती, "दया करि दर्सन देहु" ॥ ३१ ॥
साहिब साध दयाल हैं, हमहीं अपराधी ।

---

(२८) नांहीं = संसार जो वास्तव में है नहीं सो प्रगट हो रहा है। है जो परमात्मा सो लुक रहा है। हे सांई ! अविद्यारूपी पड़दा दूरि कर और तू आप प्रगट होकर दर्शन दे ॥

(३०) दूजा हरि सब लेवै = दूसरा जो प्रपंच संसारी वैभव़ है सो सब ले लेवै, संसारी पदार्थों की हम को चाह नहीं। देखो १६ वीं बिनती ॥

दादू जीव अभागिया, अविद्या साधी ॥ ३२ ॥
सब जीव तोरैं राम सौं, पै राम न तोरै ।
दादू काचे ताग ज्यौं, टूटै त्यौं जोरै ॥ ३३ ॥

॥ सजीवन ॥

फूटा फेरि संवारि करि, ले पहुचावै ओर ।
ऐसा कोई ना मिलै, दादू गई बहोर ॥ ३४ ॥
ऐसा कोई ना मिलै, तन फेरि संवारै ।
बूढ़े थैं बाला करै, पै काल निवारै ॥ ३५ ॥

॥ परचै करुणा बीनती ॥

गलै बिलै करि बीनती, एकमेक अरदास ।
अरस परस करुणां करै, तब दरवै दादूदास ॥ ३६ ॥
सांई तेरे डर डरूं, सदा रहूं मैं भीत ।
अजा सिंह ज्यौं मैं घणां, दादू लीया जीत ॥ ३७ ॥

॥ पोष प्रतिपाल रक्षक ॥

दादू पलक मांहिं प्रगटै सही, जे जन करै पुकार ।
दीन दुषी तब देषि करि, अति आतुर तिहिंबार ॥ ३८ ॥
आगै पीछै संगि रहै, आप उठाये भार ।
साध दुषी, तब हरि दुषी, ऐसा सिरजनहार ॥ ३९ ॥
सेवग की रष्या करै, सेवग की प्रतिपाल ।

---

(३४) फूटा = मन । ओर = परमेश्वर । बहोर = समय ॥

(३६) गलै बिलै = परमात्मा में लयलीन होकर, "एकमेक" = सब प्रपंच से वृत्ति को मोड़कर एकाग्रचित्त से अरस परस = प्रत्यक्ष परमात्मा के सन्मुख करुणा पूर्वक बिनती करै, तब दयालजी कहते हैं दास भीजै, अर्थात् ब्रम्ह रस से मग्न हो ॥

सेवग की वाहर चढ़ै , दादू दीन दयाल ॥ ४० ॥

॥ विनती सागर तरण ॥

दादू काया नाव समंद मैं, औघट बूड़े आइ ।
यहि औसर एक अगाध विन, दादू कौन सहाइ ॥ ४१ ॥
यहु तन मेरा भौजला, क्यौं करि लंघै तीर ।
षेवट विन कैसें तिरै, दादू गहर गंभीर ॥ ४२ ॥
प्यंड परोहन सिंध जल, भौसागर संसार ।
राम बिनां सूझै नहीं, दादू षेवनहार ॥ ४३ ॥
यहु घट बोहित धार मैं, दरिया वार न पार ।
भैभीत भयानक देषि करि, दादू करी पुकार ॥ ४४ ॥
कलिजुग घोर अंधार है, तिस का वार न पार ।
दादू तुम विन क्यौं तिरै, समरथ सिरजनहार ॥ ४५ ॥
काया के बसि जीव है, कसि कसि वंध्या मांहिं ।
दादू आतमराम विन, क्योंही छूटै नांहिं ॥ ४६ ॥
दादू प्राणी वंध्या पंच सूं, क्यूं हीं छूटै नांहिं ।
नीधणि आया मारिये, यहु जिव काया मांहिं ॥ ४७ ॥
दादू कहै—तुम विन धणी न धोरी जीव का, यौं हीं आवै जाइ ।
जे तूं सांई सत्ति है, तौ वेगा प्रगटिहु आइ ॥ ४८ ॥
नीधणि आया मारिये, धणी न धोरी कोइ ।

(४५) अंधार = अंधकार ॥
(४७) पंच विषय वा पंच इंद्रियां, नीधणि = स्वामीहीन ॥
(४८) धणी धोरी = मालिक और निवाहने वाला ॥

दादू सो क्यूं मारिये, साहिब सिर परि होइ ॥ ४९ ॥

॥ दया बिनती ॥

राम विमुष जुगि जुगि दुषी, लष चौरासी जीव़ ।
जामै मरै जगि आवटै, राषणहारा पीव़ ॥ ५० ॥

॥ पोष, प्रतिपाल, रष्यक ॥

समर्थ सिरजनहार है, जे कुछ करै सो होइ ।
दादू सेव़ग राषिले, काल न लागै कोइ ॥ ५१ ॥

॥ बिनती ॥

सांई साचा नांव़ दे, काल झाल मिटि जाइ ।
दादू निर्भै ह्वै रहै, कबहूं काल न षाइ ॥ ५२ ॥

कोई नहिं करतार बिन, प्राण उधारणहार ।
जियरा दुषिया राम बिन, दादू इहि संसार ॥ ५३ ॥

जिन की रष्या तूं करै, ते उबरे, करतार !
जे तैं छाड़े हाथ थैं, ते डूबे संसार ॥ ५४ ॥

राषणहारा एक तूं, मारणहार अनेक ।
दादू के दूजा नहीं, तूं आपै ही देष ॥ ५५ ॥

दादू जग ज्वाला जमरूप है, साहिब राषणहार ।
तुम विचि अंतर जिनि पड़ै, तार्थैं करूं पुकार ॥ ५६ ॥

जहं तहं विषै बिकार थैं, तुम हीं राषणहार ।
तन मन तुम्ह कौं सौंपिया, साचा सिरजनहार ॥ ५७ ॥

॥ दया बिनती ॥

दादू कहै—गरक रसातल जात है, तुम बिन सब संसार ।
कर गहि कर्ता काढ़ि ले, दे अवलंबन अधार ॥ ५८ ॥

दादू दौं लागी जग परजलै, घटि घटि सब संसार ।
हम थैं कछू न होत है, तुम बरसि बुझावणहार ॥५६॥ ङ ॥
दादू आतम जीव अनाथ सब, करतार उबारै ।
राम निहोरा कीजिये, जिनि काहू मारै ॥ ६० ॥
अर्स जिमीं औजूद मैं, तहां तपै अफताब ।
सब जग जलता देषि करि, दादु पुकारै साध ॥ ६१ ॥
सकल भुवन सब आतमा, निर्बिष करि हरि लेइ ।
पड़दा है सो दूरि करि, कुसमल रहण न देइ ॥ ६२ ॥
तन मन निर्मल आतमा, सब काहू की होइ ।
दादू बिषै बिकार की, बात न बूझै कोइ ॥ ६३ ॥

॥ बिनती ॥

समर्थ धोरी ! कंध धरि, रथ ले ओर निबाहि ।
मार्ग मांहिं न मेलिये, पीछैं बिड़द लजाहि ॥ ६४ ॥
दादू गगन गिरै तब को धरै, धरती धर छंडै ॥
जे तुम छाड़हु राम रथ, कंधा को मंडै ॥ ६५ ॥
दादू ज्यों वै बरत गगन थैं टूटै, कहां धरणि कहं ठाम ।(७–३१)
लागी सुरति अंग थैं छूटै, सो कत जीवै राम ॥ ६६ ॥ खगधड ॥
अंतरजामी एक तूं, आतम के आधार ।
जे तुम्ह छाडहु हाथ थैं, तौ कौंण सबांहण हार ॥ ६७ ॥

---

(६०) दृष्टांत—गुर दादू आंबेर तैं, उठत साषि कहि एह ।
पुनः फरीदजी झाज मैं, कही लगावो नेह ॥
(६४) हे समर्थ धोरी ! तू मेरे शरीर रूपी रथ को कंधे पर धर कर पार कर । राह में न छोड़, क्योंकि पीछे तेरा ही यश लज्जित होगा ॥

तेरा सेवग तुम्ह लगैं, तुम्ह हीं माथैं भार।
दादू डूबत रामजी, वेगि उतारौ पार॥ ६८ ॥
सत छूटा, सूरातन गया, बल पौरिस भागा जाइ ।
कोई धीरज ना धरै, काल पहूंता आइ ॥ ६९ ॥
संगी थाके संग के, मेरा कुछ न बसाइ ।
भाव भगति धन लूटिये, दादू दुषी पुदाइ ॥ ७० ॥

॥ परचय करुणा विनती ॥

दादू जियरे जक नहीं, विश्राम न पावै ।
आतम पाणीं लूंण ज्यौं, ऐसैं होइ न आवै ॥ ७१ ॥

॥ दया विनती ॥

दादू तेरी पृवी पृव है, सब नीका लागै ।
सुंदर सोभा काढ़ि ले, सब कोई भागै ॥ ७२ ॥

॥ विनती ॥

तुम्ह हो तैसी कीजिये, तौ छूटैंगे जीव ।
हम हैं ऐसी जिनि करौ, मैं सदिकै जाऊं पीव ॥७३ ॥
अनाथूं का आसिरा, निरधारा आधार ।
निर्धन का धन राम है, दादू सिरजनहार ॥ ७४ ॥
साहिब दर दादू पड़ा, निसदिन करै पुकार ।
मीरां मेरा मिहर कर, साहिब दे दीदार ॥ ७५ ॥
दादू प्यासा प्रेमका, साहिब राम पिलाइ ।
परगट प्याला देहु भरि, मृतक लेहु जिलाइ ॥ ७६ ॥
अल्लह आली नूर का, भरि भरि प्याला देहु ।
हमकूं प्रेम पिलाइ करि, मतिवाला करि लेहु ॥ ७७ ॥

तुम्हकूं हम से बहुत हैं, हमकूं तुम से नांहिं ।
दादू कूं जिनि परहरै, तूं रहु नैनहुं मांहिं ॥ ७८ ॥
तुम्ह थैं तबहीं होइ सब, दरस परस दरहाल ।
हम थैं कबहूं न होइगा, जे बीतहिं जुग काल ॥ ७६ ॥
तुम्ह हीं थैं तुम्ह कूं मिलै, एक पलक मैं आइ ।
हम थैं कबहुं न होइगा, कोटि कलप जे जांइ ॥ ८० ॥

॥ छिन बिछोह ॥

साहिब सूं मिलि षेलते, होता प्रेम सनेह ।
दादू प्रेम सनेह बिन, परी दुहेली देह ॥ ८१ ॥
साहिब सौं मिलि षेलते, होता प्रेम सनेह ।
परगट दर्सन देषते, दादू सुषिया देह ॥ ८२ ॥

॥ करुणा ॥

तुम्ह कूं भावै और कुछ, हम कुछ कीया और ।
मिहर करौ तौ छूटिये, नहीं तौ नांहीं ठौर ॥ ८३ ॥
मुझ भावै सो मैं किया, तुझ भावै सो नांहिं ।
दादू गुनहगार है, मैं देष्या मन मांहिं ॥ ८४ ॥
षुसी तुम्हारी त्यूं करौ, हम तौ मानी हारि ।
भावै बंदा बकसिये, भावै गहि करि मारि ॥ ८५ ॥
दादू जे साहिब लेषा लीया, तौ सीस काटि सूली दीया ।

---

(७६) मूल पुस्तकों में "बीतहिं" की जगह "बीचहि" है ॥

(८०) तुम्ह हीं थे तुम्ह कूं मिलै=तुम्हारी ही कृपा से तुम से हम मिल सकते हैं, देखो बेली के अंग की ५ वीं साखी ॥

मिहर मया करि फिल कीया, तौ जीये जीये करि जीया॥८६॥

॥ इति बिनती कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३४ ॥

अथ साषीभूत कौ अङ्ग ॥ ३५ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

॥ भरम बिधूसन ॥

सब देषणहारा जगत का, अंतरि पूरै साषि ।
दादू स्याबति सो सही, दूजा और न राषि ॥ २ ॥
मांहीं थैं मुझ कौं कहै, अंतरजामी आप ।
दादू दूजा धंध है, साचा मेरा जाप ॥ ३ ॥

॥ करता साषीभूत ॥

करता है सो करैगा, दादू साषीभूत ।
कौतिगहारा ह्वै रह्या, अणकरता औधूत ॥ ४ ॥
आप अकेला सब करै, घट मैं लहरि उठाइ । (२१–२५)

---

(८६) दृष्टांत—बरस छतीस हज़ार लौं, करी बंदगी सार ।
अदल कियां उलटी पड़ी, फज़ल कियां छुटकार ॥

(२) अंतरि पूरै साषि=मनुष्य के अतःकरण में परमेश्वर साक्षी देता है । सोई सही प्रमाण है ॥

दादू सिरदे जीव के, यूं न्यारा ह्वै जाइ ॥ ५ ॥ खगघङ ॥
आप अकेला सब करै, औरूं के सिरि देइ । (२१–२४)
दादू सोभादास कूं, अपणा नांव न लेइ ॥ ६ ॥ खगघङ ॥
दादू राजस करि उतपति करै, सातग करि प्रतिपाल ।
तामस करि परलै करै, निर्गुण कौतिगहार ॥ ७ ॥
दादू ब्रह्म जीव हरि आत्मा, षेलैं गोपी कान्ह ।
सकल निरंतरि भरि रह्या, साषीभूत सुजाण ॥ ८ ॥

॥ स्वकीय मित्र–शत्रुता ॥

दादू जामन मरण सानि करि, यहु प्यंड उपाया ।
सांई दीया जीव कूं, ले जग मैं आया ॥ ९ ॥
बिष अमृत सब पावक पाणी, सतगुर समझाया ।
मनसा बाचा कर्मणा, सोई फल पाया ॥ १० ॥
दादू जाणै बूझै जीव सब, गुण औगुण कीजै ।
जानि बूझि पावकि पड़ै, दई दोस न दीजै ॥ ११ ॥
मन हीं मांहै ह्वै मरै, जीवै मनहीं मांहिं । (२५–६२)
साहिब साषीभूत है, दादू दूसण नांहिं ॥ १२ ॥ खघङ ॥
बुरा भला सिर जीव के, होवै इस ही मांहिं ।
दादू कर्ता करि रह्या, सो सिर दीजै नांहिं ॥ १३ ॥

॥ साध साषीभूत ॥

कर्ता ह्वै करि कुछ करै, उस मांहिं बंधावै ।

---

(८) ब्रम्ह=शुद्ध चेतन सकल निरंतर व्यापक । हरि=मायोपहित सृष्टि कर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर । आत्मा=अंतःकरणोपहित कूटस्थ साक्षी चेतन । जीव=साभास अंतःकरण सुख दुःख का अभिमानी ॥

दादू उस कौं पूंछिये, ऊतर नहिं आवै ॥ १४ ॥
सेवा सुकृत सब गया, मैं मेरा मन मांहिं । (१५–५७)
दादू आपा जब लगै, साहिब मानै नांहिं ॥ १५ ॥ खगघड ॥
दादू केई उतारैं आरती, केइ सेवा करि जांहिं ।
केई आइ पूजा करैं, केई पुलावैं षांहिं ॥ १६ ॥
केई सेवग ह्वै रहे, केइ साधू संगति मांहिं ।
केई आइ दर्सन करैं, हम थैं होता नांहिं ॥ १७ ॥
नां हम करैं करावैं आरती, नां हम पियैं पिलावैं नीर ।
करै करावै सांइयां, दादू सकल सरीर ॥ १८ ॥
करै करावै सांइयां, जिन दीया औजूद ।
दादू बंदा बीचि है, सोभा कूं मौजूद ॥ १९ ॥
देवै लेवै सब करै, जिन सिरजे सब लोइ ।
दादू बंदा महल मैं, सोभा करै सब कोइ ॥ २० ॥

॥ करता साषीभूत ॥

दादू जुवा षेलै जाण राइ, ताकौं लषै न कोइ ।
सब जग बैठा जीति करि, काहू लिप्त न होइ ॥ २१ ॥

इति साषीभूत कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३५ ॥

---

(१४) पारष के अंग की २१ वीं साखी में दयालजी ने कहा है कि कर्मों के बस जीव है, सो जीव कर्म के बंधन में तभी आता है जब कर्त्तापने का अभिमान रख के कर्म करता है। ज्ञानी ऐसा अभिमान नहीं रखता, इसलिये कर्म से बंधता नहीं, यह बात आगे २१ वीं साखी में स्पष्ट कही है ॥

(२१) जुवा ॥ शतरंज वा चौसर की बाजी जिसमें हार जीत खाली

अथ बेली कौ अंग ॥ ३६ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू अमृत रूपी नांव ले, आतम तत्तहिं पोषै ।
सहजैं सहज समाधिमैं, धरणी जल सोषै ॥ २ ॥
पसरै तीन्यूं लोक मैं, लिपति नहीं धोषै ।
सो फल लागै सहज में, सुंदर सब लोकै ॥ ३ ॥
दादू बेली आत्मा, सहज फूल फल होइ ।
सहजि सहजि सतगुर कहै, बूझै बिरला कोइ ॥ ४ ॥
जे साहिब सींचै नहीं, तौ बेली कुमिलाइ ।
दादू सींचै सांइयां, तौ बेली बधती जाइ ॥ ५ ॥

बातों की होती है; इसी तरह का संपूर्ण जगत व्यौहार है, वास्तव में कोई लाभ हानि है नहीं, किंतु जहां जिसने जैसा नफा नुकसान मन में मान रक्खा है तहां उसको उसी भाव से फल मिलता है। जाण राइ (ज्ञानी) संपूर्ण व्यौहारों को केवल खेल मात्र मानता है, इसलिये संपूर्ण जगत उसने जीत लिया है और किसी से वह लिप्त नहीं है ॥ उस के ऐसे भाव को कोई दूसरा नहीं जानता, यह स्व संवेद्य बात है ॥

(२) जैसे धरती धीरे २ जल सोंकती है, तैसे सहजैं सहज समाधि में अपने जीव को अमृतरूपी अनाहद से पोषण करै ॥

(३) अमीरस से पोषणकरी बुद्धिरूपी बेली तीनों लोकों में पसरै और कहीं लिप्त न हो ॥

(५) आत्मा की प्राप्ति में परमात्मा की कृपा अवश्य होनी चाहिये, यथा— यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् । मुंडके ५६ ॥

हरि तरवर तत आत्मा, बेली करि बिसतार ।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सींचणहार ॥ ६ ॥
दादू सूका रूंषड़ा, काहे न हरिया होइ ।
आपै सींचै अमीरस, सूफल फलिया सोइ ॥ ७ ॥
कदे न सूकै रूंषड़ा, जे अमृत सींच्या आप ।
दादू हरिया सो फलै, कछू न व्यापै ताप ॥ ८ ॥
जे घट रोपै रामजी, सींचै अमी अघाइ ।
दादू लागै अमर फल, कबहूं सूकि न जाइ ॥ ९ ॥
हरि जल बरषे बाहिरा, सूके काया षेत । (१५–१०७)
दादू हरिया होइगा, सींचनहार सुचेत ॥ १० ॥ खगघड ॥
दादू अमर बेलि है आत्मा, षार समंदां मांहिं ।
सूकै षारे नीरसौं, अमर फल लागै नांहिं ॥ ११ ॥
दादू बहु गुणवंती बेलि है, ऊगी कालर मांहिं ।
सींचै षार नीरसौं, तातैं निपजै नांहिं ॥ १२ ॥
बहु गुणवंती बेलि है, मीठी धरती बाहि ।
मीठा पांणीं सींचिये, दादु अमर फल षाइ ॥ १३ ॥
अमृत बेली बाहिये, अमृत का फल होइ ।
अमृत का फल षाइ करि, मुवा न सुणिया कोइ ॥ १४ ॥
दादू विषकी बेली बाहिये, विषही का फल होइ ।

---

(६) हरि रूपी तरवर पर बुद्धिरूपी बेली को फैलावै, तौ उस बेल में अमर फल (मोक्ष फल) लगै, यदि साधू बेली को सींचता रहे ॥

(७) सूफल = सुफल ॥

(११) षार समंदां मांहिं" खारी समुद्र में ॥

विषही का फल षाइ करि, अमर नहीं कलि कोइ ॥१५॥
सतगुर संगति नीपजै, साहिब सींचणहार ।
प्रांण बिरष पीवै सदा, दादू फलै अपार ॥ १६ ॥
दया धर्म का रूंषड़ा, सतसौं बधता जाइ ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादु अमर फल षाइ ॥ १७ ॥

॥ इति बेली कौ अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३६ ॥

अथ अबिहड़ कौ अङ्ग ॥ ३७ ॥

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥
दादू संगी सोई कीजिये, जे कलि अजरावर होइ ।
नां वहु मरै न बीछुटै, नां दुष व्यापै कोइ ॥ २ ॥
दादू संगी सोई कीजिये, जे अस्थिर इहि संसार ।
नां वहु षिरै न हम षपैं, ऐसा लेहु बिचार ॥ ३ ॥
दादू संगी सोई कीजिये, सुष दुष का साथी ।
दादू जीवण मरण का, सो सदा संगाती ॥ ४ ॥
दादू संगी सोई कीजिये, जे कबहूं पलटि न जाइ ।
आदि अंति बिहड़ै नहीं, तासन यहु मन लाइ ॥ ५ ॥

(१५) इस साखी के पीछे किसी २ पुस्तक में परचा के अंग की १२२ से १२६ तक साखियां लिखी हैं ॥

दादू माया बिहड़ै देषतां, काया संगि न जाइ । (१२–१५)
कर्तृम बिहड़ै बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥ ६ ॥ घडङ॥
दादू अबिहड़ आप है, अमर उपावण हार ।
अविनासी आपै रहै, बिनसै सब संसार ॥ ७ ॥
दादू अबिहड़ आप है, साचा सिरजन हार ।
आदि अंति बिहड़ै नहीं, बिनसै सब आकार ॥ ८ ॥
दादू अबिहड़ आप है, अबिचल रह्या समाइ ।
निहचल रमिता राम है, जो दीसै सो जाइ ॥ ९ ॥
दादू अबिहड़ आप है, कबहूं बिहड़ै नांहिं ।
घटै बधै नहिं एक रस, सब उपजि षपै उस मांहिं॥१०॥
अबिहड़ अंग बिहड़ै नहीं, अपलट पलटि न जाइ ।
दादू अघट एक रस, सब गैं रह्या समाइ ॥ ११॥
कबहुं न बिहड़ै सो भला, साधू दिढ़ मत होइ । (१५–८६)
दादू हीरा एक रस, बांधि गांठड़ी सोइ॥ १२॥खगघङ॥
॥ अंत समै की साषी ॥
जेते गुण व्यापैं जीव कौं, तेते तैं तजे रे मन ।
साहेब अपणे कारणैं, भलो निवाह्यो पण ॥१३॥ कगङ ॥
इति श्री अबिहड़ को अंग संपूर्ण समाप्त ॥ ३७ ॥
इति श्रीस्वामी दादूदयाल की साषी संपूर्ण समाप्त ॥

---

(१३) सिवाय पु० नं० २ के और पुस्तकों में यह साखी शब्दों के अंत में आई है । पु० नं० १, २, ३ में " जीव कौं " और " भलो निवाह्यो पण " शब्द हैं नहीं ॥ पु० नं० ५ में यह साखी पूरी लिखी है॥

श्रीरामजी सत्य ॥

श्री स्वामी दादूदयालजी की अनभै बाणी

द्वितीय भाग सबद ॥

॥ राग गौड़ी ॥ १ ॥

॥ शब्द १ ॥ सुमिरन सूरातन, नाम निश्चय ॥

रांम नांम नहिं छांड़ौं भाई, प्रांण तजौं निकटि जिव़ जाई ॥ टेक ॥
रती रती करि डारै मोहि, सांई संग न छांड़ौं तोहि ॥ १ ॥
भावै ले सिर करव़त दे, जीव़न मूरी न छांड़ौं ते ॥ २ ॥
पाव़क में ले डारै मोहि, जरै सरीर न छांडौं तोहि ॥ ३ ॥
इब दादू ऐसी बनि आई, मिलौं गोपाल निसान बजाई ॥४॥

॥ शब्द २ ॥ अन्य उपदेस ॥

रांम नांम जिनि छांडै कोई, रांम कहत जन निर्मल होई ॥ टेक ॥
रांम कहत सुष संपति सार, रांम नांम तिरि लंघै पार ॥ १ ॥
रांम कहत सुधि बुधि मति पाई, रांम नांम जिनि छांड़हु भाई ॥२॥
रांम कहत जन निर्मल होइ, रांम नांम कहि कुसमल धोइ ॥३॥
रांम कहत को को नहिं तारे, यहु तत दादू प्रांण हमारे ॥४॥

---

(१) निकटि जिव़ जाई=रामजी के निकट मेरा जीव़ जायगा । जीवन मूरी=जीवन मूल=राम नाम ॥

॥ शब्द ३ ॥ सुमिरण उपदेस ॥ (क)

मेरे मन भैया रांम कहौ रे, रांम नांम मोहिं सहजि सुनावै ।
उन हीं चरण मन कीन रहौ रे ॥ टेक ॥
रांम नांम ले संत सुहावै, कोई कहै सब सीस सहौ रे ।
वाही सौं मन जोरे रापौ, नीकै रासि लिये निबहौ रे ॥ १ ॥
कहत सुनत तेरो कछू न जावै, पाप निछेदन सोइ लहौ रे ।
दादू रे जन हरि गुण गावो, कालहि जालहि फेरि दहौ रे ॥२॥

॥ शब्द ४ ॥ विरह ॥

कौण विधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ॥ टेक ॥
पास पीव परदेस है रे, जब लग प्रगटै नांहिं ।
बिन देषे दुष पाइये, यहु सालै मन मांहिं ॥ १ ॥
जब लग नैंन न देषिये, परगट मिलै न आइ ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुष सह्या न जाइ ॥ २ ॥
तब लग नेड़ै दूरि है रे, जब लग मिलै न मोहि ।
नैंन निकट नहिं देषिये, संगि रहे क्या होइ ॥ ३ ॥
कहा करौं कैसे मिलै रे, तलपै मेरा जीव ।
दादू आतुर विरहनी, कारण अपने पीव ॥ ४ ॥

शब्द ५ ॥ विरह विलाप ॥

जियरा क्यौं रहै रे, तुम्हारे दर्सन बिन बेहाल ॥ टेक ॥
परदा अंतरि करि रहे, हम जीवैं किहिं आधार ।
सदा संगाती प्रीतमा, अब कै लेहु उबारि ॥ १ ॥
गोपि गुसांई ह्वै रहे, इब काहे न परगट होइ ।

(३) कीन=किये, लगाये । पाप निछेदन=पापों को नाश करनेवाला ॥

रांम सनेही संगिया, दूजा नांहीं कोइ ॥ २ ॥
अंतरजामी छिपि रहे, हम क्यौं जीवैं दूरि ।
तुम बिन ब्याकुल केसवा, नैंन रहे जल पूरि ॥ ३ ॥
आप अपरछन व्है रहे, हम क्यौं रैनि बिहाइ ।
दादू दर्सन कारणे, तलफि २ जिव जाइ ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥ बिरह हैरान ॥

अजहूं न निकसैं प्राण कठोर, दर्सन बिना बहुत दिन बीते ।
सुंदर प्रीतम मोर । टेक ॥
चारि पहर चारयौं जुग बीते, रैनि गंवाई भोर ।
अवधि गई अज हूं नहिं आये, कतहूं रहे चित चोर ॥ १ ॥
कब हूं नैंन निरषि नहिं देषे, मारग चितवत तोर ।
दादू ऐसैं आतुर बिरहणि, जैसैं चंद चकोर ॥ २ ॥

॥ शब्द ७ ॥ सुंदरी सिंगार ॥

सोभन पीवजी साजि संवारी, इब बेगि मिलौ तन जाइ बनवारी ।टेक।
साजि सिंगार कीया मन मांहीं, अज हूं पीव पतीजै नांहीं ॥१॥
पीव मिलन कौं अहिनिस जागी, अज हूं मेरी पलक न लागी ॥२॥
जतन २ करि पंथ निहारौं, पिव भावै त्यौं आप संवारौं ॥ ३ ॥
अब सुष दीजै जांउ बलिहारी, कहै दादू सुणि बिपति हमारी ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥ बिरहचिंता ॥

सोदिन कबहूं आवैगा, दादूड़ा पीव पावैगा ॥ टेक ॥
क्यूं हीं अपनै अंगि लगावैगा, तब सब दुष मेरा जावैगा ॥ १ ॥
पीव अपने बैन सुनावैगा, तब आनंद अंगि न मावैगा ॥ २ ॥
पीव मेरी प्यास मिटावैगा, तब आपहि प्रेम पिलावैगा ॥ ३ ॥

दे अपना दर्स दिषावैगा, तब दादू मंगल गावैगा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ९ ॥ विरहप्रीति ॥

तैं मन मोह्यौ मोर रे, रहि न सकौं हौं रांमजी ॥ टेक ॥
तोरे नांइ चित लाइया रे, अवरनि भया उदास ।
सांईं ये समझाइया, हौं संग न छांड़ौं पास रे ॥ १ ॥
जाणौं तिलहि न बिछूटौं रे, जिनि पछितावा होइ ।
गुण तेरे रसना जपौं, सुणसी सांईं सोइ रे ॥ २ ॥
भोरैं जन्म गंवाइया रे, चीन्हां नहीं सो सार ।
अज हूं यह अचेत है, अवर नहीं आधार रे ॥ ३ ॥
पीव की प्रीति तौ पाइये रे, जो सिर होवै भाग ।
यौ तो अनत न जाइसी, रहसी चरणहुं लाग रे ॥ ४ ॥
अनतैं मन निवारिया रे, मोंहिं एकै सेती काज ।
अनत गये दुष ऊपजै, मोंहि एकहिं सेती राज रे ॥ ५ ॥
सांईं सौं सहजैं रमौं रे, और नहीं आंन देव ।
तहां मन बिलंबिया, जहां अलप अभेव रे ॥ ६ ॥
चरण कवल चित लाइया रे, भोरैं हीं ले भाव ।
दादू जन अचेत है, सहजैं हीं तूं आव रे ॥ ७ ॥

॥ शब्द १० ॥ विरह विलाप ॥

बिरहनि कौं सिंगार न भावै, है कोइ ऐसा राम मिलावै ॥टेक॥
बिसरे अंजन मंजन चीरा, बिरह बिथा यहु व्यापै पीरा ॥ १ ॥
नव सत थाके सकल सिंगारा, है कोइ पीड़ मिटावण हारा ॥२॥

(१०-२) नव सत=१६ सिंगार ॥

देह गेह नहीं सुधि सरीरा, निस दिन चितवत चात्रिग नीरा ॥३॥
दादू ताहि न भावै आंन, रांम बिनां भई मृतक समांन ॥ ४ ॥

॥ शब्द ११ ॥ करुणा बिनती ॥

इब तो मोहि लागी बाइ, उन निहचल चित लियो चुराइ ॥ टेक ॥
आंन न रुचै और नहिं भावै, अगम अगोचर तहं मन जाइ ।
रूप न रेष वरण कहों कैसा, तिन चरणों चित रह्या समाइ ॥१॥
तिन चरणों चित सहजि समांनां, सो रस भीनां तहं मन धाइ ।
अब तौ ऐसी बनि आई, बिष तजै अरु अमृत षाइ ॥ २ ॥
कहा करों मेरा बस नांहीं, और न मेरे अंगि सुहाइ ।
पल एक दादू देषन पावै, तौ जन्म जन्म की त्रिषा बुझाइ ॥३॥

॥ शब्द १२ ॥ करुणा बिनती ॥

तूं जिनि छाड़ै केसवा, मेरे और निबाहनहार हो ॥ टेक ॥
अवगुण मेरे देषि करि, तूं नां कर मैला मन ।
दीनांनाथ दयाल है, अपराधी सेवग जन हो ॥ १ ॥
हम अपराधी जनम के, नष सिष भरे बिकार ।
मेटि हमारे अवगुणां, तूं गरवा सिरजनहार हो ॥ २ ॥
मैं जन बहुत बिगारिया, अब तुमहीं लेहु संवारि ।
समर्थ मेरा सांईयां, तूं आपै आप उबारि हो ॥ ३ ॥
तूं न बिसारी केसवा, मैं जन भूला तोहि ।
दादू को और निबाहि ले, अब जिनि छाड़ै मोहि हो ॥ ४ ॥

॥ शब्द १३ ॥ केवल बिनती ॥

रांम संभालिये रे, बिषम दुहेली बार ॥ टेक ॥

(१२-४) और=किनारे, पार ॥

दे अपना दर्स दिषावैगा, तब दादू मंगल गावैगा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ९ ॥ विरहप्रीति ॥

तैं मन मोह्यौ मोर रे, रहि न सकौं हौं रांमजी ॥ टेक ॥
तोरे नांइ चित लाइया रे, अवरनि भया उदास ।
सांईं ये समझाइया, हौं संग न छांड़ौं पास रे ॥ १ ॥
जाणौं तिलहि न बिछूटौं रे, जिनि पछितावा होइ ।
गुण तेरे रसना जपौं, सुणसी सांईं सोइ रे ॥ २ ॥
भोरैं जन्म गंवाइया रे, चीन्हां नहीं सो सार ।
अज हूं यह अचेत है, अवर नहीं आधार रे ॥ ३ ॥
पीव की प्रीति तौ पाइये रे, जो सिर होवै भाग ।
यौ तो अनत न जाइसी, रहसी चरणहुं लाग रे ॥ ४ ॥
अनतैं मन निवारिया रे, मोंहिं एकै सेती काज ।
अनत गये दुष ऊपजै, मोंहि एकहिं सेती राज रे ॥ ५ ॥
सांईं सौं सहजैं रमौं रे, और नहीं आंन देव ।
तहां मन बिलंबिया, जहां अलष अभेव रे ॥ ६ ॥
चरण कवल चित लाइया रे, भोरैं हीं ले भाव ।
दादू जन अचेत है, सहजैं हीं तूं आव रे ॥ ७ ॥

॥ शब्द १० ॥ विरह बिलाप ॥

बिरहनि कौं सिंगार न भावै, है कोइ ऐसा राम मिलावै ॥टेक॥
बिसरे अंजन मंजन चीरा, बिरह बिथा यहु व्यापै पीरा ॥ १ ॥
नव सत थाके सकल सिंगारा, है कोइ पीड़ मिटावण हारा ॥२॥

(१०-२) नव सत=१६ सिंगार ॥

देह ग्रेह नहीं सुधि सरीरा, निस दिन चितवत चात्रिग नीरा ॥३॥
दादू ताहि न भावै आंन, रांम बिनां भई मृतक समांन ॥ ४ ॥

॥ शब्द ११ ॥ करुणा बिनती ॥

इब तो मोहि लागी बाइ, उन निहचल चित लियो चुराइ ॥ टेक ॥
आंन न रुचै और नहिं भावै, अगम अगोचर तहं मन जाइ ।
रूप न रेष वरण कहौं कैसा, तिन चरणौं चित रह्या समाइ ॥१॥
तिन चरणौं चित सहजि समांनां, सो रस भीनां तहं मन धाइ ।
अब तौ ऐसी बनि आई, बिष तजै अरु अमृत षाइ ॥ २ ॥
कहा करौं मेरा बस नांहीं, और न मेरे अंगि सुहाइ ।
पल एक दादू देषन पावै, तौ जन्म जन्म की त्रिषा बुझाइ ॥३॥

॥ शब्द १२ ॥ करुणा बिनती ॥

तूं जिनि छाड़ै केसवा, मेरे और निबाहनहार हो ॥ टेक ॥
अवगुण मेरे देषि करि, तूं नां कर मैला मन ।
दीनांनाथ दयाल है, अपराधी सेवग जन हो ॥ १ ॥
हम अपराधी जनम के, नष सिष भरे बिकार ।
मेटि हमारे अवगुणां, तूं गरवा सिरजनहार हो ॥ २ ॥
मैं जन बहुत बिगारिया, अब तुमहीं लेहु संवारि ।
समर्थ मेरा सांईयां, तूं आपै आप उबारि हो ॥ ३ ॥
तूं न बिसारी केसवा, मैं जन भूला तोहि ।
दादू को और निबाहि ले, अब जिनि छाड़ै मोहि हो ॥ ४ ॥

॥ शब्द १३ ॥ केवल बिनती ॥

रांम संभालिये रे, बिषम दुहेली बार ॥ टेक ॥

(१२-४) और=किनारे, पार ॥

मंझि समंदां नाव़री रे, बूड़ै षेव़ट बाज ।
काढ़नहारा को नहीं, एक रांम बिन आज ॥ १ ॥
पार न पहुंचै रांम बिन, भेरा भव़ जल मांहिं ।
तारणहारा एक तूं, दूजा कोई नांहिं ॥ २ ॥
पार परोहन तौ चलै, तुम्ह षेवहु सिरजनहार ।
भव़सागर मैं डूबि है, तुम्ह बिन प्रांण अधार ॥ ३ ॥
औघट दरिया क्यौं तिरै, बोहिथ बैसणहार ।
दादू षेव़ट रांम बिन, कौंण उतारै पार ॥ ४ ॥

॥ शब्द १४ ॥

पार नहिं पाइये रे, रांम बिना को निर्बाहण हार ॥ टेक ॥
तुम्ह बिन तारण को नहीं, दूभर यहु संसार ।
पैरति थाके केसवा, सूझै वार न पार ॥ १ ॥
बिषम भयानक भव़जला, तुम्ह बिन भारी होइ ।
तूं हरि तारण केसवा, दूजा नांहीं कोइ ॥ २ ॥
तुम्ह बिन षेवट को नहीं, अतिर तिर्यौ नहिं जाइ ।
औघट भेरा डूबि है, नांहीं आंन उपाइ ॥ ३ ॥
यहु घट औघट बिषम है, डूबत मांहिं सरीर ।
दादू काइर रांम बिन, मन नहिं बांधै धीर ॥ ४ ॥

॥ शब्द १५ ॥

क्यूं हम जीवैं दास गुसांईं, जे तुम छाड़हु समर्थ सांईं ॥ टेक ॥

(१५-२) पुस्तक नं० १ में "निन्यारे" की जगह "निनावरे" है, पुस्तक नं० २ में "निनयारे", पुस्तक नं० ३ और ५ में "निनारे"। इसका तात्पर्य न्यारे है ॥

जे तुम जन कौं मनहिं बिसारा, तौ दूसर कौंण संभालनहारा ॥१॥
जे तुम परहरि रहौ निन्यारे, तौ सेवग जाइ कवन के द्वारे ॥२॥
जे जन सेवग बहुत बिगारै, तौ साहिब गरवा दोस निवारै ॥३॥
समर्थ सांईं साहिब मेरा, दादू दास दीन है तेरा ॥ ४ ॥

॥ शब्द १६ ॥ करुणा ॥

क्यूं करि मिलै मोकौं रांम गुसांईं, यहु बिषिया मेरे बसि नांहीं ॥टेक॥
यहु मन मेरा दह दिसि धावै, नियरे रांम न देषन पावै ॥१॥
जिभ्या स्वाद सबै रस लागे, इंद्री भोग बिषै कौं जागे ॥२॥
श्रवनहुं साच कदे नहिं भावै, नैंन रूप तहं देषि लुभावै ॥३॥
कांम क्रोध कदे नहिं छीजै, लालचि लागि बिषै रस पीजै ॥४॥
दादू देषि मिलै क्यौं सांईं, बिषै बिकार बसैं मन मांहीं ॥५॥

॥ शब्द १७ ॥ प्रचय बिनती ॥

जो रे भाई रांम दया नहिं करते, नवका नांव षेवट हरि आपै,
यौं बिन क्यौं निसतरते ॥ टेक ॥

करणीं कठिन होत नहिं मोपैं, क्यौं कर ये दिन भरते ।
लालचि लागि परत पावक मैं, आपहि आपैं जरते ॥ १ ॥
स्वादहि संग बिषै नहिं छूटै, मन निहचल नहिं धरते ।
षाय हलाहल सुष के तांईं, आपैं ही पचि मरते ॥ २ ॥
मैं कांमी कपटी क्रोध काया मैं, कूप परत नहिं डरते ।
करवत कांम सीसधरि अपनैं, आपहि आप बिहरते ॥ ३ ॥
हरि अपनां अंग आप नहिं छाडै, अपनी आप बिचरते ।
पिता क्यूं पूत कूं मारै, दादू यूं जन तिरते ॥ ४ ॥

(१६-१) नियरे=नेरे ॥

॥ शब्द १८ ॥ बिरह बिलाप बिनती ॥

तौ लग जिनि मारै तूं मोहि, जौ लग मैं देषौं नहिं तोहि ॥ टेक ॥
इब के बिछुरे मिलन कैसैं होइ, इहि बिधि बहुरि न चीन्है कोइ॥१॥
दीन दयाल दया करि जोइ, सब सुष आनंद तुम्हथैं होइ ॥२॥
जन्म जन्म के बंधन षोइ, देषन दादू अहिनिसि रोइ ॥ ३ ॥

॥ शब्द १९ ॥ सपरस बिनती ॥

संग न छाड़ौं मेरा पावन पीव, मैं बलि तेरे जीवनि जीव॥ टेक॥
संगि तुम्हारे सब सुष होइ, चरण कवल मुष देषौं तोहि॥१॥
अनेक जतन करि पाया सोइ, देषौं नैंनहुं तौ सुष होइ ॥२॥
सरणि तुम्हारी अंतरि बास, चरण कवल तहं देहु निवास ॥३॥
अब दादू मन अनत न जाइ, अंतरि बेधि रह्यौ ल्यौ लाइ ॥४॥

॥ शब्द २० ॥ परचै बिनती (गुजराती भाषा) ॥

नहिं मेलूं रांम, नहिं मेलूं, मे शोधि लीधो नहिं मेलूं,
चित्त तूं सूं बांधूं नहिं मेलूं ॥ टेक ॥
हूं तारे काजे तालावेली, हवे केम मने जाशे मेली ॥ १ ॥

(शब्द २०) मेलूं=छोड़ूं । शोधि लीधो = खोजलिया । तालावेली = बेकल । हवे = अब । केम = किस तरह । जाशे = जायगा । चरण समानो = दीर्घ काल को । केवी पेरे = किस विधि । काढ़ौं = बिताऊं । राखिश = राखूंगा । दुहिले पाम्यों = कठिनाई से पाया ॥

"हूं तारे काजे तालावेली," मैं तेरे लिये तड़फड़ा रहा हूं ।
"साहसि तूं न मन सौं गाढ़ौ, चरण समानो केवी पेरे काढ़ौ" यहां दयालजी अपने आप को कहते हैं कि "तू न तो साहसी है और न मन कर के दृढ़ है, सो परमेश्वर की जुदाई के दीर्घ काल को कैसे काटैगा"?

साहसि तूं न मनसों गाढ़ौ, चरण समानो केवी पेरे काढ़ौ ॥२॥
राषिश हृदे, तूं मारो स्वामी, मैं दुहिले पाम्यों अंतरजामी ॥३॥
हवे न मेलूं, तूं स्वामी मारो, दादू सन्मुष सेवक तारो ॥४॥

॥ शब्द २१ ॥ परचै करुणा विनती ॥

रांम, सुनहु न बिपति हमारी हो, तेरी मूरति की बलिहारी हो ॥टेक॥
मैं जु चरण चित चाहनां, तुम सेवग साधारनां ॥ १ ॥
तेरे दिन प्रति चरण दिषावनां, करि दया अंतरि आवनां॥२॥
जन दादू बिपति सुनावनां, तुम गोविंद तपति बुझावनां ॥३॥

॥ शब्द २२ ॥ परचै विनती-प्रश्न ॥

कौण भांति भल मांनैं गुसांईं, तुम भावै सो मैं जांनत नांहीं॥टेक॥
कै भल मांनैं नाचैं गायें, कै भल मांनैं लोक रिझायें ॥ १ ॥
कै भल मांनैं तीरथ न्हायें, कै भल मांनैं मूंड मुड़ायें ॥ २ ॥
कै भल मांनैं सब घर त्यागी, कै भल मांनैं भये बैरागी ॥ ३ ॥
कै भल मांनैं जटा बधायें, कै भल मांनैं भसम लगायें ॥ ४ ॥
कै भल मांनैं बन बन डोलें, कै भल मांनैं मुषहि न बोलें॥ ५ ॥
कै भल मांनैं जप तप कीयें, कै भल मांनैं करवत लीयें॥ ६ ॥
कै भल मांनैं ब्रह्म गियानीं, कै भल मांनैं अधिक धियानीं ॥ ७ ॥
जे तुम्ह भावै सो तुम्ह पै आहि, दादू न जांणैं कहि समझाइ॥८॥

॥ साषी उत्तर ॥

दादू जे तूं समझै तौ कहौं, साचा एक अलेष । १४-६ ॥
डाल पांन तजि मूल गहि, क्या दिष लावै भेष ॥ १ ॥

(शब्द २२-८) "तुम्ह पै आहि" = तुम ही को आता है, तुम ही जानते हो ॥

दादू सचु बिन सांईं ना मिलै, भावै भेष बनाइ ॥ (१४–४०)
भावै करवत उरध मुषि, भावै तीरथ जाइ ॥ २ ॥

॥ शब्द २३ ॥ परचै बिनती ॥

अहो गुण तोर, अवगुण मोर, गुसांईं, तुम्ह कृत कीन्हां ।
सो मैं जांनत नांहीं ॥ टेक ॥
तुम्ह उपगार किये हरि केते, सो हम बिसरि गये ।
आप उपाइ अगिनि मुषि राषे, तहां प्रतिपाल भये हो गुसांईं॥१॥
नष सिष साजि किये हो सजीवनि, उदरि आधार दिये ।
अन्नपांन जहं जाइ भसम ह्वै, तहं तैं राषि लिये हो गुसांईं ॥२॥
दिन दिन जांनि जतन करि पोषे, सदा समीप रहे ।
अगम अपार किये गुन केते, कबहूं नांहिं कहे हो गुसांईं॥३॥
कबहूं नांहिं न तुम्ह तन चितवत, माया मोह परे ।
दादू तुम्ह तजि जाइ गुसांईं, बिषिया मांहिं जरे हो गुसांईं॥४॥

॥ शब्द २४ ॥ उपदेश चितावणी ॥

कैसै जीविये रे, सांईं संग न पास, चंचल मन निहचल नहीं,
निस दिन फिरै उदास ॥ टेक ॥
नेह नहीं रे रांम का, प्रीति नहीं परकास ।
साहिब का सुमिरण नहीं, करै मिलन की आस ॥ १ ॥
जिस देषे तूं फूलियारे, पांणीं प्यंड बधांणां मास ।
सो भी जालि बालि जाइगा, झूठा भोग बिलास ॥ २ ॥

(शब्द २४–३) तौ जीवीजै जीवणां सुमिरै सासैं सास=जो सांसै सांस (सदा) परमेश्वर का सुमिरण करता रहे, तौ जीवना जीवने योग्य है ॥

तौ जीवीजै जीवणां, सुमिरै सासैं सास ।
दादू परगट पिव मिलै, तौ अंतरि होइ उजास ॥ ३ ॥

॥ शब्द २५ ॥ हित उपदेस ॥

जियरा मेरे सुमिरि सार, कांम क्रोध मद तजि बिकार ॥टेक॥
तूं जिनि भूलै मन गंवार, सिर भार न लीजै, मांनि हार ॥ १ ॥
सुणि समझायौ बार बार, अजहूं न चेतै, हो हुसियार ॥ २ ॥
करि तैसैं भव तिरिये पार, दादू इव थैं यही बिचार ॥ ३ ॥

॥ शब्द २६ ॥ भय चितावणी ॥

जियरा चेति रे, जिनि जारै, हेजैं हरिसौं प्रीति न कीन्ही ।
जनम अमोलिक हारै ॥ टेक ॥
बेर बेर समझायौ रे जियरा, अचेत न होइ गंवारे ।
यहु तन है कागद की गुड़िया, कछु एक चेत बिचारे ॥ १ ॥
तिल तिल तुझ कौं हाणि होत है, जै पल राम बिसारै ।
भौ भारी दादू के जिय मैं, कहु कैसैं करि डारै ॥ २ ॥

॥ शब्द २६½ ॥ कखघङ ॥

जियरा काहे रे मूढ डोलै । बनबासी लाला पुकारै ।
तुंहीं तुंहीं करि बोलै ॥ टेक ॥
साथ सवारी लै न गयौरे, चालण लागौ बोलै ।
तब जाइ जियरा जांणैगौ रे, बांधे ही कोइ षोलै ॥ १ ॥
तिल तिल मांहैं चेत चलीरे, पंथ हमारा तोलै ।
गहिला दादू कछू न जांणै, राषि ले मेरे मोलै ॥ २ ॥

(२६½) यह शब्द खाली पुस्तक नं० ३ में है ॥

॥ शब्द २७ ॥ अप्रबल बैराग ॥

ता सुष कौं कहौ का कीजै, जाथैं पल पल यहु तन छीजै ॥ टेक ॥
आसण कुंजर सिरि छत्र धरीजै, ताथैं फिरि फिरि दुष सहीजै ॥ १ ॥
सेज संवारि सुंदरि संगि रमीजै, षाइ हलाहल, भर्मि मरीजै ॥ २ ॥
बहु बिधि भोजन मांनि रुचि लीजै, स्वाद संकुटि भरमि पासि परीजै ३
ये तजि दादू प्रांण पतीजै, सब सुष रसनां रांम रमीजै ॥ ४ ॥

॥ शब्द २८ ॥ उपदेस ॥

मन निर्मल तन निर्मल भाई, आंन उपाइ बिकार न जाई ॥ टेक ॥
जो मन कोयला तौ तन कारा, कोटि करै नहिं जाइ बिकारा ॥ १ ॥
जो मन बिसहर तौ तन भुवंगा, करै उपाइ बिषै फुनि संगा ॥ २ ॥
मन मैला तन उज्जल नांहीं, बहुत पचिहारे बिकार न जांहीं ॥ ३ ॥
मन निर्मल तन निर्मल होई, दादू साच बिचारै कोई ॥ ४ ॥

॥ शब्द २९ ॥ उपदेस चितावणी ॥

मैं मैं करत सबै जग जावै, अजहूं अंध न चेतैरे ।
यह दुनिया सब देषि दिवानी, भूलि गये हैं केते रे ॥ टेक ॥
मैं मेरे मैं भूलि रहे रे, साजन सोइ बिसारा ।
आया हीरा हाथि अमोलिक, जन्म जुवा ज्यूं हारा ॥ १ ॥
लालच लोभैं लागि रहे रे, जांनत मेरी मेरा ।
आपहि आप बिचारत नांहीं, तूं काकौं को तेरा ॥ २ ॥
आवत है सब जाता दीसै, इन मैं तेरा नांहीं ।
इन सौं लागि जन्म जिनि षोवै, सोधि देष सचु मांहीं ॥ ३ ॥
निहचल सौं मन मानैं मेरा, सांईं सौं बनि आई ।
दादू एक तुम्हारा साजन, जिन यहु भुरकी लाई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३० ॥ निर्वेद उपदेस (ज्ञान विना सब फीका) ॥

का जिवनां का मरणां रे भाई, जो तैं रांम न रमसि अघाई ॥टेक॥
का सुष संपति छत्रपति राजा, वनषंडि जाइ बसे किहि काजा ॥१॥
का विद्या गुन पाठ पुरांनां, का मूरिष जो तैं रांम न जांनां ॥२॥
का आसन करि अहनिसि जागे, का फिर सोवत रांम न लागे॥३॥
का मुकता का बंधे होई, दादू रांम न जांनां सोई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३१ ॥ मन प्रमोध ॥

मनरे, रांम बिनां तन छीजै, जब यहु जाइ मिलै माटी मैं ।
तब कहु कैसैं कीजै ॥ टेक ॥
पारस परसि कंचन करि लीजै, सहज सुरति सुषदाई ।
माया बेलि, बिषै फल लागे, तापरि भूलि न भाई ॥ १ ॥
जब लग प्रांण प्यंड है नीका, तब लग ताहि जिनि भूलै ।
यहु संसार सैंबल के सुष ज्यूं, तापर तूं जिनि फूलै ॥ २ ॥
अवसर येह जानि जग जीवन, समझि देषि सचु पावै ।
अंग अनेक आंन मति भूलै, दादू जिनि डहकावै ॥ ३ ॥

॥ शब्द ३२ ॥ मृगोक्त उपदेस ॥

मोह्यो मृग देषि बन अंधा, सूझत नहीं काल के फंधा ॥टेक॥
फूल्यौ फिरत सकल बन मांहीं, सिर सांधे सर सूझत नांहीं॥१॥
उदमादि मातौ बन के ठाट, छाडि चल्यौ सब बारहबाट ॥ २॥
फंध्यो न जांनै बन के चाइ, दादू स्वादि बंधानौ आइ ॥ ३॥

---

(३०) जो तैं राम न रमसि अघाई = जो तू राम से पेटभर के न रमा (खेला, भजन किया) । अर्थात् अपने आत्म स्वरूप को पूर्ण रूप से साक्षात्कार कर के दीर्घ कालतक धारण न किया ।

॥ शब्द ३३ ॥ मन प्रति उपदेस ॥

काहे रे मन रांम बिसारै, मनिषा जन्म जाय जियहारै ॥टेक॥
मात पिता को बंध न भाई, सब ही सुपिना कहा सगाई ॥१॥
तन धन जोबन झूठा जांणीं, रांम हृदै धरि सारंगप्रांणीं ॥२॥
चंचल चित बित झूठी माया, काहे न चेतै सो दिन आया ॥३॥
दादू तन मन झूठा कहिये, रांमचरण गहि काहे न रहिये ॥४॥

॥ शब्द ३४ ॥ मनष देह माहात्म ॥

ऐसा जनम अमोलिक भाई, जामैं आइ मिलै रांम राई ॥टेक॥
जामैं प्राण प्रेम रस पीवै, सदा सुहाग सेज सुष जीवै ॥ १ ॥
आतम आइ रांम सौं राती, अषिल अमर धन पावै थाती ॥२॥
परगट परसन दरसन पावै, परम पुरिष मिलि मांहिं समावै॥३ ।
ऐसा जन्म नहीं नर आवै, सो क्यूं दादू रतन गंवावै ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३५ ॥ परचै सतसंग ॥

सतसंगति मगन पाइये, गुर प्रसादैं रांम गाइये ॥ टेक ॥
आकास धरन धरीजै, धरनी आकास कीजै,
सुनि मांहैं निरषि लीजै ॥ १ ॥
निरषि मुकताहल मांहैं साइर आयौ,
अपने पीया हौं ध्यावत षोजत पायौ ॥ २ ॥
सोच साइर अगोचर लहिये, देव देहुरे मांहैं कवन कहिये ॥३॥
हरि कौ हितारथ ऐसौ लषै न कोई, दादू जे पीवै पावै अमर होई४॥

---

(३५) यह शब्द पुस्तक नं० १ में ही यहां है । नं० ३ में शब्द ७४ के पीछे आया है । और उसमें अंत का पद इस भांति है:—

" दादू जे पीय पावै सु अम्र होई " ॥

॥ शब्द ३६ ॥ उपदेस चितावणी ॥

कौंण जनम कहं जाता है, अरे भाई रांम छाडि कहं राता है ॥टेक॥
मैं मैं मेरी इनसौं लागि, स्वाद पतंग न सूझै आगि ॥ १ ॥
बिषिया सौं रत गर्ब गुमांन, कुंजर कांम बंधे अभिमांन ॥२॥
लोभ मोह मद माया फंध, ज्यौं जल मीन न चेतै अंध ॥३॥
दादू यहु तन यूंहीं जाइ, रांम बिमुष मरि गये बिलाइ ॥४॥

॥ शब्द ३७ ॥

मन मूरिषा तैं क्या कीया, कुछ पीव कारणि बैराग न लीया ।
रे तैं जप तप साधी क्या दीया ॥ टेक ॥
रे तैं करवत कासी कदि सह्या, रे तूं गंगा मांहैं नां बह्या ।
रे तैं बिरहनि ज्यौं दुष नां सह्या ॥ १ ॥
रे तूं पालै पर्वत नां गल्या, रे तैं आपही आपा नां दह्या ।
रे तैं पीव पुकारी कदि कह्या ॥ २ ॥
होइ प्यासे हरि जल नां पीया, रे तूं बजर, न फाटौ रे हीया
धिग जीवन दादू ये जीया ॥ ३ ॥

॥ शब्द ३८ ॥

क्या कीजै मनिषा जन्म कौं, रांम न जपहि गंवारा ।
माया के मदि मातौ बहै, भूलि रह्या संसारा ॥ टेक ॥
हिरदै रांम न आवई, आवै बिषै बिकारा रे ।
हरि मारग सूझै नहीं, कूप परत नहिं बारा रे ॥ १ ॥
आपा अग्नि जु आप मैं, तार्थैं अहिनिसि जरै सरीरा रे ।
भाव भगति भावै नहीं, पीवै न हरि जल नीरा रे ॥ २ ॥
मैं मेरी सब सूझई, सूझै माया जालो रे ।

रांम नांम सूझै नहीं, अंध न सूझै कालो रे ॥ ३ ॥
ऐसैं हीं जनम गंवाइया, जित आया तित जाइ रे ।
रांम रसाइण नां पिया, जन दादू हेत लगाय रे ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३६ ॥ परचै वैराग ॥

इनमैं क्या लीजै क्या दीजै, जनम अमोलिक छीजै ॥ टेक ॥
सोवत सुपिनां होई, जागे थैं नहिं कोई ।
मृगतृष्णां जल जैसा, चेति देषि जगु अैसा ॥ १ ॥
बाजी भरम दिषावा, बाजीगर डहकावा ।
दादू संगी तेरा, कोई नहीं किस केरा ॥ २ ॥

॥ शब्द ४० ॥ चितावणी उपदेस ॥

षालिक जागै जियरा सोवै, क्यों करि मेला होवै ॥ टेक ॥
सेज एक नहिं मेला, तातैं प्रेम न षेला ॥ १ ॥
सांईं संग न पावा, सोवत जन्म गंवावा ॥ २ ॥
गाफिल नींद न कीजै, आव घटै तन छीजै ॥ ३ ॥
दादू जीव अयांनां, झूठे भरमि भुलांनां ॥ ४ ॥

॥ राग जंगली गौड़ी ॥

॥ शब्द ४१ ॥ पहरा (पंजाबी भाषा) ॥

पहलै पहर रैंणि दे, वणिजारिया, तूं आया इहि संसार वे ।
मायादा रस पीवण लागा, विसरया सिरजनहार वे ॥
सिरजनहार विसारा, किया पसारा, मात पिता कुल नारि वे ।

(४१-२) " रत्ता नाले " = रत्ता तरुणी नाले ॥

झूठी माया, आप बंधाया, चेतै नहीं गंवार वे ॥
गंवार न चेतै, अवगुण केते, बंध्या सब परिवार वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तूं आया इहि संसार वे ॥ १ ॥
दूजै पहरै रैंणि दे, बणिजारिया, तूं रत्ता तरुणी नाल वे ।
माया मोह फिरै मतवाला, रांम न सक्या संभालि वे ॥
रांम न संभाले, रत्ता नाले, अंध न सूझै काल वे ।
हरि नहिं ध्याया, जनम गंवाया, दह दिसि फूटा ताल वे ॥
दह दिसि फूटा, नीर निखूटा, लेषा डेवण साल वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तूं रत्ता तरुणी नाल वे ॥ २ ॥
तीजै पहरै रैंणि दे, बणिजारिया, तैं बहुत उठाया भार वे ।
जो मनि भाया सो करि आया, नां कुछ किया बिचार वे ॥
बिचार न कीया, नांव न लीया, क्यौं करि लंघै पार वे ।
पार न पावै फिरि पछितावै, डूबण लग्गा धार वे ॥
डूबण लग्गा भेरा भग्गा, हाथि न आया सार वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तैं बहुत उठाया भार वे ॥ ३ ॥
चौथै पहरै रैंणि दे, बणिजारिया, तूं पक्का हूवा पीर वे ।
जोबन गया, जुरा बियापी, नांहीं सुधि सरीर वे ॥
सुधि ना पाई, रैनि गंवाई, नैंनौं आया नीर वे ।
भवजल भेरा डुबण लग्गा, कोई न बंधै धीर वे ।
कोई धीर न बंधै, जम के फंधै, क्यौं करि लंघै तीर वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तूं पक्का हूवा पीर वे ॥ ४ ॥

(४१-३) भेरा भग्गा=नाव टूटी = शरीर पतन होने को आया अथवा कार्य बिगड़ने लगा ॥

॥ राग गौड़ी ॥

शब्द ४२ ॥ काल चितावणी ॥

काहे रे नर करहु डफांण, अंतिकालि घर गोर मसांण ॥ टेक ॥
पहले बलवंत गये बिलाइ, ब्रह्मा आदि महेसुर जाइ ॥ १ ॥
आगैं होते मोटे मीर, गये छाडि पैकंबर पीर ॥ २ ॥
काची देह कहा गर्बानां, जे उपज्या सो सबै बिलांनां ॥ ३ ॥
दादू अमर उपांवनहार, आपहि आप रहै करतार ॥ ४ ॥

शब्द ४३ ॥ उपदेस ॥

इत घरि चोर न मूसै कोई, अंतरि है जे जांनैं सोई ॥ टेक ॥
जागहु रे जन तत न जाई, जागत है सो रह्या समाई ॥ १ ॥
जतन जतन करि राषहु सार, तस्कर उपजैं कौन बिचार ॥ २ ॥
इब करि दूजा जांणैं जे, तौ साहिब सरणांगति ले ॥ ३ ॥

शब्द ४४ ॥ उपदेश चितावणी ॥

मेरी मेरी करत जग षीनां, देषत ही चालि जावै ।
कांम क्रोध तृष्णां तन जालै, तार्थैं पार न पावै ॥ टेक ॥
मूरिष मांमिता जनम गंवावै, भूलि रहे इहि बाजी ।
बाजीगर कौं जांनत नांहीं, जनम गंवावै बादी ॥ १ ॥
परंपच पंच करै बहुतेरा, काल कुटंब के तांई ।
बिष के स्वादि सबै ये लागे, तार्थैं चीन्हत नांहीं ॥ २ ॥

---

(४३) पहली पंक्ति का तात्पर्य यह है कि अंतर (हृदय में) जो परमेश्वर है तिसको जो जानता है उसके घर (शरीर) में कामादिक चोर कोई हानि नहीं कर सकते ॥ मूसै = चुरावै, "इबकरि" = इस प्रकार ॥

येता जिय मैं जांनत नांहीं, आइ कहां चलि जावै ।
आगैं पीछैं समझै नांहीं, मूरिष यूं डहकावै ॥ ३ ॥
ये सब भरम भानि भल पावै, सोधि लेहु सो सांईं ।
सोई एक तुम्हारा साजन, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४५ ॥

गर्ब न कीजिये रे, गर्बैं होई बिनांस ।
गर्बैं गोबिंद नां मिलै, गर्बैं नरक निवास ॥ टेक ॥
गर्बैं रसातलि जाइये, गर्बैं घोर अंधार ।
गर्बैं भौजल डूबिये, गर्बैं वार न पार ॥ १ ॥
गर्बैं पार न पाइये, गर्बैं जमपुरि जाइ ।
गर्बैं को छूटै नहीं, गर्बैं बंधे आइ ॥ २ ॥
गर्बैं भाव न ऊपजै, गर्बैं भगति न होइ ।
गर्बैं पिव क्यों पाइये, गर्ब करै जिनि कोइ ॥ ३ ॥
गर्ब बहुत बिनांस है, गर्बैं बहुत बिकार ।
दादू गर्ब न कीजिये, सनमुष सिरजनहार ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४६ ॥ हित उपदेश ॥

हुसियार रही, मन, मारैगा, सांईं सतगुर तारैगा ॥ टेक ॥
माया का सुष भावै, मूरिष मन बौरावै रे ॥ १ ॥
झूठ साच करि जांनां, इन्द्री स्वादि भुलांनां रे ॥ २ ॥
दुष कौं सुष करि मांनैं, काल झाल नहिं जांनैं रे ॥ ३ ॥
दादू कहि समझावै, यहु अवसर बहुरि न पावै रे ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४७ ॥ बेसास ॥

साहिब जी सत मेरा रे, लोग झषैं बहु तेरा रे ॥ टेक ॥

जीव जन्म जब पाया रे, मस्तकि लेष लिखाया रे ॥ १ ॥
घटै बधै कुछ नांहीं, कर्म लिष्या उस मांहीं रे ॥ २ ॥
विधाता विधि कीन्हां, सिरजि सबनि कौं दीन्हां रे ॥ ३ ॥
समर्थ सिरजनहारा, सो तेरे निकटि गंवारा रे ॥ ४ ॥
सकल लोक फिरि आवै, तौ दादू दीया पावै रे ॥ ५ ॥

॥ शब्द ४८ ॥

पूरि रह्या परमेसुर मेरा, अणमांग्या देवै बहुतेरा ॥ टेक ॥
सिरजनहार सहज मैं देइ, तौ काहे धाइ मांगि जन लेइ ॥१॥
बिसंभर सब जग कौं पूरै, उदर काजि नर काहे झूरै ॥ २ ॥
पूरिक पूरा है गोपाल, सब की चीत करै दरहाल ॥ ३ ॥
समर्थ सोई है जगनाथ, दादू देषु रहे संग साथ ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४९ ॥ नाम विस्वास ॥

रांम धन षात न पूटै रे, अपरंपार पार नहिं आवै, आथि न टूटै रे। टेक
तस्कर लेइ न पावक जालै, प्रेम न लूटै रे।
चहुं दिसि पसर्‌यौ बिन रषवाले, चोर न लूटै रे ॥ १ ॥
हरि हीरा है रांम रसाइण, सरस न सूकै रे।
दादू और आथि बहुतेरी, उस नर कूटै रे ॥ २ ॥

शब्द ५० ॥ तत्त उपदेस ॥

तूंहै तूंहै तूंहै तेरा, मैं नहिं मैं नहिं मैं नहिं मेरा ॥ टेक ॥

---

(४९) "दादू और आथि बहुतेरी" ॥ दयालजी कहते हैं कि रामधन के सिवाय जो और धन है उसके पीछे नर तरह २ की मार कूट करते हैं; रामधन को चुराने झगड़ने वाला कोई नहीं है ॥

(५०–३) "मैं मैं मेरा तिन सिरि भारा" = जो जन जगत में आपन-

तूं है तेरा जगत उपाया, मैं मैं मेरा धंधै लाया ॥ १ ॥
तूं है तेरा षेल पसारा, मैं मैं मेरा कहै गंवारा ॥ २ ॥
तूं है तेरा सब संसारा, मैं मैं मेरा तिन सिरि भारा ॥ ३ ॥
तूं है तेरा काल न पाइ, मैं मैं मेरा मरि मरि जाइ ॥ ४ ॥
तूं है तेरा रह्या समाइ, मैं मैं मेरा गया विलाइ ॥ ५ ॥
तूं है तेरा तुमहीं मांहिं, मैं मैं मेरा मैं कुछ नांहिं ॥ ६ ॥
तूं है तेरा तूं हीं होइ, मैं मैं मेरा मिल्या न कोइ ॥ ७ ॥
तूं है तेरा लंघै पार, दादू पाया ग्यांन विचार ॥ ८ ॥

॥ शब्द ५१ ॥ संजीवनि ॥

रांम विमुष जग मरि मरि जाइ, जीवैं संत रहे ल्यौ लाइ। टेक॥
लीन भये जे आतमरांमां, सदा सजीवनि कीये नांमां ॥ १ ॥
अमृत रांम रसाइन पीया, ता थैं अमर कबीरा कीया ॥ २ ॥
रांम रांम कहि रांम समांनां, जन रैदास मिले भगवांनां॥३॥
आदि अंति केते कलि जागे, अजर भये अविनासी लागे॥४॥
रांम रसाइन दादू माते, अविचल भये रांम रंगि राते॥ ५ ॥

॥ शब्द ५२ ॥

निकटि निरंजन लागि रहे, तब हम जीवत मुकत भये। टेक॥
मरि करि मुकति जहां जग जाइ, तहां न मेरा मन पति आइ॥१॥
आगैं जन्म लैहैं औतारा, तहां न मांनैं मना हमारा ॥ २॥
तन छूटे गति जो पद होइ, मृतक जीव मिलै सब कोइ ॥ ३॥
जीवत जन्म सुफल करि जांनां, दादू रांम मिलै मन मांनां ॥ ४॥

पौका अभिनिवेश (गुमान) रखते हैं उन के ही शिर पर जगत का भार (सुख दुःख) पड़ता है ॥

शब्द ५३ ॥ हैरान प्रश्न ॥

कादिर कुदराति लषी न जाइ, कहां थैं उपजै कहां समाइ ॥टेक॥
कहां थैं कीन्ह पवन अरु पांनीं, धरनि गगन गति जाइ न जांनीं ॥१॥
कहां थैं काया प्रांण प्रकासा, कहां पंच मिलि एक निवासा ॥२॥
कहां थैं एक अनेक दिषावा, कहां थैं सकल एक ह्वै आवा ॥३॥
दादू कुदराति बहुत हैरांनां, कहां थैं राषि रहे रहिमांनां ॥ ४ ॥

॥ साषी उत्तर की ॥

रहै नियारा सब करै, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अंति भानै घड़ै, ऐसा समरथ सोई । (२१–२६)
सुरम नहीं सब कुछ करै, यौं कलधरी बनाइ ॥
कौतिगहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ । (२१–३१)
दादू सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं ही सब जाइ ।
सबदैं हीं सब ऊपजै, सबदैं सबै समाइ ॥ (२२–२)

शब्द ५४ ॥ सरूपगति हैरान ॥

ऐसा रांम हमारै आवै, वार पार कोइ अंत न पावै ॥ टेक ॥
हलका भारी कह्या न जाइ, मोल माप नहिं रह्या समाइ ॥१॥
कीमत लेषा नहिं परिमांण, सब पचि हारे साध सुजांण ॥२॥
आगौ पीछौ परिमित नांहीं, केते पारिष आवहिं जांहीं ॥ ३ ॥
आदि अंत मधि कहै न कोइ, दादू देषै अचिरज होइ ॥ ४॥

॥ शब्द ५५ ॥ प्रश्न ॥

कौंण सबद कौंण परषणहार, कौंण सुराति कहु कौंण बिचार ॥टेक॥
कौंण सुज्ञाता कौंण गियांन, कौंण उन्मनी कौंण धियांन ॥१॥
कौंण सहज कहु कौंण समाध, कौंण भगति कहु कौंण अराध ॥२॥

कौंण जाप कहु कौंण अभ्यास, कौंण प्रेम कहु कौंण पियास ॥३॥
सेवा कौंण कहौ गुरदेव, दादू पूछै अलष अभेव ॥ ४ ॥

॥ साषी उत्तर की ॥

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार ।
निर्बैरी सब जीवसौं, दादू यहु मत सार (२९–२)
आपा गर्ब गुमान तजि, मद मंछर हंकार ।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार (२३–५)

॥ शब्द ५६ ॥ प्रश्न ॥

मैं नहिं जांनौं सिरजनहार, ज्यूं है त्यूंहि कहौ करतार ॥टेक॥
मस्तक कहां कहां कर पाइ, अविगत नाथ कहौ समझाइ ॥१॥
कहं मुष नैंनां श्रवणां सांईं, जांनराइ सब कहौ गुसांईं ॥२॥
पेट पीठि कहां है काया, पड़दा षोलि कहौ गुरराया ॥ ३ ॥

(२९–२) इस साखी में दयालजी "सार मत" बतलाते हैं, इससे सब रिद्धि सिद्धि परमानंद जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती हैं ॥

आपा=खुदी । जिस अहंकार से मनुष्य अपने आप को औरों से अलग मानता है उस अभिमान को मन से त्यागना चाहिये और सर्व सृष्टि में परम सत्ता (परमेश्वर) को ही देखना चाहिये, उसी परम ज्योति में लय लगी रहनी चाहिये, जगत व्यौहार करते समय भी ध्यान वहीं रहना चाहिये ।

तन के विकार कुमार्ग की ओर गमनागमन, प्रहारादि अनिष्ट क्रियायें, तैसे शारीरिक रोगादि हैं । इनसे तन को शुद्ध रखना जरूर है, रोगों से बचने और छूटने के उपाय युक्त अहार विहार और शुद्ध संकल्प हैं ।

मन के विकार राग द्वेष काम क्रोध लोभ मोह भय ईर्षा चित्त की अशांति, अज्ञानादि संपूर्ण द्वैत कल्पना हैं, इनसे मन और बुद्धि को शुद्ध रखना आवश्यक है, तैसे ही सर्व जीवमात्र से निर्वैरता रखनी उचित है ॥

ज्यौं है त्यौं कहि अंतरजांमीं, दादू पूछै सतगुर स्वांमीं ॥ ४ ॥

॥ साषी उत्तर की ॥

दादू सबै दिसा सो सारिषा, सबै दिसा मुष बैंन ।
सबै दिसा श्रवणहुं सुणैं, सबै दिसा कर नैंन ॥ (४–२१४)
सबै दिसा पग सीस हैं, सबै दिसा मन चैंन ।
सबै दिसा सन्मुष रहै, सबै दिसा अंग अैंन ॥ (४–२१५)

॥ शब्द ५७ ॥ प्रश्न ॥

अलष देव गुर देहु बताइ, कहां रहौ त्रिभुवन पति राइ ॥टेक॥
धरती गगन बसहु कविलास, तिहूं लोक मैं कहां निवास ॥१॥
जल थल पावक पवनां पूरि, चंद सूर निकट कै दूरि ॥ २ ॥
मंदिर कौंण कौंण घरवार, आसण कौंण कहौ करतार ॥ ३ ॥
अलष देव गति लषी न जाइ, दादू पूछै कहि समझाइ ॥४॥

॥ साषी उत्तर की ॥

दादू मुझ ही मांहैं मैं रहूं, मैं मेरा घरवार ।
मुझ ही मांहैं मैं वसूं, आप कहै करतार ॥ (४–२१०)
दादू मैं ही मेरा अरस मैं, मैं ही मेरा थान ।
मैं ही मेरी ठौर मैं, आप कहै रहिमान ॥ (४–२११)
दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार ।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजनहार ॥ (४–२१२)
दादू मैं ही मेरी जाति मैं, मैं ही मेरा अंग ।
मैं ही मेरा जीव मैं, आप कहै परसंग ॥ (४–२१३)

॥ शब्द ५८ ॥ रस ॥

रांम रस मीठा रे, पीवै साध सुजांण ।

सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अविनासी प्राण ॥ टेक ॥
इहि रसि मुनि लागे सबै, ब्रह्मा बिश्न महेस ।
सुरनर साधू संत जन, सो रस पीवै सेस ॥ १ ॥
सिध साधिक जोगी जती, सती सबै सुपदेव ।
पीवत अंत न आवई, ऐसा अलप अभेव ॥ २ ॥
इहि रसि राते नांमदेव, पीपा अरु रैदास ।
पिवत कबीरा ना थक्या, अजहूं प्रेम पियास ॥ ३ ॥
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस ही मांहिं समाइ ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ॥ ४ ॥

॥ शब्द ५९ ॥

मन मतिवाला मधु पीवै, पीवै बारंबारो रे ।
हरि रसि रातौ रांम के, सदा रहै इकतारो रे ॥ टेक ॥
भाव भगति भाठी भई, काया कसणी सारो रे ।
पोता मेरे प्रेम का, सदा अषंडित धारो रे ॥ १ ॥
ब्रह्म अगनि जोबन जरै, चेतन चितहि उजासो रे ।
सुमति कलाली सारवै, कोइ पीवै बिरला दासो रे ॥ २ ॥
प्रीति पियाले पीव ही, छिन २ बारंबारो रे ।
आपा धन सब सौंपिया, तब रस पाया सारो रे ॥ ३ ॥
आपा पर नहिं जांणिया, भूलो माया जालो रे ।
दादू हरि रस जे पिवै, ताकौं कदे न लागै कालो रे, ॥ ४ ॥

(५९) भाठी = भट्ठी रस खैंचने की । "कायाकसणी" = काया की कसौटी रूपी तप से सार निकालौं । "पोता" = लीपना पोतना । कलाली = आशव (दारू) ॥

॥ शब्द ६० ॥

रस के रसिया लीन भये, सकल शिरोमणि तहां गये ॥ टेक ॥
रांम रसाइण अमृत माते, अबिचल भये नरकि नहिं जाते ॥१॥
रांम रसाइण भरि भरि पीवै, सदा सजीवन जुगि जुगि जीवै ॥२॥
रांम रसाइण त्रिभुवन सार, रांम रसिक सब उतरे पार ॥ ३ ॥
दादू अमली बहुरि न आये, सुष सागर ता मांहिं समाये ॥४॥

॥ शब्द ६१ ॥ भेष ॥

भेष न रीझै मेरा निज भर्तार, ताथैं कीजै प्रीति बिचार ॥ टेक ॥
दुराचारनी रचि भेष बनावै, सील साच नहिं पिव कौं भावै ॥१॥
कंत न भावै करै सिंगार, डिंभपणौं रीझै संसार ॥ २ ॥
जो पैं पतिव्रता ह्वै है नारी, सो धन भावै पियहिं पियारी ॥३॥
पीव पहिचांनैं आंन नहिं कोई, दादू सोई सुहागनि होई ॥४॥

॥ शब्द ६२ ॥

सब हम नारी एक भरतार, सब कोई तानि करै सिंगार ॥टेक॥
घरि घरि अपने सेज संवारै, कंत पियारे पंथ निहारै ॥ १ ॥
आरति अपनी पीव कौं धावै, मिलै नाह कब अंगि लगावै ॥ २ ॥
अति आतुर ये षोजत डोलैं, बानि परी विवोगनि बोलैं ॥ ३ ॥
सब हम नारी दादू दीन, दे सुहाग काहू संग लीन ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६३ ॥ आत्मार्थी भेष ॥

सोई सुहागनि साच सिंगार, तन मन लाइ भजै भरतार ॥टेक॥
भाव भगति प्रेम ल्यौ लावै, नारी सोई सार सुष पावै ॥१॥
सहज संतोष सील सब आया, तब नारी नाह अमोलिक पाया ॥२॥
तन मन जोबन सौंपि सब दीन्हां,

तब कंत रिझाइ आप बसि कीन्हां ॥ ३ ॥
दादू बहुरि बिछोह न होई, पिव सौं प्रीति सुहागनि सोई ॥४॥

शब्द ६४ ॥ समता ॥

तब हम एक भये रे भाई, मोहन मिलि साची मति आई ॥टेक॥
पारस परसि भये सुषदाई, तब दुतिया दुर्मति दूरि गंवाई ॥१॥
मलियागिरि मरम मिलि पाया, तब बंस बरन कुल भर्म गंवाया॥२॥
हरि जल नीर निकटि जब आया,
तब बूंद बूंद मिलि सहजि समाया ॥ ३ ॥
नांनां भेद भर्म सब भागा, तब दादू एक रंगै रंग लागा॥ ४॥

॥ शब्द ६५ ॥

अलह रांम छूटा भ्रम मोरा, हिंदू तुरक भेद कुछ नांहीं,
देषौं दर्सन तोरा ॥ टेक ॥
सोई प्रांण प्यंड पुनि सोई, सोई लोही मासा ।
सोई नैंन नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा ॥ १ ॥
श्रवणौं सबद बाजता सुणियें, जिभ्या मीठा लागै ।
सोई भूष सबन कौं व्यापै, एक जुगति सोइ जागै ॥ २ ॥
सोई संधि बंध पुनि सोई, सोइ सुष सोई पीरा ।
सोई हस्त पाव पुनि सोई, सोई एक सरीरा ॥ ३ ॥
यहु सब षेल षालिक हरि तेरा, तैंहि एक कर लीनां ।
दादू जगति जांनि करि ऐसी, तब यहु प्रांन पतीनां ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६६ ॥

भाइ रे ऐसा पंथ हमारा, द्वै पष रहित पंथ गहि पूरा,
अबरण एक अधारा ॥ टेक ॥

बाद बिबाद काहू सौं नांहीं, मांहिं जगत थैं न्यारा ।
समदृष्टी सुभाइ सहज मैं, आपहि आप बिचारा ॥ १ ॥
मैं तैं मेरी यहु मति नांहीं, निर्बैरी निरकारा ।
पूरण सबै देषि आपा पर, निरालंब निर्धारा ॥ २ ॥
काहू के संगि मोह न ममिता, संगी सिरजनहारा ।
मनहीं मनसौं समझि सयांनां, आनंद एक अपारा ॥ ३ ॥
कांम कल्पनां कदे न कीजै, पूरण ब्रह्म पियारा ।
इहि पंथि पहुंचि पार गहि दादू, सो तत सहजि संभारा ॥ ४॥

॥ शब्द ६७ ॥ परचै हैरान ॥

अैसो षेल बन्यौ मेरी माई, कैसैं कहौं कछु जान्यौ न जाई ॥टेक॥
सुरनर मुनिजन अचिरज आई, रांमचरण कोइ भेद न पाई ॥१॥
मंदिर मांहैं सुरति समाई, कोऊ है सो देहु दिषाई ॥ २ ॥
मनहिं बिचार करहु ल्यौ लाई, दिवा समानां कहं जोति छिपाई॥३॥
देहि निरांति सुंनि ल्यौ लाई, तहं कौंण रमै कौंण सूता रे भाई॥४॥
दादू न जांणैं ये चतुराई, सोइ गुर मेरा जिन सुधि पाइ ॥५॥

॥ शब्द ६८ ॥ प्रश्न ॥

भाई रे घरही में घर पाया, सहजि समाइ रह्यो ता मांहीं,
सतगुर षोज बताया ॥ टेक ॥
ता घर काजि सबै फिर आया, आपै आप लषाया ।
षोलि कपाट महल के दीन्हें, थिर अस्थांन दिखाया ॥ १ ॥

---

(६७) मंदिर=हृदय वा त्रिकुटी । दीवा=मन । जोति=मनसा । निरांति=भीतर । सुंनि=शांतपद । रमै=ब्रम्हसाक्षात्कार में मग्न । सूता = ब्रम्ह से विमुख ॥

(६८) घर=शरीर तिसमें आत्मरूपी आश्रय पाया ॥

भय औ भेद, भर्म सब भागा, साच सोइ मन लागा ।
प्यंड परे जहां जिव जावै, तामैं सहजि समाया ॥ २ ॥
निहचल सदा चलै नहिं कबहूं, देष्या सब मैं सोई ।
ताही सौं मेरा मन लागा, और न दूजा कोई ॥ ३ ॥
आदि अनंत सोई घर पाया, इब मन अनत न जाई ।
दादू एक रंगै रंग लागा, तामैं रह्या समाई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६६ ॥ मानसी तीर्थ ॥

इत है नीर नहांवन जोग, अनतहि भ्रमि भूला रे लोग ॥ टेक ॥
तिहि तटि न्हांयें निर्मल होइ, बस्त अगोचर लषै रे सोइ ॥ १ ॥
सुघट घाट अरु तिरिबौ तीर, बैठे तहां जगत गुरपीर ॥ २ ॥
दादू न जांणैं तिन का भेव, आप लषावै अंतरि देव ॥ ३ ॥

॥ शब्द ७० ॥

ऐसा ग्यांन कथौ मन ग्यांनी,
इहि घरि होइ सहजि सुष जांनीं ॥ टेक ॥
गंग जमुन तहं नीर नहाइ, सुषमन नारी रंग लगाइ ॥ १ ॥
आप तेज तन रह्यौ समाइ, मैं बलि ताकी देषौं अघाइ ॥ २ ॥
बास निरंतर सो समझाइ, बिन नैंनहुं देष तहं जाइ ॥ ३ ॥

---

(७०) गंगा जमुना का मेल त्रिवेणी पर होता है । त्रिवेणी नाम त्रिकुटी का भी है, अथवा ईड़ा पिंगला दोनौं नाड़ियों के मेल से सुषमना नाड़ी चलती है, उसी में योगीराज ध्यान जमाते हैं । त्रिकुटी अस्थान और सुषमना नाड़ी के प्रवाह में स्नानरूपी ध्यान करैं तब ब्रम्ह तेज का विस्तार काया के अन्दर बाह्य नेत्रौं के बिना ही देखने में आवै । इस अगम अपार आधार में सहज आनन्द की प्राप्ति है । देखौ शब्द ७१–७२ ॥

दादू रे यहु अगम अपार, सो धन मेरे अधर अधार ॥ ४ ॥

॥ शब्द १७ ॥ परचै सत्संग ॥

इब तौ ऐसी बनि आई, रांम चरण बिन रह्यौ न जाई ॥टेक॥
सांईं कौं मिलिबे के कारनि, त्रिकुटी संगम नीर नहाई ।
चरण कवल की तहं ल्यौ लागै, जतन जतन करि प्रीति बनाई॥ १॥
जे रस भीनां छावरि जावै, सुंदरि सहजैं संग समाई।
अनहद बाजे बाजन लागे, जिभ्याहीणैं कीरति गाई॥ २ ॥
कहा कहौं कुछ बराणि न जाई, अविगति अंतरि जोति जगाई।
दादू उन कौ मरम न जांनैं, आप सुरंगे बेन बजाई ॥ ३॥

॥ शब्द ७२ ॥

नीकै रांम कहत है बपरा, घर मांहैं घर निर्मल राषै,
पंचौं धोवै काया कपरा ॥ टेक ॥
सहज समर्पण सुमिरण सेवा, तिरबेणीं तट संजम सपरा ।
सुंदरि सन्मुष जागण लागी, तहं मोहन मेरा मन पकरा॥१॥
बिन रसनां मोहन गुन गावै, नांनां बांणीं अनभै अपरा ।
दादू अनहद ऐसैं कहिये, भगति तत्त यहु मारग सकरा॥२॥

॥ शब्द ७३ मनसा गायत्री ॥

अवधू काम धेन गहि राषी, बसि कीन्हीं तब अंमृत सरवै,
आगैं चारि न नांषी ॥ टेक ॥

---

(७१) रसिभीना–राम रस में माता । छावरि = निछावरि, कुरबान ॥ सुरंगे बेन = अनहद बाजे ॥

(७३) कामधेन = मनो राज्य, कामना । चारि = चारा, भोग ॥ घाटा= हानिकारक मन और इंद्रियों की कामना ॥

पोषंतां पहली उठि गरजै, पीछैं हाथि न आवै ।
भूषी भलैं दूध नित दूणां, यूं या धेंन दुहावै ॥ १ ॥
ज्यूं ज्यूं षींण पड़ै त्यूं दूझै, मुकता मेल्यां मारै ।
घाटा रोकि घेरि घरि आंणैं, बांधी कारिज सारै ॥ २ ॥
सहजैं बांधी कदे न छूटै, कर्म बंधन छुटि जाई ।
काटै कर्म सहज सौं बांधै, सहजैं रहै समाई ॥ ३ ॥
छिन छिन मांहिं मनोरथ पूरै, दिन दिन होइ अनंदा ।
दादू सोई देषतां पावै, कलि अजरावर कंदा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७४ ॥ परचै ॥

जब घटि परगट रांम मिले, आतम मंगल चार चहूं दिसि,
जनम सुफल करि जीति चले ॥ टेक ॥
भगति मुकति अभै करि राषे, सकल सिरोमणि आप किये ।
निर्गुण रांम निरंजन आपै, अजरावर उर लाइ लिये ॥ १ ॥
अपनैं अंग संग करि राषे, निर्भै नांव निसांन बजावा ।
अविगत नाथ अमर अविनासी, परम पुरिष निज सो पावा ॥२॥
सोई बड़ भागी सदा सुहागी, परगट प्रीतम संगि भये ।
दादू भाग बड़े बरबरि करि, सो अजरावर जीति गये ॥ ३ ॥

॥ शब्द ७५ ॥ पराभक्ति प्रार्थना ॥

रमैया यहु दुष सालै मोहि, सेज सुहाग न प्रीति प्रेम रस,
दरसन नांहीं तोहि ॥ टेक ॥
अंग प्रसंग एक रस नांहीं, सदा समीप न पावै ।
ज्यौं रस मैं रस बहुरि न निकसै, ऐसैं होइ न आवै ॥ १ ॥

(७४) बरबरि करि = बराबरि समता करि ॥

आतमलीन नहीं निसिबासुरि, भगति अषंडित सेवा ।
सनमुष सदा परसपर नांहीं, ता थैं दुष मोहि देवा ॥ २ ॥
मगन गलित महारसि माता, तूं है तब लग पीजै ।
दादू जब लग अंत न आवै, तब लग देषण दीजै ॥ ३ ॥

॥ शब्द ७६ ॥ लांबी (अधीरता, अस्थिरता) ॥

गुर मुषि पाइये रे अैसा ग्यांन बिचार,
समझि समझि समझ्या नहीं, लागा रंग अपार ॥ टेक ॥
जांणि जांणि जांण्यां नहीं, अैसी उपजै आइ ।
बूझि बूझि बूझ्या नहीं, ढौरी लाग्या जाइ ॥ १ ॥
ले ले ले लीया नहीं, हौंस रही मन मांहिं ।
राषि राषि राष्या नहीं, मैं रस पीया नांहिं ॥ २ ॥
पाय पाय पाया नहीं, तेजैं तेज समाइ ।
करि करि कुछ कीया नहीं, आतम अंगि लगाइ ॥ ३ ॥
षेलि षेलि षेल्या नहीं, सनमुष सिरजनहार ।
देषि देषि देष्या नहीं, दादू सेवग सार ॥ ४ ॥

शब्द ७७ ॥ गुर आधीन ज्ञान ॥

बाबा गुर मुषि ग्यांनां रे, गुर मुषि ध्यांनां रे ॥ टेक ॥
गुर मुषि दाता, गुर मुषि राता, गुर मुषि गवनां रे ।
गुर मुषि भवनां, गुर मुषि छवनां, गुर मुषि रवनां रे ॥ १ ॥

---

(७७) गवनां = गमन । भवनां = घर, आश्रय । छवनां = छप्पर, स्थिति । रवनां रमण । गहिबा = ग्रहण । रहिबा = स्थिति, आचरण । न्यारा = जगत बंधन से छूटना । सारा = सार ज्ञान । तारा = तरना । पारा = पार होना ॥

गुर मुषि पूरा, गुर मुषि सूरा, गुर मुषि बांणीं रे ।
गुर मुषि देणां, गुर मुषि लेणां, गुर मुषि जांणीं रे ॥ २ ॥
गुर मुषि गहिबा, गुर मुषि रहिबा, गुर मुषि न्यारा रे ।
गुर मुषि सारा, गुर मुषि तारा, गुर मुषि पारा रे ॥ ३ ॥
गुर मुषि राया, गुर मुषि पाया, गुर मुषि मेला रे ।
गुर मुषि तेजं, गुर मुषि सेजं, दादू षेला रे ॥ ४ ॥

शब्द ७८ ॥ निज अस्थान निरनय ॥

मैं मेरे मैं हेरा, मधि मांहैं पीव नेरा ॥ टेक ॥
जहां अगम अनूप अवासा, तहं महापुरिष का बासा ।
तहं जांनैंगा जन कोई, हरि मांहिं समांनां सोई ॥ १ ॥
अषंड जोति जहं जागै, तहं रांम नांम ल्यौ लागै ।
तहं रांम रहै भरपूरा, हरि संग रहै नहिं दूरा ॥ २ ॥
तिरबेणी तटि तीरा, तहं अमर अमोलिक हीरा ।
उस हीरे सौं मन लागा, तब भरम गया भौ भागा ॥ ३ ॥
दादू देष हरि पावा, हरि सहजैं सांगि लषावा ।
पूरण परम निधांनां, निज निरषत हौं भगवांनां ॥ ४ ॥

शब्द ७९ ॥

मेरा मनि लागा सकल करा, हम निस दिन हिरदै सो धरा ॥टेक॥
हम हिरदै मांहैं हेरा, पीव परगट पाया नेरा ।
सो नेरे ही निज लीजै, तब सहजैं अमृत पीजै ॥ १ ॥
जब मनही सौं मन लागा, तब जोति सरूपी जागा ।
जब जोति सरूपी पाया, तब अंतरि मांहिं समाया ॥ २ ॥
जब चित्तहि चित्त समांनां, हम हरि बिन और न जांनां ।

जांनां जीवनि सोई, इब हरि बिन और न कोई ॥ ३ ॥
जब आतम एकै बासा, पर आतम मांहिं प्रकासा ।
परकासा पीव पियारा, सो दादू मींत हमारा ॥ ४ ॥

॥ इति राग ॥ १ ॥

अथ राग माली गौड ॥ २ ॥

॥ शब्द ८० ॥ नांव महिमा ॥

गोबिंदे नांउं तेरा, जीवन मेरा, तारण भौपारा ।
आगै इहि नांइ लागे, संतनि आधारा ॥ टेक ॥
करि बिचार ततसार, पूरण धन पाया ।
अखिल नांउं अगम ठांउं, भाग हमारे आया ॥ १ ॥
भगति मूल मुकति मूल, भौजल निसतरना ।
भरम करम भंजनां भै, कलि बिषै सब हरनां ॥ २ ॥
सकल सिधि नवै निधि, पूरण सब कांमां ।
रांम रूप तत अनूप, दादू निज नांमां ॥ ३ ॥

॥ शब्द ८० ॥ करुणां ॥

गोबिंदे कैसैं तिरिये, नाव नांहीं षेव नांहीं, रांम बिसुष मरिये ॥टेक॥
ग्यांन नांहीं ध्यांन नांहीं, लै समाधि नांहीं ।
बिरहा बैराग नांहीं, पंचौं गुण मांहीं ॥ १ ॥

प्रेम नांहीं प्रीति नांहीं, नांव नांहीं तेरा ।
भाव नांहीं, भगति नांहीं, काइर जीव मेरा ॥ २ ॥
घाट नांहीं, बाट नांहीं, कैसैं पग धरिये ।
वार नांहीं पार नांहीं, दादू बहु डरिये ॥ ३ ॥

शब्द ८२ ॥ विरह ॥

पिव आव हमारे रे, मिलि प्रांण पियारे रे, बलिजांउं तुम्हारे रे॥टेक॥
सुनि सषी सयांनीं रे, मैं सेव न जांनीं रे, हौं भई दिवानीं रे॥१॥
सुनि सषी सहेली रे, क्यूं रहूं अकेली रे, हूं षरी दुहेली रे ॥२॥
हूं करौं पुकारा रे, सुनि सिरजनहारा रे, दादू दास तुम्हारा रे॥३॥

॥ पद ८३ ॥

वाल्हा सेज हमारी रे, तूं आव हूं वारी रे, हूं दासी तुम्हारी रे॥टेक॥
तेरा पंथ निहारौं रे, सुंदर सेज संवारौं रे,
जियरा तुम्हपरि वारौं रे ॥ १ ॥
तेरा अंगड़ा पेषौं रे, तेरा मुषड़ा देषौं रे, तव जीवन लेषौं रे॥२॥
मिलि सुषड़ा दीजै रे, यहु लाहड़ा लीजै रे, तुम देषैं जीजै रे॥३॥
तेरे प्रेमकी माती रे, तेरे रंगड़ै राती रे, दादू वारणैं जाती रे॥४॥

॥ पद ८४ ॥

दरबार तुम्हारे दरदवंद, पीव पीव पुकारै ॥
दीदार दरूनैं दीजिये, सुनि षसम हमारे ॥ टेक ॥
तनहां के तनि पीर है, सुनि तुही निवारै ।
करम करीमा कीजिये, मिलि पीव पियारे ॥ १ ॥
सूल सुलाकौं सौ सहूं, तेग तनि मारै ।

मिलि सांईं सुष दीजिये, तूंहीं तूं संभारै ॥ २ ॥
मैं सुहदा तन सोषता, बिरहा दुष जारै ।
जिय तरसै दीदार कौं, दादू न बिसारै ॥ ३ ॥

॥ पद ८५ ॥

संइयां तूं है साहिब मेरा, मैं हूं बंदा तेरा ॥ टेक ॥
बंदा बरदा चेरा तेरा, हुकमीं मैं बीचारा ।
मीरां मेहरबान गुसांईं, तूं सिरताज हमारा ॥ १ ॥
गुलांम तुम्हारा मुल्लां जादा, लौंडा घरका जाया ।
राज़िक रिज़क जीव तैं दीया, हुकम तुम्हारे आया ॥ २ ॥
सादील बै हाज़िर बंदा, हुकम तुम्हारे मांहीं ।
जबहिं बुलाया तबहीं आया, मैं मैं बासी नांहीं ॥ ३ ॥
षसम हमारा सिरजनहारा, साहिब समर्थ सांईं ।
मीरां मेरा मेहर मया कर, दादू तुम्ह हीं तांईं ॥ ४ ॥

॥ पद ८६ ॥ करुणा ॥

मुझ थीं कुछ न भया रे, यहु यूंहि गयारे, पछितावा रह्या रे ।टेक॥
मैं सीस न दीया रे, भरि प्रेम न पीया रे, मैं क्या कीया रे ॥१॥
हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे, नहिं गलित गाता रे।२।
मैं पीव न पाया रे, कीया मन का भाया रे, कुछ होइ न आया रे।३।
हूं रहूं उदासा रे, मुझ तेरी आसा रे, कहैं दादू दासा रे ॥ ४ ॥

॥ पद ८७ ॥ वैराग उपदेस ॥

मेरा मेरा छाड़ि गंवारा, सिर पर तेरे सिरजनहारा ।

---

(८७) गइला = गया । मेरा कृत = अपना कर्तव्य । कृत की जगह मूल पुस्तकों में "कत" है ॥

अपणौं जीव विचारत नांहीं, क्या ले गइला बंस तुम्हारा ॥ टेक ॥
तब मेरा कृत करता नांहीं, आवत है हकारा ।
काल चक्र सौं षरी परी रे, बिसरि गया घर बारा ॥ १ ॥
जाइ तहां का संजम कीजै, बिकट पंथ गिरधारा ।
दादू रे तन अपनां नांहीं, तौ कैसैं भया संसारा ॥ २ ॥

॥ पद ८८ ॥

दादू दास पुकारै रे, सिरि काल तुम्हारै रे,
सर सांधे मारै रे ॥ टेक ॥
जमकाल निवारी रे, मन मनसा मारी रे, यहु जनम न हारी रे॥१॥
सुष नींद न सोई रे, अपणां दुष रोई रे, मन मूल न षोई रे ॥२॥
सिरिभार न लीजी रे, जिसका तिसकूं दीजी रे, इब ढील न कीजी रे।
यहु औसर तेरा रे, पंथी जागि सवेरा रे, सब बाट बसेरा रे ॥ ४॥
सब तरवर छाया रे, धन जोबन माया रे, यहु काची काया रे ॥५॥
इस भर्म न भूली रे, बाजी देषि न फूली रे, सुष सागर झूली रे ॥६॥
रस अमृत पीजी रे, विष का नांउं न लीजी रे, कह्या सु कीजी रे॥७॥
सब आतम जांणीं रे, अपणां पीव पिछांणीं रे, यहु दादू बांणीं रे॥८॥

॥ पद ८९ ॥ भगति उपदेस ॥

पूजौं पहिली गणपति राइ, पड़िहौं पावं चरणौं धाइ ।
आगैं ह्वै करि तीर लगावै, सहजैं अपने बैंन सुनावै ॥ टेक ॥
कहूं कथा कुछ कही न जाइ, इक तिल मैं ले सबै समाइ॥१॥
गुणहु गहीर धीर तन देही, ऐसा सम्रथ सबै सुहाइ ॥ २ ॥
जिसि दिसि देषौं ओही है रे, आप रह्या गिरि तरवर छाइ ।
दादू रे आगैं क्या होवै, प्रीति पिया कर जोड़ि लगाइ ॥ ३ ॥

॥ पद ६० ॥ परचै ॥

नीकौ धन हरि करि मैं जान्यौं, मेरे अषई ओही ।
आगैं पीछैं सोई है रे, और न दूजा कोई ॥ टेक ॥
कबहूं न छाड़ौं संग पिया कौ, हरि के दर्सन मोही ।
भाग हमारे जो हौं पाऊं, सरनैं आयौ तोही ॥ १ ॥
आनंद भयो सषी जिय मेरे, चरण कवल कौं जोई ।
दादू हरि कौ बाव़रौ, बहुरि बिओग न होई ॥ २ ॥

॥ पद ६१ ॥ हित उपदेस ॥

बाबा मर्दे मर्दां गोइ, ये दिल पाक करदम दोइ ॥ टेक ॥
तर्क दुनियां दूरि कर दिल, फ़र्ज़ फ़ारिग़ होइ ।
पैव़स्त परवरदिगार सौं, आकिलां सिर सोइ ॥ १ ॥
मनी मुरदः, हिर्स फ़ानी, नफ़्स रा पामाल ।

---

(६१) बाबा मर्दों में मर्द उसको कहो, जिसने दुई (द्वैत) को त्याग करके अपने दिल को पवित्र कर लिया है । दुनियावी बातों को दिल से छोड़, फर्ज़ (कर्म) से निश्चिन्त होकर, केवल परमात्मा में मिल रहे, ऐसा सिद्धान्त आकिलों (बुद्धिमानों) का है । मनी (आपा) को मार हिर्स फ़ानी (ईर्षा नाशवान) को और नफ़्स (ख्वाहिश) को पैर से मसल डाल । बदी को एक तरफ फेंक दे, नेकी के नाम का विचार रख । ज़िंदगानी मुरदः बाशद (जीवत मृतक होकर) कादिरकार (परमेश्वर) के कुंज (गुफा) में बैठ । ऐसा करने से तालिबों (मुमुक्षुओं) की कामना प्राप्त होगी और परमेश्वर पासबान (रक्षक) होगा ।

मर्दों में मर्द सालिक (दर्वेश) हैं, वही आशिकों (मुमुक्षुओं) के सरदार और सुलतान हैं, क्योंकि परमेश्वर की हजूरी में वो होशियार हैं, यही उनका कर्तव्य (गेंद खेलने का मैदान) है ॥

बदीरा बरतर्फ करदः, नाम नेकी प्याल ॥ २ ॥
ज़िंदगानी मुरदः बाशद, कुंजे क़ादिरकार ।
तालिवां रा हक़ हासिल, पासबाने यार ॥ ३ ॥
मर्दे मर्दां सालिकां, सर आशिकां सुलतान ।
हज़ूरी होशियार दादू, इहै गो मैदान ॥ ४ ॥

॥ पद ६२ ॥

ये सब चिरित तुम्हारे मोहनां, मोहे सब ब्रह्मंड षंडा ।
मोहे पवन पांनीं परमेसुर, सब मुनि मोहे रवि चंदा ॥ टेक ॥
साइर सप्त मोहे धरणीधरा, अष्ट कुली पर्बत मेर मोहे ।
तीनि लोक मोहे जग जीवन, सकल भवन तेरी सेव सोहे ॥१॥
सिव बिरंच नारद मुनि मोहे, मोहे सुर सब सकल देवा ।
मोहे इंद्र फुनग फुनि मोहे, मुनि मोहे तेरी करत सेवा ॥२॥
अगम अगोच अपार अपरंपारा, को यहु तेरे चिरित न जांनैं ।
ये सोभा तुम्ह कौं सोहै सुंदर, बलि बलि जाऊं दादू न जांनैं ॥३॥

॥ पद ६३ गुरज्ञान ॥

ऐसा रे गुरग्यांन लषाया, आवै जाइ सो दिष्टि न आया ॥टेक॥
मन थिर करौंगा, नाद भरौंगा, रांम रमौंगा, रसिमाता ॥१॥
अधर रहूंगा, करम दहूंगा, एक भजौंगा भगवंता ॥२॥
अलष लषौंगा अकथ कथौंगा, एकहि मथौंगा गोबिंदा ॥३॥
अगह गहौंगा, अकह कहौंगा, अलह लहौंगा, षोजंता ॥ ४ ॥
अचर चरौंगा, अजर जरौंगा, अतिर तिरौंगा, आनंदा ॥ ५ ॥
यहु तन तारौं, बिषै निवारौं, आप उबारौं साधंता ॥ ६ ॥

आऊं न जांऊं, उनमनि लांऊं, सहज समांऊं गुणवंता ॥ ७ ॥
नूर पिछाणौं, तेजहि जाणौं, दादू जोतिहि देषंता ॥ ८ ॥

॥ पद ६४ ॥ तत्त्व उपदेस ॥

बंदे हाज़िरां हज़ूर वे, अल्लह आली नूर वे ।
आशिकां रा सिदक़ स्याबति, तालिबां भरपूर वे ॥ टेक ॥
औजूद मैं मौजूद है, पाक परवरादिगार वे ।
देषि ले दीदार कौं, गैब ग़ोता मारि वे ॥ १ ॥
मौजूद मालिक तष्त षालिक, आशिकां रा अैंन वे ।
गुदर कर दिल मग़ज़ भीतर, अजब है यहु सैंन वे ॥ २ ॥
अर्श ऊपरि आप बैठा, दोसत दांनां यार वे ।
षोजि करि दिल कब्ज करि ले, दरूनैं दीदार वे ॥ ३ ॥
हुशियार हाज़िर चुस्त करदम, मीरां मेहरवान वे ।
देषि ले दरहाल दादू, आप है दीवांन वे ॥ ४ ॥

पद ६५ ॥ वस्तु निर्देस ॥

निर्मल तत, निर्मल तत निर्मल तत अैसा,
निर्गुण निज-निधि निरंजन, जैसा है तैसा ॥ टेक ॥
उतपति आकार नांहीं, जीव नांहीं काया ।
काल नांहीं कर्म नांहीं, रहिता रांम राया ॥ १ ॥
सीत नांहीं घांम नांहीं, धूप नांहीं छाया ।
बाव नांहीं वरण नांहीं, मोह नांहीं माया ॥ २ ॥
धरणीं आकास अगम, चंद सूर नांहीं ।

(६५-३) रजनी=अंधेरा पक्ष । निसि=उजेला पक्ष ॥

रजनी निसि दिवस नांहीं, पवनां नहिं जांहीं ॥ ३ ॥
कृत्यम घट कला नांहीं, सकल रहित सोई ।
दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई ॥ ४ ॥
॥ इति राग माली गौड़ समाप्त ॥ २ ॥

॥ अथ राग कल्याण ॥ ३ ॥

॥ पद ६६ ॥ उपदेस चितावणी ॥

मन मेरे कछु भी चेत गंवार, पीछैं फिरि पछितावैगा रे ।
आवै न दूजी बारे ॥ टेक ॥
काहे रे मन भूलौ फिरत है, काया सोचि बिचारि ।
जिनि पंथौं चलनां है तुझ कौं, सोई पंथ संवारि ॥ १ ॥
आगैं बाट बिषम जो मन रे, जैसी षांडे कि धार ।
दादु दास तुं सांइं सौं सूत करि, कूड़े कांम निवार ॥ २ ॥

॥ पद ६७ ॥ परचै ॥

जग सौं कहा हमारा, जब देष्या नूर तुम्हारा ॥ टेक ॥
परम तेज घर मेरा, सुष सागर मांहिं बसेरा ॥ १ ॥
झिलिमिलि अति आनंदा, तहं पाया परमानंदा ॥ २ ॥
जोति अपार अनंता, षेलैं फाग बसंता ॥ ३ ॥
आदि अंति अस्थांनां, जन दादू सो पहिचांनां ॥ ४ ॥
॥ इति राग कल्याण समाप्त ॥ ३ ॥

॥ राग कनड़ो ॥ ४ ॥

॥ पद ६८ ॥ विरह बीनती ॥

दे दर्सन देषन तेरा, तो जिय जक पावै मेरा ॥ टेक ॥
पीव तूं मेरी बेदन जांनैं, हूं कहा दुरांऊं छांनैं,
मेरा तुम्ह देषें मन मांनैं ॥ १ ॥
पीव करक कलेजे मांहीं, सो क्यौं हीं निकसै नांहीं,
पीय पकरि हमारी बांहीं ॥ २ ॥
पीय रोम रोम दुष सालै, इन पीरौं पिंजर जालै ।
जीव जाता क्यौं हीं बालै ॥ ३ ॥
पीय सेज अकेली मेरी, मुझ आरति मिलणै तेरी,
धन दादू वारी फेरी ॥ ४ ॥

॥ पद ६६ ॥

आव सलौंने देषन दे रे, बलि बलि जांउं बलिहारी तेरी ॥ टेक ॥
आव पिया तूं सेज हमारी, निस दिन देषौं बाट तुम्हारी ॥ १ ॥
सब गुण तेरे अवगुण मेरे, पीव हमारी आहि न लेरे ॥ २ ॥
सब गुणवंता साहिब मेरा, लाड़ गहेला दादू केरा ॥ ३ ॥

॥ पद १०० ॥

आव पियारे मींत हमारे, निस दिन देषौं पाव तुम्हारे ॥ टेक ॥
सेज हमारी पीव संवारी, दासी तुम्हारी सो धन वारी ॥ १ ॥

जे तुझ पांऊं अंगि लगांऊं, क्यौं समझांऊं वारणैं जांऊं ॥ २ ॥
पंथ निहारौं बाट संवारौं, दादू तारौं तन मन वारौं ॥ ३ ॥

॥ पद १०१ ॥ (पंजाबी भाषा) ॥

आवे सजणां आव, सिरपर धरि पाव,
जांनीं मैंडा ज्यंद असाडे, तूं रावैंदा रावे, सजणां आव ॥टेक॥
इत्थां उत्थां जित्थां कित्थां, हूं जीवां तो नांल वे ।
मींयां मैंडा आव असाडे, तूं लालौं सिर लालवे, सजणां आव॥१॥
तन भी डेवां मन भी डेवां, डेवां प्यंड परांण वे ।
सच्चा सांईं, मिल इथांईं, जिंद करां कुरवांण वे, सजणां आव॥२॥
तूं पाकौं सिर पाक वे सजणां, तूं षूबौं सिर षूब ।
दादू भावै सजणां आवै, तूं मिठा महबूब वे, सजणां आव ॥ ३ ॥

॥ पद १०२ ॥ विनती ॥

दयाल अपने चरनानि मेरा चित लगावहु, नीकैं ही करी॥टेक॥
नष सिष सुरति सरीर, तूं नांव रहौं भरी ॥ १ ॥
मैं अजांण मति हींण, जम की पासि थैं रहत हूं डरी ॥ २ ॥
सबै दोष दादू के दूरि करि, तुमहीं रहौं हरी ॥ ३ ॥

॥ पद १०३ ॥ तरक चितावणी ॥

मन मति हींण धरै, मूरिष मन कछु समझत नांहीं,
ऐसैं जाइ जरै ॥ टेक ॥
नांव बिसारि अवर चिति राषै, कूडे काज करै ।
सेवा हरि की मनहूं न आंणैं, मूरिष बहुरि मरै ॥ १ ॥
नांव संगम करि लीजै प्रांणीं, जमथैं कहा डरै ।
दादू रे जे रांम संभारै, सागर तीर तिरै ॥ २ ॥

॥ पद १०४ ॥ संत सहाइ रिक्षा ॥

पीव तैं अपनें काज संवारे, कोई दुष्ट दीन कौं मारन,
सोई गहि तैं मारे ॥ टेक ॥
मेर समान ताप तनि व्यापै, सहजैंही सो टारे ।
संतन कौं सुषदाई माधौ, बिन पावक फंध जारे ॥ १ ॥
तुमथैं होइ सबै विधि समर्थ, आगम सबै बिचारे ।
संत उबारि दुष्ट दुष दीन्हां, अंध कूपमैं डारे ॥ २ ॥
अैसा है सिरि षसम हमारे, तुम जीते षल हारे ॥ ३ ॥
दादू सौं अैसैं निर्बाहिये, प्रेम प्रीति पिव प्यारे ॥ ४ ॥

॥ पद १०५ ॥ माया ॥

काहू तेरा मरम न जांनां रे, सब भये दीवांनां रे ॥ टेक ॥
माया के रस राते माते, जगत भुलांनां रे ।
कोइ काहू का कह्या न मांनैं, भये अयांनां रे ॥ १ ॥
माया मोहे मुदित मगन, पांन पांनां रे ।
विषिया रस अरसपरस, साच ठांनां रे ॥ २ ॥
आदि अंति जीव जंत, कीया पयानां रे ।
दादू सब भरमि भूले, देषि दांनां रे ॥ ३ ॥

॥ पद १०६ ॥ अनिन्य सरन ॥

तूं हीं तूं गुरदेव हमारा, सब कुछ मेरे, नांव तुम्हारा ॥ टेक ॥
तुमहीं पूजा तुम हीं सेवा, तुम हीं पाती तुमहीं देवा ॥ १ ॥
जोग जग्य तूं साधन जापं, तुम्ह हीं मेरे आपै आपं ॥ २ ॥
तप तीरथ तूं ब्रत सनांनां, तुम्ह हीं ज्ञांनां तुम्ह हीं ध्यांनां ॥ ३ ॥

बेद भेद तूं पाठ पुरांनां, दादू के तुम प्यंड परांनां ॥ ४ ॥

॥ पद १०७ ॥

तूं हीं तूं आधार हमारे, सेवग सुत हम रांम तुम्हारे ॥ टेक ॥
माइ बाप तूं साहिब मेरा, भगति हीण मैं सेवग तेरा ॥ १ ॥
मात पिता तूं बंधव भाई, तुम्ह हीं मेरे सजन सहाई ॥ २ ॥
तुम्ह हीं तातं तुम्ह हीं मातं, तुम्ह हीं जातं तुम्ह हीं न्यातं ॥ ३ ॥
कुल कुटंब तूं सब परिवारा, दादू का तूं तारणहारा ॥ ४ ॥

॥ पद १०८ ॥ परचय विनती ॥

नूर नैंन भरि देषण दीजै, अमी महारस भरि भरि पीजै ॥ टेक ॥
अमृत धारा वार न पारा, निर्मल सोरा तेज तुम्हारा ॥ १ ॥
अजर जरंता अमी झरंता, तार अनंता बहु गुणवंता ॥ २ ॥
झिलिमिलि सांईं जोति गुसांईं, दादू मांहीं नूर रहांईं ॥ ३ ॥

॥ पद १०९ ॥ परचय ॥

अैंन एक सो मीठा लागै, जोति सरूपी ठाढ़ा आगै ॥ टेक ॥
झिलिमिलि करणां, अजरा जरणां, नीझर झरणां, तहं मन धरणां
निज निरधारं, निर्मल सारं, तेज अपारं, प्रांण अधारं ॥ २ ॥
अगहा गहणां, अकहा कहणां, अलहा लहणां, तहं मिलि रहणां ३
निरसंध नूरं, सकल भरपूरं, सदा हजूरं दादू सूरं ॥ ४ ॥

॥ पद ११० ॥ निस्नेहता ॥

तौ काहे की परवाह हमारे, राते माते नांउं तुम्हारे ॥ टेक ॥
झिलिमिलि झिलिमिलि तेज तुम्हारा, परगट षेलै प्रांण हमारा ॥ १ ॥
नूर तुम्हारा नैनौं मांहीं, तन मन लागा छूटै नांहीं ॥ २ ॥

सुष का सागर वार न पारा, अमी महारस पीवणहारा ॥ ३ ॥
प्रेम मगन मतिवाला माता, रंगि तुम्हारे दादू राता ॥ ४ ॥

इति राग कनड़ौ समाप्त ॥ ४ ॥

अथ राग अडाणौं ॥ ५ ॥

॥ पद १११ ॥ गुर सब्रथ महिमा ॥

भाई रे ऐसा सतगुर कहिये, भगति मुकति फल लहिये ॥टेक॥
अविचल अमर अविनासी, अठ सिधि नवनिधि दासी ॥१॥
ऐसा सतगुर राया, चारि पदारथ पाया ॥ २ ॥
अमी महारस माता, अमर अभै पद दाता ॥ ३ ॥
सतगुर त्रिभुवन तारै, दादू पार उतारै ॥ ४ ॥

॥ पद ११२ ॥ गुरमुष कसौटी ॥

भाई रे भांनि घड़ै गुर मेरा, मैं सेवग उस केरा ॥ टेक ॥
कंचन करिले काया, घड़ि घड़ि घाट निपाया ॥ १ ॥
मुष दर्पण मांहिं दिषावै, पिव परगट आंनि मिलावै ॥ २ ॥
सतगुर साचा धोवै, तौ बहुरि न मैला होवै ॥ ३ ॥
तन मन फेरि संवारै, दादू कर गहि तारै ॥ ४ ॥

॥ पद ११३ ॥ गुर उपदेस ॥

भाई रे तेन्हौं रूडौ थाये. जे गुरमुष मारगि जाये ॥ टेक ॥

(११३) हे भाई ! उसका भला होता है जो गुरू के बताये रास्ते पर

कुसंगति परिहरिये, सत संगति अणसरिये ॥ १ ॥
कांम क्रोध नहिं आंणौं, बांणीं ब्रह्म बषांणौं ॥ २ ॥
विषिया थैं मन वारै, ते आपणपौ तारै ॥ ३ ॥
विष मूकी अमृत लीधौ, दादू रुडौ कीधौ ॥ ४ ॥

॥ पद ११४ ॥ बीनती ॥

बाबा मन अपराधी मेरा, कह्या न मांनैं तेरा ॥ टेक ॥
माया मोह मदि माता, कनक कांमिणीं रातौ ॥ १ ॥
कांम क्रोध अहंकारा, भावै बिषै बिकारा ॥ २ ॥
काल मीच नहिं सूझै, आतमरांम न बूझै ॥ ३ ॥
संग्रथ सिरजनहारा, दादू करै पुकारा ॥ ४ ॥

॥ पद ११५ ॥ तरक चितावणी ॥

भाई रे यूं बिनसै संसारा, कांम क्रोध अहंकारा ॥ टेक ॥
लोभ मोह मैं मेरा, मद मंछर बहुतेरा ॥ १ ॥
आपा पर अभिमांनां, केता गर्ब गुमांनां ॥ २ ॥
तीनि तिमर नहिं जांहीं, पंचौं के गुण मांहीं ॥ ३ ॥
आतमरांम न जांनां, दादू जगत दिवांनां ॥ ४ ॥

॥ पद ११६ ॥ ग्यान ॥

भाई रे तब क्या कथिसि गियांनां, जब दूसर नांहीं आंनां ॥टेक॥
जब तत्तहिं तत्त समांनां, जहं का तहं ले सांनां ॥ १ ॥

चलता है । बात चीत में ब्रम्ह ही को निरूपण करता है जो काम क्रोध नहीं लाता और विषयौं से मन अलग रखता है, सो आपनपौ त्यागता है । हे मन ! दयालजी कहते हैं कि विष छोड़ कर जो अमृतरूपी ब्रम्ह को ग्रहण किया सो तू ने अच्छा किया ॥

जहं का तहां मिलावा, ज्यूं था त्यूं होइ आवा ॥ २ ॥
संधे संधि मिलाई, जहां तहां थिति पाई ॥ ३ ॥
सब अंग सब हीं ठांई, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

इति राग अडाणौं समाप्त ॥ ५ ॥

अथ राग केदारौ ॥ ६ ॥

॥ पद ११७ ॥ विनती (गुजराती भाषा) ॥

मारा नाथ जी, तारो नाम लेवाड़ रे, रांम रतन हृदया मों राषे।
मारा वाहला जी, विषया थी वारे ॥ टेक ॥
वाहला वाणी ने मन मांहे मारे, चिंतवन तारो चित्त राषे।
श्रवण नेत्र आ इंद्री ना गुण, मारा मांहेला मल ते नाषे ॥१॥
वाहला जीवाड़े तो राम रमाड़े, मनें जीव्यांनो फल ये आपे।
तारा नाम विना हूं ज्यां ज्यां बंध्यो, जन दादू ना बंधन कापे ॥ २ ॥

(११७) मेरे नाथजी, मुझ को अपना नाम लेने की बुद्धि दो । जिस कर के राम रत्न मैं हृदय में रक्खूं । मेरे प्यारे जी ! विषयों से मुझे बचाये रक्खौ ॥ टेक ॥ प्यारे मेरी वाणी और मन में मेरा चित्त तेरा ही चिंतवन रक्खे । सुनना देखना तौ इंद्रियों का गुण है, ते (तेरा चिंतवन) मेरे अंदर (मन) का मैल दूर करै ॥ १ ॥

प्यारे ! जो तू मुझे जिलाये तौ राम मुझे खिलावे । मुझे जीने का फल यही दीजिये । तेरे नाम विना मैं जहां २ बांधा गया तहां दादू जैसे जन के (तेरा चिंतवन) बंधन काटै ॥ २ ॥

॥ पद ११८ ॥ बिरह बिनती ॥

अरे मेरे सदा संगाती रे रांम, कारणि तेरे ॥ टेक ॥
कंथा पहिरौं भसम लगाऊं, बैरागनि ह्वै ढूंढौं, रे रांम ॥ १ ॥
गिरवर बासा रहूं उदासा, चढ़ि सिर मेर पुकारौं, रे रांम ॥ २ ॥
यहु तन जालौं यहु मन गालौं, करवत सीस चढ़ाऊं, रे रांम ॥ ३ ॥
सीस उतारौं तुम्ह परि वारौं, दादू बलि बलि जाइ, रे रांम ॥ ४ ॥

॥ पद ११९ ॥

अरे मेरा अमर उपावणहार रे पालिक़, आशिक़ तेरा ॥ टेक ॥
तुम्हसौं राता तुम्हसौं माता, तुम्हसौं लागा रंग, रे पालिक़ ॥ १ ॥
तुम्हसौं पेला, तुम्हसौं मेला, तुम्हसौं प्रेम स्नेह, रे पालिक़ ॥ २ ॥
तुम्हसौं लेणा, तुम्हसौं देणा, तुम्हहीं सौं रत होइ, रे पालिक़ ॥ ३ ॥
पालिक़ मेरा, आशिक़ तेरा, दादू अनत न जाइ, रे पालिक़ ॥ ४ ॥

॥ पद १२० ॥ स्तुति ॥

अरे मेरे समर्थ साहिब रे अल्लः, नूर तुम्हारा ॥ टेक ॥
सब दिसि देवै, सब दिसि लेवै, सब दिसि वार न पार, रे अल्लः ॥ १ ॥
सब दिसि कर्ता, सब दिसि हरता, सब दिसि तारणहार, रे अल्लः ॥ २ ॥
सब दिसि बकता, सब दिसि सुरता, सब दिसि देषणहार, रे अल्लः ३
तूं है तैसा कहिये अैसा, दादू आनंद होइ रे अल्लः ॥ ४ ॥

॥ पद १२१ ॥ बिरह बिलाप ॥

हाल असां जो लालड़े, तो के सब मालूम ड़े ॥ टेक ॥

---

(१२०) " रे अल्लः " की जगह मूल पुस्तकों में " रे अला " है ॥
(१२१–१) " मुच थईला " की जगह " मुच थौला " किसी २

मंझे षामां मंझि बराला, मंझे लगी भाहिड़े ।
मंझे मेड़ी मुच थईला, कैं दरि करियां धाहड़े ॥ १ ॥
बिरह कसाई मुंगरेला, मंझे बढै माइ हड़े ।
सीषौं करे कबाब जीला, इंयें दादू जे ह्याहड़े ॥ २ ॥

॥ पद १२२ ॥ बिनती ॥

पीवजी सेती नेह नवेला, अति मीठा मोहि भावै रे ।
निसदिन देषौं बाट तुम्हारी, कब मेरे घरि आवै रे ॥ टेक ॥
आइ बनी है साहिब सेती, तिस बिन तिल क्यौं जावै रे ।
दासी कौं दर्सन हरि दीजै, अब क्यौं आप छिपावै रे ॥ १ ॥
तिल तिल देषौं साहिब मेरा, त्यौं त्यौं आनंद अंगि न मावै रे ।
दादू ऊपर दया करी, कब नैंनहुं नैंन मिलावै रे ॥ २ ॥

॥ पद १२३ ॥ (गुजराती भाषा) ॥

पीव घरि आवै रे, बेदन मारी जाणीं रे ।
बिरह संताप कोण पर कीजै, कहूं छूं दुष नी कहाणी रे ॥ टेक ॥

पुस्तक में है । इस पद का तात्पर्य यह दिया है कि मेरे मन में बिरह की अग्नि लग रही है, क्योंकि तू मुझ से न्यारा प्रतीत होता है, किसके दरवाजे पर मैं पुकारूं ॥ १ ॥ बिरह कसाई मेरा गला काटता है । लोहे की सीखौं पर जैसे कबाब भूनते हैं वैसी मेरी हालत हो रही है ॥ २ ॥

(१२३) पिया मेरे घर आवें । मेरी विथा जान कर, बिरह संताप मैं किस से प्रगट करूं ? दुःख की कहानी कहती हूं ॥

हे अंतर्जामी ! मेरे नाथ !! तुम बिन मैं मुरझा रही हूं, तेरी राह देखते २ थक गई, नैनों में पानी घट गया । दयालजी कहते हैं बिरहनी तेरे बिना दीन दुखी हो रही है, तिसके साथ तू ताणी (खिच) रहा है ॥

अंतरजामी नाथ मारो, तुज विण हूं सीदाणी रे ।
मंदिर मारे केम न आवै, रजनी जाइ विहाणी रे ॥ १ ॥
तारी वाट हूं जोइ थाकी, नेण निषूटया पाणी रे ।
दादू तुज विण दीन दुषी रे, तूं साथी रह्यो छे ताणी रे ॥ २ ॥

॥ पद १२४ ॥ विरह विनती ॥

कब मिलसी पीव ग्रिह छाती, हूं औरां संग मिलाती ॥ टेक ॥
तिसज लागी तिसही केरी, जन्म जन्म नो साथी ॥
मीत हमारा आव पियारा, ताहरा रंग नी राती ॥ १ ॥
पीव बिना मने नींद न आवे, गुण ताहरा लै गाती ।
दादू ऊपर दया मया करि, ताहरे वारणें जाती ॥ २ ॥

॥ पद १२५ ॥ विरह ॥

माहरा रे वाहला ने काजे, हृदये जोवा ने हूं ध्यान धरूं ।

---

(१२४) पिया घर पर कब मिलैंगे ? मुझे औरों से छाती मिलानी पड़ती है । उसी (पिया) की प्यास लग रही है, जो मेरा जन्म २ का साथी है ॥ प्यारे मित्र हमारे ! आवो । तुम्हारे रंग से मैं रंगी हूं ॥ १ ॥ पिया के बिना मुझे नींद नहीं आती, तुम्हारा गुण गाती हूं । दादू के ऊपर कृपा करौ, तुम्हारे दरवाजे मैं जाती हूं ॥ २ ॥

(१२४-१ । आव की जगह "पीव" और रंग की जगह "संग" पुस्तक नं० १ में है ॥

(१२५) मेरे प्यारे के निमित्त, हृदय में देखने को मैं ध्यान धरती हूं । मेरा माण व्याकुल हो रहा है, किस को कहकर पर (दूर) करूं । प्यारा याद आता है, जल्दी उसे देखकर शांति पांऊं । मित्रजी के साथ होकर, परले किनारे पार तैर जांऊं ॥ १ ॥ पीव बिना दिन मुशकिल से कटते हैं । घड़ी २ करके बरसैं कैसे बिताऊं ॥ हरि के गुण गाते हुए, हे दादूजन ! उस पूर्ण स्वामी ही को वरूं ॥ २ ॥

आकुल थाये प्रांण माहरा, कोने कही पर करूं ॥ टेक ॥
संभार्यो आवे रे वाहला, वेहला एहों जोई ठरूं ॥
साथीजी साथे थइ ने, पेली तीरे पार तरूं ॥ १ ॥
पीव पाषे दिन दुहेला जाये, घड़ी वरसां सौं केम भरूं ।
दादू रे जन हरि गुण गातां, पूरण स्वामी ते वरूं ॥ २ ॥

॥ पद १२६ ॥ विरह विलाप ॥

मरिये मीत बिछोहे, जियरा जाइ अंदोहे ॥ टेक ॥
ज्यौं जल बिछुरैं मींनां, तलफि तलफि जिव दीन्हां ।
यौं हरि हम सौं कीन्हां ॥ १ ॥
चात्रिग मरै पियासा, निस दिन रहै उदासा ।
जीवैं किहि बेसासा ॥ २ ॥
जल बिन कवल कुमिलावै, प्यासा नीर न पावै ।
क्यौं करि त्रिषा बुझावै॥ ३ ॥
मिलि जिनि बिछुरौ कोई, बिछुरें बहु दुष होई ।
क्यौं करि जीवै जन सोई ॥ ४ ॥
मरणां मीति सुहेला, बिछुरन षरा दुहेला ।
दादू पीव सौं मेला ॥ ५ ॥

॥ पद १२७ ॥

पीव हौं, कहा करौं रे, पाइ परौं के प्रांण हरौं रे,
अब हौं मरणैं नांहिं डरौं रे ॥ टेक ॥
गालि मरौं कै जालि मरौं रे, कै हौं करवत सीस धरौं रे ॥ १ ॥
षाइ मरौं कै घाइ मरौं रे, कै हौं कतहूं जाइ मरौं रे ॥ २ ॥

(१२६-२) बेसासा=विस्वास ॥

तलफि मरौं कै झूरि मरौं रे, कै हौं बिरही रोइ मरौं रे ॥३॥
टेरि कह्या मैं मरण गह्या रे, दादू दुखिया दीन भया रे ॥४॥

॥ पद १२८ ॥ (गुजराती भाषा) ॥

वाहला हूं जाणूं जे रंग भरि रमिये, मारो नाथ निमिष नहिं मेलूं रे।
अंतरजामी नाह न आवे, ते दिन आव्यो छेलो रे ॥ टेक ॥
वाहला सेज अमारी ऐकलड़ी रे, तहं तुजने केम न पामूं रे ।
आ दत्त अमारो पूरबलो रे, तेतो आव्यो सामो रे ॥ १ ॥
वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरण विलंब न दीजे रे
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे ॥ २ ॥

॥ पद १२९ ॥

तूं छे मारो रांम गुसांईं, पालवे तारे बांधी रे ।
तुज विना हूं आंतरे रऴ्यो, कीधी कमाई लीधी रे ॥ टेक ॥
जीवुं जेटलां हरि विना रे, देहड़ी दुखे दाधी रे ।

---

(१२८) प्यारे ! मैं चाहती हूं कि हम रंग भरि खेलें, अपने नाथ को मैं एक दम भी न छोड़ूं। अंतर्जामी पीव तौ आया नहीं, वह आखिरी दिन आगया। प्यारे ! सेज हमारी अकेली है, तहां तुम को क्यों नहीं पाती ? यह दत्त (फल) हमारे पूर्वले कर्मों का है, सो अब सामने आया। प्यारे ! हमारे हृदय में क्यों नहीं आते ? मुझे बहुत विलम्ब न लगाइये। दादू तौ अपराधी है, हे नाथ ! आप ही उद्धार करैं (छुड़ालें) ॥ २ ॥

(१२९) हे राम ! तूं मेरा गुसांई (ईश) है, अपना पल्ला (वस्त्र) तुझ से बांधा है। तेरे बिना मैं दूर २ भटका, की हुई कमाई पाई है। जितने काल हरि बिना जीऊं, देह दुःख से जलती है। इस जन्म में मैंने कुछ न जाना, माथे पर टक्कर खाई है ॥ १ ॥ छुटकारा मेरा कब होगा ? राम की आराधना मैं नहीं कर सका। दादू के ऊपर दया मया करौ, मैं आपका अपराधी हूं ॥ २ ॥

अणे अवतारे कांई न जाण्युं, माथे टक्कर षाधी रे ॥ १ ॥
छूटको मारो क्यारे थाशे, शक्यो न रांम अराधी रे ।
दादू ऊपर दया मया कर, हूं तारो अपराधी रे ॥ २ ॥

॥ पद १३० ॥ बिनती ॥

तूं हीं तूं तनि माहरे गुसांईं, तूं विना तूं केने कहूं रे।
तूं त्यां तूंहीं थई रह्यो रे, शरण तम्हारे जाय रहूं रे ॥ टेक ॥
तन मन मांहे जोइये त्यां तूं, तुज दीठां हूं सुष लहूं रे ।
तूं त्यां जेटली दूर रहूं रे, तेम तेम त्यां हूं दुष सहूं रे ॥ १ ॥
तुम बिन माहरो कोई नहीं रे, हूं तो ताहरा वण बहूं रे ।
दादू रे जण हरि गुण गातां, मैं मेलूं माहरो मैं हूं रे ॥ २ ॥

॥ पद १३१ ॥ केवल बिनती ॥

हमारे तुम्ह हीं हौ रषपाल,
तुम बिन और नहीं को मेरे, भौदुष मेटणहार ॥ टेक ॥
बैरी पंच निमष नहिं न्यारे, रोकि रहे जमकाल ।
हा जगदीस दास दुष पावै, स्वामी करहु संभाल ॥ १ ॥
तुम्ह बिन रांम दहैं ये दूंदर, दसौं दिसा सब साल ।
देषत दीन दुषी क्यौं कीजै, तुम्ह हौ दीन दयाल ॥ २ ॥

---

(१३०) तूं हीं तूं मेरे तन में है, हे गुसांईं ! तेरे बिना "तूं" किसे कहूं, "तू तहां है तू तहां है" इस प्रकार से तू ही (सर्वत्र) हो रहा है। तुम्हारी शरण में मैं जा रहूं । तन मन में देखूं तहां तू (ही है) तुझे देख कर मैं सुख पाता हूं। " तूं तहां है" इतना कहने में जो फासला पड़ता है, उतना ही उतना मुझ को दुःख सहना पड़ता है ॥ १ ॥ तुझ बिना मेरा कोई नहीं है, मैं तेरे बिना बहा जाता हूं, दयालजी कहते हैं कि यह हरि गुण गाते हुए मैं अपना आपनपौ त्यागता हूं ॥ २ ॥

निर्भै नांउं हेत हरि दीजै, दर्सन परसन लाल ।
दादू दीन लीन करि लीजै, मेटहु सब जंजाल ॥ ३ ॥

॥ पद १३२ ॥

ये मन माधौ बरजि बरजि,
अति गति बिषिया सौं रत, उठत जु गराजि गरजि ॥ टेक ॥
बिषै बिलास अधिक अति आतुर, बिलसत संक न मानैं ।
षाइ हलाहल मगन माया मैं, बिष अमृत करि जानैं ॥ १ ॥
पंचन के संगि बहत चहूं दिसि, उलटि न कबहूं आवै ।
जहं जहं काल ये जाइ तहं तहं, मृग जल ज्यौं मन धावै ॥ २ ॥
साध कहैं गुर ग्यांन न मानैं, भाव भजन न तुम्हारा ।
दादू के तुम्ह सजन सहाई, कछू न बसाइ हमारा ॥ ३ ॥

॥ पद १३३ ॥ मन उपदेस ॥

हां हमारे जियरा रांम गुण गाइ, एही बचन बिचारी मांन ॥ टेक ॥
केती कहूं मन कारणैं, तूं छाड़ी रे अभिमांन ।
कहि समझाऊं बेर बेर, तुझ अजहूं न आवै ग्यांन ॥ १ ॥
अैसा संग कहां पाईये, गुण गावत आवै तांन ।
चरणौं सौं चित राखिये, निसदिन हरि कौ ध्यांन ॥ २ ॥
वै भी लेषा देहिंगे, आप कहावैं षांन ।
जन दादू रे गुण गाईये, पूरण है निर्बाण ॥ ३ ॥

॥ पद १३४ ॥ काल चितावणी ॥

बटाऊ ! चलणां आज कि कालिह,
समझि न देषै कहा सुष सोवै, रे मन रांम संभालि ॥ टेक ॥
जैसैं तरवर बिरष बसेरा, पंषी बैठे आइ ।

ऐसैं यहु सब हाट पसारा, आप आप कौं जाइ ॥ १ ॥
कोइ नाहिं तेरा सजन संगाती, जिनि षोवै मन सूल ।
यहु संसार देषि जिनि भूलै, सब हीं सैंबल फूल ॥ २ ॥
तन नाहिं तेरा, धन नाहिं तेरा, कहा रह्यौ इहि लागि ।
दादू हरि बिन क्यौं सुष सोवै, काहे न देषै जागि ॥ ३ ॥

॥ पद १३५ ॥ तरक चिताबणी ॥

जात कत मद कौ मातौ रे,
तन धन जोबन देषि गर्बानौ, माया रातौ रे ॥ टेक ॥
अपनो हि रूप नैंन भरि देषै, कांमनि कौ संग भावै रे ।
बारंबार बिषै रत मांनैं, मरिबौ चीति न आवै रे ॥ १ ॥
मैं बड़ आगैं और न आवै, करत केत अभिमांनां रे ।
मेरी मेरी करि करि भूल्यौ, मायामोह भुलांनां रे ॥ २ ॥
मैं मैं करत जनम सब षोयौ, काल सिरहाणैं आयौ रे ।
दादू देषु मूढ नर प्रांणीं, हरि बिन जनम गंवायौ रे ॥ ३ ॥

॥ पद १३६ ॥ हित उपदेश ॥

जागत कौं कदे न मूसै कोई,
जागत जांनि जतन करि राषै, चोर न लागू होई ॥ टेक ॥
सोवत साह बस्त नहिं पावै, चोर मुसै घर घेरा ।
आसि पास पहरै को नांहीं, बस्तैं कीन्ह नबेरा ॥ १ ॥
पीछैं कहु क्या जागैं होई, बसत हाथ थैं जाई ।
बीती रैंनि बहुरि नहिं आवै, तब क्या करि है भाई ॥ २ ॥
पहलै हीं पहरै जे जागै, बस्त कछू नहिं छीजै ।
दादू जुगति जांनि कर ऐसी, करनां है सो कीजै ॥ ३ ॥

॥ पद १३७ ॥ उपदेस ॥

सजनीं रजनीं घटती जाइ, पल पल छीजै अवधि दिन आवै।
अपनौं लाल मनाइ ॥ टेक ॥
आति गति नींद कहा सुपि सोवै, यहु अवसर चलि जाइ।
यहु तन बिछुरैं बहुरि कहं पावै, पीछैं ही पछिताइ ॥ १ ॥
प्रांणपति जागै सुंदरि क्यौं सोवै, उठि आतुर गहि पाइ।
कोमल बचन करुणां करि आगैं, नष सिष रहु लपटाइ ॥ २ ॥
सषी सुहाग सेज सुष पावै, प्रीतम प्रेम बढाइ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ ॥ ३ ॥

पद १३८ ॥ प्रश्न उत्तर ॥

कोई जांनैं रे मरम माधईये केरौ,
कैसैं रहै करै का सजनीं प्रांण मेरौ ॥ टेक ॥
कौन बिनोद करत री सजनीं, कवनानि संग बसेरौ ?
संत साध गमि आये उनके, करत जु प्रेम घणेरौ ॥ १ ॥
कहां निवास बास कहं सजनीं, गवन तेरौ ?
घट घट मांहैं रहै निरंतर, ये दादू नेरौ ॥ २ ॥

॥ पद १३९ ॥ बिरह बिनती ॥

मन बैरागी रांमकौ, संगि रहे सुष होइ हो ॥ टेक ॥
हरि कारनि मन जोगिया, क्यौंहि मिलै मुझ सोइ।
निरषण का मोहि चाव है, क्यौं हीं आप दिषावै मोहि हो ॥ १ ॥
हिरदै मैं हरि आव तूं, मुष देषौं मन धोइ।
तन मन मैं तूंहीं बसै, दया न आवै तोहि हो ॥ २ ॥
निरषण का मोहि चाव है, ए दुष मेरा षोइ।

दादू तुम्हारा दास है, नैंन देषन कौं रोइ हो ॥ ३ ॥

॥ पद १४० ॥ अधीरज, उराहना ॥

धरणी धर बाह्या धूतो रे, अंग परस नहिं आपे रे ।
कह्यो अमारो कांई न माने, मन भावे ते थापे रे ॥ टेक ॥
वाही वाही ने सर्वस लीधो, अबला कोइ न जाणे रे ।
अलगो रहे येणी परि तेड़े, आपनड़े घर आणे रे ॥ १ ॥
रमी रमी ने राम रजावी, केन्हों अंत न दीधो रे ।
गोप्य गुह्य ते कोइ न जाणे, एवो अचरज कीधो रे ॥ २ ॥
माता बालक रुदन करतां, वाही वाही ने राषे रे ।
जेवो छे तेवो आपणपो, दादू ते नहिं दाषे रे ॥ ३ ॥

॥ पद १४१ ॥ समर्थाई ॥

सिरजन हार थैं सब होइ,
उत्पति परलै करै आपै, दूसर नांहीं कोइ ॥ टेक ॥
आप होइ कुलाल करता, बूंद थैं सब लोइ ।

---

(१४०) धरणीधर (ईश्वर) ने हम को बहकाया और ठगा है, न हम को अपना अंग स्पर्श देता है न हमारा कहा कुछ मानता है, उस के मन में जो आता है सो करता है ॥ बहकाय २ के हमारा सर्वस्व लिया है, हम अबला (निर्बलों) कों 'कोई" किंचित् भी नहीं समझता । आप तौ अलग रहता है और हम को इस (अपनी) तरफ बुलाता है, और अपने घर ले जाता है ॥ १ ॥ हम से क्रीड़ा कर २ के उसी राम ने हमें रिझाया है परंतु कुछ भेद नहीं दिया, वह आप गोप्य गुह्य किसी का जाना नहीं है; ऐसा आश्चर्य उसने किया है ॥ २ ॥ जैसे रोते हुये बालक को माता, फुसला २ के रखती है, तैसे उसने हम को भुला रक्खा है । (तौ भी) जैसा वह है तैसा हमारा ही है, दादू उसके (छलों को) न प्रगट करेगा ॥ ३ ॥ देखौ साखी १२-८२ ॥

आप करि अगोच बैठा, दुनी मनकौं मोहि ॥ १ ॥
आपथैं उपाइ बाजी, निरषि देषै सोइ ।
बाजीगर कौं यहु भेद आवै, सहजि सौंज समोइ ॥ २ ॥
जे कुछ कीया सु करै आपै, येह उपजै मोहि ।
दादू रे हरि नांउं सेती, मल कुसमल धोइ ॥ ३ ॥

॥ पद १४२ ॥ परचै ॥

देहुरे मंझे देव पायौ, बस्त अगोच लषायौ ॥ टेक ॥
अति अनूप जोति पति, सोई अंतरि आयौ ।
प्यंड ब्रह्मंड समि तुलि दिषायौ ॥ १ ॥
सदा प्रकास निवास निरंतर, सब घट मांहिं समायौ ।
नैंन निरषि नेरौ, हिरदै हेत लायौ ॥ २ ॥
पूरब भाग सुहाग सेज सुष, सो हरि लैन पठायौ ।
देव कौ दादू पार न पावै, अहो पैं उनहीं चितायौ ॥ ३ ॥

इति राग केदारौ समाप्त ॥ ६ ॥

अथ राग मारू ॥ ७ ॥

॥ पद १४३ ॥ उपदेस ॥

मनां भजि रांम नांम लीजै,
साध संगति सुमिरि सुमिरि, रसनां रस पीजै ॥ टेक ॥

(१४२–३) पूरब की जगह पूरण पु० नं० १ में है ॥

साधू जन सुमिरन करि, केते जपि जागे ।
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे ॥ १ ॥
नीच ऊंच चिंतन करि, सरणागति लीये ।
भगति मुकति अपनी गति, ऐसैं जन कीये ॥ २ ॥
केते तिरि तीर लागे, बंधन भव छूटे ।
कलि मल बिष जुग जुग के, रांम नांम षूटे ॥ ३ ॥
भरम करम सब निवारि, जीवन जपि सोई ।
दादू दुष दूरि करण, दूजा नहिं कोई ॥ ४ ॥

॥ पद १४४ ॥

मनां जपि रांम नांम कहिये,
रांम नांम मन बिश्रांम,संगी सो गहिये ॥ टेक ॥
जागि जागि सोवै कहा, काल कंध तेरैं ।
बारंबार करि पुकार, आवत दिन नेरैं ॥ १ ॥
सोवत सोवत जनम बीते, अजहूं न जीव जागै ।
रांम संभारि नींद निवारि, जनम जुरा लागै ॥ २ ॥
आस पास भर्म बंध्यो, नारी गृह मेरा ।
अंति काल छाडि चल्यौ, कोई नहिं तेरा ॥ ३ ॥
तजि कांम क्रोध मोह माया, रांम रांम करणां ।
जब लग जीव प्रांण प्यंड, दादू गहि सरणां ॥ ४ ॥

॥ पद १४५ ॥ विरह ॥

क्यौं बिसरै मेरा पीव पियारा, जीव की जीवनि प्रांण हंमारा। टेक।
क्यौं करि जीवै मीन जल बिछुरैं, तुम्ह बिन प्रांण सनेही ।
च्यंतामणि जब कर थैं छूटै, तब दुष पावै देही ॥ १ ॥

माता बालक दूध न देवै, सो कैसें करि पीवै ।
निर्धन का धन अनत भुलांनां, सो कैसैं करि जीवै ॥ २ ॥
बरसहु रांम सदा सुख अमृत, नीझर निर्मल धारा ।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, दादू दास तुम्हारा ॥ ३ ॥

॥ पद १४६ ॥ अत्यंत विरह (गुजराती) ॥

कोई कहो रे मारा नाथ ने, नारी नेण निहारे वाट रे ॥ टेक ॥
दीन दुषिया सुंदरी, करुणा बचन कहे रे ।
तुम बिन नाह विरहणि व्याकुल, केम करि नाथ रहे रे ॥ १ ॥
भूधर विना भावे नहिं कोई, हरि विन और न जाणे रे ।
देह गृह हूं तेने आपूं, जे कोइ गोविंद आणे रे ॥ २ ॥
जगपति ने जोवा ने काजे, आतुर थई रही रे ।
दादू ने देषाडो स्वामी, व्याकुल होइ गई रे ॥ ३ ॥

॥ पद १४७ ॥ विरह विलाप ॥

कबहूं ऐसा विरह उपावै रे, पीव बिन देवें जीव जावै रे ॥टेक॥
बिपति हमारी सुनहु सहेली, पीव बिन चैंन न आवै रे ।
ज्यौं जल मींन मीन तन तलफै, पीव बिन वज्र बिहावै रे ॥ १ ॥
ऐसी प्रीति प्रेमकी लागै, ज्यूं पंषी पीव सुनावै रे ।
त्यूं मन मेरा रहै निसवासुरि, कोइ पीव कूं आंणि मिलावै रे ॥२॥
तौ मन मेरा धीरज धरही, कोइ आगम आंणि जनावै रे ।

(१४६) नारी नेण=आप की स्त्री के नेत्र । नाह=पति । भूधर=ईश्वर । देह गृह=अपना देहरूपी घर मैं गोविंद (परमेश्वर) को अर्पण करूं, यदि कोई गोविंद को ले आवै ॥ २ ॥ जगपति (परमेश्वर) को देखने के निमित्त मैं बेकल हो रही हूं ॥

तौ सुषजीव़ दादू का पावै, पल पिव़जी आप दिषावै रे ॥ ३ ॥

॥ पद १४८ ॥ (गुजराती) ॥

अमे बिरहणिया रांम तुम्हारड़िया,
तुम बिन नाथ अनाथ, कांइ बिसारड़िया ॥ टेक ॥
अपने अंग अनल परजाले, नाथ निकट नहिं आवे रे ।
दर्शन कारण विरहणि व्याकुल, और न कोई भावे रे ॥ १ ॥
आप अप्रछन अमने देषे, आपणपो न दिषाड़े रे ।
प्रांणी पिंजर लेइ रह्यो रे, आड़ा अंतर पाड़े रे ॥ २ ॥
देव़ देव़ करि दर्शन मांगे, अंतर जामी आपे रे ।
दादू बिरहणि बन बन ढूंढे, ये दुष कांय न कापे रे ॥ ३ ॥

॥ पद १४९ ॥ विरह प्रश्न ॥

पंथीड़ा बूझै बिरहणी कहिनैं पीव़ की बात, कब घरि आवै
कब मिलौं, जोऊं दिन अरु राति, पंथीड़ा ॥ टेक ॥
कहां मेरा प्रीतम कहां बसै, कहां रहे करि बास ।
कहं ढूंढौं कहं पाइये, कहां रहे किस पास, पंथीड़ा ॥ १ ॥
कव़न देस कहं जाइये, कीजै कौंन उपाय ।
कौंण अंग कैसैं रहै, कहा करै समझाइ, पंथीड़ा ॥ २ ॥
परम सनेही प्रांण का, सो कत देहु दिषाइ ।
जीवनि मेरे जीव की, सो मुझ आनि मिलाइ, पंथीड़ा ॥ ३ ॥
नैंन न आवैं नींदड़ी, निसदिन तलफत जाइ ।
दादू आतुर बिरहणी, क्यूं करि रैंनि बिहाइ, पंथीड़ा ॥ ४ ॥

(१४८) तुम्हारड़िया = तुम्हारी । कांय = क्यूं । बिसारड़िया = बिसारडाली । अप्रछन = छुपेहुये । आड़ा = पड़दा । पाड़े = डालै । कोप = काटे ॥

॥ पद १५० ॥ समुच्चय उत्तर ॥

पंथीड़ा पंथ पिछांणीं रे पीव़ का, गहि बिरहे की बाट ।
जीवत मृतक ह्वै चलै, लंघै औघट घाट, पंथीड़ा ॥ टेक ॥
सतगुर सिरपरि राषिये, निर्मल ग्यांन बिचार ।
प्रेम भगति करि प्रीति सौं, सनमुष सिरजनहार, पंथीड़ा ॥१॥
पर आत्म सौं आतमा, ज्यौं जल जलहि समाइ ।
मन हीं सौं मन लाइये, लै के मारग जाइ, पंथीड़ा ॥ २ ॥
तालोबली ऊपजै, आतुर पीड़ पुकार ।
सुमिरि सनेही आपणां, निस दिन बारंबार, पंथीड़ा ॥ ३ ॥
देषि देषि पग राषिये, मारग षांडे धार ।
मनसा बाचा कर्मनां, दादू लंघै पार, पंथीड़ा ॥ ४ ॥

॥ पद १५१ ॥ अनुक्रम उत्तर ॥

साध कहैं उपदेस, बिरहणीं,
तन भूलै तब पाइये, निकटि भया परदेस, बिरहणीं ॥ टेक ॥
तुमहीं माहैं ते बसैं, तहां रहे करि बास ।
तहं ढूंढ़ौं पिव़ पाइये, जीव़नि जीव के पास, बिरहणीं ॥ १ ॥
परम देस तहं जाइये, आतम लीन उपाइ ।
एक अंग ऐसैं रहै, ज्यौं जल जलहि समाइ, बिरहणीं ॥ २ ॥
सदा संगाती आपणां, कबहूं दूरि न जाइ ।
प्रांण सनेही पाइये, तन मन लेहु लगाइ, बिरहणीं ॥ ३ ॥
जागैं जगपति देषिये, परगट मिलि है आइ ।

(१५१—२) एक अंग = मिलकर = एक रूप होकर = लय ब्रह्म ज्योति में मिलाकर ॥

दादू सनमुष ह्वै रहै, आनंद अंगि न माइ, बिरहणीं ॥ ४ ॥

॥ पद १५२ ॥ विरह बिनती ॥

गोबिंदा गाइबा देरे आडड़ी आंन निवार, गोबिंदा गाइबा दे,
अन दिन अंतरि आनंद कीजै, भगति प्रेम रस सार रे ॥ टेक ॥
अनभै आतम अभै एक रस, निरभै कांइ न कीजै रे ।
अमी महारस अमृत आपै, अम्हे रसिक रस पीजै रे ॥ १ ॥
अविचल अमर अषै अविनासी, ते रस कांइ न दीजै रे ।
आतम रांम अधार अम्हारो, जनम सुफल करि लीजै रे ॥ २ ॥
देव दयाल कृपाल दमोदर, प्रेम बिना क्यूं रहिये रे ।
दादू रंग भरि रांम रमाड़ौ, भगत वछल तूं कहिये रे ॥ ३ ॥

॥ पद १५३ ॥ (गुजराती) ॥

गोबिंदा जोइबा दे रे, जे बरजैं ते वारि रे, गोबिंदा जोइबा दे रे ।
आदि पुरिष तूं अछय अम्हारौ, कंत तुम्हारी नारि रे ॥ टेक ॥
अंगैं संगैं रंगैं रमिये, देवा दूर न कीजै रे ।
रस मांहैं रस इम थइ रहिये, ये सुष अमने दीजै रे ।
सेजड़िये सुष रंग भरि रमिये, प्रेम भगति रस लीजै रे ।
एकमेक रस केलि करंतां, अम्हे अबला इम जीजै रे ॥ २ ॥
समरथ स्वामी अंतरजामी, बारबार कांइ बाहै रे ।
आदैं अंतैं तेज तुम्हारौ, दादू ढेपै गाये रे ॥ ३ ॥

---

(१५२) आडड़ी आंननिवार = आड़, पर्दे को आकर उठादे । अनदिन = प्रतिदिन । राम रमाड़ौ = हे राम ! हमको खिलाओ आनंद दो । भगत वछल=भक्त वत्सल ॥

(१५३) जे बरजैं ते वारि रे=जो विघ्न हों उनको तू टाल ॥

॥ पद १५४ ॥

तुम्ह सरसी रंग रमाड़,
आप अपरछन थई करी, मने मा भरमाड़ ॥ टेक ॥
मन भोलवे कांइ थई वेगलो, आपणपो देषाड़ ।
केम जीवूं हूं एकली, विरहाणिया नार ॥ १ ॥
मने बाहिश मा अलगो थई, आत्मा उद्धार ।
दादू सूं रमिये सदा, येणे परैं तार ॥ २ ॥

॥ पद १५५ ॥ काल चितावणी ॥

जागि रे किस नींदड़ी सूता,
रौंणि बिहाई सब गई, दिन आइ पहूंता ॥ टेक ॥
सो क्यौं सोवै नींदड़ी, जिस मरणां होवै रे ।
जौरा बैरी जागणां, जीव तूं क्यौं सोवै रे ॥ १ ॥
जाके सिर परि जम षड़ा रे, सर सांधे मारै रे ।
सो क्यूं सोवै नींदड़ी, कहि क्यूं न पुकारै रे ॥ २ ॥
दिन प्रति निस काल झंपै, जीव न जागै रे ।
दादू सूता नींदड़ी, उस अंगि न लागै रे ॥ ३ ॥

॥ पद १५६ ॥

जागिरे सब रौंणि बिहांणीं, जाइ जन्म अंजुली कौ पांणीं ॥टेक॥

---

(१५४) हे ईश्वर ! तुम्हारी सदृश रंग खिलाड़ी, आप छिपकर मुझ को न भ्रमावें । मुझको लुभा कर क्यूं जुदे हो गये हो, अपने दर्शन दो । मैं अकेली बिरहणी नार कैसे जीवूं ॥ १ ॥ मुझे छोड़कर अलग मत हो जाइयो, हे आत्मोद्धार ! दादू से सदा रमते रहिये और उसको पार उतारिये ॥ २ ॥ देखो साखी १२–८२ ॥

घड़ी घड़ी घडियाल बजावै, जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै ॥ १ ॥
सूरिज चंद कहैं समझाइ, दिन दिन आव़ घटती जाइ ॥२॥
सरवर पांणीं तरवर छाया, निस दिन काल गरासै काया ॥३॥
हंस बटाऊ प्रांण पयांनां दादू आतमरांम न जांनां ॥ ४ ॥

॥ पद १५७ ॥

आदि काल अंति काल, मधि काल भाई ।
जन्म काल जुह्वा काल, काल संगि सदाई ॥ टेक ॥
जागत काल सोवत काल, काल झंपै आई ।
काल चलत काल फिरत, कबहूं ले जाई ॥ १ ॥
आवत काल जात काल, काल कठिन षाई ।
लेत काल देत काल, काल ग्रसै धाई ॥ २ ॥
कहत काल सुनत काल, करत काल सगाई ।
कांम काल क्रोध काल, काल जाल छाई ॥ ३ ॥
काल आगैं काल पीछैं, काल संगि समाई ।
काल रहित रांम गहित, दादू ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

॥ पद १५८ ॥ हित उपदेस ॥

तो कौं केता कह्या मन मेरे,
षिण इक मांहैं जाइ अनेरे, प्रांण उधारी ले रे ॥ टेक ॥
आगैं है मन षरी बिमासणि, लेषा मांगै दे रे ।
काहे सोवै नींद भरी रे, कृत बिचारै तेरे ॥ १ ॥
ते परि कीजै मन बिचारे, राषै चरणहु नेरे ।
रती एक जीवनि मोहि न सूझै, दादू चेति सवेरे ॥ २ ॥

॥ पद १५९ ॥

मन वाहला रे, कछू विचारी षेल, पड़शे रे गढ़ भेल ॥ टेक ॥
बहु भांतैं दुष देइगा वाहला, ज्यों तिल मां लीजै तेल ।
करणी ताहरी सोधसी, होशी रे सिर हेल ॥ १ ॥
अबहीं थैं करि लीजिये रे वाहला, सांईं सेती मेल ।
दादू संग न छाडी पीव का, पाइ है गुण की वेल ॥ २ ॥

॥ पद १६० ॥

मन बावरे हो अनत जिनि जाइ,
तौ तूं जीवै अमी रस पीवै, अमर फल काहे न षाइ ॥ टेक ॥
रहु चरण सरण सुष पावै, देषहु नैंन अघाइ ।
भाग तेरे पीव नेरे, थीर थान बताइ ॥ १ ॥
संग तेरे रहै घेरे, सहजैं अंगि समाइ ।
सरीर मांहैं सोधि सांईं, अनहद ध्यांन लगाइ ॥ २ ॥
पीव पासि आवै, सुष पावै, तन की तपति बुझाइ ।
दादू रे जहं नाद ऊपजै, पीव पासि दिषाइ ॥ ३ ॥

॥ पद १६१ ॥ भरम विधूसण ॥

निरंजन अंजन कीन्हां रे, सब आतम लीन्हां रे ॥ टेक ॥
अंजन माया अंजन काया, अंजन छाया रे ।

---

(१५९) हे प्यारे मन ! कुछ विचार कर खेलौ, (नहीं तौ) पड़ौगे गढ़ (कठिन) झमेलों में । वह झमेले बहुत प्रकार से दुःख देंगे, जैसे तिलों को कोल्हू में पीड़ते हैं । तुम्हारी करनी को हरि देखैगा तब तुम्हारे सिर बोझ पड़ैगा ॥१॥ (इस वास्ते) अभी से, हे प्यारे मन ! सांईं से मेल करलो, अपने पति का संग न छांडिये, क्योंकि यह गुणवती काया बेली (मनुष्य जन्म) हाथ लगा है ॥

अंजन राते अंजन माते, अंजन पाया रे ॥ १ ॥
अंजन मेरा अंजन तेरा, अंजन मेला रे ।
अंजन लीया अंजन दीया, अंजन षेला रे ॥ २ ॥
अंजन देवा अंजन सेवा, अंजन पूजा रे ।
अंजन ग्यांमा अंजन ध्यांना, अंजन दूजा रे ॥ ३ ॥
अंजन बकता अंजन सुरता, अंजन भावै रे ।
अंजन राम निरंजन कीन्हां, दादू गावै रे ॥ ४ ॥

॥ पद १६२ ॥ निज बचन महिमा ॥

अैंन बैंन चैंन होवै, सुणतां सुष लागै रे ।
तीन्यूं गुण त्रिविध तिमर, भरम करम भागै रे ॥ टेक ॥
होइ प्रकास अति उजास, परम तत्त सूझै ।
परम सार निर्बिकार, बिरला कोई बूझै ॥ १ ॥
परम थान सुष निधांन, परम सुंनि षेलै ।
सहज भाइ सुष समाइ, जीव ब्रह्म मेलै ॥ २ ॥
अगम निगम होइ सुगम, दूतर तिरि आवै ।
आदि पुरिष दरस परस, दादू सो पावै ॥ ३ ॥

॥ पद १६३ ॥ साध सांई हेरै ॥

कोई रांम का राता रे, कोई प्रेम का माता रे ॥ टेक ॥
कोई मन कौं मारै रे, कोई तन कौं तारै रे, कोई आप उबारै रे ॥१॥
कोई जोग जुगंता रे, कोई मोष मुकता रे, कोई है भगवंता रे ॥२॥
कोई सदगति सारा रे, कोई तारणहारा रे, कोई पीव का प्यारा रे ॥
कोई पार को पाया रे, कोई मिलि करि आया रे, कोई मन का भाया रे

कोई है बड़भागी रे, कोई सेज सुहागी रे, कोई है अनुरागी रे ॥५॥
कोई सब सुषदाता रे, कोई रूप बिधाता रे, कोई अमृत षातारे ॥
कोई नूर पिछांणैं रे, कोई तेज कौं जांणैं रे । कोई जोति बषांणैं रे ७
कोई साहिब जैसा रे, कोई सांई तैसा रे, कोई दादू अैसा रे ॥ ८ ॥

॥ पद १६४ ॥ साध लक्षण ॥

सद्गति साधवा रे, सनमुष सिरजनहार ।
भौ जल आप तिरैं ते तारैं, प्रांण उधारनहार ॥ टेक ॥
पूरण ब्रह्म रांम रंगि राते, निर्मल नांउं अधार ।
सष संतोष सदा सति संजम, मति गति वार न पार ॥ १ ॥
जुगि जुगि राते जुगि जुगि माते, जुगि जुगि संगति सार ।
जुगि जुगि मेला जुगि जुगि जीवन, जुगि जुगि ग्यांन बिचार२
सकल सिरोमणि सब सुषदाता, दुल्यभ इहि संसार ।
दादू हंस रहैं सुष सागर, आये पर उपगार ॥ ३ ॥

॥ पद १६५ ॥ परचय उछाह मंगल ॥

अम्ह घरि पाहुणां ये, आव्या आतमरांम ॥ टेक ॥
चहुं दिसि मंगलचार, आनंद अति घणां ये ।
वरत्या जैजैकार, विरध वधावणां ये ॥ १ ॥
कनक कलस रस मांहिं, सषी भरि ल्यावज्यौ ये ।
आनंद अंगि न माइ, अम्हारै आविज्यौ ये ॥ २ ॥
भावै भगति अपार, सेवा कीजिये ये ।

(१६५) आव्या=आया । वरत्या=हुये । विरध=रिद्धि । वधावणां=बधाई । माइ= समाय । भणीं=तरफ । धणीं=मालिक ॥

सनमुष सिरजनहार, सदा सुष लीजिये ये ॥ ३ ॥
धन्य अम्हारा भाग, आव्या अम्ह भणीं ये ।
दादू सेज सुहाग, तूं त्रिभवन धणीं ये ॥ ४ ॥

॥ पद १६६ ॥

गावहु मंगलचार, आज व़धावणां ये ।
सुपनौं देष्यौ साच, पीव घरि आवणां ये ॥ टेक ॥
भाव कलस जल प्रेम का, सब सषियन के सीस ।
गावत चलीं व़धावणां, जै जै जै जगदीस ॥ १ ॥
पदम कोटि रवि झिलमिलै, अंगि अंगि तेज अनंत ।
बिगसि बदन बिरहनि मिली, घरि आये हरि कंत ॥ २ ॥
सुंदरि सुरति सिंगार करि, सनमुष परसे पीव ।
मो मंदिर मोहन आविया, वारूं तन मन जीव ॥ ३ ॥
कवल निरंतर नर हरी, प्रगट भये भगवंत ।
जहं बिरहनि गुण व़ीनव़ै, षेलै फाग बसंत ॥ ४ ॥
बर आयौ बिरहनि मिली, अरस परस सब अंग ।
दादू सुंदरि सुष भया, जुगि जुगि यहु रस रंग ॥ ५ ॥

॥ इति राग मारू समाप्त ॥ ७ ॥

(१६६-४) व़ीनव़ै = गुजराती विनवबुं = प्रशंसा करना ॥

अथ राग रांमकली ॥ ८ ॥

॥ पद १६७ ॥

सबदि समांनां जो रहै, गुरवाइक बीधा ।
उनहीं लागा येक सौं, सोई जन सीधा ॥ टेक ॥
ऐसी लागी मरमकी, तन मन सब भूला ।
जीवत मृतक ह्वै रहै, गहि आतम मूला ॥ १ ॥
चेतनि चितहिं न बीसरै, महारस मीठा ।
सबद निरंजन गहि रह्या, उनि साहिब दीठा ॥ २ ॥
एक सबद जन ऊधरे, सुनि सहजैं जागे ।
अंतरि राते येक सूं, श्रस न मुष लागे ॥ ३ ॥
सबदि समांनां सनमुष रहै, पर आतम आगे ।
दादू सीझै देषतां, अविनासी लागे ॥ ४ ॥

॥ पद १६८ ॥ नांव महिमा ॥

अहो नर नीका है हरि नांम,
दूजा नहीं नांउं बिन नीका, कहिले केवल रांम ॥ टेक ॥
निर्मल सदा येक अविनासी, अजर अकल रस ऐसा ।
दिढ़ गहि राषि मूल मन मांहीं, निरषि देषि निज कैसा ॥ १ ॥
यहु रस मीठा महा अमीरस, अमर अनूपं पीवै ।
राता रहै प्रेम सूं माता, ऐसैं जुगि जुगि जीवै ॥ २ ॥

(१६७-३) श्रस न मुष = शिरस् (मस्तक) न मुख ॥

दूजा नहीं और को ऐसा, गुर अंजन करि सूझै ।
दादू मोटे भाग हमारे, दास बमेकी बूझै ॥ ३ ॥

॥ पद १६९ ॥ अत्यंत विरह ॥

कब आवैगा कब आवैगा,
पिव परगट आप दिषावैगा, मिठड़ा मुझकूं भावैगा ॥ टेक ॥
कंठड़ै लागि रहूं रे, नैंनौं मैं बाहि धरूं रे, पीव तुझ बिन झूंरि मरूं रे
पांऊं मस्तक मेरा रे, तन मन पीवजी तेरा रे, हौं राषौं नैंनहुं नेरा रे
हियड़े हेत लगाऊं रे, अबकै जे पीवै पाऊं रे, तौ बेर बेर बलि जाऊं रे
सेजड़ीये पीव आवैरे, तब आनंद अंगि न मावै रे, दादू दरस
दिषावै रे ॥ ४ ॥

॥ पद १७० ॥

पिरी तूं पांण पसाइड़े, मूं तनि लागी भाहिड़े ॥ टेक ॥
पांधी वींदो निकरीला, असां साण गल्हाइड़े ।
सांई सिकां सडकेला, गुझी गालि सुनाइड़े ॥ १ ॥
पसां पाक दीदार केला, सिक असां जी लाहिड़े ।
दादू मंझि कलूब मैला, तोड़े वीयां न काइड़े ॥ २ ॥

॥ पद १७१ ॥

को मेड़ी दो सजणां, सुहारी सुरति केला, लगे डीहु घणां ॥टेक॥
पीरीयां संदी गाल्हड़ीला, पांधीड़ा पूछां ।

---

(१७०) हे ईश्वर ! तू आप दिखाई दे । मेरे तन में लगी है आग । पंथी बंदा जाना है । हमारे साथ बात कर । हे ईश्वर ! चाह है तेरे उपदेश की । गुप्त बात सुनाय दे ॥ १ ॥ देखें पवित्र दर्शन तेरा, इच्छा हमारी पूर्ण कर । दादू को भीतर शरीर के मिल । तेरे बिना दूसरे की चाह नहीं है ।

(१७१) मेड़ी=मिलाये । सुहारी=शोभनीक । डीहु=दिन । संदी=साथ ।

कडी ईंदो मूंगरेला, डींदों बांह असां ॥ १ ॥
आहे सिक दीदार जीला, पिरी पूर पसां ।
इयं दादू जे ज्यंद येला, सजण सांण रहां ॥ २ ॥

॥ पद १७२ ॥ विनती ॥

हरिहां दिषावौ नैंनां, सुंदर मूरति मोहनां,
बोलि सुनावौ बैंनां ॥ टेक ॥
प्रगटि पुरातन षंडनां, महीमांन सुष मंडनां ॥ १ ॥
अविनांसी अपरंपरा, दीन दयाल गगन धरा ॥ २ ॥
पारब्रह्म पर पूरणां, दरस देहु दुष दूरणां ॥ ३ ॥
करि कृपा करूणांमई, तब दादू देषै तुम दई ॥ ४ ॥

॥ पद १७३ ॥ निसप्रेहता ॥

रांम सुष सेवग जांनैं रे, दूजा दुष करि मांनैं रे ॥ टेक ॥
और अगिन की झाला, फंध रोपे हैं जमजाला ।

पांधीड़ा=पंथ । कडी=कब । डींदो=दोगे । बांह=हाथ । सिक=इच्छा । सांण=साथ ॥

(१७२) प्रगटि पुरातन षंडना, महीमांन सुष मंडना ॥ तात्पर्य—ज़ाहिर में मायारूप धारण करके अपने पुरातन (आदि शुद्ध निराकार) स्वरूप का खंडन करने वाले, हे जगदीश ! और महीमांन पृथ्वी के सुखों को मंडना = दृढ़ता देने वाले ॥

(१७३) "जमजाल" की जगह पुस्तक नं० १ में "जमकाल" है । "समकाल कठिन सर पेषै, ये सिंघरूप सब देषै" = परमात्मा के सिवाय जो कुछ "दूजा" प्रतीत होता है उस प्रपंच को जिज्ञासू काल के समान, तथा कठिन सर (बाण) के समान वा सिंह की सदृश प्राणघातक दुःखदाई समझै ॥

सम काल कठिन सर पेषै, ये सिंघरूप सब देषै ॥ १ ॥
बिष सागर लहरि तरंगा, यहु अैसा कूप भुवंगा ।
भै भीत भयांनक भारी, रिप करवत मीच बिचारी ॥ २ ॥
यहु अैसा रूप छलावा, ठग पासी हारा आवा ।
सब अैसा देषि बिचारे, ये प्रानघात बटपारे ॥ ३ ॥
अैसा जन सेवग सोई, मनि और न भावै कोई ।
हरि प्रेम मगन रंगि राता, दादू रांम रमै रसिमाता ॥ ४ ॥

॥ पद १७४ ॥ साध महिमा ॥

आप निरंजन यौं कहै, कीरति करतार ।
मैं जन सेवग द्वै नहीं, एकै अंग सार ॥ टेक ॥
मम कारणि सब परहैर, आपा अभिमांन ।
सदा अषंडित उर धरै, बोलै भगवांन ॥ १ ॥
अंतर पट जीवै नहीं, तबहीं मरि जाइ ।
बिछुरे तलपै मींन ज्यूं, जीवै जल आइ ॥ २ ॥
षीर नीर ज्यूं मिलि रहै, जल जलहि समांन ।
आत्म पांणीं लूण ज्यूं, दूजा नांहीं आंन ॥ ३ ॥
मैं जन सेवग द्वै नहीं, मेरा बिश्राम ।
मेरा जन मुझ सारिषा, दादू कहै रांम ॥ ४ ॥

॥ पद १७५ ॥ परचय बिनती ॥

सरनि तुम्हारी केसवा, मैं अनंत सुष पाया ।
भाग बड़े तूं भेटिया, हौं चरनौं आया ॥ टेक ॥

(१७४–२) अंतरपट=भगवान से पड़दा पड़ जाने पर ॥

मेरी तपति मिटी तुम्ह देषतां, सीतल भयो भारी ।
भव बंधन मुकता भया, जब मिल्या मुरारी ॥ १ ॥
भरम भेद सब भूलिया, चेतनि चित लाया ।
पारस सूं परचा भया, उनि सहजि लषाया ॥ २ ॥
मेरा चंचल चित निहचल भया, इब अनत न जाई ।
मगन भया सर बेधिया, रस पीया अघाई ॥
सनमुष ह्वै तैं सुष दीया, यहु दया तुम्हारी ।
दादू दरसन पावै ई, पीव प्राण अधारी ॥ ४ ॥

॥ पद १७६ ॥ परस्पर गोष्ठी, परचय बीनती ॥

गोबिंद राषौ अपणीं वोट,
कांम क्रोध भये बटपारे, ताकि मारैं उर चोट ॥ टेक ॥
बैरी पंच सबल सांगि मेरे, मारग रोकि रहे ।
काल अहेड़ी बधिक ह्वै लागे, ज्यूं जिव बाज गहे ॥ १ ॥
ग्यांन ध्यांन हिरदै हरि लीनां, संगही घेरि रहे ।
समझि न परई बाप रमईया, तुम्ह बिन सूल सहे ॥ २ ॥
सरणि तुम्हारी राषौ गोबिंद, इनसौं संग न दीजै ।
इनकै संगि बहुत दुष पाया, दादू कूं गहि लीजै ॥ ३ ॥

॥ पद १७७ ॥ भयमान बीनती ॥

रांम कृपा करि होहु दयाला, दरसन देहु करहु प्रतिपाला॥टेक॥
बालक दूध न देई माता, तौ वै क्यूं करि जिवै बिधाता ॥१॥
गुण औगुण हरि कुछ न बिचारै, अंतरि हेत प्रीति करि पालै॥२॥
अपणौं जांणि करै प्रतिपाला, नैंन निकट उरि धरै गोपाला ॥३॥
दादू कहै नहीं बस मेरा, तू माता मैं बालक तेरा ॥ ४ ॥

॥ १७८ ॥ बीनती ॥

भगति मांगूं बाप भगति मागौं, मूनैं ताहरा नांउं नौं प्रेम लागौं।
सिवपुर ब्रह्मपुर सर्व सौं कीजिये, अमर थावा नहीं लोक मांगौं टेक।
आपि अवलंबन ताहरा अंगनौं, भगति सजीवनी रंगि राचौं ।
देहनैं ग्रेह नौं बास बैकुंट तणौं, इंद्रआसण नहीं मुकति जाचौं ॥१॥
भगति वाहली षरी, आपि अबिचल हरी, निर्मलौ नांउं रसपांन भावै।
सिधि नैं रिधि नैं राज रूडौ नहीं, देवपद माहरै काजि न आवै ॥२॥
आत्मा अंतरि सदा निरंतरि, ताहरी बापजी भगति दीजै ।
कहै दादू हिवैं कोड़ी दत्त आपै, तुम्ह बिना ते अम्हे नहीं लीजै ॥३॥

॥ पद १८० ॥

एह्यौ येक तूं रामजी नांउं रूडौ,
ताहरा नांउं बिना बीजौ सबै ही कूडौ ॥ टेक ॥
तुंम्ह बिनां अवर कोई कलिमां नहीं, सुमिरतां संत नैं साद आपै
कर्म कीधां कोटि छोड़वै बाधौ, नांउं लेतां षिणतही ये कापै॥१॥

---

(१७८) सौं=शूं=क्या । थावा = होना । रूडौ = अच्छा । कोडी = करोड़ौं । आपै = दे । लागूं = लगा है । आपि = दे । अवलंबन = मदद । तणौं = का । हिवैं = अब ।

(१७९) यह अंक शब्दों की संख्या लगाते समय भूल से रह गया । शब्द नं० १७८ से आगे १८० ही है, बीच में कोई नहीं ॥

(१८०) एव्हौ = ऐसा । रूडौ = अच्छा । बीजौ = दूसरा । कूडौ = झूठा । कलि = कालियुग । साद = स्वाद = आनंद । किये हुये कोटियौं कर्मौं के बंधनौं को क्षण में ही तेरे नाम का सुमिरण छुड़ाता और काटता है, जब दुष्ट जन संतौं को कठिन पीड़ा देते हैं, वाहरैं (तब) बाहला (परमेश्वर) जल्द आकर सहायता देता है, कैसे साधु को ? जिस ने पाप की ढेरी को परे

संतनै सांकड़ो दुष्ट पीड़ा करै, वाहरैं वाहलौ बेगि आवै ।
पापनां पुंज पहूं करी लीधौं, भाजियां भै भर्म जोनि न आवै॥२॥
साधनैं दुहेलौं तहां तूं आकुलौं, माहरौं माहरौं करीनैं धाए ।
दुष्टनै मारिबा, संतनै तारिबा, प्रगट थावा तिहां आप जाए॥३॥
नाम लेतां षिण नाथ तैं एकलैं, कोटिनां कर्मनां छेद कीधां ।
कहै दादू हिवैं तुम्ह बिना को नहीं, साषि बोलैं जे सरणि लीधां॥४॥

॥ पद १८१ ॥ परचय बीनती ॥

हरि नांम देहु निरंजन तेरा, हरि हरिषैं जपै जिय मेरा ॥टेक॥
भाव भगति हेत हरि दीजै, प्रेम उमगि मन आवै ।
कोमल बचन दीनता दीजै, रांम रसाइण भावै ॥ १ ॥
बिरह बैराग प्रीति मोहि दीजै, हिरदै साच सति भाषौं ।
चित चरणौं चिंतामणि दीजै, अंतरि डिढ़ करि राषौं ॥ २ ॥
सहज संतोष सील सत दीजै, मन निहचल तुम्ह लागै ।
चेतनि चिंतनि सदा निवासी, संगि तुम्हारे जागै ॥ ३ ॥
ग्यांन ध्यांन मोहन मोहि दीजै, सुरति सदा संगि तेरे ।
दीन दयाल दादू कौं दीजै, परम जोति घटि मेरे ॥ ४ ॥

कर दिया है और शरीर के भय भ्रम भंजन कर दिये हैं, ऐसे साधु को जहां दुहेलौं (दुःख) होता है वहां तू (परमेश्वर) व्याकुल होकर "मेरा मेरा" कह के सहायता को धावता है । दुष्ट को मारने संत को तारने और स्वयं प्रगट होने के लिये आप तहां जाता है ॥ ३ ॥ नाम लेते ही तूं अकेले, हे नाथ ! करोड़ों कर्मों का छेदन करता है । दयालजी कहते हैं अब तेरे बिना कोई नहीं है; इस बात की साक्षी वो संत देते हैं जिन्हों ने तेरी शरण ली है ॥४॥"

(१८१—३) जागै की जगह लागै पु० नं० १ में है ॥

॥ १७८ ॥ बीनती ॥

भगति मांगूं बाप भगति मागौं, मूनैं ताहरा नांउं नौं प्रेम लागौं।
सिवपुर ब्रह्मपुर सर्व सौं कीजिये, अमर थावा नहीं लोक मांगौं टेक।
आपि अवलंबन ताहरा अंगनौं, भगति सजीवनी रंगि राचौं।
देहनैं ग्रेह नौं बास बैकुंट तणौं, इंद्रआसण नहीं मुकति जाचौं ॥१॥
भगति वाहली षरी, आपि अबिचल हरी, निर्मलौ नांउं रसपांन भावै।
सिधि नैं रिधि नैं राज रूडौ नहीं, देवपद माहरै काजि न आवै ॥२॥
आत्मा अंतरि सदा निरंतरि, ताहरी बापजी भगति दीजै।
कहै दादू हिवैं कोड़ी दत्त आपै, तुम्ह बिना ते अम्हे नहीं लीजै ॥३॥

॥ पद १८० ॥

एह्यौ येक तूं रामजी नांउं रूडौ,
ताहरा नांउं बिना बीजौ सबै ही कूडौ ॥ टेक ॥
तुंम्ह बिनां अवर कोई कलिमां नहीं, सुमिरतां संत नैं साद आपै
कर्म कीधां कोटि छोड़वै बाधौ, नांउं लेतां षिणतही ये कापै॥१॥

---

(१७८) सौं=शूं=क्या। थावा=होना। रूडौ=अच्छा। कोडी=करोड़ों। आपै=दे। लागूं=लगा है। आपि=दे। अवलंबन=मदद। तणौं=का। हिवैं=अब।

(१७९) यह अंक शब्दों की संख्या लगाते समय भूल से रह गया। शब्द नं० १७८ से आगे १८० ही है, बीच में कोई नहीं ॥

(१८०) एह्यौ=ऐसा। रूडौ=अच्छा। बीजौ=दूसरा। कूडौ=झूठा। कलि=कालियुग। साद=स्वाद=आनंद। किये हुये कोटियौं कर्मौं के बंधनौं को क्षण में ही तेरे नाम का सुमिरण छुड़ाता और काटता है, जब दुष्ट जन संतौं को कठिन पीड़ा देते हैं, वाहरैं (तब) बाहला (परमेश्वर) जल्द आकर सहायता देता है, कैसे साधु को ? जिस ने पाप की ढेरी को परे

संतनै सांकड़ो दुष्ट पीड़ा करै, वाहरैं वाहलौ बेगि आवै ।
पापनां पुंज पहूं करी लीधौं, भाजियां भै भर्म जोनि न आवै॥२॥
साधनैं दुहेलौं तहां तूं आकुलौं, माहरौं माहरौं करीनैं धाए ।
दुष्टनै मारिबा, संतनै तारिबा, प्रगट थावा तिहां आप जाए॥३॥
नाम लेतां षिण नाथ तैं एकलैं, कोटिनां कर्मनां छेद कीधां ।
कहै दादू हिवैं तुम्ह बिना को नहीं, साषि बोलैं जे सरणि लीधां॥४॥

॥ पद १८१ ॥ परचय बीनती ॥

हरि नांम देहु निरंजन तेरा, हरि हरिषैं जपै जिय मेरा ॥टेक॥
भाव भगति हेत हरि दीजै, प्रेम उमगि मन आवै ।
कोमल वचन दीनता दीजै, रांम रसाइण भावै ॥ १ ॥
बिरह बैराग प्रीति मोहि दीजै, हिरदै साच सति भाषौं ।
चित चरणौं चिंतामणि दीजै, अंतरि डिढ़ करि राषौं ॥ २ ॥
सहज संतोष सील सत दीजै, मन निहचल तुम्ह लागै ।
चेतनि चिंतनि सदा निवासी, संगि तुम्हारे जागै ॥ ३ ॥
ग्यांन ध्यांन मोहन मोहि दीजै, सुरति सदा संगि तेरे ।
दीन दयाल दादू कौं दीजै, परम जोति घटि मेरे ॥ ४ ॥

कर दिया है और शरीर के भय भ्रम भंजन कर दिये हैं, ऐसे साधु को जहां दुहेलौं (दुःख) होता है वहां तू (परमेश्वर) व्याकुल होकर "मेरा मेरा" कह के सहायता को धावता है । दुष्ट को मारने संत को तारने और स्वयं प्रगट होने के लिये आप तहां जाता है ॥ ३ ॥ नाम लेते ही तूं अकेले, हे नाथ ! करोड़ों कर्मों का छेदन करता है । दयालजी कहते हैं अब तेरे बिना कोई नहीं है; इस बात की साक्षी वो संत देते हैं जिन्हों ने तेरी शरण ली है ॥४॥

(१८१—३) जागै की जगह लागै पु० नं० १ में है ॥

॥ पद १८२ ॥ आसीरबाद मंगल ॥

जै जै जै जगदीस तूं, तूं समरथ सांई ।
सकल भवन भांनैं घड़ै, दूजा को नांहीं ॥ टेक ॥
काल मींच करुणां करै, जम किंकर माया ।
महा जोध बलिवंत बली, भय कंपै राया ॥ १ ॥
जुरा मरण तुम्ह थैं डरै, मन कौं भै भारी ।
कांम दलन करुणां मई, तूं देव मुरारी ॥ २ ॥
सब कंपैं करतार थैं, भव बंधन पासा ।
अरि रिप भंजन भयगता, सब बिघन बिनासा ॥ ३ ॥
सिर ऊपरि सांई षड़ा, सोई हम मांहीं ।
दादू सेवग रांम का, निर्भै न डराई ॥ ४ ॥

॥ पद १८३ ॥ हित उपदेस ॥

हरि के चरण पकरि मन मेरा, यहु अविनासी घर तेरा ॥टेक॥
जब चरण कवल रज पावै, तब काल ब्याल बौरावै ।
तब त्रिविध ताप तनि नासै, तब सुष की रासि बिलासै ॥१॥
जब चरण कवल चित लागै, तब माथैं मीच न जागै ।
तब जनम जुरा सब षीनां, तब पद पांवन उर लीनां ॥ २ ॥
जब चरण कवल रस पीवै, तब माया न ब्यापै जीवै ।
तब भरम करम भौ भाजै, तब तीन्यूं लोक बिराजै ॥ ३ ॥
जब चरण कवल रुचि तेरी, तब चारि पदारथ चेरी ।
तब दादू और न बांछै, जब मन लागै साचै ॥ ४ ॥

(१८२-३) अरि=बाह्य शत्रु । रिप=काम क्रोधादि अंतर के शत्रु ॥

॥ पद १८४ ॥ संत उपदेस ॥

संतौ और कहौ क्या कहिये,
हम तुम्ह सीष इहै सतगुर की, निकटि रांम के रहिये ॥टेक॥
हम तुम्ह मांहिं बसै सो स्वामी, साचे सौं सचु लहिये ।
दरसन परसन जुगि जुगि कीजै, काहे कौं दुष सहिये ॥१॥
हम तुम संगि निकट रहैं नेरैं, हरि केवल कर गहिये ।
चरण कवल छाड़ि करि अैसे, अनत काहे कौं बहिये ॥ २ ॥
हम तुम्ह तारन तेज घन सुंदर, नीके सौं निरबहिये ।
दादू देषु और दुष सबहीं, तामैं तन क्यौं दहिये ॥ ३ ॥

॥ पद १८५ ॥ मन प्रति उपदेस ॥

मन रे बहुरि न अैसैं होई,
पीछैं फिरि पछितावैगा रे, नींद भरे जिनि सोई ॥ टेक ॥
आगम सारै संचु करीले, तौ सुष होवै तोही ।
प्रीति करी पीव पाईये, चरणौं राषै मोही ॥ १ ॥
संसार सागर बिषम अति भारी, जिनि राषै मन मोहि ।
दादू रे जन रांम नांम सौं, कुसमल देही धोइ ॥ २ ॥

॥ पद १८६ ॥ काल चिनावणी ॥

साथी सावधान ह्वै रहिये,
पलक मांहिं परमेसुर जांणैं । कहा होइ कहा कहिये ॥ टेक ॥
बाबा बाट घाट कुछ समझि न आवै, दूरि गवन हम जांनां ।

---

(१८४) दृष्टांत—गलता तैं जो आइया, सांभरि स्वामी पास ।
या पद तैं उत्तर दियौ, जठि गये होइ उदास ॥

(१८५—१) आगम सारै संचु करीले = वेदसार वा "राम नाम निज सार" को संचय कर ले ॥

परदेसी पंथि चलै अकेला, औघट घाट पयांनां ॥ १ ॥
बाबा संग न साथी कोइ नहिं तेरा, यहु सब हाट पसारा ।
तरवर पंषी सबै सिधाये, तेरा कौंण गंवारा ॥ २ ॥
बाबा सबै बटाऊ पंथि सिरानैं, अस्थिर नांहीं कोई ।
अंतिकाल को आगैं पीछैं, बिछुरत बार न होई ॥ ३ ॥
बाबा काची काया कौंण भरोसा, रैंनि गई क्या सोवै ।
दादू संबल सुकृत लीजै, सावधान किन होवै ॥ ४ ॥

॥ पद १८७ ॥ तरक चितावणी ॥

मेरा मेरा काहे कौं कीजै रे, जे कुछ संगि न आवै ।
अनत करी नै धन धरीला रे, तेऊ तौ रीता जावै ॥ टेक ॥
माया बंधन अंध न चेतै रे, मेर मांहिं लपटाया ।
ते जांणैं हूं येह बिलासौं, अनत बिरोधैं पाया ॥ १ ॥
आप सवारथ येह बिलूधा रे, आगम मरम न जांणैं ।
जम कर माथैं बांण धरीला, ते तौ मनि न आंणैं ॥ २ ॥
मन बिचारि सारी ते लीजै, तिल मांहैं तन पड़िबा ।
दादू रे तहं तन ताडीजै, जेणैं मारग चढिबा ॥ ३ ॥

॥ पद १८८ ॥ बिनती-हित उपदेस ॥

सनमुष भइला रे, तब दुष गइला रे, ते मेरे प्रांण अधारी ।
निराकार निरंजन देवा रे, लेवा तेह बिचारी ॥ टेक ॥

---

(१८७) अनत = अनीति । मेर मांहि = मेरे (आपनपौ) में ॥ "ते जांणैं हूं येह बिलासौं" = वह अंध जानता है कि मैं इस को भोगूंगा । बिलूधा = बिलुब्ध = लालच में फँस कर । जम कर माथैं बाण धरीला = जम के हाथ में बाण तेरे मस्तक के लिये धरा हुआ है । तिल = क्षण । ताड़ीजै = चलाइये, रहनुमाई कीजिये ॥

अपरंपार परम निज सोई, अलष तोरा विस्तारं ।
अंकुर बीजै सहजि समांनां रे, अैसा समर्थ सारं ॥ १ ॥
जे तैं कीन्हां किन्हि इक चीन्हां रे, भइला ते परिमांणं ।
अविगत तोरी विगति न जाणूं, मैं मूरिष अयानं ॥ २ ॥
सहजैं तोरा ए मन मोरा, साधन सौं रंग आई ।
दादू तोरी गति नहिं जांनैं, निरबाहौ कर लाई ॥ ३ ॥

॥ पद १८९ ॥ मन प्रति मूरातन ॥

हरि मारग मस्तक दीजिये, तब निकटि परम पद लीजिये ॥टेक॥
इस मारग मांहैं मरणां, तिल पीछैं पाव न धरणां ।
अब आगैं होइ सु होई, पीछैं सोच न करणां कोई ॥ १ ॥
ज्यूं सूरा रिण झूझै, आपा पर नहिं बूझै ।
सिरि साहिब काज संवारै, घण घांवां आपा डारै ॥ २ ॥
सती संत गहि साचा बोलै, मन निहचल कदे न डोलै ।
वाकै सोच पोच जिय न आवै, जग देषत आप जलावै ॥ ३॥
इस सिरसौं साटा कीजै, तब अविनासी पद लीजै ।
ताका तब सिर स्याबति होवै, जब दादू आपा षोवै ॥ ४ ॥

॥ पद १९० ॥ कलिजुगी ॥

झूठा कलिजुग कह्या न जाइ, अमृत कौं बिष कहैं बनाइ ॥टेक॥
धन कौं निर्धन निर्धन कौं धन, नीति अनीति पुकारै ।
निर्मल मैला मैला निर्मल, साध चोर करि मारै ॥ १ ॥
कंचन काच काच कौं कंचन, हीरा कंकर भाषै ।

(१९०–३) पत्थर की जगह मूल पुस्तकों में पथर है ॥

मांणिक मणियां मणियां मांणिक, साच झूठ करि नांषै ॥ २॥
पारस पत्थर पत्थर पारस, कामधेन पसु गावै ।
चंदन काठ काठ कौं चंदन, अैसी बहुत बनावै ॥ ३ ॥
रस कौं अणरस अणरस कौं रस, मीठा षारा होई ।
दादू कलिजुग अैसा बरतै, साचा बिरला कोई ॥ ४ ॥

॥ पद १६१ ॥ भगवंत भरोसा ॥

दादू मोहि भरोसा मोटा,
तारण तिरण सोई संगि मेरे, कहा करै कलि षोटा ॥ टेक ॥
दौं लागी दरिया थैं न्यारी, दरिया मंझि न जाई ।
मच्छ कच्छ रहैं जलि जेते, तिनकूं काल न षाई ॥ १ ॥
जब सूवै प्यंजर घर पाया, बाज रह्या बन मांहीं ।
जिनका सम्रथ रापणहारा, तिनकूं को डर नांहीं ॥ २ ॥
साचै झूठ न पूजै कबहूं, सति न लागै काई ।
दादू साचा सहजि समांनां, फिरि वै झूठ बिलाई ॥ ३ ॥

॥ पद १६२ ॥ साच झूठ निरनै ॥

सांई कौं साच पियारा,
साचै साच सुहावै देषौ, साचा सिरजनहारा ॥ टेक ॥
ज्यूं घण घांवां सार घड़ीजै, झूठ सबै झड़ि जाई ।
घण के घांऊं सार रहेगा, झूठ न मांहिं समाई ॥ १ ॥
कनक कसौटी अगनि मुषि दीजै, कंप सबै जलि जाई ।
यौं तौ कसणीं साच सहैगा, झूठ सहै नहिं भाई ॥ २ ॥

(१६१-१) मच्छ कच्छ की जगह मूल पुस्तकों में मछ कछ है ॥
(१६२-३) तत्तैं तत्त " " " तत्तैं तत है ॥

ज्यूं घृत कूं ले ताता कीजै, ताइ ताइ तत कीन्हां ।
तत्तैं तत्त रहैगा भाई, झूठ सबै जलि षीनां ॥ ३ ॥
यौं तौ कसणीं साच सहैगा, साचा कसि कसि लेवै ।
दादू दरसन साचा पावै, झूठे दरस न देवै ॥ ४ ॥

॥ पद १६३ ॥ करणी विना कथनी ॥

बातैं वादि जांहिंगी भइये, तुम्ह जिनि जांनौं बातनि पइये॥ टेक ॥
जब लग अपनां आप न जांनैं, तब लग कथनीं काची ।
आपा जांनि सांई कूं जांनैं, तब कथनी सब साची ॥ १ ॥
करनीं बिनां कंत नहिं पावै, कहैं सुनैं का होई ।
जैसी कहै करै जे तैसी, पावैगा जन सोई ॥ २ ॥
बातनि हीं जे निर्मल होवै, तौ काहे कूं कसि लीजै ।
सोनां अगनि दहै दसबारा, तब यहु प्रांन पतीजै ॥ ३ ॥
यौं हंम जांनां मन पतियांनां, करनीं कठिन अपारा ।
दादू तनका आपा जारै, तौ तिरत न लागै बारा ॥ ४ ॥

॥ पद १६४ ॥

पंडित, रांम मिलै सो कीजै,
पढ़ि पढ़ि बेद पुरान बषांनैं, सोई तत कहि दीजै ॥ टेक ॥
आतम रोगी बिषम बियाधी, सोई करि औषध सारा ।
परसत प्रांणीं होइ परम सुष, छूटै सब संसारा ॥ १ ॥
ए गुण इंद्री अग्नि अपारा, तासनि जलै सरीरा ।
तन मन सीतल होइ सदा सुष, सो जल नावो नीरा ॥ २ ॥

---

(१८४) दृष्टांत-जगजीवणजी बैल लदि, आये चरचा काज ।
गुर दादू यहु पद कह्यौ, सब तजि सिष सिरताज ॥

सोई मारग हमहिं बताव़ो, जेहि पंथि पहुंचैं पारा ।
भूलि न परै उलटि नहिं आवै, सो कुछ करहु बिचारा ॥ ३ ॥
गुर उपदेस देहु कर दीपक, तिमर मिटै सब सूझै ।
दादू सोई पंडित ग्याता, रांम मिलन की बूझै ॥ ४ ॥

॥ पद १६५ ॥

हरि रांम बिनां सब भर्मि गये, कोई जन तेरा साच गहै ॥टेक॥
पीवै नीर त्रिषा तनि भाजै, ग्यांन गुरू बिन कोइ न लहै ।
परगट पूरा समझि न आवै, तातैं सो जल दूरि रहै ॥ १ ॥
हरिष सोक दोउ समि करि राषै, थेक थेक कै संगि न बहै ।
अनतहि जाइ तहां दुष पावै, आपहि आपा आप दहै ॥ २ ॥
आपा पर भरम सब छाड़ै, तीनि लोक परि ताहि धरै ।
सो जन सही साचकौं परसै, अमर मिलै नहिं कबहुं मरै ॥३॥
पारब्रह्म सूं प्रीति निरंतर, रांम रसांइण भरि पीवै ।
सदा अनंद सुषी साचेसौं, कहै दादू सो जन जीवै ॥ ४ ॥

॥ पद १६६ ॥ भरम विधूसण ॥

जग अंधा नैंन न सूझै, जिन सिरजे ताहि न बूझै ॥ टेक ॥
पाहण की पूजा करै, करि आतम घाता ।
निर्मल नैंन न आवई, दोजग दिसि जाता ॥ १ ॥
पूजैं देव दिहाड़ियां, महा माई मांनैं ।
परगट देव़ निरंजनां, ताकी सेव न जांनैं ।
भैरौं भूत सब भ्रम के, पसु प्रांणीं धावैं ।
सिरजनहारा सबनि का, ताकूं नहिं पावैं ॥ ३ ॥

आप सुवारथ मेदनीं, कौ का नहिं करई ।
दादू साचे रांम बिन, मरि मरि दुष भरई ॥ ४ ॥

॥ पद १९७ ॥ आन उपासी विसमय वादी भरम ॥

साचा रांम न जांणैं रे, सब झूठ बषांणैं रे ॥ टेक ॥
झूठे देवा झूठी सेवा, झूठा करै पसारा ।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजणहारा ॥ १ ॥
झूठा पाक करै रे प्रांणीं, झूठा भोग लगावै ।
झूठा आडा पड़दा देवै, झूठा थाल बजावै ॥ २ ॥
झूठे बकता झूठे सुरता, झूठी कथा सुणावै ।
झूठा कलिजुग सब को मांनैं, झूठा भर्म डिढावै ॥ ३ ॥
थावर जंगम जल थल महियल, घटि घटि तेज समांनां ।
दादू आतम रांम हमारा, आदि पुरिष पहिचांनां ॥ ४ ॥

॥ पद १९८ ॥ निज मार्ग निर्णय ॥

मैं पंथि येक अपार के, मनि और न भावै ।
सोई पंथ पावै पीव का, जिसैं आप लषावै ॥ टेक ॥
को पंथि हिंदू तुरक के, को काहूं राता ।
को पंथि सोफी सेवड़े, को सिंन्यासी माता ॥ १ ॥
को पंथि जोगी जंगमा, को सकति पंथ ध्यावै ।
को पंथि कमड़े कापड़ी, को बहुत मनावै ॥ २ ॥
को पंथि काहूं के चलै, मैं और न जांनौं ।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही कौं मांनौं ॥ ३ ॥

(१९८—२) कमड़े कापड़ी=कमरी आदि कपड़ों के भेषधारी ॥

॥ पद १९९ ॥ साध मिलाप मंगल ॥

आज हमारे रांमजी, साध घरि आये ।
मंगलचार चहुं दिसि भये, आंनद बधाये ॥ टेक ॥
चौक पुरांऊं मोतियां, घसि चंदन लांऊं ।
पांच पदारथ पोइ कैं, यहु माल चढांऊं ॥ १ ॥
तन मन धन करौं वारनैं परदषनां दीजै ।
सीस हंमारा जीव ले, नौछावर कीजै ॥ २ ॥
भाव भगति करि प्रीति सौं, प्रेम रस पीजै ।
सेवा बंदन आरती, यहु लाहा लीजै ॥ ३ ॥
भाग हमारा हे सषी, सुष सागर पाया ।
दादू का दरसन किया, मिले त्रिभुवन राया ॥ ४ ॥

॥ पद २०० ॥ संत समागम प्रार्थना ॥

निरंजन नांउं के रसिमाते, कोई पूरे प्रांणीं राते ॥ टेक ॥
सदा सनेही रांम के, सोई जन साचे ।
तुम्ह बिन और न जांनहीं, रंगि तेरे ही राचे ॥
आंन न भावै येक तूं, सति साधू सोई ।
प्रेम पियासे पीव के, ऐसा जन कोई ॥ २ ॥
तुमहीं जीवनि उरि रहे, आनंद अनरागी ।
प्रेम मगन पिव प्रीतड़ी, लै तुम्ह सूं लागी ॥ ३ ॥
जे जन तेरे रंगि रंगे, दूजा रंग नांहीं ।
जनम सुफल करि लीजिये, दादू उन मांहीं ॥ ४ ॥

(१९९) देखौ साध के अंग की १२१ वीं साखी, पृष्ठ २३२ ॥

॥ पद २०१ ॥ अत्यंत निर्मल उपदेस ॥

चलु रे मन जहां अमृत बनां, निर्मल नीके संत जनां ॥ टेक ॥
निर्गुण नांउं फल अगम अपार, संतन जीवनि प्रांण अधार ॥१॥
सीतल छाया सुषी सरीर, चरण सरोवर निर्मल नीर ॥ २ ॥
सुफल सदा फल बारह मास, नांनां बांणीं धुनि परकास ॥३॥
तहां बास बसि अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै बवेक ॥४॥

॥ पद २०२ ॥

चलौ मन माहरां जहां म्यंत्र अम्हारा,
तहं जांमण मरण नहिं जांणियें नहिं जांणियें ॥ टेक ॥
मोहन माया मेरा न तेरा, आवा गमन नहीं जम फेरा ।
प्यंड पड़ै नहिं प्रांण न छूटै, काल न लागै आव न षूटै ॥१॥
अमर लोक तहं अषिल सरीरा, व्याधि बिकार न व्यापै पीरा ॥२॥
रांम राज कोइ भिड़ै न भाजै, अस्थिर रहणां बैठा छाजै ॥३॥
अलष निरंजन और न कोई, म्यंत्र अम्हारा दादू सोई ॥४॥

॥ पद २०३ ॥ बेली ॥

बेली आनंद प्रेम समाइ,
सहजैं मगन रांम रस सींचै, दिन दिन बधती जाइ ॥ टेक ॥
सतगुर सहजैं बाही बेली, सहजि मगन घर छाया ।
सहजैं सहजैं कूंपल मेल्है, जांणौं अवधूराया ॥ १ ॥
आतम बेली सहजैं फूलै, सदा फूल फल होई ।
काया बाड़ी सहजैं निपजै, जांनैं बिरला कोई ॥ २ ॥
मन हठ बेली सूकण लागी, सहजैं जुगि जुगि जीवै ।
दादू बेलि अमर फल लागै, सहजि सदा रस पीवै ॥ ३ ॥

॥ पद २०४ ॥ सबद बाण ॥

संतौ रांम बांण मोहि लागे,
मारत मिरग मरम तब पायौ, सब संगी मिलि जागे ॥टेक॥
चित चेतनि चयंतामणि चीन्है, उलटि अपूठा आया ।
मंदिर पैसि बहुरि नहिं निकसै, परम तत्त घर पाया ॥ १ ॥
आवै न जाइ जाइ नहिं आवै, तिहि रस मनवां माता ।
पांन करत परमानंद पायौ, थकित भयौ चलि जाता ॥ २ ॥
भयौ अपंग पंक नहिं लागै, निर्मल संगि सहाई ।
पूरण ब्रह्म अषिल अविनासी, तिहि तजि अनत न जाई ॥३॥
सो सर लागि प्रेम परकासा, प्रगटी प्रीतम बांणीं ।
दादू दीन दयालहि जांनैं, सुषमैं सुरति समांणीं ॥ ४ ॥

॥ पद २०५ ॥ निजथान निर्णय ॥

मधि नैंन निरषौं सदा, सो सहज सरूप,
देषतही मन मोहिया, है सो तत्त अनूप ॥ टेक ॥
त्रिवेणी तटि पाइया, मूरति अविनासी ।
जुगि जुगि मेरा भांवता, सोई सुष रासी ॥ १ ॥
तारूणी तटि देषिहौं, तहां अस्थांनां ।
सेवग स्वांमीं सांगि रहै, बैठे भगवांनां ॥ २ ॥
निर्भै थान सुहात सो, तहं सेवग स्वांमीं ।
अनेक जतन करि पाइया, मैं अंतरजांमीं ॥ ३ ॥
तेज तार परमिति नहीं, ऐसा उजियारा ।

(२०५) त्रिवेणी=त्रिकुटी, मध्य नैंन, दोनौं भौंहों के बीच मस्तक के अंदर, वही तारने वाली तारुणी समझनी चाहिये ॥

दादू पार न पाइये, सो सरूप संभारा ॥ ४ ॥

॥ पद २०६ ॥

निकटि निरंजन देषि हौं, छिन दूरि न जाई,
बाहरि भीतरि येकसा, सब रह्या समाई ॥ टेक ॥
सतगुर भेद लषाइया, तब पूरा पाया,
नैंननहीं निरषूं सदा, घरि सहजैं आया ॥ १ ॥
पूरेसौं पर्चा भया, पूरी मति जागी,
जीव जांनि जीवनि मिल्या, ऐसैं बड़भागी ॥ २ ॥
रोंम रोंम मैं रमि रह्या, सो जीवनि मेरा,
जीव पीव न्यारा नहीं, सब सांगि बसेरा ॥ ३ ॥
सुंदर सो सहजैं रहै, घटि अंतरजांमीं,
दादू सोई देषि हौं, सारौं संगि स्वांमीं ॥ ४ ॥

॥ पद २०७ ॥ परचय उपदेस ॥

सहज सहेलड़ी हे, तूं निर्मल नैंन निहारि ।
रूप अरूप निर्गुण अगुण मैं, त्रिभुवन देव मुरारि ॥ टेक ॥
बारंबार निरषि जगजीवन, इहि घरि हरि अविनासी ।
सुंदरि जाइ सेज सुष बिलसै, पूरण परम निवासी ॥ १ ॥
सहजैं संगि परसि जगजीवन, आसाणि अमर अकेला ।
सुंदरि जाइ सेज सुष सोवै, जीव ब्रह्म का मेला ॥ २ ॥
मिलि आनन्द प्रीति करि पावन, अगम निगम जहं राजा ।
जाइ तहां परसि पावन कौं, सुंदरि सारै काजा ॥ ३ ॥
मंगलचार चहूं दिसि रोपै, जब सुंदरि पिव पावै ।
परम जोति पूरे सौं मिलि करि, दादू रंग लगावै ॥ ४ ॥

॥ पद २०८ ॥ वस्तु निर्देश ॥

तहं आपै आप निरंजना, तहं निसवासुरि नहिं संजमा ॥टेक॥
तहं धरती अंबर नांहीं, तहं धूप न दीसै छांहीं ।
तहं पवन न चालै पांनीं, तहं आपै एक बिनांनीं ॥ १ ॥
तहं चंद न ऊगै सूरा, मुषि काल न बाजै तूरा ।
तहं सुष दुष का गमि नांहीं, ओ तौ अगम अगोचर मांहीं ॥२॥
तहं काल काया नहिं लागै, तहं को सोवै को जागै ।
तहं पाप पुंनि नहिं कोई, तहं अलष निरंजन सोई ॥ ३ ॥
तहं सहजि रहै सो स्वांमीं। सब घटि अंतरजांमीं ।
सकल निरंतर बासा, रटि दादू संगम पासा ॥ ४॥

॥ पद २०९ ॥

अवधू बोलि निरंजन बांणीं, तहं एकै अनहद जांणीं ॥ टेक॥
तहं बसुधा का बल नांहीं, तहं गगन घांम नहिं छांहीं ।
तहं चंद सूर नहिं जाई, तहं काल काया नहिं भाई ॥ १ ॥
तहं रैंणि दिवस नहिं छाया, तहं बाव बरण नहिं माया ।
तहं उदै अस्त नहिं होई, तहं मरै न जीवै कोई ॥ २ ॥
तहं नांहीं पाठ पुरांनां, तहं अगम निगम नहिं जांनां ।
तहं विद्या बाद नहिं ग्यांनां, नहिं तहां जोग अरु ध्यांनां ॥३॥
तहं निराकार निज ऐसा, जहं जांण्यां जाइ न जैसा ।
तहं सब गुण रहिता गहिये, तहं दादू अनहद कहिये ॥ ४ ॥

॥ पद २१० ॥ प्रसिद्ध साध ॥

बाबा को ऐसा जन जोगी,

---

(२०८) संगम=त्रिवेणी=त्रिकुटी ॥

अंजन छाँडे रहै निरंजन सहजि सदा रस भोगी । टेक ॥
छाया माया रहै बिबर्जित, प्यंड ब्रह्मंड नियारे ।
चंद सूर थैं अगम अगोचर, सो गहि तत्त बिचारे ॥ १ ॥
पाप पुंनि लिपै नहिं कबहूं, दोइ पष रहिता सोई ।
धरनि आकास ताहि थैं ऊपरि, तहां जाइ रत होई ॥ २ ॥
जीवण मरण न बांछै कबहूं, आवागवन न फेरा ।
पांनीं पवन परस नहिं लागै, तिहि संगि करै बसेरा ॥ ३ ॥
गुण आकार जहां गमि नांहीं, आपैं आप अकेला ।
दादू जाइ तहां जन जोगी, परम पुरिष सौं मेला ॥ ४ ॥

॥ पद २११ ॥ परचय पराभक्ति ॥

जोगी जांनि जांनि जन जीवै,
बिनहीं मनसा मनहि बिचारै । बिन रसनां रस पीवै ॥ टेक ॥
बिनहीं लोचन निरषि नैंन बिन, श्रवण रहित सुनि सोई ।
ऐसैं आतम रहै येकरस, तौ दूसर नांउं न होई ॥ १ ॥
बिनहीं मारग चलै चरण बिन, निहचल बैठा जाई ।
बिनहीं काया मिलै परस्पर, ज्यौं जल जलहि समाई ॥ २ ॥
बिनहीं ठाहर आसण पूरै, बिन कर बैन बजावै ॥
बिनहीं पांऊं नाचै निसदिन, बिन जिभ्या गुण गावै ॥ ३ ॥
सब गुण रहिता सकल बियापी, बिन इंद्री रस भोगी ।
दादू ऐसा गुरू हमारा, आप निरंजन जोगी ॥ ४ ॥

॥ पद २१२ ॥

इहै परम गुर जोगं, अमी महारस भोगं ॥ टेक ॥
मन पौना थिर साधं, अविगत नाथ अराधं, तहं सबद अनाहद नादं

पंच सषी परमोधं, अगम ग्यांन गुर बोधं, तहं नाथ निरंजन सोधं।२
सतगुर मांहिं बताव़ा, निराधार घर छावा, तहं जोति सरूपी पावा।
सहजैं सदा प्रकासं, पूरण ब्रह्म बिलासं, तहं सेवग दादू दासं॥४॥

॥ पद २१३ ॥ अनभई ॥

मूनै येह अचंभौ थाये, कीड़ीये हस्ती विडारयो, तेन्हैं बैठी षायेटेक
जांण हुतौ ते बैठौ हारे, अजांण तेन्हैं ता व़ाहे ।
पांगुलौ उजावा लाग्यौ, तेन्हैं कर को साहै ॥ १ ॥
नान्हौ हुतौ ते मोटौ थायौ, गगन मंडल नहिं माये ।
मोटेरौ बिस्तार भणींजै, तेतौ केन्हे जाये ॥ २ ॥
ते जाणैं जे निरषी जोव़ै, षोजी नैं वली मांहैं ।
दादू तेन्हौं मर्म न जांणैं, जे जिभ्या विहूणौं गाये ॥ ३ ॥

इति राग रांमकली समाप्त ॥ ८ ॥

---

(२१३) मूनै (मुझे) यह अंचभा थापे (होता है) कि कीड़ी (चींटीरूपी मन्सा) ने हस्ती रूपी मन को मार गिराया और उस को बैठ कर खाती है । जाण (जानकार जो मन) था सो हार बैठा । अजाण जो मनोकामना थीं तिन्हौं ने मन को व़ाहे (ठग लिया) । पंगुल मनसा उजावा लाग्यौ (प्रबल होगई) तिस को कर (हाथ से) कौन रोकै ॥१॥ नान्हौ (छोटी) थी जो मन्सा सौ मोटो थायो (बड़ी होगई) । कि गगनमंडल में भी नहीं अमाती है ॥ इस मोटे (बड़े) बिस्तार को भणीजै (रोकना चाहिये) जिस से वह मनसा कहीं न जाय ॥ २ ॥ इस बात को वह जानता है जो निरख (ध्यान) कर देखता है और मांहैं (भीतर वृत्ति के अंदर) खोजता भी है । दयालजी कहते हैं तिस परमात्मा का मर्म (अज्ञानी जन) नहीं जानते, उसे बिना जिह्वा के ही गा सकते हैं अर्थात् केवल शुद्ध बुद्धि द्वारा देख सकते हैं ॥ ३ ॥

राग आसावरी ॥ ८ ॥

॥ पद २१४ ॥ उत्तम सुमिरण ॥

तूंहीं मेरे रसनां, तूंहीं मेरे बैंनां, तूंहीं मेरे श्रवनां, तूंहीं मेरे नैंनां।टेक
तूंहीं मेरे आतम कवल मंझारी, तूंहीं मेरी मनसा तुम्ह परिवारी
तूंहीं मेरे मनहीं तूंहीं मेरे सासा, तूंहीं मेरे सुरतैं प्रांण निवासा ॥ २॥
तूंहीं मेरे नषसिष सकल सरीरा, तूंहीं मेरे जियरे ज्यौं जल नीरा॥३॥
तुम्ह बिन मेरे अब कोइ नांहीं, तूंहीं मेरी जीवन दादू मांहीं ।४।

॥ पद २१५ ॥ अनिन्य सरणि ॥

तुम्हारे नांइ लागि हरि जीवन मेरा,
मेरे साधन सकल नांव निज तेरा ॥ टेक ॥
दांन पुंनि तप तीरथ मेरे, केवल नांउं तुम्हारा ।
ये सब मेरे सेवा पूजा, अैसा बरत हमारा ॥ १ ॥
ये सब मेरे बेद पुरांनां, सुचि संजम है सोई ।
ग्यांन ध्यांन येई सब मेरे, और न दूजा कोई ॥ २ ॥
कांम क्रोध काया बसि करणां, ये सब मेरे नांमां ।
मुकता गुपता परगट कहिये, मेरे केवल रांमां ॥ ३ ॥
तारण तिरण नांउं निज तेरा, तुम्ह हीं एक अधारा ।
दादू अंग येक रस लागा, नांउं गहै भौ पारा ॥ ४ ॥

॥ पद २१६ ॥

हरि केवल एक अधारा, सोइ तारण तिरण हमारा ॥ टेक ॥
नां मैं पंडित पढि गुणि जांनौं, नां कुछ ग्यांन बिचारा ।
नां मैं अगमी जोतिग जांणौं, नां मुझ रूप सिंगारा ॥ १ ॥
नां तप मेरे इंद्री निग्रह, नां कुछ तीरथ फिरणां ।
देवल पूजा मेरे नांहीं, ध्यांन कछू नहिं धरणां ॥ २ ॥
जोग जुगति कछू नहिं मेरे, नां मैं साधन जांनौं ।
औषधि मूली मेरे नांहीं, नां मैं देस बषांनौं ॥ ३ ॥
मैं तौ और कछू नहिं जांनूं, कहौ और क्या कीजै ।
दादू येक गलित गोबिंद सौं, इहि विधि प्रांण पतीजै ॥ ४ ॥

॥ पद २१७ ॥ परचै ॥

पीव घरि आवनौ ए, अहो मोहि भावनौ ते ॥ टेक ॥
मोहन नीकौ री हरी, देषौंगी अंषियां भरी ।
राषौं हौं उर धरी प्रीति षरी, मोहन मेरौ री माई ।
रहौं हौं चरणौं धाई, आनंद बधाई, हरि के गुण गाई ॥ १ ॥
दादू रे चरण गहिये, जाई ने तिहां तौ रहिये ।
तन मन सुष लहीये, बीनती गहीये ॥ २ ॥

॥ पद २१८ ॥

हां माई ! मेरौ रांम बैरागी, तजि जिनि जाइ ॥ टेक ॥
रांम बिनोद करत उर अंतरि, मिलिहौं बैरागनि धाइ ॥ १ ॥

(२१६-१) नां मुझ रूप सिंगारा = ना मुझे रूप शृङ्गार (भेषादि) आता है ॥

(३) नां मैं देस बषांनौं = ना मैं देश में विख्यात हूं ॥

जोगनि ह्वै कर फिरौंगी बदेसा, रांम नांम ल्यौ लाइ ॥ २ ॥
दादू कौ स्वांमी है उदासी, रहिहौं नैंन दोइ लाइ ॥ ३ ॥

॥ पद २१६ ॥ उपदेस चितावणी ॥

रे मन गोबिंद गाइ रे गाइ, जनम अबिरथा जाइ रे जाइ ॥ टेक ॥
ऐसा जनम न बारंबारा, तातैं जपिले रांम पियारा ॥ १ ॥
यहु तन ऐसा बहुरि न पावै, तातैं गोबिंद काहे न गावै ॥२॥
बहुरि न पावै मानिषा देही, तातैं करिले रांम सनेही ॥ ३ ॥
अबकै दादू किया निहाला, गाइ निरंजन दीन दयाला ॥ ४ ॥

॥ पद २२० ॥ काल चितावणी ॥

मनरे सोवत रैंनि बिहांनीं, तैं अजहूं जात न जांनीं ॥ टेक ॥
बीती रैंनि बहुरि नहिं आवै, जीव जागि जिनि सोवै ।
चार चूं दिसा चोर घर लागे, जागि देष क्या होवै ॥ १ ॥
भोर भये पछितावन लागे, मांहिं महल कुछ नांहीं ।
जब जाइ काल काया कर लागै, तब सोधै घर मांहीं ॥ २ ॥
जागि जतन करि राषौ सोई, तब तन तत्त न जाई ।
चेतनि पहरै चेतत नांहीं, कहि दादू समझाई ॥ ३ ॥

॥ पद २२१ ॥

देषत ही दिन आइ गये, पलटि केस सब सेत भये ॥ टेक ॥
आई जुरहा मीच अरु मरणां, आया काल अबै क्या करणां ॥१॥
श्रवणौं सुरति गई नैंन न सूझै, सुधि बुधि नांठी कह्या न बूझै ॥२॥
मुषतैं सबद बिकल भइ बांणीं, जन्म गया सब रैंनि बिहाणीं ॥३॥
प्रांण पुरिस पछितांवण लागा, दादू औसरि काहे न जागा ॥४॥

(२२०-३) चेतनि पहरै = चेतने के समय में ॥

॥ पद २२२ ॥ उपदेस ॥

हरि विन हां हो कहुं सचु नांहीं, देषत जाइ विषै फल पांहीं ॥टेक॥
रस रसनां के मीन मन भीरा, जलथैं जाइ यौं दहै सरीरा ॥१॥
गजके ग्यांन मगन मदि माता, अंकुस डोरि गहै फंद गाता।२।
मरकट मूठी मांहिं मन लागा, दुषकी रासि भ्रमै भ्रम भागा ॥३॥
दादू देषु हरी सुष दाता, ताकूं छाड़ि कहां मन राता ॥ ४ ॥

॥ पद २२३ ॥

सांई बिनां सतोष न पावै, भावै घर तजि बन बन धावै ॥ टेक ॥
भावै पढि गुनि वेद उचारै, आगम निगम सबै विचारै ॥ १ ॥
भावै नव षंड सब फिरि आवै, अजहूं आगैं काहे न जावै ॥ २ ॥
भावै सब तजि रहै अकेला, भाई बंध न काहूं मेला ॥ ३ ॥
दादू देषै सांई सोई, साच बिनां संतोष न होई ॥ ४ ॥

॥ पद २२४ ॥ मन उपदेस चितावणी ॥

मन माया रातौ भूले,
मेरी मेरी करि करि बौरे । कहा मुगध नर फूले ॥ टेक ॥
माया कारणि मूल गंवावै, समझि देषि मन मेरा ।
अंति काल जब आइ पहूंता, कोई नहीं तब तेरा ॥ १ ॥
मेरी मेरी करि नर जांणैं, मन मेरी करि रहिया ।
तन यहु मेरी कामि न आवै, प्रांण पुरिस जब गहिया ॥ २ ॥
राव रंक सब राजा रांणां, सबहिन कौं बौरावै ।
छत्रपति भूपति तिनहूं के संगि, चलती बेर न आवै ॥ ३ ॥
चेति बिचारि जांनि जिय अपनैं, माया संगि न जाई ।
दादू हरि भज, समझि सयांनां, रहौ रांम ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

॥ पद २२५ ॥ काल चितावणी ॥

रहसी येक उपांवनहारा, और चलिसी सब संसारा ॥ टेक ॥
चलिसी गगन धरणि सब चलिसी, चलसी पवन अरु पांणीं ।
चलसी चंद सूर पुनि चलिसी, चलसी सबै उपांनीं ॥ १ ॥
चलसी दिवस रैंणि भी चलसी, चलसी जुग जमवारा ।
चलसी काल ब्याल पुनि चलसी, चलसी सबै पसारा ॥ २ ॥
चलसी सरग नरक भी चलसी, चलसी भूचणहारा ।
चलसी सुष दुष भी चलसी, चलसी कर्म बिचारा ॥ ३ ॥
चलसी चंचल निहचल रहसी, चलसी जे कुछ कीन्हां ।
दादू देषि रहै अविनासी, और सबै घट षीनां ॥ ४ ॥

॥ पद ॥ २२६ ॥

इहि कालि हम मरणें कूं आये, मरण मीत उन संगि पठाये ॥टेक॥
जबथैं यहु हम मरण बिचारा, तबथैं आगम पंथ संवारा ॥१॥
मरण देषि हंम गर्ब न कीन्हां, मरण पठाये सो हंम लीन्हां ॥२॥
मरणां मीठा लागै मोहि, इहि मरणें मीठा सुष होइ ॥ ३ ॥
मरणें पहिली मरै जे कोई, दादू सो अजरावर होई ॥ ४ ॥

॥ पद २२७ ॥

रे मन मरणें कहा डराई, आगै पीछैं मरणां रे भाई ॥ टेक ॥
जे कुछ आवै थिर न रहाई, देषत सबै चल्या जग जाई ॥१॥
पीर पैकंबर किया पयांनां, सेष मसाइक सबै समांनां ॥ २ ॥
ब्रह्मा बिश्न महेस महाबलि, मोटे मुनि जन गये सबै चालि ॥३॥
निहचल सदा सोई मन लाइ, दादू हरिष रांम गुण गाइ ॥ ४ ॥

॥ पद २२८ ॥ वस्तु निरदेस निर्णय ॥

ऐसा तत्त अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न षाई ॥ टेक ॥
पावकि जरै न मार्यो मरई, काट्यौ कटै न टारुयौ टरई ॥ १ ॥
अषिर षिरै न लागै काई, सीत घांम जल डूबि न जाई ॥ २ ॥
माटी मिलै न गगन बिलाई, अघट येक रस रह्या समाई ॥ ३ ॥
ऐसा तत्त अनूपं कहिये, सो गहि दादू काहे न रहिये ॥ ४ ॥

॥ पद २२९ ॥ मन उपदेस ॥

मन रे सेवि निरंजन राई, ताकौं सेवौ रे चित लाई ॥ टेक ॥
आदि अंतैं सोई उपजै, परलै ले छिपाई ॥
बिन थंभां जिन गगन रहाया, सो रह्या सबनि मैं समाई ॥ १ ॥
पाताल मांहैं जे आराधै, बासिग रे गुण गाई ।
सहस मुष जिभ्या ह्वै ताकै, सोभी पार न पाई ॥ २ ॥
सुर नर जाकौ पार न पावैं, कोटि मुनीं जन ध्याई ।
दादू रे तन ताकौ है रे, जाकूं सकल लोक आराही ॥ ३ ॥

॥ पद २३० ॥ जीव उपदेस ॥

निरंजन जोगी जांनि लै चेला, सकल बियापी रहै अकेला ॥ टेक ॥
षपर न झोली डंड अधारी, मढी न माया लेहु बिचारी ॥ १ ॥
सींगी मुद्रा बिभूति न कंथा, जटा जाप आसण नहिं पंथा ॥ २ ॥
तीरथ ब्रत न बन षंडि बासा, मांगि न षाइ नहीं जागि आसा ॥ ३ ॥
अमर गुरू अविनासी जोगी, दादू चेला महारस भोगी ॥ ४ ॥

(२२९-२) बासिग = वासुकि नाग, " सर्पाणमस्मि वासुकिः " भगवद्गीता १०-२८ ॥

॥ पद २३१ ॥ उपदेस ॥

जोगिया बैरागी बाबा, रहै अकेला उनमनि लागा ॥ टेक ॥
आत्म जोगी धीरज कंथा, निहचल आसण आगम पंथा ॥१॥
सहजैं मुद्रा अलष अधारी, अनहद सींगी रहणि हमारी ॥२॥
काया बन षंड पांचौं चेला, ग्यांन गुफा मैं रहै अकेला ॥३॥
दादू दरसन कारनि जागै, निरंजन नगरी भिष्या मांगै ॥४॥

॥ पद २३२ ॥ समता ज्ञान ॥

बाबा कहु दूजा क्यौं कहिये, ताथैं इहि संसै दुष सहिये ॥टेक॥
यहु मति ऐसी पसुवां जैसी, काहे चेतत नांहीं ।
अपनां अंग आप नहिं जांनैं, देषै दर्पण मांहीं ॥ १ ॥
इहि मति मींच मरण के तांई, कूप सिंघ तहं आया ।
डूबि मुवा भनि मरम न जांन्यां, देषि आपनी छाया ॥ २ ॥
मध के माते समझत नांहीं, मैंगल की मति आई ।
आपैं आप आप दुष दीया, देषि आपणीं झाई ॥ ३ ॥
मन समझै तौ दूजा नांहीं, बिन समझें दुष पावै ।
दादू ग्यांन गुरू का नांहीं, समझि कहां थैं आवै ॥ ४ ॥

॥ पद २३३ ॥

बाबा नांहीं दूजा कोई,
येक अनेक नांउं तुम्हारे, मोपैं और न होई ॥ टेक ॥
अलष इलाही एक तूं, तूंहीं रांम रहीम ।
तूंहीं मालिक मोहनां, केसौ नांउं करीम ॥ १ ॥
सांई सिरजनहार तूं, तूं पांवन तूं पाक ।
तूं काइम करतार तूं, तूं हरी हाजरी आप ॥ २ ॥

रमिता राज़िक येक तूं, तूं सारंग सुबहांन ।
क़ादिर करता येक तूं, तूं साहिब सुलतांन ॥ ३ ॥
अविगत अल्लः येक तूं, गनी गुसांई येक ।
अजब अनूपम आप है, दादू नांउं अनेक ॥ ४ ॥

॥ पद २३४ ॥ समर्थाई ॥

जीवत मारे मुये जिलाये, बोलत गुंगे गुंग बुलाये ॥ टेक ॥
जागत निस भरि सेई सुलाये, सोवत रैंनी सोई जगाये ॥१॥
सूझत नैंनहुं लोइ न लीये, अंध बिचारे ता मुषि दीये ॥ २ ॥
चलते भारी ते बिठलाये, अपंग बिचारे सोई चलाये ॥ ३ ॥
ऐसा अद्भुत हम कुछ पाया, दादू सतगुर कहि समझाया॥४॥

॥ पद २३५ ॥ प्रश्न ॥

क्यौं करि यहु जग रच्यौ गुसांई,
तेरे कौंन बिनोद बन्यौ मन मांहीं ॥ टेक ॥
कै तुम्ह आपा परगट करणां, कै यहु रचिले जीव़ उधरनां ॥ १ ॥
कै यहु तुम्हकौं सेवग जांनैं, कै यहु रचिले मन के मांनैं ॥२॥
कै यहु तुम्हकौं सेव़ग भावै़, कैं यहु रचिले षेल दिषावै़ ॥३॥
कै यहु तुम्हकौं षेल पियारा, कै यहु भावै़ कीन्ह पसारा ॥४॥
यहु सब दादू अकथ कहांनीं, कहि समझावौ सारंग प्रांनीं॥५॥

॥ साखी ज्वाब की ॥

दादू परमारथ कौं सब किया, आप सवारथ नांहिं ।
परमेसुर परमारथी, कै साधू कलि मांहिं । (१५—५०)
षालिक षेलै षेल करि, बूझै बिरला कोइ ।
ले करि सुषिया नां भया, देकरि सुषिया होइ । (२१—४१)

॥ पद २३६ ॥ समर्थाई ॥

हरे हरे सकल भुवन भरे, जुगि जुगि सब करैं ।
जुगि जुगि सब धरै, अकल सकल जरै, हरे हरे ॥ टेक ॥
सकल भुवन छाजै, सकल भुवन राजै, सकल कहै ।
धरती अंबर गहै, चंद सूर सुधि लहै, पवन प्रगट बहै ॥ १ ॥
घट घट आप देवै, घट घट आप लेवै, मंडित माया ।
जहां तहां आप राया, जहां तहां आप छाया, अगम अगम पाया ॥
रस मांहैं रस राता, रस मांहैं रस माता, अमृत पीया ।
नूर मांहैं नूर लीया, तेज मांहैं तेज कीया, दादू दरस दीया ॥३॥

॥ पद २३७ ॥ परचै उपदेस ॥

पीव़ पीव़ आदि अंति पीव़,
परसि परसि अंग संग, पीव़ तहां जीव़ ॥ टेक ॥
मन पवन भवन गवन, प्रांण कवल मांहिं ।
निधि निवास बिधि बिलास, राति दिवस नांहिं ॥ १ ॥
सास बास आस पास, आतम अंगि लगाइ ।
बैंन बैंन निरषि नैंन, गाइ गाइ रिझाइ ॥ २ ॥
आदि तेज अंति तेज, सहजैं सहजि आइ ।
आदि नूर अंति नूर, दादू बलि बलि जाइ ॥ ३ ॥

॥ पद २३८ ॥

नूर नूर अव्व़ल आषिर नूर,
दाइम काइम, काइम दाइम, हाजिर है भरपूर ॥ टेक ॥
असमांन नूर जिमीं नूर, पाक परवरदिगार ।
आब नूर, बाद नूर, षूब षूबां यार ॥ १ ॥

ज़ाहिर बातिन, हाज़िर नाज़िर, दांनां तूं दीवांन।
अजब अजाइब नूर दीदम, दादू है हैरांन ॥ २ ॥

॥ पद २३६ ॥ रस ॥

मैं अमली मतिवाला माता, प्रेम मगन मेरा मन राता ॥टेक॥
अमी महारस भरि भरि पीवै, मन मतिवाला जोगी जीवै ॥१॥
रहै निरंतर गगन मंझारी, प्रेम पियाला सहजि षुमारी ॥२॥
आसणि अवधू अमृतधारा, जुगि जुगि जीवै पीवनहारा ॥३॥
दादू अमली इहि रस माते, रांम रसाइन पीवत छाके ॥४॥

॥ पद २४० ॥

सुष दुष संसा दूरि किया, तब हम केवल रांम लिया ॥टेक॥
सुष दुष दोऊ भरम बिचारा, इनसूं बंध्या है जग सारा ॥१॥
मेरी मेरा सुषके तांई, जाइ जनम नर चेतै नांहीं ॥ २ ॥
सुषके तांई झूठा बोलै, बांधे बंधन कबहूं न षोलै ॥ ३ ॥
दादू सुष दुष संगि न जाई, प्रेम प्रीति पिय सौं ल्यौ लाई ॥४॥

॥ पद २४१ ॥ हैरान ॥

कासौं कहूं हो अगम हरि बाता,
गगन धरणी दिवस नहिं राता ॥ टेक ॥
संग न साथी गुरू न चेला, आसन पास यूं रहै अकेला ॥ १ ॥
बेद न भेद न करत बिचारा, अबरण बरण सबनि थैं न्यारा ॥२॥
प्रांण न प्यंड रूप नहिं रेषा, सोइ ततसार नैंन बिन देषा ॥३॥
जोग न भोग मोह नहिं माया, दादू देषु काल नहिं काया ॥४॥

॥ पद २४२ ॥ गुरज्ञान ॥

मेरा गुरू ऐसा ग्यांन बतावै, ।
काल न लागै संसा भागै, ज्यूं है त्यूं समझावै ॥ टेक ॥

अमर गुरू के आसणि रहिये, परम जोति तहं लहिये ।
परम तेज सो डिढ करि गहिये, गहिये लहिये रहिये ॥ १ ॥
मन पवनां गहि आतम षेला, सहज सुंनि घर मेला ।
अगम अगोचर आप अकेला, अकेला मेला षेला ॥ २ ॥
धरती अंबर चंद न सूरा, सकल निरंतर पूरा ।
सबद अनाहद बाजहि तूरा, तूरा पूरा सूरा ॥ ३ ॥
अबिचल अमर अभै पद दाता, तहां निरंजन राता ।
म्यांन गुरू ले दादू माता, माता राता दाता ॥ ४ ॥

॥ पद २४३ ॥

मेरा गुरु आप अकेला षेलै,
आपै देवै आपै लेवै, आपै द्वै कर मेलै ॥ टेक ॥
आपैं आप उपावै माया, पंच तत्त करि काया ।
जीव जनम ले जग मैं आया, आया काया माया ॥ १ ॥
धरती अंबर महल उपाया, सब जग धंधै लाया ।
आपैं अलष निरंजन राया, राया लाया उपाया ॥ २ ॥
चंद सूर दोइ दीपक कीन्हां, राति दिवस करि लीन्हां ।
राजिक रिजक सबनि कूं दीन्हां, दीन्हां लीन्हां कीन्हां ॥ ३ ॥
परम गुरू सो प्रांण हमारा, सब सुष देवै सारा ।
दादू षेलै अनत अपारा, अपारा सारा हमारा ॥ ४ ॥

॥ पद २४४ ॥ हैरान ॥

थकित भयौ मन कह्यौ न जाई, सहजि समाधि रह्यौ ल्यौ लाई ।टेक।

(२४४-२) साइर (सागर) की तुलना बूंद नहीं कर सकता ।
(२४४-३) अनल पंषि आकास कूं, बहुत उड्या करि जोर ।

जे कुछ कहिये सोचि बिचारा, ग्यांन अगोचर अगम अपारा १
साइर बूंद कैसैं करि तोलै, आप अबोल कहा कहि बोलै ।२।
अनल पंष परै पर दूरि, अैसैं रांम रह्या भरपूरि ॥ ३ ॥
इब मन मेरा अैसैं रे भाई, दादू कहिबा कहण न जाई ।४।

॥ पद २४५ ॥

अविगत की गति कोइ न लहै, सब अपनां उनमांन कहै टेक
केते ब्रह्मा बेद बिचारैं केते पंडित पाठ पढ़ैं ।
केते अनभै आतम षोजैं, केते सुर नर नांउं रढ़ैं ॥ १ ॥
केते ईसुर आसणि बैठे, केते जोगी ध्यांन धरैं ।
केते मुनियर मन कूं मारैं, केते ग्यांनी ग्यांन करैं ॥ २ ॥
केते पीर केते पैकंबर, केते पढ़ैं कुरांनां ।
केते काज़ी केते मुल्लां, केते सेष सयांनां ॥ ३ ॥
केते पारिष अंत न पावैं, वार पार कछु नांहीं ।
दादू कीमति कोई न जांनैं, केते आवैं जांहीं ॥ ४ ॥

॥ पद २४६ ॥

ये हौं बूझि रही पिव जैसा, है तैसा कोइ न कहै रे ।
अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहै रे।टेक।
वार पार कोइ अंत न पावै, आदि अंति मधि नांहीं रे ।
षरे सयांने भये दिवाने, कैसा कहां रहै रे ॥ १ ॥
ब्रह्मा विश्न महेसुर बूझै, केता कोई बतावै रे ।
सेष मसाइक पीर पैकंबर, है कोइ अगह गहै रे ॥ २ ॥

अंबर धरती सूर ससि बूझै, बाव़ बरण सब सोधै रे ।
दादू चक्रित है हैरांनां, को है करम दहै रे ॥ ३॥

इति राग आसावरी समाप्त ॥ ६ ॥

राग सिंधूड़ौ ॥ १० ॥

॥ पद २४७ ॥ परचै उपदेस ॥

हंस सरोव़र तहां रमैं, सूभर हरि जल नीर ।
प्रांणीं आप पषालीये, त्रमल सदा होइ सरीर ॥ टेक ॥
मुकताहल मन मांनियां, चूगै हंस सुजांन ।
मधि निरंतर झूलिये, मधुर बिमल रसपांन ॥ १ ॥
भवर कवल रस बासनां, रातौ रांम पीवंत ।
अरस परस आनंद करै, तहां मन सदा होइ जीवंत ॥ २ ॥
मींन मगन मांहैं रहै, मुदित सरोवर मांहिं ।
सुष सागर क्रीला करैं, पूरण परामिति नांहिं ॥ ३ ॥
निरभै तहां भै को नहीं, बिलसै बारंबार ।
दादू दरसन कीजिये, सनमुष सिरजनहार ॥ ४ ॥

पद २४८ ॥

सुष सागर मैं झूलिबौ, कुसमल झड़ै हो अपार ।

---

(२४८) इहि रसि रातौ हौ दास=इस रस में राता दास होवै ॥

निर्मल प्रांणी होइबौ, मिलिबौ सिरजनहार ॥ टेक ॥
तिहि संजमि पांवन सदा, पंक न लागै प्रांण ।
कवल बिगासै तिहिं तणौं, उपजै ब्रह्म गियांन ॥ १ ॥
अगम निगम तहं गमि करै, तत्तैं तत्त मिलांन ।
आसणि गुर कै आइबौ, मुकतैं महलि समांन ॥ २ ॥
प्रांणीं परि पूजा करै, पूरै प्रेम बिलास ।
सहजैं सुंदर सेविये, लागी लै कविलास ॥ ३ ॥
रैंणि दिवस दीसै नहीं, सहजैं पुंज प्रकास ।
दादू दरसन देषिये, इहि रसि रातौ हौ दास ॥ ४ ॥

॥ पद २४६ ॥

अविनासी संगि आत्मां, रमैं हौ रैंणि दिव रांम ।
एक निरंतर ते भजैं, हरि हरि प्रांणीं नांम ॥ टेक ॥
सदा अखंडित उरि बसै, सो मन जांणीं ले ।
सकल निरंतर पूरि सब, आतम रातौ ते ॥ १ ॥
निराधार निज बैसणौं, जिहि तति आसण पूरि ।
गुर सिष आनंद ऊपजै, सनमुष सदा हजूरि ॥ २ ॥
निहचल ते चालै नहीं, प्रांणीं ते परिमांण ।
साथी साथैं ते रहैं, जांणैं जांण सुजांण ॥ ३ ॥
ते निरगुण आगुण धरी, मांहैं कौतिगहार ।
देह अछत अलगौ रहै, दादू सेवि अपार ॥ ४ ॥

॥ पद २५० ॥

पारब्रह्म भजि प्रांणीया, अविगत एक अपार ।
अविनासी गुर सेविये, सहजैं प्रांण अधार ॥ टेक ॥

ते पुर प्रांणीं तेहनौ, अविचल सदा रहंत ।
आदि पुरिस ते आपणौं, पूरण परम अनंत ॥ १ ॥
अविगत आसण कीजिये, आपैं आप निधांन ।
निरालंब भजि तेहनौं, आनंद आतमरांम ॥ २ ॥
निरगुण निहचल थिर रहै, निराकार निज सोइ ।
ते सति प्रांणीं सेविये, लै समाधि रत होइ ॥ ३ ॥
अमर आप रमिता रमैं, घटि घटि सिरजनहार ।
गुण अतीत भजि प्रांणींया, दादू येह विचार ॥ ४ ॥

॥ पद २५१ ॥ सूरातन ॥

क्यूं भाजै सेवग तेरा, ऐसा सिरि साहिब मेरा ॥ टेक ॥
जाके धरती गगन आकासा, जाके चंद सूर कविलासा ।
जाके तेज पवन जल साजा, जाके पंचतत्त के बाजा ॥ १ ॥
जाके अठार भार बनमाला, गिरि पर्वत दीनदयाला ।
जाके साइर अनंत तरंगा, जाके चौरासी लष संगा ॥ २ ॥
जाके ऐसे लोक अनंता, राचि राषे बिधि बहु भंता ।
जाके ऐसा षेल पसारा, सब देषै कौतिगहारा ॥ ३ ॥
जाके काल मीच डर नांहीं, सो बराति रह्या सब मांहीं ।
मनि भावै षेलै षेला, ऐसा है आप अकेला ॥ ४ ॥
जाके ब्रह्मा ईसुर बंदा, सब मुनिजन लागे अंगा ।
जाके साध सिध सब मांहीं, परिपूरण परिमित नांहीं ॥ ५ ॥
सोइ भानै घड़ै संवारै, जुग केते कबहूं न हारै ।
ऐसा हरि साहिब पूरा, सब जीवनि आतममूरा ॥ ६ ॥

सो सबहिन की सुधि जांनैं, जो जैसा तैसी बांनैं।
सर्बगीं रांम सयांनां, हरि करै सो होइ निदांनां ॥ ७ ॥
जे हरिजन सेवग भागै, तौ अैसा साहिब लाजै।
अब मरण मांडि हरि आगै, तौ दादू बांण न लागै ॥ ८ ॥

॥ पद २५२ ॥

हरि भजतां किम भाजिये,
भाजैं भल नांहीं, भागें भल क्यूं पाइये, पछितावै मांहीं॥ टेक ॥
सूरौ सो सहजैं भिड़ै, साइर उर झेलै,
रण रोकै भाजै नहीं, ते बांण न मेलै ॥ १ ॥
सती सन साचा गहै, मरणैं न डराई,
प्रांण तजै जग देषतां, पीयड़ौ उरलाई ॥ २ ॥
प्रांण पतंगा यौं तजै, वो अंग न मोड़ै,
जोबन जारै जोति सूं नैंनां भल जोड़ै ॥ ३ ॥
सेवग सो स्वांमीं भजै, तन मन तजि आसा,
दादू दरसन ते लहै, सुष संगम पासा ॥ ४ ॥

॥ पद २५३ ॥ चितावणी ॥

सुणि तूं मना रे मूरिष मूंढ बिचार,
आवै लहरि बिहांवणीं, दमैं देह अपार ॥ टेक ॥
करिबौ है तिम कीजिये रे, सुमिरि सो आधार ॥ १ ॥

---

(२५२) किम=क्यों। "साइर" की जगह किसी २ पुस्तक में "सार" है। "बांण" की जगह पुस्तक नं० २, ३, ५ में "मांण" है ॥

(२५३) "दमैं" की जगह पु० नं० १ में "दवैं" है ॥

चरण बिहूणौं चालिबौ रे, संभारी ले सार ॥ २ ॥
दादू तेहज लीजिये रे, साचौ सिरजनहार ॥ ३ ॥

॥ पद २५४ ॥

रे मन साथी माहरा, तूं समझायौ कै बारो रे ।
रातौ रंग कसूंभ कै, तैं बीसारयो आधारो रे ॥ टेक ॥
सुपिनां सुषकैं कारणै, फिरि पीछैं दुष होई रे ।
दीपक दृष्टि पतंग ज्यूं, यूं भर्मि जलै जिनि कोई रे ॥ १ ॥
जिभ्या स्वारथि आपणैं, ज्यूं मींन मरै तजि नीरो रे ।
मांहैं जाल न जांणियौ, ताथैं उपनौं दुष सरीरो रे ॥ २ ॥
स्वादैंहीं संकुटि परयौ, देषत हीं नर अंधो रे ।
मूरिष मूठी छाड़ि दे, होइ रह्यौ निरबंधो रे ॥ ३ ॥
मांनि सिषांवणि माहरी, तूं हरि भज मूल न हारी रे ।
सुष सागर सोइ सेविये, जन दादू रांम सभारी रे ॥ ४ ॥

इति राग सिंधूड़ौ समाप्त ॥ १० ॥

अथ राग गूजरी (देवगंधार) ॥ ११ ॥

॥ पद २५५ ॥ अनिन्य सरण ॥

सरणि तुम्हारी आइ परे,
जहां तहां हम सब फिरि आये, राषि राषि हम दुषित षरे ॥ टेक ॥

(११) पुस्तक नं० २, ३, ५ में इस राग का नाम देवगंधार दिया है,

कसि कसि काया तप व्रत करि करि, भर्मत भर्मत हम भूले परे ।
कहुं सीतल कहुं तपति दहे तन, कहुं हम करवत सीस धरे ॥ १ ॥
कहुं बन तीरथ फिरि फिरि थाके, कहुं गिरि पर्बत जाइ चढ़े ।
कहूं सिषिर चढ़ि परे धरणि पर, कहुं हति आपा प्राण हरे ॥ २ ॥
अंध भये हम निकटि न सूझै, ताथैं तुम्ह तजि जाइ जरे ।
हाहा हरि अब दीन लीन करि, दादू बहु अपराध भरे ॥ ३ ॥

॥ पद २५५ ॥ पतिव्रत उपदेस ॥

बौरी तूं बार बार बौरांनीं,
सषी सुहाग न पावै ऐसैं । कैसैं भरमि भुलांनीं ॥ टेक ॥
चरनौं चेरी चित नहिं राष्यौ, पतिव्रत नांहिं न जांन्यौं ।
सुंदरि सेज संगि नहिं जांनैं, पीव सूं मन नहिं मांन्यौं ॥ १ ॥
तन मन सबै सरीर न सौंप्यौ, सीस नाइ नहिं ठाढी ।
इकरस प्रीति रही नहिं कबहूं, प्रेम उमंग नहिं बाढ़ी ॥ २ ॥
प्रीतम अपनौं परम सनेही, नैंन निरषि न अघांनीं ।
निसबासुरि आंनि उर अंतरि, परम पूज्य नहिं जांनीं ॥३॥
पतिव्रत आगैं जिन जिन पाल्यौ, सुंदरि तिनि सब छाजै ।
दादू पिव बिन और न जांनैं, ताहि सुहाग बिराजै ॥ ४ ॥

॥ पद २५७ ॥ उपदेस चितावणी ॥

मन मूरिषा ! तैं यौंहीं जन्म गवायौ, सांई केरी सेवा न कीन्हीं ।

गूजरी पु० १ में ही है ॥ " राषि राषि " का अर्थ यहां रक्ष रक्ष है अर्थात् हे प्रभु ! हमारी रक्षा कर ॥

(२५६-२ , " सीस नाइ नहिं" की जगह पुस्तक नं० २, ३, ५ में सीस नवाइ न " है ॥

इहि कलि काहे कूं आयौ ॥ टेक ॥
जिन बातन्य तेरौ छूटिक नांहीं, सोइ मन तेरैं भायौ ।
कांमीं ह्वै बिषिया संगि लागौ, रोम रोम लपटायौ ॥ १ ॥
कुछ इक चेति बिचारी देषौ, कहा पाप जिय लायौ ।
दादू दास भजन करि लीजै, सुपिनैं जग डहकायौ ॥ २ ॥
इति राग गूजरी (देव गंधार) समाप्त ॥ ११ ॥

अथ राग कल्हेरौ ॥ १२ ॥

॥ पद २५८ ॥ बीनती ॥

वाल्हा हूं ताहरी तूं माहरौ नाथ,
तुम सूं पहली प्रीतड़ी, पूरिबलौ साथ ॥ टेक ॥
वाल्हा मैं तूं म्हारो ओलषियौ रे, राषिस तूंनैं रिदा मंझारि ॥
हूं पामूं पीव आपणों रे, त्रिभुवन दाता देव मुरारि ॥ १ ॥
वाल्हा मन माहरौ मन मांहैं राषिस, आत्म येक निरंजन देव।
चित मांहैं चित सदा निरंतर, येणीं पेरैं तुम्हारी सेव ॥ २ ॥
वाल्हा भाव भगति हरि भजन तुम्हारौ, प्रेमैं पूरि कवल बिगास
अभिअंतरि आनंद अविनासी, दादू नी एवैं पूरवी आस॥३॥

॥ पद २५९ ॥

वारीवार कहूं रे गहिला, रांम नांम कांइ बिसारयौ रे ।

---

(२५८) ओलषियौ = जाना हुआ । राषिस = रक्खूंगा ॥ पामूं = पाऊं । येणीं पेरैं = इस रीति से । एवैं = ऐसे । पूरवी = पूर्ण कर ॥
(२५९-१) सर्वत्र येणैं की जगह मूल पुस्तकों में " षर्थई येणैं " है ।

जनम अमोलिक पामियौ, एह्यौ रतन कां हार्यौ रे, ॥ टेक ॥
बिषिया बाह्यौ नैं तहं धायौ, कीधूं नहिं मारूं वार्यूं रे ।
माया धन जोई नैं भूल्यौ, सर्वथ येणैं हार्यूं रे ॥ १॥
गर्भवास देह हवै तो प्रांणी, आश्रम तेह संभार्यौ रे ।
दादू रे जन रांम भणींजै, नहिं तो जथा बिधि हार्यौ रे ॥२॥
इति राग कल्हेरौ समाप्त ॥ १२ ॥

अथ राग परजियौ ॥ १३ ॥

॥ पद २६० ॥ परचय ॥

नूर रह्या भरपूर, अमी रस पीजिये,
रस मांहैं रस होइ, लाहा लीजिये ॥ टेक ॥
परगट तेज अनंत, पार नहिं पाईये ।
झिलिमिलि झिलिमिलि होइ, तहां मन लाईये ॥ १ ॥
सहजैं सदा प्रकास, जोति जल पूरिया ।
तहां रहैं निजदास, सेवग सूरिया ॥ २॥

पामियौ=पायौ। एह्यौ=ऐसा। कां=कांय=क्यूं। कीधूं=कियौ। मारूं=मेरा। वार्यूं=बर्जा, मना किया। जोई=देख कर। सर्वथ सर्वस्व। येणैं=इस से ॥ भणींजै=स्मर्ण कीजै । जथा=व्यथा=व्यर्थ । विधि=कर्तव्य । गर्भवास करके देहधारी प्राणी हुआ और हवै (अब) उत्तम आश्रम को पाकर, हे जन ! तू राम का स्मर्ण कर, नहीं तौ मनुष्य देह का फल खो बैठेगा ॥

(२६०) टेक के दोनौ पादों के अंत में "रे" पुस्तक नं० १ में है, अर्थात् "पीजिये रे"। "लीजिये रे" ॥

सुष सागर वार न पार, हमारा बास है ।
हंस रहैं तामांहिं, दादू दास है ॥ ३ ॥
इति राग परजियौ समाप्त ॥ १३॥

अथ राग भांणमली ॥ १४ ॥

॥ पद २६१ ॥ बिनती ॥

मारा वाल्हा रे ! तारे सरणि रहीश ।
बिनंतड़ी वाल्हाने कहतां, अनंत सुष लहीश ॥ टेक ॥
स्वामी तणौं हूं संग न मेलूं, बीनंतडी कहीश ।
हूं अबला तूं बलिवंत राजा, ताहरा व़ना व़हीश ॥ १ ॥
संगि रहुं तां सब सुष पामूं, अंतरथैं दहीश ।
दादू ऊपर दया करीनै, आवो आंणीं वेश ॥ २ ॥

॥ पद २६२ ॥

चरण देषाड़ तो परमांण,
स्वामी माहरै नैणौं निरषू, मांगूं येज मांन ॥ टेक ॥
जोवुं तुझनें आशा मुझनें, लागूं येज ध्यांन ।
वाहलो मारो मला रे सहिये, आवै केवल ग्यांन ॥ १ ॥

---

(२६१) तणौं=का । मेलूं=छोड़ूं । व़हीश = बहजाऊंगी । दहीश = जल जाऊंगी । व़ना = बिना । अंतर = जुदाई । आवो आंणीं वेश = आवो इस तरफ ।

(२६२) देषाड़ = दिखा । नैंणौं = नैनों से । येज = यही । जोवुं = देखूं । मलो रे सहिये = मिला चाहिये । जेणीं पेरें = जिस तरह से । आलौ जांण दो ज्ञान । पीव़ तणी = पीव़ से संबंधित । हूं पर नहिं जाणूं मैं दूसरा नहीं जानती ॥ "अजांण" दयालजी की नम्रता दर्शाता है ॥

जेणी पेरें हूं देषूं तुझनें, मुझने आलौ जांण ।
पीव तणी हूं पर नहिं जाणूं, दादू रे अजांण ॥ २ ॥

॥ पद २६३ ॥

ते हरि मलूं मारो नाथ, जोवा ने मारो तन तपै ।
केवी पेरें पामूं साथ ॥ टेक ॥
ते कारणि हूं आकुळ व्याकुळ, ऊभी करूं विलाप ।
स्वामी मारौ नैणैं निरषूं, ते तणो मने ताप ॥ १ ॥
एक वार घर आवै वाहला, नव मेलूं कर हाथ ।
ये विनंती सांभळ स्वामी, दादू तारो दास ॥ २ ॥

॥ पद २६४ ॥

ते केम पामिये रे, दुर्लभ जे आधार ।
ते विना तारण को नहीं, केम उतरिये पार ॥ टेक ॥
केवी पेरें कीजै आपणो रे, तत्व ते छे सार ।
मन मनोरथ पूरे मारा, तननो ताप निवार ॥ १ ॥
संभार्यौ आवे रे वाहला, वेलाये अवार ।
विरहणी विलाप करे, तेम दादू मन विचार ॥ २ ॥

इति राग भांणमली समाप्त ॥ १४ ॥

---

(२६३) प्रथम पंक्ति का अर्थ-उस हरि अपने नाथ से मैं मिलूं जिस के देखने को मेरा तन तप रहा है ॥ केवी, = किस । तेतणो = तिसका । नव मेलूं कर हाथ = हाथ से हाथ नहीं छोड़ूं । सांभल = सुन ॥

(२६४) संभार्यौ-संभाल (चिंतन) से । वेलाये अवार-आगे पछि, वक्त बे वक्त । तेम = वैसे ॥ जैसे बिरहणी विलाप करती है तैसे ही बिचार दयाल जी कहते हैं कि हमारे मन में हैं ॥

अथ राग सारंग ॥ १५ ॥

॥ पद २६५ ॥ गुरज्ञान ॥

हो ऐसा ग्यांन ध्यांन, गुर बिनां क्यौं पावै ।
वारपार पारवार, दूतर तिरि आवै हो ॥ टेक ॥
भवन गवन गवन भवन, मनहीं मन लावै ।
रवन छवन छवन रवन, सतगुर समझावै हो ॥ १ ॥
षीर नीर नीर षीर, प्रेम भगति भावै ।
प्रांन कवल बिगसि बिगसि, गोबिंद गुण गावै हो ॥ २ ॥
जोति जुगति बाट घाट, लै समाधि धावै ।
परम नूर परम तेज, दादू दिषलावै हो ॥ ४ ॥

॥ पद २६६ ॥ केवल बिनती ॥

तौ निबहै जन सेवग तेरा, ऐसैं दया करि साहिब मेरा ।टेक ।
ज्यूं हम तोरैं त्यूं तूं जोरै, हम तोरैं पै तूं नहिं तोरै ॥ १ ॥
हम बिसरैं पै तूं न बिसारै, हम बिगरैं पै तूं न बिगारै ॥ २ ॥
हम भूलैं तूं आंनि मिलावै, हम बिछुरैं तूं अंगि लगावै ॥ ३ ॥
तुम्ह भावै सो हम पै नांहीं, दादू दरसन देहु गुसांई ॥ ४ ॥

---

(२६५) भवन गवन गवन भवन = वृत्ति का परमात्मा में मन द्वारा गमनागमन ॥ रवन = रमन (लय लीन), छवन = रवन का जोड़ा है, जैसे "रोटी ओटी" । षीर नीर = ब्रह्म का सशोधन रूप खोज ॥

॥ पद २६७ ॥ काल चितावणी ॥

माया संसार की सब झूठी, मात पिता सब ऊभे भाई ।
तिनहिं देषतां लूटी ॥ टेक ॥
जब लग जीव काया मैं था रे, षिण बैठी षिण ऊठी ।
हंस जुथा सो षेलि गया रे, तब थैं संगति छूटी ॥ १ ॥
ए दिन पूगे आव घटांनीं, तब निच्यंत होइ सूती ।
दादूदास कहै ऐसि काया, जैसि गगरिया फूटी ॥ २ ॥

॥ पद २६८ ॥ माया मध्य मुक्ति ॥

ऐसैं गृह मैं क्यूं न रहै, मनसा बाचा रांम कहै ॥ टेक ॥
संपति बिपति नहीं मैं मेरा, हरिष सोक दोइ नांहीं ।
राग दोष रहित सुष दुष थैं, बैठा हरि पद मांहीं ॥ १ ॥
तन धन माया मोह न बांधै, बैरी मीत न कोई ।
आपा पर समि रहै निरंतर, निज जन सेवग सोई ॥ २ ॥
सरवर कवल रहै जल जैसैं, दधि मथि घृत करि लीन्हां ।
जैसैं बन मैं रहै बटाऊ, काहूं हेत न कीन्हां ॥ ३ ॥
भाव भगति रहै रसि माता, प्रेम मगन गुन गावै ।
जीवत मुकत होइ जन दादू, अमर अभै पद पावै ॥ ४ ॥

॥ पद २६९ ॥ परचै उपदेस ॥

चल रे मन तहां जाईये, चरण बिन चलिबौ ।
श्रवण बिन सुनिबौ, बिन कर बैन बजाईये ॥ टेक ॥
तन नांहीं जहं, मन नांहीं तहं, प्रांण नहीं तहं आईये ।
सबद नहीं जहं, जीव नहीं तहं, बिन रसनां मुष गाईये ॥ १ ॥
पवन पावक नहीं, धरणि अंबर नहीं, उभै नहीं तहं लाईये ।

चंद नहीं जहं, सूर नहीं तहं, परम जोति सुष पाईये ॥ २ ॥
तेज पुंज सो सुष का सागर, झिलि मिलि नूर नहाईये ।
तहं चलि दादू अगम अगोचर, ता मैं सहज समाईये ॥३॥

इति राग सारंग समाप्त ॥ १५ ॥

अथ राग टोडी ॥ १६ ॥

॥ पद ॥ २७० ॥ सुमिरन उपदेस ॥

सो तत सहजैं सुषमण कहणां,
साच पकड़ि मन जुगि जुगि रहणां ॥ टेक ॥
प्रेम प्रीति करि नीकां राषै, बारंबार सहजि नर भाषै ॥ १ ॥
मुषि हिरदै सो सहजि संभारै, तिहि तत रहणां कदे न बिसारै२
अंतरि सोई नीकां जांणैं, निमष न बिसरै ब्रह्म बषांणैं ॥३॥
सोई सुजांण सुधा रस पीवै, दादू देषु जुगि जुगि जीवै ॥४॥

॥ पद २७१ ॥ नांव महिमा ॥

नांउंरे नांउंरे, सकल सिरोमणि नांउं रे, मैं बलिहारी जांउंरे ॥टेक॥
दूतर तारै पार उतारै, नरक निवारै नांउं रे ॥ १ ॥
तारणहारा भौ जल पारा, निर्मल सारा नांउं रे ॥ २ ॥
नूर दिषावै तेज मिलावै, जोति जगावै नांउं रे ॥ ३ ॥
सब सुष दाता अमृत राता, दादू माता नांउं रे ॥ ४ ॥

॥ पद २७२ ॥ नांव बिनती ॥

राइरे राइरे सकल भुवन पतिराइ रे,
अमृत देहु अघाइ रे राइ ॥ टेक ॥
परगट राता परगट माता, प्रगट नूर दिषाइ रे राइ ॥ १ ॥

अस्थिर ग्यांनां अस्थिर ध्यांनां, अस्थिर तेज मिलाइरे राइ ॥२॥
अबिचल मेला अबिचल षेला, अबिचल जोति समाइरे राइ॥३॥
निहचल बैंनां निहचल नैंनां, दादू बलि बलि जाइरे राइ ॥४॥

॥ पद २७३॥ रसिक अवस्था ॥

हरिरस माते मगन भये, सुमिरि सुमिरि भये मतिवाले ।
जांमण मरण सब भूलि गये ॥ टेक ॥
निर्मल भगति प्रेम रस पीवैं, आंन न दूजा भाव धरैं ।
सहजैं सदा रांम रंगि राते, मुकति बैकुंठैं कहा करैं ॥ १ ॥
गाइ गाइ रस लीन भये हैं, कछू न मांगैं संतजनां ।
और अनेक देहु दत आगैं, आंन न भावै राम बिनां ॥ २ ॥
इकटग ध्यांन रहैं ल्यौ लागे, छाकि परे हरिरस पीवैं ।
दादू मग्न रहैं रसिमाते, ऐसे हरि के जन जीवैं ॥ ३ ॥

॥ पद २७४ ॥ केवल बिनती ॥

ते मैं कीधेला रांम जे तैं वारया ते, मारग मेल्ही अमारग
अणसरि अकरम करम हरे ॥ टेक ॥

(२७३–२) हे परमेश्वर ! और अनेक पदार्थ आप देउ भी तौ संतजनों को सिवाय रामरस के और कुछ अच्छा नहीं लगता है ॥

छाकि परे = अघाये हुए, मग्न ॥

(२७४) हे रामजी मैंने वही किया जो आप ने मना किया । मार्ग छोड कुमार्ग लिये और अकर्म लेके कर्म छोड़े ॥

(२) यह (कहने योग्य) न कहा, यह (सुनने योग्य) न सुना, नेत्रों से यह (देखने योग्य) न देखा । अमृत (राम रस) विषवत् कड़वा लगा, विषय भोग अति मीठे लगे ॥

पांचे प्राण = पंच पदार्थ शब्द स्पर्श रूप रस गंध ॥

साधू कौ संग छाड़ीनै, असंगति अणसरियां ।
सुकृत मूकी अविद्या साधी, विषिया विस्तरियां ॥ १ ॥
आ न कह्युं आ न सांभल्युं, नेणें आ न दीठो ।
अमृत कड़वो विष इम लागो, षातां अति मीठो ॥ २ ॥
रांम रिदाथी विसारी ने, माया मन दीधौ ।
पांचे प्रांण गुरमुषि वरज्या, ते दादू कीधो ॥ ३ ॥

॥ पद २७५ ॥ विरह वीनती ॥

कहौ क्यूं जन जीवै सांइयां, दे चरण कवल आधार हो ।
डूबत है भो सागरा, कारी करौ करतार हो ॥ टेक ॥
मीन मरै बिन पांणींयां, तुम्ह बिन येह विचार हो ।
जल बिन कैसें जीवहीं, इब तौ किनी इक वार हो ॥ १ ॥
ज्यूं परै पतंगा जोतिमां, देषि देषि निज सार हो ।
प्यासा बूंद न पावई, तब बानि बानि करै पुकार हो ॥ २ ॥
निस दिन पीर पुकारहो, तनकी ताप निवारि हो ।
दादू बिपति सुनांवही, करि लोचन सनमुष चारि हो ॥ ३ ॥

॥ पद २७६ ॥ केवल वीनती ॥

तूं साचा साहिब मेरा,
कर्म करीम कृपाल निहारौ, मैं जन बंदा तेरा ॥ टेक ॥

---

(२७५) कारी = कार्य ॥

(२७६) दीवान = सर्वज्ञ । दीदार मौज = दर्शन की खुशी । काइम = स्थिर । निहाला = आनंदित । षैर षुदाइ पलक में पेलत ईश्वर की कृपा जगत में चमक रही है । मैं शिकस्तः दरगह तेरी = तेरे दरबार में मैं दीन (खड़ा) हूं । हरि हजूर तूं कहिये = तूं दुख हरने वाला मालिक है ॥

तुम्ह दीवान सबहिन की जांनौं, दीनां नाथ दयाला ।
दिषाइ दीदार मौज बंदे कौं, काइम करौ निहाला ॥ १ ॥
मालिक सबै मुलिक के सांई, समर्थ सिरजनहारा ।
षैर षुदाइ षलक मैं षेलत, दे दीदार तुम्हारा ॥ १ ॥
मैं शिकस्तः दरगह तेरी, हरि हज़ूर तूं कहिये ।
दादू द्वारै दीन पुकारै, काहे न दर्सन लहिये ॥ ३ ॥

॥ पद २७७ ॥ उपदेस चिंतावणी ॥

कुछ चेति रे कहि क्या आया,
इनमैं बैठा फूलि कर, तैं देषी माया ॥ टेक ॥
तूं जिनि जांनैं तन धन मेरा, मूरिष देषि भुलाया ।
आज कालि चलि जावै देहीं, ऐसी सुंदर काया ॥ १ ॥
रांम नांम निज लीजिये, मैं कहि समझाया ।
दादू हरिकी सेवा कीजै, सुंदर साज मिलाया ॥ २ ॥

॥ पद २७८ ॥

नेटि रे मांटी मैं मिलनां, मोड़ि मोड़ि देहीं काहे कौं चलनां ॥टेक॥
काहे कौं अपनां मन डुलावै, यहु तन अपनां नीकां धरनां ।
कोटि बरस तूं काहे न जीवै, बिचारि देषि आगैं है मरनां ॥ १ ॥
काहे न अपनी बाट सवारै, संजमि रहनां सुमिरण करणां ।
गहिला दादू गर्ब न कीजै, यहु संसार पंच दिन भरणां ॥ २ ॥

॥ पद २७९ ॥

जाइ रे तन जाइ रे, जनम सुफल करि लेहु रांम रमि ।
सुमिरि सुमिरि गुन गाइ रे ॥ टेक ॥
नर नाराइन सकल सिरोमणि, जनम अमोलिक आहि रे ।

सो तन जाइ जगत नहिं जांनैं, सकहि त ठाहर लाइ रे ॥१॥
जुरा काल दिन जाइ गरासै, तासौं कुछ न बसाइ रे ।
छिन छिन छीजत जाइ मुगध नर, अंति काल दिन आइ रे ॥२॥
प्रेम भगति साध की संगति, नांउं निरंतर गाइ रे ।
जे सिरि भाग तौ सौंज सुफल करि, दादू बिलंब न लाइ रे ॥३॥

॥ पद २८० ॥

काहे रे बकि मूल गवावै, रांमके नांइं भलैं सचु पावै ॥ टेक ॥
बाद बिबाद न कीजै लोई, बाद बिबाद न हरि रस होई ॥ १ ॥
मैं तैं मेरी मांनैं नांहीं, मैं तैं मेटि मिलै हरि मांहीं ॥ २ ॥
हारि जीति सौं हरि रस जाई, समझि देषि मेरे मन भाई ॥३॥
मूल न छाडी दादू बौरे, जिनि भूलै तूं बकिबे औरे ॥ ४ ॥

॥ पद २८१ ॥

हुसियार हाकिम न्याव है, सांई के दीवांन ।
कुलि का हसेब ह्वैगा, समझि मूसलमांन ॥ टेक ॥
नीयत नेकी सालिकां, रास्तां ईमान ।
इषलास अंदरि आपणै, रषणां सुबहान ॥ १ ॥
हुक्म हाज़िर होह बाबा, मुसल्लम मिहरबान ।
अक्ल सेती आपनां, सोधि लेहु सुजांन ॥ २ ॥
हक़ सौं हजूरी हूंणां, देषणां करि ग्यांन ।

---

(२७६) कबीर यहु तन जात है, सकहि त ठाहर लाइ ।
कै सेवा करि साध की, कै गुण गोबिंद का गाइ ॥
(२८०-१) दृष्टांत-पंडित बाद्यौ दद्यौ पाठ मैं, दूजो बोल्यौ डाटि ।
पाठ कण्ठ संचर पड्यौ, रसनां डाटी काटि ॥

दोस्त दांनां दीन का, मनणां फुरमान ॥ ३ ॥
गुस्सा हैवांनी दूरि कर, छाड़ि दे अभिमांन ।
दुई दरोगां नांहिं षुशियां, दादू लेहु पिछांन ॥ ४ ॥

॥ पद २८२ ॥ साध प्रति उपदेस ॥

निर्वैर रहणां रांम नांम कहणां, कांम क्रोध मैं देह न दहणां ॥टेक॥
जेणैं मारिग संसार जाइला, तेणैं प्रांणीं आप बहाइला ॥ १ ॥
जे जे करणीं जगत करीला, सो करणीं संत दूरि धरीला ॥२॥
जेणैं पंथैं लोक राता, तेणैं पंथैं साध न जाता ॥ ३ ॥
रांम रांम दादू अैसैं कहिये, रांम रमत रांमहिं मिलि राहेये ॥४॥

॥ पद २८३ ॥ भेष बिडंबन ॥

हम पाया, हम पाया रे भाई, भेष बनाइ अैसी मनि आई ॥टेक॥
भीतर का यहु भेद न जांनैं, कहै सुहागनि क्यूं मन मांनैं ॥१॥
अंतरि पीव सौं पर्चा नांहीं, भई सुहागनि लोगन मांहीं ॥ २ ॥
सांई सुपिनै कबहुं न आवै, कहिबा अैसैं महलि बुलावै ॥ ३ ॥
इन बातनि मोहि अचिरज आवै, पटम कियें कैस पिव पावै ॥४॥
दादू सुहागनि अैसैं कोई, आपा मेटि रांम रत होई ॥ ५ ॥

॥ पद ॥ २८४ ॥ आत्म समता ॥

अैसैं बाबा रांम रमीजै, आत्म सौं अंतर नहिं कीजै ॥ टेक ॥
जैसैं आत्म आपा लेवै, जीव जंत अैसैं करि पेषै ॥ १ ॥

---

(२८१) दृष्टांत—सांभरि हाकम सौं कह्यौ, पद यह दादू देव ।
मानि वचन गहि नीति कौं, करी गुरू की सेव ॥
(२८३-२) दृष्टांत—कुंभ गाड़ि आसण तले, दीपक धरि ढकि मांहिं ।
लोकन कूं कहि राति कूं, ब्रम्ह जोति दरसांहिं ॥

एक रांम ऐसैं करि जांनैं, आपा पर अंतर नहिं आंनैं ॥ २ ॥
सब घटि आत्म एक बिचारै, रांम सनेही प्रांण हमारै ॥ ३ ॥
दादू साची रांम सगाई, ऐसा भाव हमारे भाई ॥ ४ ॥

॥ पद २८५ ॥ नांव समता ॥

माधइयौ माधइयौ मीठौ री माइ, माहवौ माहवौ भेटियौ आइटेक॥
कांन्हइयौ कांन्हइयौ करतां जाइ, केसवौ केसवौ केसवौ धाइ ॥१॥
भूधरौ भूधरौ भूधरौ भाइ, रांमयौ रांमयौ रह्यौ समाइ ॥ २॥
नरहरि नरहरि नरहरि राइ, गोबिंदौ गोबिंदौ दादू गाइ ॥३॥

॥ पद २८६ ॥ समता ॥

एकहीं एकैं भया अनंद, एकहीं एकैं भागे दंद ॥ टेक ॥
एकहीं एकैं एक समांन, एकहीं एकैं पद निर्बांन ॥ १ ॥
एकहीं एकैं त्रिभुवन सार, एकहीं एकैं अगम अपार ॥ २ ॥
एकहीं एकैं निर्भै होइ, एकहीं एकैं काल न कोइ ॥ ३ ॥
एकहीं एकैं घट परकास, एकहीं एकैं निरंजन बास ॥ ४ ॥
एकहीं एकैं आपहि आप, एकहीं एकैं माइ न बाप ॥ ५ ॥
एकहीं एकैं सहज सरूप, एकहीं एकैं भये अनूप ॥ ६ ॥
एकहीं एकैं अनत न जाइ, एकहीं एकैं रह्या समाइ ॥ ७ ॥
एकहीं एकैं भये लै लीन, एकहीं एकैं दादू दीन ॥ ८ ॥

॥ पद २८७ ॥ बिनती ॥

आदि है आदि अनादि मेरा, संसार सागर भगति भेरा ।
आदि है अंति है अंति है आदि है, बिड़द तेरा ॥ टेक ॥
काल है झाल है झाल है काल है, राखिले राखिले प्रांण घेरा ।
जीव का जनम का, जनम का जीव का, आपहीं आपले भांनि झेरा
भर्म का कर्म का कर्म का भर्म का, आइबा जाइबा मेटि फेरा।

तारिले पारिले पारिले तारिले, जीवसौं सीव है निकटि नेरा ॥२॥
आतमा रांम है, रांम है आतमा, जोति है जुगति सौं करौ मेला ।
तेज है सेज है, सेज है तेज है, एक रस दादू षेल षेला ॥३॥

॥ पद २८८ ॥ परचै ॥

सुंदर रांम राया, परम ग्यांन परम ध्यांन, परम प्रांण आया ।टेक।
अकल सकल अति अनूप, छाया नहिं माया ।
निराकार निराधार, वार पार न पाया ॥ १ ॥
गंभीर धीर निधि सरीर, निर्गुण निरकारा ।
अषिल अमर परम पुरिष, निर्मल निज सारा ॥ २ ॥
परम नूर परम तेज, परम जोति परकास ।
परम पुंज परापरं, दादू निज दास ॥ ३ ॥

॥ पद २८९ ॥ परचै परा भक्ति ॥

अषिल भाव अषिल भगति, अषिल नांव देवा ।
अषिल प्रेम अषिल प्रीति, अषिल सुरति सेवा ॥ टेक ॥
अषिल अंग अषिल संग, अषिल रंग रांमां ।
अषिलारत अषिलामत, अषिलानिज नांमां ॥ १ ॥
अषिल ग्यांन अषिल ध्यांन, अषिल आनंद कीजै ।
अषिला लै अषिला मैं, अषिला रस पीजै ॥ २ ॥
अषिल मगन अषिल मुदित, अषिल गलित सांई ।
अषिल दरस अषिल परस, दादू तुम मांहीं ॥ ३ ॥

इति राग टोडी समाप्त १६॥

(२८८ टेक) "प्रांण आया" की जगह "प्रांण पाया" पुस्तक नं०३ में है ॥

अथ राग हुसेनी बंगालौ ॥ १७ ॥

॥ पद २६० ॥

है दाना, है दाना, दलदार मेरे कांन्हां ।
तूंहीं मेरे जान जिगर यार मेरे पाना ॥ टेक ॥
तूंहीं मेरे मादर पिदर, आलम बेगाना ।
साहिब सिरताज मेरे, तूंहीं सुलताना ॥
दोस्त दिल तूंहीं मेरे, किस का षिल पाना ।
नूर चश्म जिंद मेरे, तूंही रहमाना ॥ २ ॥
एकै असनाव मेरे, तूंहीं हमजाना ।
जानिबा अज़ीज़ मेरे, षूब षज़ाना ॥ ३ ॥
नेक नज़र मेहर मीरां, बंदा मैं तेरा ।
दादू दरबार तेरे, षूब साहिब मेरा ॥ ४ ॥

॥ पद २६१ ॥

तूं घरि आव सुलच्छिन पीव,
हिक तिल मुष दिषलावहु तेरा । क्या तरसावै जीव ॥ टेक ॥
निसदिन तेरा पंथ निहारौं, तूं घरि मेरे आवै ।
हिरदा भीतरि हेतसौं रे वाहला, तेरा मुष दिषलावै ॥ १ ॥
वारी फेरी बलि गई रे, सोभित सोई कपोल ।
दादू ऊपरि दया करीनै, सुनाइ सुहावे बोल ॥ २ ॥

इतिराग हुसेनी बंगालौ समाप्त ॥ १७ ॥

(२६१) सुलच्छिन की जगह मूल पुस्तकौं में " सुलछिन " है ॥

अथ राग नट नारांइण ॥ १८ ॥

॥ पद २९२ ॥ हित उपदेस ॥

ताकौं काहे न प्रांण संभालै, ।
कोटि अपराध कलप के लागे, मांहिं मह्रत टालै ॥ टेक ॥
अनेक जनम के बंधन बाढ़े, बिन पावक फंध जालै ।
ऐसौ है मन नांव हरीकौ, कबहूं दुष न सालै ॥ १ ॥
च्यंतामणि जुगति सौं राषै, ज्यूं जननी सुत पालै ।
दादू देषु, दया करै ऐसी, जन कौं जाल न रालै ॥ २ ॥

॥ पद २९३ ॥ बिरह ॥

गोबिंद कबहुं मिलै पिव मेरा,
चरण कवल क्यूंहीं करि देषौं । राषौं नैंनहुं नेरा ॥ टेक ॥
निरषण का मोहि चाव घणेरा, कब मुष देषौं तेरा ।
प्रांण मिलन कौं भये उदासी, मिलि तूं मींत सवेरा ॥ १ ॥
ब्याकुल ताथैं भई तन देहीं, सिरपरि जम का हेरा ।
दादू रे जन रांम मिलनकूं, तपई तन बहुतेरा ॥ २ ॥

॥ पद २९४ ॥

कब देषौं नैंनहुं रेष रती, प्रांण मिलन कौं भई मती ।
हरि सौं षेलौं हरी गती, कब मिलि हैं मोही प्रांणपती ॥ टेक ॥
बल कीती क्यूं देषौंगी रे, मुझमांहैं अति बात अनेरी ।
सुणि साहिब येक बीनती मेरी, जनम जनम हूं दासी तेरी ॥१॥

(२९२) न राले=नहीं डालता है ॥
(२९४-१) रेषरती=किंचिन्मात्र रेषा (चिन्ह) । प्रांण=यह प्रांणी ।

कहु दादू सो सुनसी सांई, हौं अबला बल मुझमैं नांहीं ।
करम करी घरि मेरे आई, तौ सोभा पिव तेरे तांई ॥ २ ॥

॥ पद २६५ ॥

नीके मोहन सौं प्रीति लाई,
तन मन प्रांण देत बजाई, रंग रस के बनाई ॥ टेक ॥
येहीं जीयरे वैहीं पीवरे, छोरयौ न जाई माई ।
बाण भेद के देत लगाई, देषत ही मुरझाई ॥ १ ॥
निर्मल नेह पिया सौं लागौ, रती न राषी काई ।
दादू रे तिलमैं तन जावै, संग न छाडौं गाई ॥ २ ॥

॥ पद २६६ ॥ परमेश्वर महिमा ॥

तुम्ह बिन अैसैं कौन करै,
ग़रीब निवाज़ गुसांई मेरौ, माथैं मुकट धरै ॥ टेक ॥
नीच ऊच ले करै गुसांई, टारयौ हूं न टरै ।
हस्त कवल की छाया राषै, काहूं थैं न डरै ॥ १ ॥
जाकी छोति जगत कौं लागै, तापरि तूंहीं ढरै ।
अमर आप ले करै गुसांई, मारयौ हूं न मरै ॥ २ ॥
नांमदेव कबीर जुलाहौ, जन रैदास तिरै ।
दादू बेगि बार नहिं लागै, हरि सौं सबै सरै ॥ ३ ॥

मती = बुद्धी, संकल्प, निश्चय । हरी गती = हरिरूप होकर । बलकीती = बल करके तौ आप (ईश्वर) से मिल नहीं सकती, क्योंकि मुझ में बहुतसी अनेरी (अन्य री=अन्य प्रकार की) बातैं भरी हैं । करम = कृपा । "तेरे तांई" की जगह पुस्तक नं० १ के सिवाय दूसरी पुस्तकों में "मेरे तांई है ॥
"हरि सौं षेलौं हरी गती" यह पाद पुस्तक नं० १ में नहीं है ॥

॥ पद २६७ ॥ मंगलाचरण ॥

नमो नमो हरि नमो नमो,
ताहि गुसांई नमो नमो, अकल निरंजन नमो नमो ।
सकल बियापी जिहि जग कीन्हां, नारांइण निज नमो नमो ॥टेक॥
जिन सिरजे जल सीस चरण कर, अबिगत जीव दियौ ।
श्रवण संवारि नैंन रसनां मुष, ऐसौ चित्र कियौ ॥ १ ॥
आप उपाइ किये जग जीवन, सुरनर संकर साजे ।
पीर पैकंबर सिध अरु साधिक, अपनैं नांइ निवाजे ॥ २ ॥
धरती अंबर चंद सूर जिन, पांणीं पवन किये ।
भांनण घड़न पलक मैं केते, सकल सवारि लिये ॥ ३ ॥
आप अषंडित षंडित नांहीं, सब समि पूरि रहे ।
दादू दीन ताहि नइ वंदति, अगम अगाध कहे ॥ ४ ॥

॥ पद २६८ ॥

हम थैं दूरि रही गति तेरी,
तुम हौ तैसे तुमहीं जांनौं, कहा बपरी मति मेरी ॥ टेक ॥
मन थैं अगम इष्टि अगोचर, मनसा की गमि नांहीं ।
सुरति समाइ बुधि बल थाके, बचन न पहुंचैं तांहीं ॥ १ ॥
जोग न ध्यांन ग्यांन गमि नांहीं, समझि समझि सब हारे ।
उनमनी रहत प्रांण घट सांधे, पार न गहत तुम्हारे ॥ २ ॥
षोजि परे गति जाइ न जांनीं, अगह गहन कैसैं आवै ।
दादू अविगति देइ दया करि, भाग बड़े सो पावै ॥ ३ ॥

इति राग नट नारांइण समाप्त ॥ १८ ॥

(२६७-१) अबिगत = अद्भुत । २॥ अपनैं नांइ निवाजे = अपनी सदृश बनाये । ४ ॥ नइवंदति = सिर नवाय कर बंदना करता है॥

अथ राग सोरठ ॥ १६ ॥

॥ पद २६६ ॥ सुमिरण ॥

कोली साल न छाडै रे, सब घावर काढ़ै रे ॥ टेक ॥
प्रेम प्रांण लगाई धागै, तत्त तेल निज दीया ।
एक मना इस आरंभ लागा, ग्यांन राछ भरि लीया ॥ १ ॥
नांव नली भरि बुणकर लागा, अंतर गति रंग राता ।
तांणैं बांणैं जीव जुलाहा, परम तत्त सौं माता ॥ २ ॥
सकल सिरोमणि बुनै बिचारा, सान्हां सूत न तोड़ै ।
सदा सचेत रहै ल्यौ लागा, ज्यौं टूटै त्यौं जोड़ै ॥ ३ ॥
ऐसैं तानि बुनि गहर गजीना, सांई के मन भावै ।
दादू कोली करता के संगि, बहुरि न इहि जुगि आवै ॥ ४ ॥

॥ पद ३०० ॥ बिरही ॥

बिरहणी बपु न संभारै, निस दिन तलफै रांम के कारण ।
अंतरि एक बिचारै ॥ टेक ॥

---

(२६६) इस पद में कोली के कपड़ा बुनने का दृष्टांत दिया है तिस के दार्ष्टांत में योगी का ब्रह्मचिंतन रक्खा है। साल = कोली के बुनने का स्थान। कोली के धागे की जगह योगी की प्रेम सुरति (ध्यान) है। कोली के तेल की जगह योगी का तत्व ज्ञान है। एकमना = एकाग्रचित ॥ राछ नली कोली के औज़ार हैं। सान्हां सूत न तोड़ै = जैसे सांधा हुआ सूत जुलाहा नहीं तोड़ता तैसे लगाई हुई सुरति को योगी न तोड़ै ॥

आतुर भई मिलन के कारण, कहि कहि रांम पुकारै ।
सास उसास निमष नहिं बिसरै, जित तित पंथ निहारै ॥१॥
फिरै उदास चहूं दिसि चितवत, नैंन नीर भरि आवै ।
रांम बिछोह बिरह की जारी, और न कोई भावै ॥ २ ॥
ब्याकुल भई सरीर न समझै, बिषम बांण हरि मारै ।
दादू दर्सन बिन क्यूं जीवै, रांम सनेही हमारे ॥ ३ ॥

॥ पद ३०१ ॥ उपदेस चितावणी ॥

मन रे रांम रटत क्यूं रहिये, यहु तत बार बार क्यूं न कहिये टेक।
जब लग जिभ्या बांणीं, तौ लौं जपि लै सारंग प्रांणीं ।
जब पवनां चलि जावै, तब प्रांणीं पछितावै ॥ १ ॥
जब लग श्रवण सुणींजै, तौ लौं साध सबद सुणि लीजै ।
श्रवणों सुरति जब जाई, ए तब का सुणि है भाई ॥ २ ॥
जब लग नैंनहुं पेषै, तौ लौं चरन कवल क्यूं न देषै ।
जब नैंनहुं कछू न सूझै, ये तब मूरिष क्या बूझै ॥ ३ ॥
जब लग तन मन नीका, तौ लौं जपिलै जीवनि जीका ।
जब दादू जीव आवै, तब हरि के मनि भावै ॥ ४ ॥

॥ पद ३०२ ॥

मनरे तेरा कौन गंवारा, जपि जीवनि प्रांण अधारा ॥ टेक ॥
रे मात पिता कुल जाती, धन जोवन सजन संगाती ।
रे गृह दारा सुत भाई, हरि बिन सब झूठा ह्वै जाई ॥ १ ॥
रे तूं आपि अकेला जावै, काहू के संगि न आवै ।
रे तूं नां करि मेरी मेरा, हरि रांम बिनां को तेरा ॥ २ ॥
रे तूं चेत न देषै अंधा, यहु माया मोह सब धंधा ।

रे काल मीच सिरि जागै, हरि सुमिरण काहे न लागै ॥ ३ ॥
यहु औसर बहुरि न आवै, फिरि मानिषा जनम न पावै ।
अब दादू ढील न कीजै, हरि रांम भजन करि लीजै ॥ ४ ॥

॥ पद ३०३ ॥

मन रे देषत जनम गयौ, ता थैं काज न कोई भयो रे ॥ टेक॥
मन इंद्री ग्यांन बिचारा, ता थैं जनम जुवा ज्यूं हारा ।
मन झूठ साच करि जांनैं, हरि साध कहै नहिं मांनैं ॥ १ ॥
मन रे बादि गहे चतुराई, ता थैं सनमुषि बात बनाई ।
मन आप आप कौं थापै, करता होइ बैठा आपै ॥ २ ॥
मन स्वादी बहुत बनावै, मैं जांन्यां बिषै बतावै ।
मन मांगै सोई दीजै, हमहिं रांम दुषी क्यूं कीजै ॥ ३ ॥
मन सब हीं छाडि बिकारा, प्रांणीं होह गुनन थैं न्यारा ।
निर्गुण निज गहि रहिये, दादू साध कहैं ते कहिये ॥ ४ ॥

॥ पद ३०४ ॥

मन रे अंतिकाल दिन आया, ता थैं यहु सब भया पराया ॥टेक॥
श्रवनौं सुनैं न नैंनहुं सूझै, रसनां कह्या न जाई ।
सीस चरण कर कंपन लागे, सो दिन पहुंच्या आई ॥ १ ॥
काले धौले बरन पलटिया, तन मन का बल भागा ।
जोबन गया जुह्रा चलि आई, तब पछितांवन लागा ॥ २ ॥
आव घटै घटि छीजै काया, यहु तन भया पुरांनां ।
पांचौं थाके कह्या न मांनैं, ताका मर्म न जांनां ॥ ३ ॥
हंस बटाऊ प्रांण पयांनां, समझि देषि मन मांहीं ।

दिन दिन काल गरासै जियरा, दादू चेतै नांहीं ॥ ४ ॥

॥ पद ३०५ ॥

मन रे तूं देषै सो नांहीं, है सो अगम अगोचर मांहीं ॥टेक॥
निस अंधियारी कछू न सूझै, संसै सरप दिषावा ।
ऐसैं अंध जगत नहिं जांनैं, जीव जेवड़ी षावा ॥ १ ॥
मृग जल देषि तहां मन धावै, दिन दिन झूठी आसा ।
जहं जहं जाइ तहां जल नांहीं, निहचै मरै पियासा ॥ २ ॥
भर्म बिलास बहुत बिधि कीन्हां, ज्यौं सुपिनैं सुष पावै ।
जागत झूठ तहां कुछ नांहीं, फिरि पीछैं पछितावै ॥ ३ ॥
जब लग सूता तब लग देषै, जागत भर्म बिलांनां ।
दादू अंति इहां कुछ नांहीं, है सो सोधि सयांनां ॥ ४ ॥

॥ पद ३०६ ॥

भाईरे बाजीगर नट षेला, ऐसैं आपैं रहै अकेला ॥ टेक ॥
यहु बाजी षेल पसारा, सब मोहे कौतिग हारा ।
यहु बाजी षेल दिषावा, बाजीगर किनहूं न पावा ॥ १ ॥
इहि बाजी जगत भुलांनां, बाजीगर किनहूं न जांनां ।
कुछ नांहीं सो पेषा, है सो किनहुं न देषा ॥ २ ॥
कुछ ऐसा चेटक कीन्हां, तन मन सब हरि लीन्हां ।
बाजीगर भुरकी बाही, काहूं पैं लषी न जाई ॥ ३ ॥
बाजीगर परकासा, यहु बाजी झूठ तमासा ॥
दादू पावा सोई, जो इहि बाजी लिपत न होई ॥ ४ ॥

॥ पद ३०७ ॥ ज्ञान उपदेस ॥

भाईरे ऐसा एक बिचारा, यूं हरि गुर कहै हमारा ॥ टेक ॥

जागत सूते सोवत सूते, जब लग रांम न जांनां ।
जागत जागे सोवत जागे, जब रांम नांम मन मांनां ॥ १ ॥
देषत अंधे अंध भी अंधे, जब लग सति न सूझै ।
देषत देषै अंध भी देषै, जब रांम सनेही बूझै ॥ २ ॥
बोलत गूंगे गूंग भी गूंगे, जब लग सति न चीन्हां ।
बोलत बोले गूंग भी बोले, जब रांम नांम कहि दीन्हां ॥ ३ ॥
जीवत मूये मुये भी मूये, जब लग नहीं प्रकासा ।
जीवत जीये, मुये भी जीये, दादू रांम निवासा ॥ ४ ॥

॥ पद ३०८ ॥ नांव महिमा ॥

रांमजी नांउं बिना दुष भारी, तेरे साधनि कही बिचारी ॥टेक॥
केई जोग ध्यांन गहि रहिया, केई कुल के मारगि बहिया ।
केई सकल देव कौं धावैं, केई रिधि सिधि चाहैं पावैं ॥ १ ॥
केई बेद पुरानौं माते, केई माया के संगि राते ।
केई देस दिसंतर डोलैं, केई ग्यांनी व्है बहु बोलैं ॥ २ ॥
केई काया कलैं अपारा, केई मरैं षड़ग की धारा ।
केई अनत जिवन की आसा, केई करैं गुफा मैं वासा ॥ ३ ॥
आदि अंति जे जागे, सो तौ रांम नांम ल्यौ लागे ।
इब दादू इहै बिचारा, हरि लागा प्रांण हमारा ॥ ४ ॥

॥ पद ३०९ ॥ भरम बिधूसन ॥

साधौ हरि सौं हेत हमारा, जिन यहु कीन्ह पसारा ॥ टेक ॥
जा कारणि ब्रत कीजै, तिल तिल यहु तन छीजै ।
सहजैं ही सो जांनां, हरि जांनत ही मन मांनां ॥ १ ॥
जा कारणि तप जइये, धूप सीत सिरि सहिये ।

सहजैं हीं सो आवा, हरि आवत हीं सचु पावा ॥ २ ॥
जा कारणि बहु फिरिये, करि तीरथ भ्रमि भ्रमि मरिये ।
सहजैं हीं सो चीन्हां, हरि चीन्हि सबै सुष लीन्हां ॥ ३ ॥
प्रेम भगति जिन जांनीं, सो काहे भरमैं प्रांनीं ।
हरि सहजैं हीं भल मांनैं, ताथैं दादू और न जांनैं ॥ ४ ॥

॥ पद ३१० ॥ परचै बिनती ॥

रांमजी जिनि भरमावै हम कौं, ताथैं करौं बीनती तुम्ह कौं ॥ टेक ॥
चरण तुम्हारे सबही देषौं, तप तीरथ ब्रत दांनां ।
गंग जमुन पासि पाइन के, तहां देहु अस्नांनां ॥ १ ॥
संग तुम्हारे सबही लागे, जोग जगि जे कीजै ।
साधन सकल एई सब मेरे, संग आपनौं दीजै ॥ २ ॥
पूजा पाती देवी देवल, सब देषौं तुम मांहीं ।
मोकौं ओट आपणीं दीजै, चरन कवल की छांहीं ॥ ३ ॥
ये अरदास दास की सुणिये, दूरि करौ भ्रम मेरा ।
दादू तुम्ह बिन और न जांनैं, राषौ चरनौं नेरा ॥ ४ ॥

॥ पद ३११ ॥

सोई देव पूजौं, जे टांची नहिं घाड़िया,
गरभवास नांहीं औतरिया ॥ टेक ॥
बिन जल संजम सदा सोइ देवा, भाव भगति करौं हरि सेवा ॥१॥
पाती प्रांण हरिदेव चढ़ाऊं, सहज समाधि प्रेम ल्यौ लाऊं ॥२॥
इहि विधि सेवा सदा तहं होई, अलष निरंजन लषै न कोई ॥ ३ ॥
ये पूजा मेरे मनि मांनैं, जिहि विधि होइ सु दादू न जांनैं ॥४॥

॥ पद ॥ ३१२ ॥ परचै हैरान ॥

रांम राइ मोकौं अचिरज आवै, तेरा पार न कोई पावै ॥ टेक ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, नेति नेति जे गावै ।
सरणि तुम्हारी रटैं निसबासुरि, तिन कौं तूं न लषावै ॥ १ ॥
संकर सेस सबै सुरमुनि जन, तिन कौं तूं न जनावै ।
तीनि लोक रटैं रसनां भरि, तिन कौं तूं न दिषावै ॥ २ ॥
अपनैं अंग की जुगति न जांनैं, सो मनि तेरे भावै ।
सेवा संजम करैं जप पूजा, सबद न तिन कौं सुनावै ॥ ३ ॥
दीन लीन रांम रंग राते, तिन कौं तूं संगि लावै ।
मैं अछेप हींन मति मेरी, दादू कौं दिषलावै ॥ ४ ॥

इति राग सोरठ समाप्त ॥ १६ ॥

अथ राग गुंड ॥ २० ॥

॥ पद ३१३ ॥ भक्ति निःकाम ॥

दर्सन दे दर्सन दे, हौं तौ तेरी मुकति न मांगौं ॥ टेक ॥
सिधि न मांगौं रिधि न मांगौं, तुम्हहीं मांगौं गोबिंदा ॥ १ ॥
जोग न मांगौं भोग न मांगौं, तुम्हहीं मांगौं रांमजी ॥ २ ॥
घर नहिं मांगौं बन नहिं मांगौं, तुम्हहीं मांगौं देवजी ॥ ३ ॥
दादू तुम्ह बिन और न मांगौं, दर्सन मांगौं देहुजी ॥ ४ ॥

सहजैं हीं सो आवा, हरि आवत हीं सचु पावा ॥ २ ॥
जा कारणि बहु फिरिये, करि तीरथ भ्रमि भ्रमि मरिये ।
सहजैं हीं सो चीन्हां, हरि चीन्हि सबै सुष लीन्हां ॥ ३ ॥
प्रेम भगति जिन जांनीं, सो काहे भरमैं प्रांनीं ।
हरि सहजैं हीं भल मांनैं, ताथैं दादू और न जांनैं ॥ ४ ॥

॥ पद ३१० ॥ परचै बिनती ॥

रांमजी जिनि भरमावै हम कौं, ताथैं करौं बीनती तुम्ह कौं ॥ टेक ॥
चरण तुम्हारे सबही देषौं, तप तीरथ ब्रत दांनां ।
गंग जमुन पासि पाइन के, तहां देहु अस्नांनां ॥ १ ॥
संग तुम्हारे सबही लागे, जोग जगि जे कीजै ।
साधन सकल एई सब मेरे, संग आपनौं दीजै ॥ २ ॥
पूजा पाती देवी देवल, सब देषौं तुम मांहीं ।
मोकौं ओट आपणीं दीजै, चरन कवल की छांहीं ॥ ३ ॥
ये अरदास दास की सुणिये, दूरि करौ भ्रम मेरा ।
दादू तुम्ह बिन और न जांनैं, राषौ चरनौं नेरा ॥ ४ ॥

॥ पद ३११ ॥

सोई देव पूजौं, जे टांची नहिं घड़िया,
गरभवास नांहीं औतरिया ॥ टेक ॥
बिन जल संजम सदा सोइ देवा, भाव भगति करौं हरि सेवा ॥१॥
पाती प्रांण हरिदेव चढ़ाऊं, सहज समाधि प्रेम ल्यौ लाऊं ॥२॥
इहि बिधि सेवा सदा तहं होई, अलष निरंजन लषै न कोई ॥ ३ ॥
ये पूजा मेरे मनि मांनैं, जिहि बिधि होइ सु दादू न जांनैं ॥४॥

॥ पद ॥ ३१२ ॥ परचै हैरान ॥

रांम राइ मोकौं अचिरज आवै, तेरा पार न कोई पावै ॥ टेक ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, नेति नेति जे गावै ।
सरणि तुम्हारी रटैं निसबासुरि, तिन कौं तूं न लषावै ॥ १ ॥
संकर सेस सबै सुरमुनि जन, तिन कौं तूं न जनावै ।
तीनि लोक रटैं रसनां भरि, तिन कौं तूं न दिषावै ॥ २ ॥
अपनैं अंग की जुगति न जांनैं, सो मनि तेरे भावै ।
सेवा संजम करैं जप पूजा, सबद न तिन कौं सुनावै ॥ ३ ॥
दीन लीन रांम रंग राते, तिन कौं तूं संगि लावै ।
मैं अछेप हींन मति मेरी, दादू कौं दिषलावै ॥ ४ ॥

इति राग सोरठ समाप्त ॥ १६ ॥

अथ राग गुंड ॥ २० ॥

॥ पद ३१३ ॥ भक्ति निःकाम ॥

दर्सन दे दर्सन दे, हौं तौ तेरी मुकति न मांगौं ॥ टेक ॥
सिधि न मांगौं रिधि न मांगौं, तुम्हहीं मांगौं मोबिंदा ॥ १ ॥
जोग न मांगौं भोग न मांगौं, तुम्हहीं मांगौं रांमजी ॥ २ ॥
घर नहिं मांगौं बन नहिं मांगौं, तुम्हहीं मांगौं देवजी ॥ ३ ॥
दादू तुम्ह बिन और न मांगौं, दर्सन मांगौं देहुजी ॥ ४ ॥

॥ पद ३१४ ॥ बिरह बीनती ॥

तूं आपैं हीं बिचारि, तुझ बिन क्यूं रहौं ।
मेरे और न दूजा कोइ, दुष किस कौं कहौं ॥ टेक ॥
मीत हमारा सोइ, आदैं जे पीया ।
मुझै मिलावै कोइ, वै जीवनि जीया ॥ १ ॥
तेरे नैंन दिषाइ, जीऊं जिस आसि रे ।
सो धन जीवै क्यूं, नहीं जिस पासि रे ॥ २ ॥
पिंजर मांहैं प्रांण, तुझ बिन जाइसी ।
जन दादू मांगै मांन, कब घरि आइसी ॥ ३ ॥

॥ पद ३१५ ॥

हूं जोइ रही रे वाट, तूं घरि आवने ।
तारा दर्शन थी सुष होइ, ते तूं देषाड़ नै ॥ टेक ॥
चरण जोवा ने पांत, ते तूं देषाड़ नै ।
तुझ बिना जीव़ देइ, दुहेली कामनी ॥ १ ॥
नेणे निहारूं वाट, ऊभी चावनी ।
तूं अंतर थी ऊरो आव़ै, देही जावनी ॥ २ ॥
तूं दया करी घरि आव, दासी गांवनी ।
जण दादू राम संभाल, वैन सुहावनी ॥ ३ ॥

॥ पद ३१६ ॥

पीव़ देषे बिन क्यूं रहौं, जिय तलफै मेरा ।
सब सुष आनंद पाइये, मुष देषौं तेरा ॥ टेक ॥

(३१५) देषाड़ = दिखाव । पांत = चाह । ऊभी = खड़ी । चावनी = इच्छावान ॥

पिव बिन कैसा जीवनां, मोहि चैन न आवै ।
निर्धन ज्यूं धन पाइये, जब दरस दिखावै ॥ १ ॥
तुम्ह बिन क्यूं धीरज धरौं, जौ लौं तोहि न पांऊं ।
सन्मुष ह्वै सुष दीजिये, बलिहारी जांऊं ॥ २ ॥
बिरह बिछोग न सहि सकौं, काइर घट काचा ।
पांवन परसन पाइये, सुनि साहिब साचा ॥ ३ ॥
सुनि यूं मेरी बीनती, इब दरसन दीजै ।
दादू देषन पांवहीं, तैसैं कुछ कीजै ॥ ४ ॥

॥ पद ३१७ ॥ प्रीति अषंडित ॥

इहि बिधि बेध्यौ मोर मनां, ज्यूं लै भृंगी कीट तनां ॥ टेक ॥
चात्रिग रटतैं रैंनि बिहाइ, प्यंड परै पै बांनि न जाइ ॥ १ ॥
मरै मीन बिसरै नहिं पांनीं, प्रांण तजे उनि और न जांनीं ॥२॥
जलै सरीर न मोड़ै अंगा, जोति न छाड़ै पड़ै पतंगा ॥ ३ ॥
दादू इब थैं अैसैं होइ, प्यंड परै नहिं छाड़ौं तोहि ॥ ४ ॥

॥ पद ३१८ ॥ बिरह ॥

आवौ रांम दया करि मेरे, बार बार बलिहारी तेरे ॥ टेक ॥
बिरहनि आतुर पंथ निहारै, रांम रांम कहि पीव पुकारै ॥ १ ॥
पंथी बूझै मारग जोवै, नैंन नीर जल भरि भरि रोवै ॥ २ ॥

---

(३१७) प्यंड परै = शरीर छूट जाय, पतन हो ॥

(३१८-४) बप बिसरै = स्वरूप बिसर जाय । मृतक मांहीं = बाह्य शरीर तौ जीता है पर अंदर मन मृतक होगया, अर्थात् मन की विषय कामना शांत होगई ॥

निस दिन तलफै रहै उदास, आतम रांम तुम्हारै पास ॥३॥
बप बिसरै तन की सुधि नांहीं, दादू बिरहनि मृतक मांहीं ॥४॥

॥ पद ३१६ ॥ केवल बिनती ॥

निरंजन क्यूं रहै, मोनि गहैं बैराग, केते जुग गये ॥ टेक ॥
जागैं जगपति राइ, हसि बोलै नहीं ।
परगट घूंघट मांहिं, पट षोलै नहीं ॥ १ ॥
सदिकै करौं संसार, सब जग वारणैं ।
छाड़ौं सब परिवार, तेरे कारणैं ॥ २ ॥
वारौं प्यंड परांन, पांऊं सिर धरूं ।
ज्यूं ज्यूं भावै रांम, सो सेवा करूं ॥ ३ ॥
दीनांनांथ दयाल ! बिलंब न कीजिये ।
दादू बलि बलि जाइ, सेज सुष दीजिये ॥ ४ ॥

॥ पद ३२० ॥

निरंजन यूं रहै, काहूं लिपति न होइ,
जल थल थावर जंगमां, गुण नहिं लागै कोइ ॥ टेक ॥
धर अंबर लागै नहीं, नहिं लागै ससिहर सूर ।
पांणीं पवन लागै नहीं, जहां तहां भरपूर ॥ १ ॥
निस बासुरि लागै नहीं, नहिं लागै सीतल घांम ।
षुध्या त्रिषा लागै नहीं, घटि घटि आतमरांम ॥ २ ॥
माया मोह लागै नहीं, नहिं लागै काया जीव ।
काल करम लागै नहीं, प्रगटै मेरा पीव ॥ ३ ॥
इकलस एकै नूर है, इकलस एकै तेज ।
इकलस एकै जोति है, दादू षेलै सेज ॥ ४ ॥

॥ पद ३२१ ॥

जग जीवन प्रांण अधार, बाचा पालणां ।
हौं कहां पुकारौं जाइ, मेरे लालनां ॥ टेक ॥
मेरे बेदन अंगि अपार, सो दुष टालनां ।
सागर ये निस्तारि, गहरा अति घणां ॥ १ ॥
अंतर है सो टालि, कीजै आपणां ।
मेरे तुम्ह बिन और न कोइ, इहै बिचारणां ॥ २ ॥
ताथैं करौं पुकार, यहु तन चालणां ।
दादू कौं दर्सन देहु, जाइ दुष सालणां ॥ ३ ॥

॥ पद ३२२ ॥ मनकां नीकी बिनती ॥

मेरे तुम्हहीं राषणहार, दूजा को नहीं ।
ये चंचल चहुं दिसि जाइ, काल तहीं तहीं ॥ टेक ॥
मैं केते किये उपाइ, निहचल नां रहै ।
जहं वरजौं तहं जाइ, मदि मातौ बहै ॥ १ ॥
जहं जांणौं तहं जाइ, तुम्हथैं नां डरै ।
तास्यौं कहा बसाइ, भावै त्यूं करै ॥ २ ॥
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या ।
गुर अकुंस मांनैं नांहिं, निरभै ह्वै रह्या ॥ ३ ॥
तुम्ह बिन और न कोइ, इस मन कौं गहै ।
तूं राषै राषणहार, दादू तौ रहै ॥ ४ ॥

॥ पद ३२३ ॥ संसारकां नीकी बिनती ॥

निरंजन काइर कपै प्रांणिया, देषि यहु दरिया ।

(३२१) बाचा पालणां = प्रतिज्ञा पालक । मेरे लालनां = मेरे प्यारे ॥

वार पार सूझै नहीं, मन मेरा डरिया ॥ टेक ॥
अति अथाह ये भौ जला, आसंघ नहिं आवै ।
देषि देषि डरपै घणां, प्रांणीं दुष पावै ॥ १ ॥
बिस जल भरिया सागरा, सब थके सयांनां ।
तुम्ह बिन कहु कैसें तिरौं, मैं मूढ़ अयांनां ॥ २ ॥
आगैहीं डरपै घणां, मेरी का कहिये ।
कर गहि काढ़ौ केसवा, पार तौ लहिये ॥ ३ ॥
एक भरोसा तौ रहै, जे तुम्ह होहु दयाला ।
दादू कहु कैसें तिरै, तूं तारि गोपाला ॥ ४ ॥

॥ ३२४ ॥ उपदेस समरथ ॥

सम्रथ मेरा साइयां, सकल अघ जारै ।
सुषदाता मेरे प्रांण का, संकोच निवारै ॥ टेक ॥
त्रिविध ताप तन की हरै, चौथै जन राषै ।
आप समागम सेवगा, साधू यूं भाषै ॥ १ ॥
आप करै प्रतिपालनां, दारन दुष टारै ।
यंछया जन की पूरवै, सबै कारिज सारै ॥ २ ॥
करम कोटि भै भंजनां, सुष मंडन सोई ।
मन मनोर्थ पूरणां, ऐसा और न कोई ॥ ३ ॥
ऐसा और न देषि हौं, सब पूरण कांमां ।
दादू साध संगी किये, उनि आतम रांमां ॥ ४ ॥

॥ पद ३२५ ॥ मन की बिनती ॥

तुम्ह बिन रांम कवन कलि मांहीं, बिषिया थैं कोइ बारै रे ।

मुनियर मोटा मनवैं बाह्या, येन्हां कौन मनोरथ मांरै रे ॥टेक॥
छिन एकैं मनवौं मर्कट माहरौ, घर घरबारि नचावै रे ।
छिन एकैं मनवौं चंचल माहरौ, छिन एकैं घरमां आवै रे ॥१॥
छिन एकैं मनवौं मीन अम्हारो, सचराचर मां ध्यायोरे ।
छिन एकैं मनवौं उदमदि मातौ, स्वादैं लागौ पायेरे ॥ २ ॥
छिन एकैं मनवौं जोति पतंगा, भ्रमि भ्रमि स्वादैं दाझै रे ।
छिन एकैं मनवौं लोभैं लागौ, आपा पर मैं बाझै रे ॥ ३ ॥
छिन एकैं मनवौं कुंजर माहरौ, बन बन मांहिं भ्रमाड़ै रे ।
छिन एकैं मनवौं कांमीं माहरौ, बिपिया रंग रमाड़ै रे ॥ ४ ॥
छिन एकैं मनवौं म्रघ अम्हारो, नादैं मोह्यौ जाये रे ।
छिन एकैं मनवौं माया रातौ, छिन एकैं अम्हनैं वाहेरे ॥ ५ ॥
छिन एकैं मनवौं भवर अम्हारौ, बासैं कवल बंधाणोंरे ।
छिन एकैं मनवौं चहु दिसि जाये, मनवां नैं कोइ आंणोंरे ॥ ६ ॥
तुम्ह बिन राषै कौंण बिधाता, मुनियर साषी आंणोंरे ।
दादू मृतक छिनमां जीवै, मनवां चरित न जांणोंरे ॥ ७ ॥

॥ पद ३२६ ॥ बेपर्च बिसनी ॥

करणी पोच, सोच सुष करई, लोह की नाव कैसैं भौ जल तिरई टेक
दिषन जात, पछिम कैसैं आवै, नैंन बिन भूलि बाट कत पावै । १ ।
बिष बन बेलि, अमृत फल चाहै, षाइ हलाहल, अमर उमाहै ॥२॥
अगनि गृह पैसि करि, सुष क्यूं सोवै,
जलणि जागी घणीं, सीत क्यूं होवै ॥ ३ ॥
पाप पाषंड कीयें, पुनि क्यूं पाइये, ।

कूप षनि पड़िबा, गगन क्यूं जाइये ॥ ४ ॥
कहै दादू मोहि अचिरज भारी, हिरदै कपट क्यूं मिलै मुरारी॥ ५॥

॥ पद ३२७ ॥ परचै प्राप्ति ॥

मेरा मनके मन सौं मन लागा, सबद के सबदसौं नाद बागा ।टेक।
श्रवण के श्रवण सुणि सुष पाया, नैंनकै नैंनसौं निरबिराया॥ १ ॥
प्रांण के प्रांण सौं षेलि प्रांणीं, मुषके मुषसौं बोलि बांणीं ॥ २ ॥
जीवके जीवसौं रंगि राता, चित्तके चित्तसौं प्रेम माता ॥ ३ ॥
सीसके सीससौं सीस मेरा, देषिरे दादू वा भाग तेरा ॥ ४ ॥

॥ पद ३२८ ॥ मनकौं उपदेस ॥

मेर सिषर चढि बोलि मन मोरा,
रांम जल बरिषै सुणि सबद तोरा ॥ टेक ॥
आरति आतुर पीव पुकारै, सोवत जागत पंथ निहारै ॥ १ ॥
निस बासुरि कहि अमृत बांणीं,
रांम नांम ल्यौ लाइ लै प्रांणीं ॥ २ ॥
टेरि मन भाई जब लग जीवै, प्रीति करि गाढी प्रेम रस पीवै ॥३॥
दादू औसरि जे जन जागै, रांम घटा जल बरिषण लागै ॥ ४ ॥

॥ पद ३२९ ॥ वैराग उपदेस ॥

नारी नेह न कीजिये, जे तुझ रांम पियारा ।
माया मोह न बंधिये, तजिये संसारा ॥ टेक ॥
बिषिया रंगि राचै नहीं, नहिं करै पसारा ।

---

(३२७) यह पद केनोपनिषद् के प्रथम खंड के चौथे मंत्र से लेकर ८ वें मंत्र तक का वाच्यार्थ है ॥

देह गेह परिवारमैं, सबथैं रहै नियारा ॥ १ ॥
आपा पर उरझै नहीं, नांहीं मैं मेरा ।
मनसा बाचा कर्मनां, सांई सब तेरा ॥ २ ॥
मन इंद्री अस्थिर करै, कतहूं नहिं डोलै ।
जग विकार सब परिहरै, मिथ्या नहिं बोलै ॥ ३ ॥
रहै निरंतर रामसौं, अंतरि गति राता ।
गावै गुण गोबिंद का, दादू रसि माता ॥ ४ ॥

॥ पद ३३० ॥ आज्ञाकारी ॥

तू राषै त्यूं हीं रहैं, तेई जन तेरा,
तुम्ह बिन और न जांनहीं, सो सेवग नेरा ॥ टेक ॥
अंबर आपैहीं धरया, अजहूं उपगारी ।
धरती धारी आप थैं, सबहीं सुषकारी ॥ १ ॥
पवन पासि सब के चलै, जैसैं तुम कीन्हां ।
पांनी परगट देषि हूं, सब सौं रहै भीनां ॥ २ ॥
चंद चिराकी चहु दिसा, सब सीतल जांनैं ।
सूरज भी सेवा करै, जैसैं भल मांनैं ॥ ३ ॥
ये निज सेवग तेरड़े, सब आग्याकारी ।
मोकौं अैसैं कीजिये, दादू बलिहारी ॥ ४ ॥

॥ पद ३३१ ॥ निंदक ॥

न्यंदक बाबा बीर हमारा, बिनहीं कौड़े बहै बिचारा ॥ टेक ॥

(३३१) सांभरि मैं गाली दई, गुर दादू कौं आइ ।
तब हीं सबद ये उबरचौ, धरी मिठाई पाइ ॥

कर्म कोटि के कुसमल काटै, काज संवारै बिनहीं साटै ॥ १ ॥
आपण डूबै और कौं तारै, ऐसा प्रीतम पार उतारै ॥ २ ॥
जुगि जुगि जीवौ नींदक मोरा, रांम देव तुम्ह करौ निहोरा ॥३॥
न्यंदक बपुरा पर उपगारी, दादू न्यंद्या करै हमारी ॥ ४ ॥

॥ पद ३३२ ॥ विरह बीनती ॥

देहुजी देहुजी, प्रेम पियाला देहुजी, देकरि बहुरि न लेहुजी ॥टेक॥
ज्यूं ज्यूं नूर न देषौं तेरा, त्यूं त्यूं जियरा तलफै मेरा ॥ १ ॥
अमी महारस नांव न आवै, त्यूं त्यूं प्रांण बहुत दुष पावै ॥ २ ॥
प्रेम भगति रस पावै नांहीं, त्यूं त्यूं साले मनहीं मांहीं ॥ ३ ॥
सेज सुहाग सदा सुष दीजै, दादू दुषिया बिलंब न कीजै ॥४॥

॥ पद ३३३ ॥ परचै बीनती ॥

बरिषहु रांम अमृत धारा,
झिलिमिलि झिलिमिलि सीचनहारा ॥ टेक ॥
प्रांण बेलि निज नीर न पावै, जलहर बिनां कवल कुमिलावै ॥१॥
सूकै बेलि सकल बनराइ, रांमदेव जल बरिषहु आइ ॥ २ ॥
आतम बेली मरै पियास, नीर न पावै दादू दास ॥ ३ ॥

॥ इति राग गुंड समाप्त ॥ २० ॥

अथ राग बिलावल ॥ २१ ॥

॥ पद ३३४ ॥ परचै बीनती ॥

दया तुम्हारी दरसन पइये, जांनत हौं तुम्ह अंतरजांमीं ।
जांनराइ तुम सौं कह कहिये ॥ टेक ॥

तुम्ह सौं कहा चतुराई कीजै, कौंम कर्म करि तुम्ह पाये ।
को नहिं मिलै प्रांण बल आपणैं, दया तुम्हारी तुम्ह आये ॥१॥
कहा हमारौ आंनि तुम्ह आगैं, कौंण कला करि बासि कीये ।
जीतैं कौंण बुधि बल पौरिष, रुचि अपनी तैं सरनि लीये ॥ २ ॥
तुम्हहीं आदि अंति पुनि तुम्हहीं, तुम्ह कर्ता त्रिय लोक मंझारि ।
कुछ नांहीं थैं कहा होत है, दादू बलि पावै दीदार ॥ ३ ॥

॥ पद ३३५ ॥ बीनती ॥

मालिक मेहरबान करीम,
गुनहगार हररोज हरदम, पनह रापि रहीम ॥ टेक ॥
अव्वल आषिर बंदा गुनहीं, अमल बद बिसियार ।
ग़रक़ दुनिया सितार साहिब, दरदवंद पुकार ॥ १ ॥
फरामोस नेकी बदी, करदः बुराई बद फैल ।
बषसिंदः तूं अजीब आषिर, हुक्म हाज़िर सैल ॥ २ ॥
नाम नेक रहीम राज़िक, पाक परवरदिगार ।
गुनह फिल करि देहु दादू, तलब दर दीदार ॥ ३ ॥

॥ पद ३३६ ॥

कौंण आदमीं कमींण बिचारा, किमकूं पूजै गरीब पियारा ॥ टेक ॥
मैं जन एक अनेक पसारा, भौजल भरिया अधिक अपारा ॥१॥
एक होइ तौ कहि समझाऊं, अनेक अरुझे क्यूं सुरझांऊं ।२।

---

(३३५) पनह=रक्षा । अव्वल=आदि । आषिर=अंत । अमल=कर्म । बद=बुरे । बिसियार=बहुत । ग़रक़=डूबा हुआ । सितार=सत्तार=पड़दा रखनेवाला । फरामोश=विस्मरण । सैल=हाकिम । फिल=बख़शिश=क्षमा ॥

मैं हौं निबल सबल ये सारे, क्यूं करि पूजौं बहुत पसारे ॥ ३ ॥
पीव पुकारौं समझत नांहीं, दादू देषु दसौं दिसि जांहीं ॥४॥

॥ पद ३३७ ॥ उपदेस चितावणी ॥

जागहु जियरा काहे सोवै, सेइ करीमां तौ सुष होवै ॥ टेक ॥
जाथैं जीवन सोतैं बिसारा, पंछिम जांनां पंथ न संवारा ।
मैं मेरी करि बहुत भुलांनां, अजहूं न चेतै दूरि पयांनां ॥ १ ॥
सांई केरी सेवा नांहीं, फिरि फिरि डूबै दरिया मांहीं ।
ओर न आवै, पार न पावा, झूठा जीवन बहुत भुलावा ॥ २ ॥
मूल न राष्या, लाह न लीया, कौड़ी बदलै हीरा दीया ।
फिर पछितांनां सबलु नांहीं, हारि चल्या क्यूं पावै सांई ॥ ३ ॥
इब सुष कारणि फिर दुष पावै, अजहूं न चेतै क्यूं डहिकावै ।
दादू कहै सीष सुणि मेरी, कहु करीम संभालि सवेरी ॥ ४ ॥

॥ पद ३३८ ॥

बार बार तन नहीं बारे, काहे कौं बादि गवावै रे ।
बिनसत बार कछू नहिं लागै, बहुरि कहां कौं पावै रे ॥ टेक ॥
तेरे भाग बड़े भाव धरि कीन्हां, क्यूं करि चित्र बनावै रे ।
सो तूं लेइ विषै में डारै, कंचन छार मिलावै रे ॥ १ ॥
तूं मति जांनें बहुरि पाईये, अबकै जिनि डहिकावै रे ।
तीनि लोक की पूंजी तेरै, बनजि बेगि सो आवै रे ॥ २ ॥
जब लग घट में सास बास है, तब लग काहे न धावै रे ।

(३३७) पंछिम=पश्चिम=पीछे । दरिया = संसार । कौड़ी = तुच्छ संसार । हीरा = ब्रह्म ॥

दादू तन धरि नांउं न लीन्हां, सो प्रांणीं पछितावै रे ॥ ३ ॥

॥ पद ३३९ ॥

रांम बिसार्यौ रे जगनाथ,
हीरा हार्यौ देषतहीं रे, कौडी कीन्हीं हाथ ॥ टेक ॥
काच हुता कंचन करि जांनैं, भूल्यौ रे भ्रम पास ।
साचे सौं पल परचा नांहीं, करि काचे की आस ॥ १ ॥
विष ताकौं अमृत करि जांनैं, सो संग न आवै साथ ।
सैंबल के फूलनि परि फूल्यौ, चूकौ अबकी घात ॥ २ ॥
हरि भजि रे मन सहज पिछांनैं, ये सुनि साची बात ।
दादू रे इब थैं करि लीजै, आव घटै दिन जात ॥ ३ ॥

॥ पद ३४० ॥ मन ॥

मन चंचल मेरौ कह्यौ न मांनैं, दसौं दिसा दौरावै रे ।
आवत जात बार नहिं लागै, बहुत भांति बौरावै रे ॥टेक॥
बेर बेर बरजत या मनकौं किंचित सीष न मांनैं रे ।
ऐसैं निकसि जात या तन थैं, जैसैं जीव न जांनैं रे ॥१॥
कोटिक जतन करत या मनकौं, निहचल निमष न होई रे ।
चंचल चपल चहू दिसि भरमैं, कहा करै जन कोई रे ॥२॥
सदा सोच रहत घट भीतरि, मन थिर कैसैं कीजै रे ।
सहजैं सहज साध की संगति, दादू हरि भजि लीजै रे ॥ ३ ॥

॥ पद ३४१ ॥ माया ॥

इन कांमनि घर घाले रे, प्रीति लगाइ प्रांण सब सोषे ।

---

(३४१) बाचै = बचै । साचै = सच्चा परमेश्वर । छाछ छिया = छाछवत असार, निकम्मा, छीछी करने योग्य । निज पद = आत्मस्वरूप ॥

बिन पावक जिय जाले रे ॥ टेक ॥
अंगि लगाइ सार सब लेवै, इन थैं कोई न बाचै रे ।
यहु संसार जीति सब लीया, मिलन न देइ साचै रे ॥ १ ॥
हेत लगाइ सबै धन लेवै, बाकी कछू न राषै रे ।
मांषण मांहिं सोधि सब लेवै, छाछ छिया करि नाषै रे ॥२॥
जे जन जांनि जुगति सौं त्यागैं, तिन कौं निज पद परसै रे।
काल न षाइ मरैं नहिं कबहूं, दादू तिन कौं दरसै रे ॥ ३ ॥

॥ पद ३४२ ॥ बेसास ॥

जिनि सत छाडै बावरे, पूरिक है पूरा,
सिरजे की सब च्यंत है, देबे कौं सूरा ॥ टेक ॥
गर्भवास जिन राषिया, पावक थैं न्यारा ।
जुगति जतन करि सींचिया, दे प्रांण अधारा ॥ १ ॥
कुंज कहां धरि संचरै, तहां को रषवारा ।
हेम हरत जिन राषिया, सो षसम हमारा ॥ १ ॥
जल थल जीव जिते रहैं, सो सब कौं पूरै ।
संपट सिला मैं देत है, काहे नर झूरै ॥ २ ॥
जिन यहु भार उठाइया, निर्बाहै सोई ।
दादू छिन न बिसारिये, तातैं जीवन होई ॥ ३ ॥

॥ पद ३४३ ॥

सोई रांम संभालि जियरा, प्रांण प्यंड जिन दीन्हां रे ।

---

(३४२) सिरजे=सृष्टि । संचरै = संचय करै । संपट सिला = ऊपर तले मिली पत्थर की पट्टी ॥

अंबर आप उपांवन हारा, मांहि चित्र जिन कीन्हां रे ॥टेक॥
चंद सूर जिन किये चिराका, चरनौं बिनां चलावै रे ।
इक सीतल इक ताता डोलै, अनंत कला दिषलावै रे ॥ १॥
धरती धरनि बरनि बहु बांणीं, रचिले सत संनंदा रे।
जल थल जीव संभालन हारा, पूरि रह्या सब संगा रे ॥ २ ॥
प्रगट पवन पांनीं जिन कीन्हां, बरिषावे बहु धारा रे ।
अठार भार बिरष बहु बिधि के, सब का सींचन हारा रे ॥३॥
पंच तत्त जिन किये पसारा, सब करि देषन लागा रे।
निहचल रांम जपी मेरे जियरा, दादू तौथैं जागा रे॥ ४॥

॥ पद २४४ ॥ परचै ॥

जब मैं रहते की रह जांनीं,
काल काया के निकटि न आवै, पावत है सुष प्रांणीं ॥टेक॥
सोग संताप नैंन नहिं देषौं, राग दोष नहिं आवै ।
जागत है जासौं रुचि मेरी, सुपिनैं सोई दिषावै ॥ १ ॥
भरम करम मोह नहिं ममिता, बाद बिवाद न जांनौं ।
मोहन सौं मेरी बनि आई, रसनां सोई बषानौं ॥ २ ॥
निस बासुरि मोहन तनि मेरे, चरन कवल मन मांनैं ।
सोई निधि निरषि देषि सचु पांऊं, दादू और न जांनैं ॥ ३ ॥

॥ पद २४५ ॥

जब मैं साचे की सुधि पाई,
तब थैं अंगि और नहिं आवै, देषत हूं सुषदाई ॥ टेक ॥

(२४४) रहते की रह = सत्ता वान (परब्रह्म) के मिलने की राह। दूसरी कड़ी में "बनि आई" की जगह पुस्तक नं० १ में बनिआवै है॥

ता दिन थैं तनि ताप न व्यापै, सुष दुष संगि न जांऊं ।
पावन पीव परसि पद लीन्हां, आनंद भरि गुन गांऊं ।
सब सौं संग नहीं पुनि मेरे, अरस परस कुछ नांहीं ।
एक अनंत सोई संगि मेरे, निरषत हौं निज मांहीं ॥ २ ॥
तन मन मांहिं सोधि सो लीन्हां, निरषत हौं निज सारा ।
सोई संग सबै सुषदाई, दादू भाग हमारा ॥ ३ ॥

॥ पद ३४६ ॥ साच निदान ॥

हरि बिन निहचल कहीं न देषौं, तीनि लोक फिरि सोधारे ।
जे दीसै सो बिनसि जाइगा, अैसा गुर परमोधारे ॥ टेक ॥
धरती गगन पवन अरू पांनीं, चंद सूर थिर नांहीं रे ।
रैंनि दिवस रहत नहिं दीसैं, एक रहै कलि मांहीं रे ॥ १ ॥
पीर पैकंबर सेष मसाइक, सिव बिरंच सब देवारे ।
कलि आया सो कोइ न रहसी, रहसी अलष अभेवारे ॥ २ ॥
सवालाष मेर गिरि पर्वत, समंद न रहसी थीरा रे ।
नदी निवांन कछू नहिं दीसै, रहसी अकल सरीरा रे ॥ ३ ॥
अविनासी ओ एक रहेगा, जिन यहु सब कुछ कीन्हां रे ।
दादू जाता सब जग देषौं, एक रहत सो चीन्हां रे ॥ ४ ॥

॥ पद ३४७ ॥ पतिव्रता ॥

मूल सींचि वधै ज्यूं बेला, सो तत तरवर रहै अकेला ॥टेक॥
देवी देषत फिरै ज्यूं भूले, षाइ हलाहल बिषै कौं फूले।
सुषकौं चाहै पड़ै गालि पासी, देषत हीरा हाथ थैं जासी ॥१॥
केई पूजा रचि ध्यांन लगावैं, देवल देषैं षबरि न पावैं ।

तो रैं पाती जुगति न जांनीं, इहि भ्रमि भूलि रहे अभिमांनीं ॥२॥
तीर्थ ब्रत न पूजैं आसा, बनषंडि जांहिं रहैं उदासा ।
यूं तप करि करि देह जलावैं, भर्मत डोलैं जन्म गवावैं ॥ ३ ॥
सतगुर मिलै न संसा जाई, ये बंधन सब देइ छुड़ाई ।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति मांहिं लषावै ॥४॥

॥ पद ३४८ ॥ साध परीछा ॥

सोई साध सिरोमणी, गोबिंद गुण गावै ।
रांम भजै बिषिया तजै, आपा न जनावै ॥ टेक ॥
मिथ्या मुषि बोलै नहीं, पर न्यंद्या नांहीं ।
औगुण छाड़ै गुण गहै, मन हरि पद मांहीं ॥ १ ॥
निबैंरी सब आतमा, पर आतम जांनैं ।
सुषदाई समिता गहै, आपा नहिं आंनैं ॥ २ ॥
आपा पर अंतर नहीं, निर्मल निज सारा ।
सतवादी साचा कहै, लै लीन बिचारा ॥ ३ ॥
निर्भै भाजि न्यारा रहै, काहूं लिपत न होई ।
दादू सब संसारमैं, ऐसा जन कोई ॥ ४ ॥

॥ पद ३४९ ॥ परचै परीछा ॥

रांम मिल्या यूं जांनिये, जाकौं काल न व्यापै ।
जुरा मरण ताकौं नहीं, अरु मेटै आपै ॥ टेक ॥
सुष दुष कबहूं न ऊपजै, अरु सब जग सूझै ।
करम को बांधै नहीं, सब आगम बूझै ॥ १ ॥
जागत व्है सो जन रहै, अरु जुगि जुगि जागै ।

अंतरजामी सौं रहै, कुछु काई न लागै ॥ २ ॥
कांम दहै सहजैं रहै, अरु सुंन्य बिचारै ।
दादू सो सबकी लहै, अरु कबहूं न हारै ॥ ३ ॥

॥ पद ३५० ॥ समता ज्ञान ॥

इन बातनि मेरा मन मानैं, दुतिया दोइ नहीं उर अंतरि ।
येक येक करि पीवकौं जानैं ॥ टेक ॥
पूरण ब्रह्म देषै सबहिन मैं, भ्रम न जीव काहूं थैं आनैं ।
होइ दयाल दीनता सबन्हौं, अरि पांचनि कौं करै किसानैं ॥१॥
आपा पर सम सब तत चीन्हैं, हरि भजै केवल जस गानैं ।
दादू सोई सहजि घरि आनैं, संकुट सबै जीव के भानैं ॥२॥

॥ पद ३५१ ॥ परचै ॥

ये मन मेरा पीवसौं, औरनि सौं नांहीं ।
पीव बिन पलहि न जीव सौं, येह उपजै मांहीं ॥ टेक ॥
देषि देषि सुष जीव सौं, तहां दूष न छांहीं ।
अजरावर मन बंधिया, साथैं अनत न जांहीं ॥ १ ॥
तेज पुंज फल पाइया, तहां रस षांहीं ।
अमर बेलि अमृत झरै, पीव पीव अघांहीं ॥ २ ॥
प्रांणपती तहं पाइया, जहं उलटि समांहीं ।

---

(३४९) मेटै आपैं=आपा, आपनपौ को त्याग दे । कर्म को बांधै नहीं= किसी कर्म मे हर्ष शोक न हो, परचालाप व चिंता न हो ॥ सब आगम दूझै = सब में आतमब्रह्म ही देखै ॥

(३५०-१) अरि पांचनि कौं करै किसानैं=शत्रु पंच इंद्रियों को किसानैं (दमन करै) ॥

दादू पीव परचा भया, हियरे हित लाई ॥ ३ ॥

॥ पद ३५२ ॥

अजि परभाति मिले हरि लाल,
दिलकी बिथा पीड़ सब भागी, मिट्यौ जीव कौ साल ॥टेक॥
देषत नैंन संतोष भयो है, इहै तुम्हारौ ष्याल ।
दादू जन सौं हिलि मिलि रहिबौ, तुम्ह हौ दीन दयाल ॥१॥

॥ पद ३५३ ॥ निज स्थान निर्णय उपदेस ॥

अरस इलाही रबदा, इथांई रहिमांन वे ।
मका विचि मुसाफरीला, मदीनां मुलितांन वे ॥ टेक ॥
नवी नाल पैकंबरे, पीरौं हंदा थान वे ।
जन तहुं लेहिकसां, लाइ इथां भिस्त मुकाम वे ॥ १ ॥
इथां आब ज़म ज़मा, इथांई सुबहान वे ।
तषत रवानी कंगुरेला, इथांई सुलितांन वे ॥ २ ॥
सब इथां अंदरि आव वे, इथांई ईमान वे ॥
दादू आप वंजाइ बेला, इथांई आसान वे ॥ ३ ॥

॥ पद ३५४ ॥

आसण रमिदा रांमदा, हरि इथां अविगत आप वे ।
काया कासी वंजणां, हरि इथैं पूजा जाप वे ॥ टेक ॥
महादेव मुनिदेव ते, सिधैंदा विश्राम वे ।

---

(३५३) इस पद में निज़ाम को उपदेश दयालजी ने दिया था ! इस का तात्पर्य यह है कि इथांई (इसी शरीर में) रहमान, नवी, पीर, पैगम्बर, मक्का, मदीनादि सब हैं, जैसा कि कायाबेली ग्रंथ (पद ३५७-३६४) में आगे बताया है ॥

सर्ग सुषासण हुलणें, हरि इथैं आतमरांम वे ॥ १ ॥
अमीं सरोवर आतमा, इथांई आधार वे ।
अमर थान अविगत रहै, हरि इथैं सिरजनहार वे ॥ २ ॥
सब कुछ इथैं आवे, इथां परमानंद वे ।
दादू आपा दूरि करि, हरि इथांई आनंद वे ॥ ३ ॥
॥ इति राग बिलावल समाप्त ॥ २१ ॥

अथ राग सूहौ ॥ २२ ॥

॥ पद ३५५ ॥ विनती ॥

तुम्ह बिचि अंतर जिनि परै माधव, भावै तन धन लेहु ।
भावै सरग नरक रसातल, भावै करवत देहु ॥ टेक ॥
भावै विपति देह दुष संकुट, भावै संपति सुष सरीर ।
भावै घर बन राव रंक करि, भावै सागर तीर माधवे ॥ १ ॥
भावै बंध मुकत करि माधव, भावै त्रिभवन सार ।
भावै सकल दोष धरि माधव, भावै सकल निवारि माधवे ॥२॥
भावै धरणि गगन धरि माधव, भावै सीतल सूर ।
दादू निकटि सदा संगि माधव, तूं जिनि होवै दूरि माधवे॥३॥

---

(३५४) इस पद में उपदेश नागर को दिया था । इस का भी तात्पर्य पिछले पद (३५३) का सा ही है ॥

॥ पद ३५६ ॥ परचै ॥

इब हम रांम सनेही पाया, आगम अनहद सौं चित लाया ॥टेक॥
तन मन आत्म ताकौं दीन्हां, तब हरि हम अपनां करि लीन्हां ॥१॥
बांणीं बिमल पंच परांनां, पहिली सीस मिले भगवांनां ॥ २ ॥
जीवत जनम सुफल करि लीनहां, पहली चेते तिन भल कीनहां ।३।
औसरि आपा ठौर लगावा, दादू जीवत ले पहुंचावा ॥ ४ ॥

अथ राग बसंत ॥ २३ ॥

॥ पद ३६५ ॥ भजन भेद ॥

निर्मल नांउं न लीया जाइ, जाके भाग बड़े सोई फल पाइ टेक
मन माया मोह मद माते, कर्म कठिन ता मांहिं परे ।
बिषै बिकार मांनि मन मांहीं, सकल मनोरथ स्वाद षरे ॥१॥
कांम क्रोध ये काल कल्पनां, मैं मैं मेरी अति अहंकार ।
तृष्णां तृपति न मांनैं कबहूं, सदा कुसंगी पंच बिकार ॥ २॥
अनेक जोध रहैं रषवाले, दुर्लभ दूरि कलि अगम अपार ।
जाके भाग बड़े सोई भल पावैं, दादू दाता सिरजनहार ॥३॥

(३५६-२) पहली सीस=पहले सर्वस्व अर्पण किया, तब भगवान मिले ॥
(३५७-३६४) इन पदों पर टीका विस्तार से की गई है, सो इनको सब पदों के अंत में रक्खा है ॥

॥ पद ३६६ ॥ बिरह ॥

तूं घरि आवने माहरे रे, हूं जाउं वारणे ताहरे रे ॥ टेक ॥
रैंनि दिवस मूनै निरषतां जाये,
वेलो थई घरि आवै वाहला आकुल थाये ॥ १ ॥
तिल तिल हूं तो तारी वाटड़ी जोऊं,
एने रे आंसूड़े वाहला मुषड़ो धोऊं ॥ २ ॥
ताहरी दया करी घर आवे रे वाहला,
दादू तो ताहरो छे रे मा कर टाला ॥ ३ ॥

॥ पद ३६७ ॥ करुणा बीनती ॥

मोहन दुष दीरघ तूं निवार, मोहि सतावै बारंबार ॥ टेक ॥
कांम कठिन घट रहैं मांहिं, तातैं ग्यांन ध्यांन दोउ उदै नांहिं ।
गति मति मोहन बिकल मोर, तातैं चीति न आवै नांव तोर ॥१॥
पांचौं दूंदर देह पूरि, तातैं सहज सील सत रहैं दूरि ।
सुधि बुधि मेरी गई भाज, तातैं तुम बिसरे महराज ॥ २ ॥
क्रोध न कबहूं तजै संग, तातैं भाव भजन का होइ भंग ।
समझि न काई मन मंझारि, तातैं चरन बिमुष भये श्री मुरारि ॥३॥
अंतरजामी करि सहाइ, तेरो दीन दुषित भयो जनम जाइ ।
त्राहि त्राहि प्रभु तूं दयाल, कहै दादू हरि करि संभाल ॥४॥

॥ पद ३६८ ॥ मनकां नीकी बिनती ॥

मेरे मोहन मूरति राषि मोहि, निस बासुरि गुन रमौं तोहि ॥टेक॥
मन मींन होइ ज्यूं स्वादि षाइ, लालचि लागौ जल थैं जाइ ।

(३६६) वेलो थई=देर हुई। वाटड़ी जोऊं=राह देखूं। मा कर = मतकर॥

मन हस्ती मातौ अपार, कांम अंध गज लहै न सार ॥ १ ॥
मन पतंग पावग परै, अग्नि न देषै ज्यूं जरै ।
मन मृघा ज्यूं सुनै नाद, प्रांण तजै यूं जाइ वाद ॥ २ ॥
मन मधुकर जैसैं लुबधि वास, कवल बंधावै होइ नास ।
मनसा बाचा सरण तोर, दादू कौं रापौ गोविंद मोर ॥ ३ ॥

॥ ३६९ ॥ उपदेस ॥

बहुरि न कीजै कपट कांम, हिरदै जपिये रांम नांम ॥ टेक ॥
हरि पापैं नहिं कहूं ठांम, पीव बिन पड़ भड़ गांव गांव ।
तुम रापौ जियरा अपनी मांम, अनत जिनि जाय रहौ विश्राम ॥१॥
कपट कांम नहिं कीजै हांम, रहु चरन कवल कहु रांम नांम ।
जब अंतरजामी रहै जांम, तब अपै पद जन दादू प्रांम ॥२॥

॥ पद ३७० ॥ परचै प्राप्ति ॥

तहं षेलौं नितहीं पीवसूं फाग, देषि सषीरी मेरे भाग ॥ टेक ॥
तहं दिन दिन अति आनंद होइ, प्रेम पिलावै आप सोइ ।
संगियन सेती रमौं रास, तहं पूजा अरचा चरन पास ॥ १ ॥
तहं बचन अमोलिक सबहीं सार, तहं बरतै लीला अति अपार ।
उमंगि देइ तब मेरे भाग, तिहि तरवर फल अमर लाग ॥२ ॥
अलष देव कोइ जांणैं भेव, तहं अलष देव की कीजै सेव ।
दादू बलि बलि वारंवार, तहं आप निरंजन निराधार ॥ ३ ॥

---

(३६९) हरि पापैं = हरि बिना, हरि से विमुप । पड़ भड़ = गड़ बड़ । मांम = ममत्व, अपने आसरे । हांम = हिम्मत, जुर्रत । जांम = एक पहर । प्रांम = मिलै, प्राप्त हो ॥

॥ पद ३७१ ॥ परचै सुष बर्णन ॥

मोहन माली सहजि समांनां, कोई जांणैं साध सुजांनां ॥टेक॥
काया बाड़ी मांहैं माली, तहां रास बनाया ।
सेवग सौं स्वामी षेलन कौं, आप दया करि आया ॥ १ ॥
बाहरि भीतरि सर्व निरंतरि, सब मैं रह्या समाई ।
परगट गुपत गुप्त पुनि परगट, अविगत लष्या न जाई ॥२॥
ता मालीकी अकथ कहांणीं, कहत कही नहिं आवै ।
अगम अगोचर करत अनंदा, दादू ये जस गावै ॥ ३ ॥

॥ पद ३७२ ॥ परचै ॥

मन मोहन मेरे मन हीं मांहिं, कीजै सेवा अति तहां ॥ टेक ॥
तहं पायौ देव निरंजनां, परगट भयो हरि ये तनां ।
नैंन नहिं देषौं अघाइ, प्रगट्यौ है हरि मेरे भाइ ॥ १ ॥
मोहि कर नैंनन की सैन देइ, प्रांण मूंसि हरि मोर लेइ ।
तब उपजै मोकौं इहै बांनि, निज निरषत हौं सारंग प्रांनि ॥२॥
अंकुर आदैं प्रगट्यौ सोइ, बैंन बान तातैं लागे मोहि ।
सरणैं दादू रह्यौ जाइ, हरि चरण दिषावै आप आइ ॥ ३ ॥

॥ पद ३७३ ॥ थकित निहचल ॥

मतिवाले पंचूं प्रेम पूरि, निमष न इत उत जाहिं दूरि ॥ टेक ॥
हरि रस माते दया दीन, रांम रमत ह्वै रहे लीन ।
उलटि अपूठे भये थीर, अमृत धारा पीवहिं नीर ॥ १ ॥
सहजि समाधी तजि बिकार, अविनासी रस पीवहिं सार ।
थकित भये मिलि महल मांहिं, मनसा बाचा आंन नांहिं ॥२॥

मन मतिवाला रांम रंगि, मिलि आसणि बैठे एक संगि ।
अस्थिर दादू एक अंग, प्रांणनाथ तहं परमानंद ॥ ३ ॥

इति राग वसंत समाप्त ॥ २३ ॥

अथ राग भैरूं ॥ २४ ॥

॥ पद ३७४ ॥ गुर नांम महिमा माहात्म ॥

सतगुर चरणां मस्तक धरणां, रांम नांम कहि दुतर तिरणां ॥टेक॥
अठ सिधि नव निधि सहजैं पावै, अमर अभै पद सुष मैं आवै ॥१॥
भगति मुकति बैकुंठां जाइ, अमर लोक फल लेवै आइ ॥ २ ॥
परम पदारथ मंगल चार, साहिब के सब भरे भंडार ॥ ३ ॥
नूर तेज है जोति अपार, दादू राता सिरजनहार ॥ ४ ॥

॥ पद ३७५ ॥ उत्तम ज्ञान सुमिरन ॥

तन हीं रांम मन हीं रांम, रांम रिदै रमि राषी ले ।
मनसा रांम सकल परिपूरण, सहज सदा रस चाषी ले ॥ टेक ॥
नैंनां रांम बैंनां रांम, रसनां रांम संभारी ले ।
श्रवणां रांम सन्मुष रांम, रमिता रांम बिचारी ले ॥ १ ॥
सासैं रांम सुरतैं रांम, सबदैं रांम समाई ले ।
अंतरि रांम निरंतरि रांम, आतमरांम ध्याई ले ॥ २ ॥
सर्वैं रांम संगै रांम, रांम नांम ल्यौ लाई ले ।
बाहरि रांम भीतरि रांम, दादू गोबिंद गाई ले ॥ ३ ॥

॥ पद ३७६ ॥ उत्तम सुमिरन ॥

ऐसी सुरति रांम ल्यौ लाइ, हरि हिरदै जिनि बीसरि जाइ ॥टेक॥
छिन छिन मात संभारै पूत, बिंद राषै जोगी औधूत ।
त्रिया करूप रूप कौं रहै, नटणीं निरषि बांस व्रत चहै ॥ १ ॥
कछिव दृष्टी धरै धियांन, चात्रिग नीर प्रेम की बांन ।
कुंजी कुरलि संभालै सोइ, भ्रंगी ध्यांन कीट कौं होइ ॥ २ ॥
श्रवणौं सबद ज्यूं सुनै कुरंग, जोति पतंग न मोड़ै अंग ।
जल बिन मीन तलाफि ज्यौं मरै, दादू सेवग ऐसैं करै ॥ ३ ॥

॥ पद ३७७ ॥ सुमिरन फल ॥

निर्गुण रांम रहै ल्यौ लाइ, सहजैं सहज मिलै हरि जाइ ॥टेक॥
भौजल ब्याधि लिपै नहिं कबहूं, करम न कोई लागै आइ ।
तीन्यूं ताप जरै नहिं जियरा, सो पद परसै सहज सुभाइ ॥१॥
जनम जुरा जोनि नहिं आवै, माया मोह न लागै ताहि ।
पांचौं पीड़ प्रांण नहिं व्यापै, सकल सोधि सब इहै उपाइ॥२॥
संकुट संसा नरक न सैंनहुं, ताकौं कबहूं काल न षाइ ।
कंप न काई भै भ्रम भागै, सब विधि ऐसी एक लगाइ ॥३॥
सहज समाधि गहौ जे डिढ़ करि, जासौं लागै सोई आइ ।
भृंगी होइ कीटकी न्यांई, हरि जन दादू एक दिषाइ ॥ ४ ॥

॥ पद ३७८ ॥ आशीर्वाद ॥

धनि धनि तूं धनि धणीं, तुम्हसौं मेरी आइ बणीं ॥ टेक ॥

---

(३७६) बिंद = वीर्य । बांस व्रत = बांस पर चरत (रस्सी) । इस पद का आशय गुरदेव के अंग की (१४२–४५) साखियों से मिलता है ॥

(३७७) कंप काई = अंतः करण के मल ॥

धनि धनि तूं तारै जगदीस, सुरनर मुनि जन सेवैं ईस ॥
धनि धनि तूं केवल रांम, सेस सहस मुष लेहरि नांम ॥ १ ॥
धनि धनि तूं सिरजनहार, तेरा कोई न पावै पार ।
धनि धनि तूं निरंजन देव, दादू तेरा लषै न भेव ॥ २ ॥

॥ पद ३७६ ॥ भयभीत भयानक ॥

का जांणौं मोहि का ले करसी,
तनहिं ताप मोहि छिन न विसरसी ॥ टेक ॥
आगम मोपैं जान्यूं न जाइ, इहै विमांसण जियरे मांहिं ॥१॥
मैं नहिं जांनौं क्या सिरि होइ, ताथैं जियरा डरपै रोइ ॥ २ ॥
काहू थैं ले कछू करै, ताथैं मइया जीव डरै ॥ ३ ॥
दादू न जांणैं कैसैं कहै, तुम सरणांगति आइ रहै ॥ ४ ॥

॥ पद ३८० ॥

का जाणौं रांम को गति मेरी, मैं विषयी मनसा नहिं फेरी ॥ टेक ॥
जे मन मांगै सोई दीन्हां, जाता देषि फेरि नहिं लीन्हां ॥१॥
देवा दुंदर अधिक पसारे, पांचौं पकरि पटकि नहिं मारे ॥ २ ॥
इन बातनि घट भरे विकारा, तृष्णां तेज मोह नहिं हारा ॥३॥
इनहिं लागि मैं सेव न जांणीं, कहे दादू सो कर्म कहांणीं ॥४॥

॥ पद ३८१ ॥

डरियेरे डरिये, ताथैं रांम नांम चित धरिये ॥ टेक ॥
जिन ये पंच पसारे रे, मारेरे ते मारेरे ॥ १ ॥
जिन ये पंच समेटे रे, भेटेरे ते भेटे रे ॥ २ ॥
काछिब ज्यूं करि लीये रे, जीये रे ते जीये रे ॥ ३ ॥

भृंगी कीट समांनां रे, ध्यांना रे यहु ध्यांना रे ॥ ४ ॥
अज्या सिंघ ज्यूं रहिये रे, दादू दरसन लहिये रे ॥ ५ ॥

॥ पद ३८२ ॥ हरि प्राप्ति दुर्लभ ॥

तहं मुझ कमीन की कौंण चलावै,
जाकौ अजहूं मुनि जन महल न पावै ॥ टेक ॥
सिव बिरंच नारद जस गावैं, कौंन भांति करि निकटि बुलावैं। १।
देवा सकल तेतीसौं कोरि, रहे दरबार ठाढे कर जोरि ॥ २ ॥
सिध साधिक रहे ल्यौ लाइ, अजहूं मोटे महल न पाइ॥ ३ ॥
सब थैं नीच मैं नांव न जांनां, कहै दादू क्यूं मिलै सयांनां ।४।

॥ पद ३८३ ॥ बिनती करूणां ॥

तुम्ह बिन कहु क्यौं जीवन मेरा, अजहूं न देष्या दरसन तेरा टेक
होह दयाल दीनके दाता, तुम पति पूरण सब बिधि साचा॥ १ ॥
जो तुम्ह करौ सोई तुम्ह छाजै, अपणे जन कौं काहे न निवाजै २
अकरन करन ऐसैं अब कीजै,अपनौं जांनि करि दरसन दीजै ३
दादू कहै सुनहुं हरि सांई, दर्सन दीजै मिलौ गुसांई ॥ ४ ॥

॥ पद ३८४ ॥ उपदेस चितावणी ॥

कागारे करंक परि बोलै, षाइ मास अरु लगही डोलै ॥ टेक॥
जा तन कौं राचि अधिक संवारा, सो तन ले माटी मैं डारा॥१॥
जा तन देषि अधिक नर फूले, सो तन छाडि चल्यारे भूले॥२॥
जा तन देषि मनमैं गर्वानां, मिलि गया माटी तजि अभिमांनां ॥
दादू तनकी कहा बड़ाई, निमष मांहिं माटी मिलि जाई ॥४॥

॥ पद ३८५ ॥ उपदेस ॥

जपि गोबिंद बिसरि जिनि जाइ, जन्म सुफल करिये लै लाइ टेक

हरि सुमिरण स्यूं हेत लगाइ, भजन प्रेम जस गोबिंद गाइ।
मानिषा देह मुकति का द्वारा, रांम सुमिरि जग सिरजन हारा॥१॥
जब लग बिषम ब्याधि नहिं आई, जब लग काल काया नहिं षाई
जब लग सब्द पलटि नहिं जाई, तब लग सेवा करि रांम राई॥
औसरि रांम कहासि नहिं लोई, जनम गया तब कहै न कोई।
जब लग जीवै तब लग सोई, पीछैं फिरि पछितावा होई ॥३॥
सांई सेवा सेवग लागे, सोई पावै जे कोइ जागे ।
गुर मुषि तिमर भर्म सब भागे, बहुरि न उलटे मारगि लागे॥४॥
ऐसा औसर बहुरि न तेरा, देषि बिचारि समझि जिय मेरा।
दादू हारि जीति जागि आया, बहुत भांति कहि कहि समझाया।

॥ पद ३८६ ॥

रांम नांम तत काहे न बोलै, रे मन मूढ अनत जिनि डोलै।टेक।
भूला भर्मत जन्म गमावै, यहु रस रसनां काहे न गावै ॥ १ ॥
क्या झषि औरै परत जंजालै,
बांणीं बिमल हरि काहे न संभालै ॥ २ ॥
रांम बिसारि जनम जिनि षोवै, जपिलै जीवनि साफिल होवै।३।
सार सुधा सदा रस पीजै, दादू तन धरि लाहा लीजै ॥ ४ ॥

॥ पद ३८७ ॥ तत उपदेस ॥

आप आपण मैं षोजौ रे भाई, बस्त अगोचर गुरू लषाई॥टेक॥
ज्यूं मही बिलोयें माषण आवै, त्यूं मन मथियां तैं तत पावै॥१॥
काष्ट हुतासन रह्या समाई, त्यूं मन मांहिं निरंजन राई ॥ २ ॥
ज्यूं अवनी मैं नीर समांनां, त्यूं मन मांहैं साच सयानां॥ ३ ॥

ज्यूं दर्पन कै नहि लागै काई, त्यूं मूरति मांहैं निरषि लषाई ।४।
सहजैं मन मथियां तैं तत पाया, दादू उनि तौ आप लेषाया॥५॥

॥ पद ३८८ ॥ उपदेस ॥

मन मैला मनहीं स्यूं धोइ, उनमनि लागैं निर्मल होइ ॥टेक॥
मनहीं उपजै विषै बिकार, मनहीं निर्मल त्रिभुवन सार ॥ १ ॥
मनहीं दुबिधा नांनां भेद, मन हीं समझै द्वै पष छेद ॥ २ ॥
मन हीं चंचल चहुं दिसि जाइ, मन ही निहचल रह्या समाइ ॥३॥
मनहीं उपजै अगनि सरीर, मनहीं सीतल निर्मल नीर ॥४॥
मन उपदेस मनहिं समझाइ, दादू यहु मन उनमन लाइ॥५॥

॥ पद ३८९ ॥ मन प्रति सूरातन ॥

रहु रे रहु मन मारौंगा, रती रती करि डारौंगा ॥ टेक ॥
षंड षंड करि नाषौंगा, जहां रांम तह राषौंगा ॥ १ ॥
कह्या न मानैं मेरा, सिर भानौंगा तेरा ॥ २ ॥
घर मैं कदे न आवै, बाहरि कौं उठि धावै ॥ ३ ॥
आतम रांम न जानैं, मेरा कह्या न मानैं ॥ ४ ॥
दादू गुर मुषि पूरा, मन सौं झूझै सूरा ॥ ५ ॥

॥ पद ॥ ३९० नांव सूरातन ॥

निर्भै नांव निरंजन लीजै, इन लोगन का भय नहिं कीजै ॥टेक॥
सेवग सूर संक नहिं मानैं, रांणां राव रंक करि जानैं ॥१॥
नांव निसंक मगन मतिवाला, रांम रसाइन पिवै पियाला ॥२॥
सहजैं सदा रांम रंगि राता, पूरण ब्रह्म प्रेम रसि माता ॥३॥
हरि बलवन्त सकल सिरि गाजै, दादू सेवग कैसैं भाजै ॥४॥

॥ पद ३९१ ॥ समर्थाई ॥

ऐसौ अलष अनंत अपारा, तीनि लोक जाकौ विस्तारा ॥टेक॥
निर्मल सदा सहजि घरि रहै, ताकौ पार न कोई लहै ।
निर्गुण निकटि सब रह्यो समाइ, निहचल सदा न आवै जाइ ॥१॥
अविनासी है अपरंपार, आदि अनंत रहै निरधार ।
पावन सदा निरंतर आप, कला अतीत लिपत नहिं पाप ॥ २ ॥
समरथ सोई सकल भरपूरि, बाहरि भीतरि नेड़ा न दूरि ।
अकल आप कलै नहिं कोई, सब घट रह्यौ निरंजन होई ॥ ३ ॥
अवरण आपैं अजर अलेष, अगम अगाध रूप नहिं रेष ।
अविगत की गति लषी न जाइ, दादू दीन ताहि चित लाइ ॥४॥

॥ पद ३९२ ॥ समर्थलीला ॥

ऐसौ राजा सेऊं ताहि, और अनेक सब लागे जाहि ॥टेक॥
तीनि लोक ग्रह घरे रचाइ, चंद सूर दोउ दीपक लाइ ।
पवन बुहारै गृह अंगणां, छपन कोटि जल जाके घरां ॥ १ ॥
राते सेवा संकर देव, ब्रह्म कुलाल न जांनैं भेव ।
कीरति करणां चार्यूं वेद, नेति नेति नवि जांणैं भेद ॥ २ ॥
सकल देव पति सेवा करैं, मुनि अनेक एक चित धरैं ।
चित्र बिचित्र लिखैं दरबार, धनराइ ठाढ़े गुणसार ॥ ३ ॥
रिधि सिधि दासी आगैं रहैं, चारि पदारथ जी जी कहैं ।
सकल सिधि रहे ल्यौ लाइ, सब परिपूरण ऐसौ राइ ॥ ४ ॥
षलक षजीनां भरे भंडार, ता घरि बरतै सब संसार ।

---

(३९१) अकल = अमर जिसका मारने वाला कोई नहीं । कलै = मारै ।

पूरि दिवांन सहजि सब दे, सदा निरंजन ऐसौ हे ॥ ५ ॥
नारद गायें गुण गोबिंद, करै सारदा सब ही छंद ।
नटवर नांचैं कला अनेक, आपन देवै चरित अलेष ॥ ६ ॥
सकल साध बाजैं नीसांन, जै जै कार न मेटैं आंन ।
मालिनि पहुप अठारह भार, आपण दाता सिरजनहार ॥७॥
ऐसौ राजा सोई आहि, चौदह भुवन मैं रह्यो समाइ ।
दादू ताकी सेवा करै, जिन यहु राचिले अधर धरै ॥ ८ ॥

॥ पद ३६३ ॥ जीवन मृतक ॥

जब यहु मैं मैं मेरी जाइ, तब देषत बेगि मिलै रांम राइ ॥टेक॥
मैं मैं मेरी तबलग दूरि, मैं मैं मेटि मिलै भरपूरि ॥ १ ॥
मैं मैं मेरी तब लग नांहिं, मैं मैं मेटि मिलै मन मांहिं ॥२॥
मैं मैं मेरी न पावै कोइ, मैं मैं मेटि मिलै जन सोइ ॥ ३ ॥
दादू मैं मैं मेरी मेटि, तब तूं जांणि रांम सौं भेटि ॥ ४ ॥

॥ ३६४ ॥ ज्ञान परलै ॥

नांहीं रे हम नांहीं रे, सति रांम सब मांहीं रे ॥ टेक ॥
नांहीं धरणि अकासा रे, नांहीं पवन प्रकासा रे ॥
नांहीं रवि सोम तारा रे, नांह पावक प्रजारा रे ॥ १ ॥
नांहीं पंच पसारा रे, नांहीं सब संसारा रे ।
नहिं काया जीव हमारा रे, नहिं बाजी कौतिगहारा रे ॥ २ ॥
नांहीं तरवर छाया रे, नहिं पंषी नहिं माया रे ।
नांहीं गिरवर बासा रे, नांहीं समंद निवासा रे ॥ ३ ॥

(३६२) । ६ ॥ चरित की जगह " चितर " पुस्तक नं० १ में है ।

नांहीं जल थल षंडा रे, नांहीं सब ब्रह्मंडा रे ।
नांहीं आदि अनंता रे, दादू रांम रहंता रे ॥ ४ ॥

॥ पद ३६५ ॥ मध्यमार्ग निरूपण ॥

अलह कहौ भावै रांम कहौ, डाल तजौ सब मूल गहौ ॥ टेक ॥
अलह रांम कहि कर्म दहौ, झूठे मारगि कहा बहौ ॥ १ ॥
साधू संगति तौ निबहौ, आइ परै सो सीसि सहौ ॥ २ ॥
काया कवल दिल लाइ रहौ, अलष अलह दीदार लहौ ॥३॥
सतगुर की सुणि सीष अहौ, दादू पहुंचे पार पहौ ॥ ४ ॥

॥ पद ३६६ ॥

हिंदू तुरक न जांणौं दोइ,
सांई सबनि का सोई है रे, और न दूजा देषौं कोइ ॥ टेक ॥
कीट पतंग सबै जोनिन मैं, जल थल संगि समांनां सोइ ।
पीर पैकंबर देवा दांनव, मीर मलिक मुनिजन कौं मोहि ॥१॥
कर्ता है रे सोई चीन्हौं, जिनि वे क्रोध करै रे कोइ ।
जैसैं आरसी मंजन कीजै, रांम रहीम देही तन धोइ ॥ २ ॥
सांई केरी सेवा कीजै, पायौ धन काहे कौं षोइ ।
दादू रे जन हरि जपि लीजै, जनमि जनमि जे सुरिजन होइ ।३।

॥ पद ३६७ ॥

को स्वांमीं को सेष कहै, इस दुनियां का मर्म न कोई लहै ॥टेक॥
कोई रांम कोइ अलह सुनावै, पुनि अलह रांम का भेद न पावै ।१।
कोइ हिंदू कोई तुरक करि मांनैं, पुनि हिंदू तुरक की षबरि न जांनैं ।२

(३६६-३) जपि की जगह पुस्तक नं० १ में "जजि" है ॥

यहु सब करणीं दून्यूं वेद, समझ परी तब पाया भेद ॥ ३ ॥
दादू देषै आतम एक, कहिबा सुनिबा अनंत अनेक ॥ ४ ॥

॥ पद ३६८ ॥ निंद्या ॥

न्यंदत है सब लोक बिचारा, हम कौं भावै रांम पियारा ॥टेक॥
निरसंसै निरदोष लगावै, ताथैं मोकौं अचिरज आवै ॥ १ ॥
दुबिधा द्वै पष रहिता जे, तासनि कहत गये रे ये ॥ २ ॥
निरबैरी निहकांमीं साध, ता सिरि देत बहु अपराध ॥ ३ ॥
लोहा कंचन एक समांन, तासनि कहत करत अभिमांन ॥४॥
न्यंद्या अस्तुति एकै तोलै, तास कहैं अपवादहि बोलै ॥ ५ ॥
दादू न्यंद्या ताकौं भावै, जाकै हिरदै रांम न आवै ॥ ६ ॥

॥ पद ३६९ ॥ अनन्य मगण ॥

माहरूं सूं जेहूं आपूं, ताहरूं छे तूंने थापूं ॥ टेक ॥
सर्ब जीव ने तूं दातार, तैं सिरज्या ने तूं प्रतिपाल ॥ १ ॥
तन धन ताहरो तैं दीधो, हूं ताहरो ने तैं कीधो ॥ २ ॥
सहुवें ताहरो साचो ये, मैं ने माहरो झूठो ते ॥ ३ ॥
दादू ने मनि ओर न आवै, तूं कर्ता ने तूंहि जु भावै ॥ ४॥

(३६७-४) दून्यूं वेद = दोनौं मत ॥

(३६९) मेरा क्या है जो मैं तुझ को दूं, तेरा ही सब कुछ है सो तुझे ही अर्पण करता हूं ॥ सब जीव हैं और तू दाता है तू ने ही सब रचे हैं और तू ही पालनेवाला है ॥ १ ॥ तन धन तेरा है और तेरा ही दिया है, मैं तेरा हूं और तेरा ही किया हुआ हूं ॥ २ ॥ सच सच ही यह तेरे हैं, मैं और मेरा झूठ है ॥ ३ ॥ दयालजी कहते हैं कि मेरे मन में कोई और नहीं आता है, तूही सब का कर्ता है और तूही मुझे पसंद है ॥ ४ ॥

॥ पद ४०० ॥ निहकाम साध ॥

ऐसा औधू रांम पियारा, प्रांण प्यंड थैं रहै नियारा ॥ टेक ॥
जब लग काया तब लग माया, रहै निरंतर औधू राया ॥ १ ॥
अठ सिधि भाई नौ निधि आई, निकटि न जाई रांम दुहाई।२।
अमर अभै पद बैकुंठ बास, छाया माया रहै उदास ॥ ३ ॥
सांई सेवग सब दिषलावै, दादू दूजा दिष्टि न आवै ॥ ४ ॥

॥ पद ४०१ ॥ सुरातन-कसौटी ॥

तूं साहिब मैं सेवग तेरा, भावै सिरि दे सूली मेरा ॥ टेक ॥
भावै करवत सिर परि सारि, भावै लेकर गरदन मारि ॥ १ ॥
भावै चहु दिसि अग्नि लगाइ, भावै काल दसौं दिसि षाइ।२।
भावै गिरवर गगन गिराइ, भावै दरिया मांहैं बाहि ॥ ३ ॥
भाव कनक कसौटी देहु, दादू सेवग कसि कसि लेहु ॥ ४ ।

॥ पद ४०२ ॥ साध ॥

कांम क्रोध नहिं आवै मेरे, तातैं गोबिंद पाया नेरे ॥ टेक ॥
भर्म कर्म जालि सब दीन्हां, रमिता रांम सबनिमैं चीन्हां ।१।
दुविधा दुरमति दूरि गवाई, रांम रमति साची मनि आई॥२॥
नीच ऊच मधिम को नांहीं, देषौं रांम सबनि के मांहीं ॥३॥
दादू साच सबनिमैं सोई, पेड पकरि जन निर्भै होई ॥ ४ ॥

॥ पद ४०३ ॥ हित उपदेस ॥

हाजिरां हजूर सांई, है हरि नेड़ा दूरि नांहीं ॥ टेक ॥
मनी मेटि महल मैं पावै, काहे पोजन दूरि जावै ॥ १ ॥

(४०१-३) "मांहैं बाहि" की जगह किसी २ पुस्तक में मांहि बहाई" है ॥

हिरस न होइ गुमा सब षाइ, ताथैं संइयां दूरि न जाइ ॥२॥
दुइ दूरि दरोग न होइ, मालिक मन मैं देषै सोइ ॥ ३ ॥
अरि ये पंच सोधि सब मारै, तब दादू देषै निकटि बिचारै४

॥ पद ४०४ ॥

रांम रमत है देषै न कोई, जो देषै सो पावन होई ॥टेक॥
बाहरि भीतरि नेड़ा न दूरि, स्वांमी सकल रह्या भरपूरि ॥१॥
जहं देषौं तहं दूसर नांहिं, सब घटि रांम समांनां मांहिं ॥२॥
जहां जांउ तहं सोई साथ, पूरि रह्या हरि त्रिभुवन नाथ ॥३॥
दादू हरि देषैं सुष होइ, निस दिन निरषन दीजै मोहि ॥४॥

॥ पद ४०५ ॥ अध्यात्म ॥

मन पवन ले उनमन रहै, अगम निगम भ्रम सो लहै ॥टेक।
पंच बाइ जे सहजि समावै, ससिहर के घरि आणि सूर।
सीतल सदा मिलै सुषदाई, अनहद सबद बजावै तूर ॥१॥
बंक नालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवां कहीं न जाइ।
बिगसै कवल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीवकी करै सहाइ ॥२॥
बैसि गुफा मैं जोति बिचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ।
अंतरि आप मिलै अबिनासी, पद आनंद काल नहिं पाइ ॥३॥
जांमण मरण जाइ भव भाजै, अबरण के घरि बरण समाइ।
दादू जाय मिलै जग जीवन, तब यहु आवागवन बिलाइ ॥४॥

॥ पद ४०६ ॥

जीवन मूरि मेरे आतमरांम, भाग बड़े पायौ निज ठांम ॥टेक॥

(४०५ · ससिहर के घरि आणि सूर, देखौ ७-३२ ॥
(४०६-१) योगत उपजै=जिस योगी को यह पद (भावना) प्राप्त हो।

सबद अनाहद उपजै जहां, सुषमन रंग लगावै तहां ।
तहं रंग लागै निर्मल होइ, ये तत उपजै जांनैं सोइ ॥ १ ॥
सरवर तहां हंसा रहै, करि स्नांन सबै सुष लहै ।
सुषदाई कौं नैंनहुं जोइ, त्यूं त्यूं मनि अति आनंद होइ ॥२॥
सो हंसा सरनागति जाइ, सुंदरि तहां पषालै पाइ ।
पीवै अम्रत नीझर नीर, बैठे तहां जगत गुर पीर ॥ ३ ॥
तहं भाव प्रेम की पूजा होइ, जा परि किरपा जांनैं सोइ ।
कृपा करि हरि देइ उमंग, तहं जन पायौ निर्भै संग ॥ ४ ॥
तब हंसा मनि आनंद होइ, बस्त अगोचर लषै रे सोइ ।
जाकौं हरी लषावै आप, ताहि न लेपैं पुन्य न पाप ॥ ४ ॥
तहं अनहद बाजे अद्भुत षेल, दीपक जलै बाति बिन तेल ।
अषंड जोति तहं भयौ प्रकास, फाग बसंत जो बारह मास ॥५॥
त्री अस्थांन निरंतरि निरधार, तहं प्रभु बैठे सम्रथ सार ।
नैंनहुं निरषौं तौ सुष होइ, ताहि पुरिस कौं लषै न कोइ ॥६॥
ऐसा है हरि दीन दयाल, सेवग की जांनैं प्रतिपाल ।
चलु हंसा तहं चरण समांन, तहं दादू पहुचे परिवांन ॥ ७ ॥

॥ पद ४०७ ॥ आत्म परमात्म रास ॥

घटि घटि गोपी घटि घटि कांन्ह, घटि घटि रांम अमर अस्थांन टेक
गं ॥ जमनां अंतर बेद, सुरसती नीर बहै परसेद ॥ १ ॥

(४०६-२) सरवर=हृदय, बुद्धि । स्नांन=ध्यान रूपी डुबकी ॥
॥ ६) त्री अस्थान=त्रिकुटि तीर ॥
॥ ७)चरण=दीर्घ, बहुत । समांन=समानो=समय के लिये । परिवान=प्रवीन ।

कुंज केलि तहं परम बिलास, सब संगी मिलि षेलैं रास ॥२॥
तहं बिन बैंनां बाजैं तूर, बिगसै कवल चंद अरु सूर ॥ ३ ॥
पूरण ब्रह्म परम परकास, तहं निज देषै दादू दास ॥
इति राग भैरूं समाप्त ॥ २४ ॥

॥ अथ राग ललित ॥ २५ ॥

॥ पद ४०८ ॥ पराभक्ति ॥

रांम तूं मोरा हूं तोरा, पाइन परत निहोरा ॥ टेक ॥
एकैं संगैं बासा, तुम्ह ठाकुर हम दासा ॥ १ ॥
तन मन तुम्हकौं देबा, तेज पुंज हम लेबा ॥ २ ॥
रस मांहैं रस होइबा, जोति सरूपी जोइबा ॥ ३ ॥
ब्रह्म जीव का मेला, दादू नूर अकेला ॥ ४ ॥

॥ पद ४०९ ॥ अनन्य सरणि ॥

मेरे प्रिह आव हो गुर मेरा, मैं बालिक सेवग तेरा ॥टेक॥
मात पिता तूं अम्हचा स्वांमी, देव हमारे अंतरजामी ॥१॥
अम्हचा सजणी अम्हचा बंधू, प्रांण हमारे अम्हचा जिंदू ॥२॥
अम्हचा प्रीतम अम्हचा मेला, अम्हची जीवनि आप अकेला ।३।
अम्हचा साथी संग सनेही, रांम बिनां दुष दादू देही ॥ ४ ॥

(४०७-१) "परसेद" की जगह "परदेस" पुस्तक नं० १ में है। गोपी=आत्मा। कान्ह, रांम=परमात्मा। गंगा जमनां स्वास प्रस्वास, पिंगला ईडा स्वर। अंतर भेद=हृदय गुफा, बुद्धि। सुरसती नीर=सुरति (ध्यान) की धारा। परसेद=प्रेम प्रवाह। कुंज=त्रिकुटी। संगी=बुद्धि चित्तादि। तूर=अनाहद। कवल=हृदय। चंद सूर=ईड़ापिंगला नाड़ियां॥

॥ पद ४१० ॥ हित उपदेश ॥

वाहला माहरा ! प्रेम भगति रस पीजिये,
रमिये रमिता रांम, माहरा वाहला रे ।
हिरदा कवल मां राखिये, उत्तिम एहज ठांम, माहरा वाहला रे टेक
वाहला माहरा ! सतगुर सरणैं अणसरै,
साध समागम थाइ, माहरा वाहला रे ।
बांणीं ब्रह्म वषाणिये, आनंद मैं दिन जाइ, माहरा वाहला रे ॥१॥
वाहला माहरा ! आतम अनभै ऊपजै,
उपजै ब्रह्म गियान, माहरा वाहला रे ।
सुख सागर मैं झूलिये, साचौ ये स्नान, माहरा वाहलारे ॥ २॥
वाहला माहरा ! भौ बंधन सब छूटिये,
कर्म न लागै कोइ, माहरा वाहला रे ।
जीवनि मुकति फल पाभिये, अमर अभै पद होइ, माहरा वाहलारे
वाहला माहरा ! अठ सिधि नौ निधि आंगणैं,
परम पदारथ चार, माहरा वाहला रे ।
दादू जन देषै नहीं, रातौ सिरजनहार, माहरा वाहला रे ॥४॥

॥ पद ४११ ॥ प्रीति अषंडित ॥

हमारौ मन माई ! रांम नांम रंगितौ,
पिव पिव करै पीव कौं जानैं । मगन रहै रसि मातौ ॥ टेक ॥
सदा सील संतोष सु भावत, चरण कवल मन बाधौ ।
हिरदा मांहिं जतन करि राखौ, मांनौं रंक धन लाधौ ॥ १ ॥
प्रेम भगति प्रीति हरि जांनौं, हरि सेवा सुषदाई ।

(४१०) अणसरै=अनुसार चलै ॥

ग्यांन ध्यांन मोहन कौ मेरे, कंप न लागै काई ॥ २ ॥
संगि सदा हेत हरि लागौ, अंगि और नहिं आवै ।
दादू दीन दयाल दंमोदर, सार सुधा रस भावै ॥ ३ ॥

॥ पद ४१२ ॥ साहिब सिफति ॥

मेहरबान मेहरबान, आब बाद पाक आतिश, आदम नीशान टेक
सीस पांव हाथ कीये, नैंन कीये कांन ।
मुष कीया जीव दीया, राज़िक रहमान ॥ १ ॥
मादर पिदर परदः पोश, सांईं सुबहान ।
संग रहै दस्त गहै, साहिब सुलतान ॥ २ ॥
या करीम या रहीम, दाना तू दीवान ।
पाक नूर है हजूर, दादू है हैरान ॥ ३ ॥

अथ राग जैतश्री ॥ २६ ॥

॥ पद ४१३ ॥ अमिट नांव बीनती ॥

तेरे नांउं की बलि जांऊं, जहां रहौं जिस ठांऊं ॥ टेक ॥
तेरे बैंनोंकी बलिहारी, तेरे नैंनहुं ऊपरि वारी ।
तेरी मूरति की बलि कीनी, वारि वारि हौं दीनी ॥ १ ॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुंदर जोति उजारा ।
मीठा प्रांण पियारा, तू है पीव हमारा ॥ २ ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये ।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूं मेरे ॥ ३ ॥

॥ पद ४१४ ॥ विरह बीनती ॥

मेरे जीव कि जांणैं जांणराइ, तुम थैं सेवग कहा दुराइ ॥ टेक ॥

जल बिन जैसें जाइ जिय तलफत, तुम्ह बिन तैसें हमहु बिहांइ ।
तन मन ब्याकुल होइ बिरहनीं, दरस पियासी प्रांन जांइ ॥१॥
जैसें चित्त चकोर चंदमनि, अैसें मोहन हमहि आहि ।
बिरह अगनि दहत दादू कौं, दर्सन परसन तना सिराइ ॥ २ ॥

अथ राग धनाश्री ॥ २७ ॥

॥ पद ४१५ ॥ अमिट अविनासी रंग ॥

रंग लागो रे रांम कौ, सो रंग कदे न जाई रे,
हरि रंग मेरौ मन रंग्यो, और न रंग सुहाई रे ॥ टेक ॥
अविनासी रंग ऊपनों, रचि मचि लागो चोलो रे ।
सो रंग सदा सुहावणों, अैसो रंग अमोलो रे ॥ १ ॥
हरि रंग कदे न ऊतरै, दिन दिन होइ सुरंगो रे ।
नित नवों निरबांण है, कदे न ह्वैला भंगो रे ॥ २ ॥
साचो रंग सहजें मिल्यो, सुंदर रंग अपारो रे ।
भाग बिनां क्यूं पाइये, सब रंग मांहैं सारो रे ॥ ३ ॥
अबरण कौ का बरणिये, सो रंग सहज सरूपो रे ।
बलिहारी उस रंग की, जन दादू देपि अनूपो रे ॥ ४ ॥

॥ पद ४१६ ॥

लागि रह्यो मन रांम सौं, अब अनतैं नहिं जाये रे ।
अचला सौं थिर ह्वै रह्यो, सकै न चीत डुलाये रे ॥ टेक ॥
ज्यूं फूलिंग चंदनि रहै, परिमल रहै लुभाये रे ।
त्यूं मन मेरा रांम सौं, अबकी बेर अघाये रे ॥ १ ॥
भवर न छाड़ै बासकूं, कवलिहि रह्यो बंधाये रे ।

त्यूं मन मेरा रांम सौं, बोधे रह्यौ चित लाये रे ॥ २ ॥
जल बिन मींन न जीवई, बिछुरत हीं मरि जाये रे ।
त्यूं मन मेरा रांम सौं, ऐसी प्रीति बनाये रे ॥ ३ ॥
ज्यूं चात्रिग जल कौं रटै, पिव पिव करत बिहाये रे ।
त्यूं मन मेरा रांम सौं, जन दादू हेत लगाये रे ॥ ४ ॥

॥ पद ४१७ ॥ बीनती ॥

मन मोहन हो ! कठिन बिरह की पीर, सुंदर दरस दिखाइये ॥टेक॥
सुनहु न दीन दयाल, तव मुख बैंन सुनाइये ॥ १ ॥
करुणांमय कृपाल, सकल सिरोमणि आइये ॥ २ ॥
मम जीवनि प्रांण अधार, अबिनासी उर लाइये ॥ ३ ॥
इब हरि दरसन देहु, दादू प्रेम बढ़ाइये ॥ ४ ॥

॥ पद ४१८ ॥

कतहूं रहे हो बिदेस, हरि नहिं आये हो ।
जन्म सिरानौं जाइ, पीव नहिं पाये हो ॥ टेक ॥
बिपति हमारी जाइ, हरिसौं को कहै हो ।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूं रहै हो ॥ १ ॥
पीव के बिरह बियोग, तन की सुधि नहीं हो ।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक ह्वै रही हो ॥ २ ॥
दुखिन भई हम नारि, कब हरि आवै हो ।
तुम्ह बिन प्रांण अधार, जीव दुख पावै हो ॥ ३ ॥
प्रगटहु दीन दयाल, बिलम न कीजिये हो ।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजिये हो ॥ ४ ॥

॥ पद ४१९ ॥

सुरिजन मेरा वे ! कीहैं पारि लहांउं,
जे सुरिजन घरि आवे वे, हिक कहाण कहांउं ॥ टेक ॥
तो बाझैं मेकौं चैंन न आवै, ये दुष कींह कहांउं ।
तो बाझैं मेकौं निदु न आवै, आषियां नीर भरांउं ॥ १ ॥
जे तूं मेकौं सुरिजन डेवै, सोहौं सीस सहांउं ।
ये जन दादू सुरिजन आवै, दरिगह सेव करांउं ॥ २ ॥

॥ पद ४२० ॥

मोहन माधौ कब मिलै, सकल सिरोमणि राइ ।
तन मन ब्याकुल होत है, दरस दिषावो आइ ॥ टेक ॥
नैंन रहे पंथ जोवतां, रोवत रैंणि बिहाइ ।
बाल सनेही कब मिलै, मोपैं रह्या न जाइ ॥ १ ॥
छिन छिन अंगि अनल दहै, हरिजी कब मिलि हैं आइ ।
अंतरजांमीं जांणि करि, मेरे तन की तपति बुझाइ ॥ २ ॥
तुम्ह दाता सुष देत हौ, हां हो सुणि दीन दयाल ।
चांहैं नैंन उतावले, हां हो कब देषौं लाल ॥ ३ ॥
चरन कवल कब देषिहौं, सन्मुष सिरजनहार ।
सांई संग सदा रहौं, हां हो तब भाग हमार ॥ ४ ॥
जीवनि मेरी जब मिलै, हां हो तब हीं सुष होइ ।
तन मन मैं तूंही बसै, हां हो कब देषौं सोइ ॥ ५ ॥
तन मन की तूंहीं लषै, हां हो सुणि चतर सुजांन ।
तुम्ह देषे बिन क्यूं रहौं, हां हो मोहि लागे बांन ॥ ६ ॥

बिन देषें दुष पाइये, हां हो इब बिलंब न लाइ ।
दादू दरसन कारनैं, हां हो सुष दीजै आइ ॥ ७ ॥

॥ पद ४२१ ॥ बैराग ॥

ये षूंहि पये सब भोग बिलासन, तैसहु वाकौं छत्र सिंघासन ॥टेक॥
जनतहु रांम भिस्त नहिं भावै, लाल पलिंग क्या कीजै ।
भाहि लगै इहि सेज सुषासण, मेकौं देषण दीजै ॥ १ ॥
बैकुंठ मुकति सरग क्या कीजै, सकल भवन नहिं भावै ।
भठी पयें सब मंडप छाजे, जे घरि कंत न आवै ॥ २ ॥
लोक अनंत अभै क्या कीजै, मैं बिरही जन तेरा ।
दादू दरसन देषण दीजै, ये सुनि साहिब मेरा ॥ ३ ॥

॥ पद ४२२ ॥ ईमान साबित (राग काफी) ॥

अल्लः आशिकां ईमान,
बहिश्त दोजष दीन दुनिया चेकारे रहमान ॥ टेक ॥
मीर मीरी पीर पीरी, फ़रिश्तः फ़रमान ।

---

(४२१) षूंहि=कुये में । पयें=पड़े । जनत=जन्नत=स्वर्ग । भाहि = अग्नि । भठी = भट्ठी ॥

(४२२) आशिकों का ईमान अल्लः है, हे रहमान ! स्वर्ग नर्क धर्म संसार कुछ काम के नहीं ॥ तैसे ही सरदार की मीरी, पीर का उपदेश, फरिश्ते का हुक्म लाना, पानी आग्नि स्वर्ग लोक भी कुछ नहीं, है सो तेरा ही दर्शन है ॥ १ ॥ दोनों जहानों में, सृष्टि में, धर्म के उपदेशों में, हाजियों की यात्रा में, क़ाज़ियों के इनसाफ़ में, तू ही सुलतान है ॥ २ ॥ जहान के ज्ञान, हैरानों की वांछा, हे सचेत मित्रो ! ईश्वर की लीला अपार है ॥ ३ ॥ आदि अंत तू ही है जिस पर मेरे प्राण निसार हैं । आशिकों को प्रकाशवान तेरा दर्शन मिले, हे इश ॥ ४ ॥

आब आतिश अरश कुर्सी, दीदनी दीवान ॥ १ ॥
हरदो आलम षलक षाना, मोमिना इसलाम ।
हजां हाजी क़ज़ा कार्ज़ी, षान तू सुलतान ॥ २ ॥
इल्म आलम मुल्क मालुम, हाजते हैरान ।
अजब यारां षबरदारां, सूरते सुबहान ॥ ३ ॥
अव्वल आषिर एक तूही, ज़िंद है कुरबान ।
आशिकां दीदार दादू, नूर का नीशान ॥ ४ ॥

॥ पद ४२३ ॥ विरह विनती (राग काफी) ॥

अल्लः तेरा ज़िकर फ़िकर करते हैं,
आशिकां मुश्ताक तेरे, तर्स तर्स मरते हैं ॥ टेक ॥
षलक षेश दिगर नेस, बैठे दिन भरते हैं ।
दायम दरबार तेरे, गैर महल डरते हैं ॥ १ ॥
तन शहीद मन शहीद, रात दिवस लड़ते हैं ।
ग्यांन तेरा ध्यांन तेरा, इश्क आग जलते हैं ॥ २ ॥
जान तेरा ज़िंद तेरा, पावों सिर धरते हैं ।
दादू दीवान तेरा, ज़र षरीद घरके हैं ॥ ३ ॥

॥ पद ४२४ ॥

मुषि बोलि स्वांमीं, तूं अंतरजांमीं, तेरा सबद सुहावै रांमजी ।टेक।
धेंन चरांवन बेंन बजांवन, दरस दिषांवन कांमिनीं ॥ १ ॥

(४२३) षलक षेश दिगर नेस=सृष्टि अपनी दूसरा कुछ नहीं, इस प्रकार से हम ध्यान करते हैं । दायम=हमेशा । गैर महल = ईश्वर अतिरिक्त अन्य इष्ट । शहीद = धर्म पर प्राण देने वाला । ज़र षरीद = चाकर, दास दामों से मोल लिया जन ॥

बिरह उपांवन तपनि बुझांवन, अंगि लगांवन भांमिनीं ॥२॥
संगि खिलांवन रास बनांवन, गोपी भांवन भूधरा ॥ ३ ॥
दादू तारन दुरित निवारण, संत सुधारण रांमजी ॥ ४ ॥

॥ पद ४२५ ॥ केवल बीनती ॥

हाथ दे हो रांमां, तुम पूरण सब कांमां,
हौं तो उरझि रह्यौ संसार ॥ टेक ॥
अंध कूप गृह मैं पर्‌यौ, मेरी करहु संभाल ।
तुम बिन दूजा को नहीं, मेरे दीनानांथ दयाल ॥ १ ॥
मारग को सूझै नहीं, दह दिसि माया जाल ।
काल पासि कसि बांधियौ, मेरे कोइ न छुड़ावनहार ॥ २ ॥
रांम बिनां छूटै नहीं, कीजै बहुत उपाइ ।
कोटि किया सुलझै नहीं, अधिक अलूझत जाइ ॥ ३ ॥
दीन दुषी तुम देषतां, मैं दुष भंजन रांम ।
दादू कहै कर हाथ दे हो, तुम सब पूरण कांम ॥ ४ ॥

॥ पद ४२६ ॥ करुणां बीनती ॥

जिनि छाडै रांम जिन छाडै, हमहिं बिसारि जिनि छाडै,
जीव जात न लागै बार जिनि छाडै ॥ टेक ॥
माता क्यूं बालक तजै, सुत अपराधी होइ ।
कबहुं न छाड़ै जीवथैं, जिनि दुष पावै सोइ ॥ १ ॥
ठाकुर दीन दयाल है, सेवग सदा अचेत ।
गुण औगुण हरि नां गिणैं, अंतरि तासौं हेत ॥ २ ॥
अपराधी सुत सेवगा, तुम्ह हौ दीन दयाल ।

हम थैं औगुण होत है, तुम्ह पूरण प्रतिपाल ॥ ३ ॥
जब मोहन प्राणीं चलै, तब देही किहि कांम ।
तुम्ह जांनत दादू का कहै, अब जिनि छाड़ै रांम ॥ ४ ॥

॥ पद ४२७ ॥

त्रिविध त्रास हरि अधार, करुणां बहु नांमीं ।
भागति भाइ बेगि आइ, भीड़ भंजन स्वांमीं ॥ टेक ॥
अंति अधार संत सधार, सुंदर सुखदाई ।
कांम क्रोध काल ग्रसत, प्रगटौ हरि आई ॥ १ ॥
पूरण प्रतिपाल कहिये, सुमिरयौं थैं आवै ।
भर्म कर्म मोह लागे, काहे न छुड़ावै ॥ २ ॥
दीन दयाल होह कृपाल, अंतरजांमीं कहिये ।
एक जीव अनेक लागे, कैसैं दुख सहिये ॥ ३ ॥
पांवन पीव चरण सरण, जुगि जुगि तैं तारे ।
अनाथ नाथ दादू के, हरि जी हमारे ॥ ४ ॥

॥ पद ४२८ ॥ बीनती ॥

साजनियां नेह न तोरी रे,
जे हम तोरैं महा अपराधी, तौ तूं जोरी रे ॥ टेक ॥
प्रेम बिनां रस फीका लागै, मीठा मधुर न होई ।
सकल सिरोमणि सब थैं नीका, कड़वा लागै सोई ॥ १ ॥
जब लग प्रीति प्रेम रस नांहीं, त्रिषा बिनां जल जैसा ।
सब थैं सुंदर एक अमीरस, होइ हलाहल जैसा ॥ २ ॥
सुंदरि सांई षरा पियारा, नेह नवा नित होवै ।
दादू मेरा तब मन मानैं, सेज सदा सुख सोवै ॥ ३ ॥

॥ पद ४२९ ॥ कर्ता कीरति ॥

काइमां ! कीरति करौंली रे, तूं मोटौ दातार ।
सब तैं सिरजीला साहिबजी, तूं मोटौ कर्तार ॥ टेक ॥
चौदह भवन भांनैं घड़ै , घड़त न लागै बार ।
थापै उथपै तूं धणीं, धनि धनि सिरजनहार ॥ १ ॥
धरती अंबर तैं धर्‌या, पांणीं पवन अपार ।
चंद सूर दीपक रच्या, रैंणि दिवस बिसतार ॥ २ ॥
ब्रह्मा संकर तैं किया, बिश्न दिया अवतार ।
सुर नर साधू सिरजिया, करि ले जीव बिचार ॥ ३ ॥
आप निरंजन ह्वै रह्यौ, काइमौं कौतिगहार ।
दादू निर्गुण गुण कहै, जांऊंली हौं बलिहार ॥ ४ ॥

॥ पद ४३० ॥ उपदेस चितावणी ॥

जियरा रांम भजन करि लीजै,
साहिब लेषा मांगैगा रे, ऊतर कैसैं दीजै ॥ टेक ॥
आगैं जाइ पछितावन लागौ, पल पल यहु तन छीजै ।
ताथैं जिय समझाइ कहूं रे, सुकृत अवध कीजै ॥ १ ॥
रांम जपत जम काल न लागै, संगि रहैं जन जीजै ।
दादू दास भजन करि लीजै, हरिजी की रासि रमीजै ॥ २ ॥

॥ पद ४३१ काल चितावणी ॥

काल काया गढ़ भेलिसी, छीजै दसौं दुवारां रे ।
देपतड़ां ते लूटिये, होसी हाहाकारा रे ॥ टेक ॥
नाइक नगर न मेलसी, एकलड़ो ते जाई रे ।
संग न साथी कोई न आसी, तहं को जाणैं किम थाई रे ॥ १ ॥

(४२९) काइमां = हे अचल ॥

संतजन साधौ माहरा भाईड़ा, कांई सूकृत लीजे सारो रे।
मारगि बिषम चालिबौ, कांई लीजे प्रांण अधारो रे ॥ २ ॥
जिम नीर निवांणां ठाहरै, तिम मार्जा बांधौ पालो रे।
सम्रथ सोई सेविये, तौ काया न लागै कालो रे ॥ ३ ॥
दादू थिर मन आंणिये, तौ निहचल थिर थाये रे।
प्रांणीं ने पूरो मिलौ, तौ काया न मेल्ही जाये रे ॥ ४ ॥

॥ पद ४३२ ॥ भयभीत भयानक ॥

डरिये रे डरिये, परमेसुरथैं डरिये रे,
लेषा लेवै भरि भरि देवै, तातैं बुरा न करिये रे ॥ टेक ॥
साचा लीजी साचा दीजी, साचा सौदा कीजी रे।
साचा रापी झूठा नांषी, बिष ना पीजी रे ॥ १ ॥
निर्मल गहिये, निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजी निर्मल दीजी, अनत न बहिये रे ॥ २ ॥
साहिब ठाया, बनिज न आया, जिनि डहकावै रे।
झूठ न भावै फेरि पठावै, कीया पावै रे ॥ ३ ॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे ॥ ४ ॥

॥ पद ४३३ ॥

डरिये रे डरिये, देषि देषि पग धरिये।
तारे तरिये मारे मरिये, तातैं गर्व न करिये रे, डरिये ॥टेक॥
देवै लेवै सम्रथ दाता, सब कुछ छाजै रे।
तारै मारै गर्व निवारै, बैठा गाजै रे ॥ १ ॥

(४३१-१) नाइक नगर न मीलसी = शरीर का मालिक जीव (चिदाभास) शरीर में न मिलेगा ॥ मीलसी की जगह मूल पुस्तकों में "मेल्हसी" है ॥

राषैं रहिये बाहैं बहिये, अनत न लहिये रे ।
भानैं घड़ै संवारै आपै, ऐसा कहिये रे ॥ २ ॥
निकटि बुलावै दूरि पठावै, सब बनि आवै रे ।
पाके काचे काचे पाके, ज्यूं मन भावै रे ॥ ३ ॥
पावक पांणीं पांणीं पावक, करि दिषलावै रे ।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे ॥ ४ ॥
सासिहर सूर सूरथैं सासिहर, परगट षेलै रे ।
धरती अंबर अंबर धरती, दादू मेलै रे ॥ ५ ॥

॥ पद ४३४ ॥ हित उपदेस ॥

मनसा मन सबद सुरांते, पांचौं थिर कीजै ।
एक अंग सदा संग, सहजैं रस पीजै ॥ टेक ॥
सकल रहित मूल गहित, आपा नहिं जांनैं ।
अंतर गति निर्मल रति, येकै मनि मांनैं ॥ १ ॥
हिरदै सुधि विमल बुधि, पूरण परकासै ।
रसनां निज नांउं निरषि, अंतर गति बासै ॥ २ ॥
आतम मति पूरण गति, प्रेम भगति राता ।
मगन गलत अरस परस, दादू रसि माता ॥ ३ ॥

॥ पद ४३५ ॥ बीनती ॥

गोबिंद के चरनौं हीं लयौ लाऊं,
जैसैं चात्रिग बन में बोलै, पीव पीव करि ध्याऊं ॥ टेक ॥
सुरिजन मेरी सुनहु बीनती, मैं बलि तेरे जांऊं ।
बिपति हमारी तोहि सुनांऊं, दे दरसन क्यूं हीं पांऊं ॥ १ ॥
जात दुष सुष उपजत तिन कौं, तुम सरनागति आऊं ।

दादू कौं दया करि दीजै, नांउं तुम्हारो गाऊं ॥ २ ॥

॥ पद ४३६ ॥

ये प्रेम भगति बिन रह्यौ न जाई, परगट दरसन देहु अघाई ॥टेक॥
तालाबेली तलफै मांहीं, तुम्ह बिन रांम जियरे जक नांहीं॥१॥
निसबासुरि मन रहै उदासा, मैं जन ब्याकुल स्वास उसासा॥२॥
एकमेक रस होइ न आवै, तातैं प्रांण बहुत दुष पावै ॥ ३ ॥
अंग संग मिलि यहु सुष दीजै, दादू रांम रसांइन पीजै ॥४॥

॥ पद ४३७ ॥ परचै उपदेस ॥

तिस घरि जांनां वे, जहां वै अकल सरूप,
सो इब ध्याइये रे, सब देवनि का भूप ॥ टेक ॥
अकल सरूप पीव का, बान बरन न पाइये ।
अषंड मंडल मांहिं रहै, सोई प्रीतम गाइये ।
गावहु मन बिचारा वे. मन बिचारा सोई सारा ।
प्रगट पीव ते पाइये,
सांई सेती संग साचा. जीवत निस घरि जाइये ॥ १ ॥
अकल सरूप पीव का, कैसैं करि आलेखिये ।
सुन्य मंडल मांहिं साचा. नैंन भरि सो देखिये ।
देषौं लोचन सारवे, देषौं लोचन सार. सोई प्रगट होई ।
यह अचंभा पेषिये, दयावंत दयाल अैसौ. वरण अति बसेषिये २॥
अकल सरूप पीव का, प्रांण जीवका, सोई जन जे पावई ।
दयावंत दयाल अैसौ, सहजैं आप लषावई ॥
लषै सुलषणहार वे, लषै सोई संग होई, अगम बैन सुनांवहीं।

सब दुष भागा रंग लागा, काहे न मंगल गावहीं ॥ ३ ॥
अकल सरूपी पीव का, कर कैसैं करि आंणिये ।
निरंतर निर्धार आपैं, अंतरि सोई आंणिये ॥
जांणहुं मन बिचारा वे, मनि बिचारा सोइ सारा,
सुमिरि सोई बषांनिये ।
श्री रंग सेती रंग लागा, दादू तौ सुष मांनिये ॥ ४ ॥

॥ पद ४३८ ॥

रांम तहां प्रगट रहे भरपूर, आतमा कवल तहां,
परम पुरिष तहां, झिलिमिलि झिलमिलि नूर ॥ टेक ॥
चंद सूर मधि भाइ, तहां बसै राम राइ, गंग जमन के तीर ।
त्रिबेणी संगम जहां, निर्मल बिमल तहां, निरषि २ निज नीर ।१।
आत्मा उलटि जहां, तेज पुंज रहै तहां, सहजि समाइ
अगम निगम अति । तहां बसै प्रांणपति,
परसि परसि निज आइ ॥ २ ॥
कोमल कुसम दल, निराकार जोति जल, बार पार
सुन्य सरोवर जहां, दादू हंसा रहै तहां, बिलसि २ निज सार ॥३॥

॥ पद ४३९ ॥

गोबिंद पाया मनि भया, अमर कीये संग लीये ।
अषै अभै दान दीये, छाया नहीं माया ॥ टेक ॥
अगम गगन अगम तूर, अगम चंद अगम सूर ।
काल झाल रहे दूर, जीव नहीं काया, आदि अंति नहीं कोइ ।
राति दिवस नहीं होइ, उदै अस्त नहीं दोइ, मनहीं मन लाया ॥
अमर गुरू अमर ग्यांन, अमर पुरिष अमर ध्यांन ।
अमर ब्रह्म अमर थांन, सहजि सुन्य आया, अमर नूर अमर बास ॥

अमर तेज सुष निवास, अमर जोति दादू दास, सकल भुवन राया

॥ पद ४४० ॥

रांम की राती भई माती, लोक वेद विधि निषेध,
भागे सब भ्रम भेद, अमृत रस पीवै ॥ टेक ॥
भागे सब काल झाल, छूटे सब जग जंजाल, बिसरे सब हालचाल
हरि की सुधि पाई, प्रांन पवन जहां जाइ, अगम निगम मिले आइ
प्रेम मगन रहे समाइ, बिलसै बपु नांहीं ॥ १ ॥
परम नूर परम तेज, परम पुंज परम सेज, परम जोति परम हेज।
सुंदरि सुष पावै, परम पुरिष परम रास। परम लाल सुष बिलास,
परम मंगल दादूदास, पीवसौं मिलि पेलै ॥ २ ॥

॥ आरती पद ४४१ ॥

इहि विधि आरती रांम कीजै, आतमा अंतरि वारणां लीजै ॥टेक॥
तन मन चंदन प्रेम की माला, अनहद घंटा दीन दयाला ॥१॥
ग्यांन का दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचौं पाती ॥२॥
आनंद मंगल भाव की सेवा, मनसा मंदिर आतम देवा ॥३॥
भगति निरंतर मैं बलिहारी, दादू न जांनैं सब तुम्हारी ॥४॥

॥ पद ४४२ ॥

आरती जग जीवन तेरी, तेरे चरन कवल परिवारी फेरी ॥टेक॥
चित चांवरे हेत हरि ढारै, दीपक ग्यांन जोति विचारै ॥ १ ॥
घंटा सबद अनाहद बाजै, आनंद आरती गगन गाजै ॥ २ ॥
धूप ध्यांन हरि सेती कीजै, पुहप प्रीति हरि भांवरि लीजै ॥३॥
सेवा सार आतम पूजा, देव निरंजन और न दूजा ॥ ४ ॥
भाव भगति सौं आरती कीजै, इहि विधि दादू जुगि जुगि जीजै ॥५॥

॥ पद ४४३ ॥

अबिचल आरती देव तुम्हारी, जुगि जुगि जीवनि रांम हमारी टेक
मरण मीच जम काल न लागै, आवागवन सकल भ्रम भागै ॥ १ ॥
जोनी जीव जनमि नहिं आवै, निर्भै नांउं अमर पद पावै ॥२॥
कलि बिष कुसमल बंधन कापै, पारि पहूंते थिर करि थापै ॥३॥
अनेक उधारे तैं जन तारे, दादू आरती नरक निवारे ॥४॥

॥ पद ४४४ ॥

निरंकार तेरी आरती, बलि जाउं अनंत भवन के राइ ।टेक।
सुर नर सब सेवा करैं, ब्रह्मा बिश्न महेस ।
देव तुम्हारा भेव न जानैं, पार न पावै सेस ॥ १ ॥
चंद सूर आरती करैं नमो निरंजन देव ।
धरनि पवन आकास अराधैं, सबै तुम्हारी सेव ॥ २ ॥
सकल भवन सेवा करैं, मुनियर सिध समाध ।
दीन लीन ह्वै रहे संत जन, अबिगत के आराध ॥ ३ ॥
जै जै जीवनि रांम हमारी, भगति करैं ल्यौ लाइ ।
निराकार की आरती कीजै, दादू बलि बलि जाइ ॥ ४ ॥

॥ पद ४४६ ॥

तेरी आरती ए, जुगि जुगि जै जै कार ॥ टेक ॥
जुगि जुगि आतमरांम, जुगि जुगि सेवा कीजिये ॥ १ ॥
जुगि जुगि लंघे पार, जुगि जुगि जगपति कौं मिले ॥ २ ॥
जुगि जुगि तारणहार, जुगि जुगि दरसन देखिये ॥ ३ ॥
जुगि जुगि मंगलचार, जुगि जुगि दादू गाइये ॥ ४ ॥

इति राग धनाश्री सम्पूर्ण ॥ २७ ॥

॥ श्रीरामजी ॥

अथ काया वेली ग्रंथ राग सूहौ अर्थ संयुक्त उपदेस प्यंड ब्रम्हंड सोधन अंग ॥

॥ पद ३५७ ॥

साचा सतगुर रांम मिलावे ॥

सचा गुरदेव ब्रम्ह को मिलावै, तौ मिलै, यथा—

सबद साल ताला जड़या, अर्थ दरव ता मांहिं ।
रजब गुर कूंची बिनां, हस्त मु आवै नांहिं ॥
थिर जंगम व्यापक सबै, निराकार निरधांम ।
सो दरसावै दिलमईं, ता गुर कूं परनांम ॥
झूठे अंधे गुर घणे, भटकैं घर घर बारि ।। १–१२८ ॥

सब कुछ काया मांहिं दिषावै ॥ ॥टेक॥

काया भंडार में सब निधि हैं, जो ब्रम्हंडे सोई प्यंडे, गुर ग्यांन सौं पावै ॥

सा० सकल करम ताला भए, जीव जड़या ता मांहिं ।
गुरू दृष्टि कूंची बिना, कबहूं पुलै नांहिं ॥
त्रिगुण रहित कूंची गुरू, ताला त्रिगुण सरीर ।
जन रजब जीव तौ पुलै, जे जोगि मिलै गुरपीर ॥

काया मांहैं सिरजनहार ॥

दादू जल मैं गगन, गगन मैं जल है, पुनि वै गगन निरालं । १८ । २ ॥
ज्यूं दर्पन मैं मुष देषिये, पांणीं मैं प्रतिब्यंब ॥ १८ । ३ ॥
जीयें तेल तिलंनि मैं, जीयें गंध फुलंनि ॥ १८ । ५ ॥
ईयें रबु रूहंनि मैं, जीयें रूह रगंनि ॥ १८ । ६ ॥

आप आपण मैं षोजौ रे भाई, बस्त अगोचर गुरू लषाई ॥ (पद ३८७)
तिल मध्ये यथा तैलं, काष्ट मध्ये हुताशनं ।
पयो मध्ये यथा घृतं, देह मध्ये तथा देवं ॥
कबीर ज्यूं नैंनूं मैं पूतली, त्यूं पालिक घट मांहिं ।
मूरिष लोग न जांणहीं, बाहरि ढूंढण जांहिं ॥

काया मांहैं ओंकार ॥ १ ॥

ओंकार शब्द के अंतर्गत संपूर्ण सृष्टि है, तैसे ही अनाहद शब्द से शरीर के सब व्यौहार होते हैं । यही स्थूल शरीर का जीवन मूल है, इसी के आधीन प्राण गति है ॥

काया मांहैं है आकास ॥

जैसे आकाश सब को अवकाश देता है, तैसे समताभाव से संत सब को आदर दे ॥

साहिबजी की आत्मा, दीजै सुष संतोष ।२६ । १४ ॥
आत्म रांम विचारि करि, घटि घटि देव दयाल ॥ २६ । १६ ॥

बाहर जो इंद्रिय पसारा पसरता है, सो ध्यान धर कर संत अंतर्मुख समावै और अनंत विद्या शब्द श्लोक ग्रंथों को अंतर धारण करै ॥

काया मांहैं धरती पास ॥ २ ॥

जैसे धर्ती सब की धमस क्षमा करती है तैसे संत संपूर्ण त्रास कसौटियों को क्षमा करै और धैर्यवान हो–

सिर मैं दई रवाब की, क्रोध नहीं लवलेश ।
फिरि उलटी पूजा करी, राषी बैं दरवेस ॥
कबीर पृथ्वी तौ धरती सहै, बैठ सहै बनराइ ।
कुशब्द तौ हरि जन सहै, दूजै सह्या न जाइ ॥

काया मांहैं पवन प्रकास ॥

प्राण वायु काया को जीवित रखता है, बाहर जब पवन ज़ोर से चलता है, तब वृक्ष गिरपड़ते हैं, धूल उड़ती है, धैर्य रहता नहीं, यहां सन्तों की

ज्ञान रूपी आंधी चलै, तब वृत्त रूपी मान बड़ाई का अभिमान छूट जाय, रजोगुण रूपी रेत उड़ जाय और सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश फैले।

काया मांहैं नीर निवास ॥ ३ ॥

नीर की वृष्टि से जैसे जगत् हरा भरा होता है, सब को आनन्द देता है, तैसे संत के ज्ञानमय वाक्य सर्वत्र शांति और आनन्द फैलावें। और काया में नीर "अमी महारस भरि भरि पीजै"। पद १०८ ॥

काया मांहैं ससिहर सूर ॥

ससिहर = मन। सूर = पवन। अथवा दोनों नेत्र। बांबां नेत्र शशि, दाहिना नेत्र सूर्य। ब्रम्हांड में जैसे चंद्र सूर्य प्रकाशते हैं तैसे काया में दोनों नेत्र। वहां शीतल तप्त किरणें हैं। यहां शांत दृष्टि शशि की और क्रुद्ध दृष्टि सूर्य की है। वहां १६ कला चंद्रमा की और १२ कला सूर्य की हैं, तैसे ही काया में निम्न लिखित कला हैं—

मन चंद्रमा की १६ कला—शांति, निवृत्ति, क्षमा, उदारता, निर्मलता, निश्चलता, निर्भयता, निःशंकता, समता, निर्लोभता, निर्ममता, निरहंकारता, सहवीर्यता, ज्ञान, आनंद, निर्वाण।

सूर्य की १२ कला—चिंता, तरंग, दिंभ, माया, परिग्रह, प्रपंच, हेत, बुद्धि, काम, क्रोध, लोभ, दृष्टि।

काया मांहैं बाजैं तूर ॥ ४ ॥

तूर = अनाहद शब्द।

काया मांहैं तीन्यूं देव।

तीन गुण, राजस ब्रम्हा, सात्विक विष्णु, तामस महादेव। ब्रम्हा का बास नाभि में, विष्णु का हृदय में, महादेव का मस्तक रूपी कैलाश में।

काया मांहैं अलष अभेव ॥ ५ ॥

लक्ष रहित अविगत ब्रम्ह भी काया ही में है, जैसा सिरजनहार की टीका में दिखा आये हैं ॥

काया माहैं चार्‌यूं बेद ।

रुग रटणि जरणां जजुर, साम सहनता जांणि ।
अनभै अथर्वण पिंड मैं, ए चारि वेद परवांणि ॥

अष्टांग योग में तिन के स्थान-नाभी ऋग, हृदय यजुर, कंठ साम, मुख अथर्वण ।

काया मांहैं पाया भेद ॥ ६ ॥

भेद ज्ञान काया रूपी उपाधी करके ही है ।

काया मांहैं चारे षांणीं ।

चार प्रकार से सब जीवों की उत्पत्ति होती है, सो चार खानियां यहहैं-

(१) जरायुज, मनुष्य, चौपाये ।
(२) अण्डज, पक्षी, सर्पादि ।
(४) उद्भिज, वनस्पति ।
(३) स्वेदज, जूं, लीख ।

काया में जरायुज रूपी नाड़ी हैं, अंडज रूपी नेत्र, उद्भिज रूपी रोमावली, स्वेदज रूपी हड्डियां । प्रथम खानि आत्मा, द्वितीय खानि मन, तृतीय खानि प्रकृति, चतुर्थ खानि शरीर । पंचम निष्पत्ति खानि ज्ञान है ।

काया मांहैं चारे बांणीं ॥ ७ ॥

परा ब्रम्ह वाणी, पश्यन्ती देवतों की बाणीं, मध्यमा पशु पक्षियों की वाणी, वैखरी मनुष्यों की वाणी । यह चार वाणी हैं, इन के रूप स्थान अवस्था देवता नीचे लिखे हैं—

	रूप	स्थान	अवस्था	देवता
परावाणी	बीज	नाभी	तुरिया	सोहं
पश्यन्ती	अंकुर	हृदय	सुषुप्ति	ईश्वर
मध्यमा	पात	कंठ	स्वप्न	विष्णु
वैखरी	वृक्ष विस्तार	मुख	जाग्रत	ब्रम्हा

सा० पार ब्रह्म कह्या प्रांण सौं, प्रांण कह्या घट सोइ । २८ । १८ ॥

काया मांहैं उपजै आइ, काया मांहैं मरि मरि जाइ ॥ ८ ॥

अंतः करण में लहर तरंग रूपी वृत्तियों की उत्पत्ति और लय।

साखी–सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापैं आइ। (११–४)

काया मांहैं जामैं मरै।

मन के मनोथौं गुण विकारों का उपजना और मिटना ही जीवन मरण है ॥

सा० जीव जनम जांणैं नहीं, पलक पलक मैं होइ। (११–५)

कबीर प्रांण प्यंड कूं तजि चलै, सुवा कहै सब कोइ।

जीव छतां जामैं मरै, सूपिम लषै न कोइ ॥

काया मांहैं चौरासी फिरै ॥ ६ ॥

नाना प्रकार की मनो भावनाओं में मन का गमनागमन चौरासी फेर है, यथा—

दादू चौरासी लष जीव की, परकीरति घट मांहिं।

अनेक जनम दिन के करै, कोई जांणैं नांहिं। (११–२)

काया मांहैं ले अवतार, काया मांहैं बारंबार ॥ १० ॥

सा० दादू जेते गुण व्यापैं जीव कौं, तेते ही अवतार। (११–३)

काया मांहैं राति दिन, उदै अस्त इकतार ॥ ११ ॥

राति=अज्ञान वा स्वप्न, दिन=ज्ञान वा जाग्रदवस्था। उदै=द्वैतरूपी गुण तिन का ब्रह्माकार वृत्ति में एक रस होना अस्त ॥

दादू पाया परम गुर, कीया एकंकार ॥ १२ ॥

परम गुर परमेश्वर है, तिस को उसी की कृपा से पाया, तब सब द्वैत-भावनाओं का लय होकर एकंकार अद्वैत निष्ठा प्राप्त हुई ॥

सा० दादू पांणीं लूंण ज्यूं, ऐसैं रहै समाइ। (१०–२६)

॥ पद ३५८ ॥

काया मांहैं षेल पसारा।

जो ब्रह्मंडे सोई प्यंडे, पृथिवी पर अनेक लीलायें हैं तैसे काया में अनेक तरंगैं तासीरैं हैं। पृथवी के राजा प्रजा स्थानी शरीर का राजा मन है और

प्रजा प्रकृति, जगत में धनवंत और कंगाल हैं, यहां स्वासोस्वास ब्रह्म में लय लगाये रहे सोई धनवान है और राम भजन के बिना जो स्वास ले सोई कंगाल है, जिस के हृदय में परमेश्वर का भाव है सोई उत्तम है, जिस का हृदय मलीन है सोई अधम है। जिस का मन निर्मल, निःशंक निर्भय, उदार अपने आत्मरूप से संतुष्ट है सोई राजा है, जिस का अंतःकरण तरह २ की कामनाओं से, राग द्वेष से, भय शोक से, ईर्षा घृणा से संदग्ध रहता है सोई अधम जीव है ॥

काया मांहैं प्रांण अधारा ॥ १३ ॥

प्राणाधार परमेश्वर जो सब का प्रतिपालन करता है सो काया ही में है, सोई अपना आत्मा है, मरना जीना जीव का अपने ही आधीन है, जो अपने आप को दृढ़ निश्चय से अमर मानता है सो अमर है, जो अपने को देहरूप नाशवान् समझता है सोई मृत्यु पाता है। जो अपने आत्मा में दृढ़ निश्चय से सन्मार्ग में विचरता है उस का प्रतिपालन अंतर्जामी आप करता है—

सा० दादू हूं बलिहारी सुरत की, सब की करै संभाल। (१६-२५)
दादू राज़िक रिज़क लीये पड़ा, देवै हाथों हाथ । (१६-२०)
दादू सांई सबनि कौं, सेवग है सुष दे। (१६-२२)

काया मांहैं अठारह भारा, काया मांहैं उपावनहारा ॥१४॥

अठारह नित्य बहुवचनान्त शब्द है, जैसे अष्टादश द्वीप, विद्या, पुराण, स्मृति, धान्य, महाभारत के पर्व, भगवद्गीता के १८ अध्याय इत्यादि ॥

१८ भार जगत् प्रपंच जैसे ब्रह्मांड में है तैसे केशलोमादि काया में हैं, तिन सब का रचनेवाला आत्मा ही है। जैसे मायोपहित समष्टि रूप ईश्वर ने सब ब्रह्मांड रचा है तैसे ही व्यष्टिरूप कायोपहित जीव अपने कर्मानुसार अपने भोग निमित्त प्रपंच रचकर हर्ष शोक मानता है ॥

पद। सिरजनहार यैं सब होइ।
उतपति परलै करै आप, दूसर नांहीं कोइ। टेक। पद १४१।

काया मांहैं सब बनराइ।

काया को बन विचार कर संत न्यारे हुये अथवा बनराइ श्रीरामजी

तिन को सब कायाओं में अवलोकन कर समता धारण की—

सा० दादू जिन प्राणीं करि जांणिया, घर बन येक समान। १६ ।२५॥
सब जग मांहैं एकला, देह निरंतर बास ॥ १६ । ३६ ॥
कबीर हरि का भांवता, दूरहि तैं दीसंत ।
तनषी नाम न उनमन, जग रूठड़ा फिरंत ॥

पद। ऐसैं ग्रिह मैं क्यूं न रहै, मनसा बाचा रांम कहै ॥ पद २६८ ॥

काया मांहैं रहे घर छाइ ॥ १५ ॥

घर हृदय तिसमें संत राम नाम लेते हुए स्थिर हो रहे ॥

सा० दादू जे मुष मांहैं बोलता, श्रवणहुं सुणता आइ। १०।६ ॥
दादू चम्बक देषि करि, लोहा लागै आइ ॥ १०। १० ॥

काया मांहैं कंदलि बास ॥

कंदलि आत्म कवल में बास सोई पर्वत की कंदरा का बास है ॥

सा० दादू रांम नांम मैं पैसिकरि, रांम नांम ल्यौ लाइ ॥ २ । ७७ ॥

काया मांहैं है कविलास ॥ १६ ॥

कविलास=कैलाश, सोई काया में दशवांद्वार माना है ॥

काया मांहैं तरवर छाया, काया मांहैं पंषी माया ॥ १७ ॥

तरवर=ब्रम्ह तिस की छाया रूप सुख। पंखी जीव माया में मोहित ॥

काया मांहैं आदि अनंत, काया मांहैं है भगवंत ॥ १८ ॥

आदि ओंकार, अनंत पसारा, भगवंत परमेश्वर जिस का कभी भंग नहीं जो सदा अभंग है। सोई कूटस्थ अपना आत्मा है ॥

पद। ऐसा तत अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न षाई ॥ पद २२८ ॥

काया मांहैं त्रिभवन राइ

तीन भुवन=स्वर्ग मृत पाताल। राइ=रामजी सो संतों के हृदय में विराजमान हैं।

सा० अठ सिधि नौ निधि नांउं मंझारि, कहै कबीर भज चरन मुरारि।

काया मांहैं रहे समाइ ॥ १९ ॥

काया के भीतर अंतर्मुख वृत्ति करके ब्रम्ह में लीन हो रहे ॥

पद । रेमन जाइ जहां तोहि भावै, अब न तेरे कोइ अंकुस लावै ॥ टेक ॥
जहं जहं जाइ तहं तहं रांमां, हरि पद चीन्हि किया बिश्रामां ।
तन रिंजत तब देषियत दोई, प्रगट्यौ ग्यांन, जहां तहं सोई ॥
लीन निरंतर, बपु बिसराया, कहै कबीर सु सागर पाया ॥

काया मांहैं चौदह भवन

भक्ति अंग में पंच ज्ञान इंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय और चतुष्टय अंतः करण, यह १४ भुवन कहाते है ॥

(१४) लोक प्रख्यात हैं, तिन के स्थान काया में अष्टांग योगानुसार यह हैं—

लोक	निवासी	काया स्थान	
भूर	मनुष्य, पशु	नाभी	
भुवः	भूत, पक्षी	उर	
स्वः	देवता	हृदय	
महर	ऋषि	छाती	
जन	भक्त सहकामी	कंठ	
तप	सूर सती सन्यासी	नासिका	
सत्य	ज्ञानी संन्यासी	दशवां द्वार	
अतल	महादेव	कोखी	
वितल	बाणासुर	कमर	
सुतल	मयनामा	साथल जंघा	
रसातल	शेष	गोड़े (घुटने)	
तलातल	बलि	पिंडली	
महातल	बासुकि नाग	गिरियां (टखने)	
पाताल	कद्रू के पुत्र	पगथली ।	

काया मांहैं आवागवन ॥ २० ॥

मन मनोर्थ जो जीव के उपजते हैं सोई आवागवन हैं ॥

सा० अनेक रूप दिन के करै, यहु मन आवै जाइ। (११-६)

काया मांहैं सब ब्रम्हंड ॥

सुमेर में २१ स्वर्ग कहे हैं, अर्थात् वासुरी भूत यम यक्ष किन्नर ब्रम्हराक्षस राक्षस काल चित्रगुप्तस्वर्ग योगणी गन्धर्प अर्यमा महास्वर्ग तपस्वर्ग जनस्वर्ग सतिस्वर्ग दबिस्वर्ग सुरनरलोक देवास्वर्ग पयालीस्वर्ग विस्वकर्माखण्डस्वर्ग। यहां पृष्टि मध्य कयंग्रोड़ि २१ गांठैं हैं सोई स्वर्ग कहे हैं। बन्हि पुराण में २१ स्वर्गों के नाम इस भांति से दिये हैं-

आनंद प्रमोध सौख्य निर्मल त्रिविष्टप नाकपृष्ट निर्बृति पौष्टिक सौभाग्य अप्सरस निरहंकार शांतिक निर्मल पुण्याय मंगल स्वेत मन्मथ उपसोहन शांति निर्मल निरहंकार ॥

काया मांहैं है नवखंड। २१ ॥

जैसे पृथिवी के नवखण्ड कहे हैं तैसे काया में नव द्वार हैं ॥

अष्टांग योग में ९ चक्र इस भांति से दिये हैं—

नाम चक्र का	पंखडी	अक्षर	देवता	स्थान	
१ आधार	४	४	गणेश	गुदा	
२ स्वाधिष्ठान	८	८	ब्रह्मा	लिंग	
३ मणिपूर	१०	१०	पवन	नाभी	
४ निरंजन	८	८	मन	उदर	
५ उद्यद	१२	१२	सूर्य	हृदय	
६ विशुद्ध	१६	१६	चंद्रमा	कंठ	
७ बत्तीसा	३२	३२	विष्णु	तालू	
८ आज्ञा	२	२	महादेव	मस्तक	
९ ब्रह्म रंध्र	१०००	१०००	दसौंदिशा	दसवांद्वार	

जम्बूद्वीप के नव खण्डों के नाम यह हैं —

(१) इलावृत (२) रम्यक (३) हिरण्यमय (४) कुरू (५) हरिवर्ष (६) किंपुरुष (७) भारतवर्ष (८) केतुमाल वर्ष (९) भद्राश्ववर्ष ॥

काया मांहैं लोक सब, दादू दिये दिषाइ ॥ २२ ॥

मनसा वाचा कर्मनां, गुर बिन लष्या न जाइ ॥ २३ ॥

स्वर्ग मृत और पाताल, इन तीनों ही के अन्तर्गत १४ भुवन २१ ब्रह्माण्ड हैं । काया में स्वर्ग लोक दशवें द्वार स्थान है, मृत लोक उदर स्थान और पाताल लोक पगथले है

॥ पद ३५९ ॥

काया मांहैं सागर सात ॥

भक्ति अंग में सप्त धातु माने हैं सोई सात सागर हैं–

माता की धातु से लोहू मांस त्वचा नाड़ी ।

पिता ,, ,, वीर्य हाड़ गुदा ॥

सप्त द्वीप सप्त सागरों में इस भांति कहे हैं–

द्वीप–जम्बू प्लक्ष शाल्मलि कुश क्रौञ्च शाक पुष्कर ॥

सागर–लवण, ईष, सुरा, क्षीर, दधि, घृत, स्वाद ॥

काया में द्वीप और सागर जोगारंभ में यह कहे हैं–

द्वीप–श्रवण नेत्र नासिका मुख हस्त उदर पग ।

सागर स्थान क्रम से–सुरा दसवें द्वार, घृत श्रवण, ईष नेत्र, दधि नासिका, स्वाद मुख, क्षीर हृदय, क्षार (लवण) अमरी स्थान ॥

कवित्त–प्रथमहिं जम्बू दीप पार सागर मैं सोहै ।

पलष ईष रस मध्य सालमलि सुरा सुमोहै ।

कुस है षीर समंद्र कुंच दधि मध्य रहां हीं ।

साक घृत चहुंफेर पुस्कर सुधा बसांहीं ।

लषि जोजन विस्तार लेहु गुण एक तें एक हैं ।

दीप मानि सागर सप्त हरि आग्या उरि धरि रहैं ।

सप्त दीप सप्त समुद्र काया में इस प्रकार से जानिये ॥

काया मांहैं अविगत नाथ ॥ २४ ॥

अविगत परमेश्वर जिस की गति कोइ नहीं जानता ।

पद–अविगत की गति कोइ न लहै ।
सब अपनां उनमांन कहै ॥ पद २४५ ॥

काया मांहैं नदिया नीर । काया मांहैं गहर गंभीर । २५ ।

नदी कहो नव द्वार अथवा नाड़ियें, अथवा नवधा भक्ति, नीर राम नाम ।

नदी आशा शुभ अशुभ तट, भरी मनोरथ नीर ।
तृष्णा अमित तरंग जहं, भर्म भंवर गंभीर ॥

काया मांहैं सरवर पांणीं, काया मांहैं बसै बिनांणीं ॥ २६ ॥

सरवर आत्मा, सरोवर हृदय, पांणीं प्रेम । बिनांणीं बुद्धि जो शुभ अशुभ का निर्णय करती है, अथवा बिनांणीं कहो परमेश्वर ॥

रमैणी—एक बिनांणीं रच्या बिनांन. सब अयांन सो आप जांन ।
सत रज तम तैं कीनी माया, चारि पांणि बिस्तार उपाया ॥

काया मांहैं नीर निवांन । काया मांहैं हंस सुजांन । २७ ॥

नीर राम नाम, निवांन हृदय । अथवा नीर निर्मल ज्ञान निवांन नम्रता से नवना ! हंस ब्रह्म में लयलीन योगी ।

सा० कबीर नवै आप कौं, पर कौं नवै न कोइ ।
घालि तराजू तोलिये, नवै सु भारी होइ ॥
नवै सु ग्यांनी गुर मुषी, नवै सु सेन सुजांन ।
तुरसी वै जड क्यूं नवै, अभि बोझल अभिमांन ॥
दादू सहज सरोवर आत्मा, हंसा करैं कलोल । (४-६१)
सुंनि सरोवर हंस मन, मोती आप अबोल । (४-६४)

काया मांहैं गंग तरंग, काया मांहैं जमना संग । २८ ॥

गंगा उठती बाणीं, पिंगला स्वर । प्रेम तरंग । जमना बैठती बाणी, इड़ा स्वर । राम नाम का संग ।

सा० रजब गंगा ग्यांन की, कर्मन रेत रुकाइ ।
पाप पहाड़ फोड़िकरि, मिली हरि समंद कूं जाइ ॥
सहज जोग सुष मैं रहै, दादू निर्गुण जांणि ।
गंगा उलटी फेरि करि, जमना मांहैं आणि । (७-३२)
गंग जमुन तहं नीर नहाइ, सुषमन नारी रंग लगाइ । (पद ७०)
गंगा जमनां अंतर बेद, सुरसती नीर बहै परसेद । (पद ४०७)

काया मांहैं है सुरसती, काया मांहैं द्वारा मती। २९ ॥

सरस्वती शुद्ध सुरति (लय), द्वारा मती दशवें द्वार पर आत्मरत बुद्धि ॥

काया मांहैं कासी थांन, काया मांहैं करै सनांन॥ ३० ॥

कासी थांन आत्म कंवल में स्थिर वृत्ति । शुद्ध ब्रम्ह के नित्य चिंतन रूप स्नान से अंतः करण के मलों को धोवै ॥

सा० सरीर सरोवर रांमजल, मांहैं मंजन सार । (२-६०)
रांम नांम जल कृत्वा स्नानं सदा जिव । (२-६१)

काया मांहैं पूजा पाती ॥

भाव पूजा, पाती प्रीति ॥

सा० देव निरंजन पूजिए, पाती पंच चढाइ । (४-२७६)
आतम मांहैं रांम है, पूजा ताकी होइ । (४-२६२)
कबीर देवल मांहैं देहुरी, तल जे है विस्तार ।
मांहैं पाती मांहिं जल, मांहैं पूजन हार ॥

सोई देव पूजौं जे टांची नहिं घड़िया, गरभवास नहीं औतरिया॥ पद ३११।

काया मांहैं तीरथ जाती । ३१ ॥

तीर्थ भक्ति अंग में तृकुटी, मन पवन सुरति जो कहे हैं तिनका तृकुटी ही तीर्थ है । शास्त्रों में केदार सागर गया प्रयाग बाणारसी यह पंच तीर्थ कहे हैं, सो काया में इस प्रकार से माने हैं—सिर केदार, कंठ गया, नाभी प्रयाग, उपस्थ सागर, सर्वव्यापीक बाणारसी ॥ जाती(यात्री) प्राण संतों के॥

काया मांहैं मुनियर मेला, काया मांहैं आप अकेला ३२ ॥

मुनियर मन सहित इंद्रियों का एकाग्र होकर ब्रह्म में लीन होना सोई मेला है। आप ब्रह्म, अकेला पाप पुण्य से न्यारा, यथा—

चौ० दिनकर उदै दसौं दिसि धावै, भले बुरे बहु कर्म कमावै।
पाप पुंनि मिलि पै नहिं प्यारा, ऐसैं अकल सकल तैं न्यारा।
जोति उजालै रमै जुवारी, इक जीतै इक हारै भारी।
हरिष सोक मैं दोऊ बंधानां, दीपक के कुछ हेत न हांनां।

काया मांहैं जपिये जाप ॥

अजपा अंतर्गति जाप—

सा० अंतरिगति हरि हरि करै, तब मुष की हाजति नांहिं। (४–१७१)
मन पवन अरु सुरति सौं, आतम पकड़ै आप।
रजब लावै तत्त सौं, ईहै अजपा जाप ॥
सरीर सब्द अरु स्वास करि, हरि सुमिर्ण तिहुं ठांव।
जन रजब आतम अगम, अजपा इसका नांव ॥
ब्रह्मंड प्यंड मन प्रांण तजि, सुष मैं सुरति समाइ।
रजब अजपा जाप यहु, निरदेषी निरताइ ॥

काया मांहैं आपै आप ॥ ३३ ॥

आपै आप स्वयंभु, माया अंजन रहित निरंजन।
पद—तहं आपै आप निरंजनां, तहं निस वासुरि नहिं संजमा ॥ पद २०८ ॥

काया नग्र निधांन है,

काया शहर बड़ा गंभीर सब निधियों की खानि है, जो खोजै सो गुरु-ज्ञान से पावै भाव भक्ति प्रेम प्रीति शील संतोष दया धर्म क्षमा गरीबी निर्दोषता निर्वैरता लघुता निवृत्ति निर्भयता सहवीर्यता परिपूरणता परमानंद ॥

मांहैं कौतिग होइ ॥ ३४ ॥

आत्म परमात्म मेल सोई कौतिक है ।

पद–पहुप प्रेम बरिषैं सदा, हरिजन पेलैं फाग ।

दादु सतगुर सांगि ले, भूलि पड़ै जिनि कोइ ॥ ३५ ॥

सतगुर जो परमात्मा है तिसका स्मर्ण सदैव बनाये रक्खै, उसको भूल कर तीर्थ धामादि बाह्य साधनों में ही जीवन न गंवावै ॥

॥ पद ३६० ॥

काया मांहैं बिषमी बाट ।

ब्रह्म पंथ अति कठिन है—

सा०–मांई सीत न पाइए, वातूं मिल्या न कोइ ।
रजब सौदा राम सौं, सिर बिन कदे न होइ ॥
दादू बिन पाइन का पंथ है, क्यूंकरि पहुंचै प्राण । (७–१०)
दादू बिषम दुहेला जीव कूं, सतगुर थैं आसांन । (१–६२)
दादू पारब्रह्म पैंडा दिया, सहज सुरति लै सार । (७–१४)

जैसे बद्री केदार के पंथ में कहते हैं " लीके चढ़े सो बिषमी बाट " तैसे ब्रह्म ध्यान में आपा अभिमान बड़ाई अहं बुद्धि माया मोहादि पहाड़ हैं—

सा० अनलपंषि आकास कौं, माया मेर उलंघि । (१२–६३)

लोभ मोह ही पर्वत की धारावत हैं, वहां लीकों से पार उलंघते हैं यहां-पंचइंद्रियों और मन को खैंचि कर ब्रह्म में लीन होते हैं, जैसे लीकों पर उतरते समय अगल बगल दृष्टि नहीं जाने देते, तैसे ब्रह्म मार्ग में-

सा०–बावैं दोषि न दाहिणैं, तन मन सनमुषि राषि । ८ । ६० ॥
दादू नैनूं भरि नहिं देषिए, सब माया का रूप । (१२—१३)

काया मांहैं औघट घाट ॥ ३६ ॥

तन मन के विकारों को जीतना सोई औघट घाट है ॥

पद–राम संभालिए रे, बिषम दुहेली बाट । (शब्द १३)
सा०–काया नाव समंद में, औघट बूड़ै आइ । (३४–४१)

काया मांहैं पटण गांउं ॥

पटण (पट्टन, नगर) प्रेम सहित पिंड । जैसे शहर में सब सौदा मिलता है तैसे प्रेमी पिंड में सब ज्ञान ध्यान भाव भक्ति रहती हैं ।

काया मांहैं उत्तिम ठांउं । ३७ ॥

उत्तम ठांव हृदय कंवल तहं परमेश्वर के चरण हैं ॥

सा० तेज पुंज के चर्ण हैं, हाड़ चांम के नांहि ।
तुरसी वेदौं बर्णिए, हृदा कवल के मांहि ॥
जब देव निरंजन पूजिए, तब सब आया उस मांहि (८ । ७५)
सब आया उस एक में डाल पांन फल फूल (८-७२)

काया मांहैं मंडप छाजे, काया मांहैं आप विराजे ॥ ३८ ॥

मंडप मनसा, मंदिर करण गोलकादि, श्रोत्र नेत्रादि के स्थान । आप परमेश्वर रोम रोम में विराजमान हैं ॥

काया मांहैं महल अवास, काया मांहैं निहचल बास ॥ ३९ ॥

महल पंच कोश, अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय । निहचल परमेश्वर तिस का अंतर्मुख ध्यान, सोई निहचल बास है ॥

काया मांहैं राजद्वार, काया मांहैं बोलणहार ॥ ४० ॥

ब्रह्मांड का राजा ईश्वर है, तिस का स्थान काया में हृदय अथवा दशवां द्वार है । बोलणहार प्रांण का नेता ईश ॥

पद-रांम राज कोइ भिड़ै न भाजै ॥

काया मांहैं भरे भंडार ॥

जिस का हृदय भाव भक्ति से पूर्ण है, जो अपने आत्मा ही को सर्व जगत का कर्ता धर्ता मानता है, जिस की दृष्टि में सर्व प्रपंच आत्मरूप ही है, उस के निमित्त संपूर्ण भंडार काया ही में हैं, बाह्य पदार्थों की न उस को कामना होती है ना उस के शारीरिक निर्वाह में कमी पड़ती है ॥

सा०-चारि पदारथ मुकति बापरी, अठ सिधि नौ निधि चेरी (१२-९८)

काया मांहैं बस्त अपार ॥ ४१ ॥

बस्तु परमेश्वर अपार है जिसका पार नहीं—

पद—रामधन पात न षूटै रे ।
अरंपार पार नहिं आवै, आथि न टूटै रे ॥ टेक ॥ शब्द ५० ॥

काया मांहैं नौ निधि होइ ॥

नौ नाड़ी अष्टांग योग में कही हैं तिनके नाम और स्थान नीचे दिये हैं, तैसे ही निधियों के नाम भी देते हैं—

नाड़ी नाम	नाड़ी स्थान	निधि नाम
१ इड़ा	देह के बायें भाग	पद्म
२ पिंगला	,, दहिने भाग	महापद्म
३ सुषुम्ना	,, बीचले भाग	शंख
४ गांधारी	बायें नेत्र	मकर
५ हस्तिजिह्वा	दायें नेत्र	कच्छप
६ पूषा	दहिने कान	मुकुन्द
७ यशस्विनी	बायें कान	कुन्द
८ अलम्बुषा	मुख में	नील
९ कुहू	लिंग	वर्च्चः
१० शंखिनी	गुदा	— —

काया मांहैं अठ सिधि सोइ । ४२ ॥

भक्ति अंग में पंच तत्वों और तीन गुणों की पूर्ति में जो सिद्धि होय सोई अष्ट सिद्धि हैं । अष्टांग योग में अष्टसिद्धि यह हैं-अणिमा महिमा लाघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व सर्व्वकामावसायित्व ॥ इन के सिवाय दश सिद्धि और कही हैं, अर्थात्—

सर्व्वज्ञ दूर श्रवणं, परकाय प्रवेशनम् ।
वाक् सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं, सृष्टुं संहर्तुमीशता ।
अमरत्वंच सर्व्वोगं, सिद्धयोष्टादशस्मृताः ॥

काया मांहैं हीरा साल, काया मांहैं निपजैं लाल । ४३ ॥

ब्रह्म परिचय रूप हीरा, साल खानि, सो ज्ञान की खानि हृदय गुफा (शुद्ध बुद्धि) है । लाल पंच इंद्रिय और मन ॥

सा० पंच संगी पिउ पिउ करैं, छठा जु सुमिरै मंन ।
आई सुरति कबीर की, पाया रांम रतंन ॥

काया मांहैं मांणिक भरे, काया मांहैं ले ले धरे ॥ ४४ ॥

मांणिक स्वास सो राम नाम से भरे थिर किये और माणिकवत आत्म-प्रकाश में अंतर्मुख वृत्ति को रोक बैठे ॥

काया मांहैं रतन अमोल, काया मांहैं मोल न तोल ॥ ४५ ॥

रत्नरूपी मन सो ब्रह्म में लीन होकर अमोल हुआ ।

सा० दादू पंच पदारथ मन रतन, पवना मांणिक होइ । (४-२६८)
अजब अनूपम हार है, सांई सरीषा सोइ । (४-२६६)
रतन पदारथ मांणिक मोती, हीरां का दरिया । (१५-४२)
मिसरी मांहैं मेलि करि, मेलि विकांनां वंस । (४-१८६)

राम बिनां किस कांम का, नहिं कौड़ी का जीव । ४ । १६० ॥
भाव भक्ति जत सत संतोष, ग्यांन ध्यांन धीरज धुनि मोष ।
षिमा दया दासातन लीन, रतन सु रांम चौदह दीन ॥

चौदह रत्नों के नाम यह दिये हैं लक्ष्मी मणि कल्पवृक्ष कामधेनु अमृत विष संख धन्वन्तर चंद सुरा सप्तमुखा घोड़ा ऐरावत हाथी । कवित्त—

प्रथम लक्षमणि संष धनु जगदीस हि लीए ।
कांमधेन गज वृछ रंभ सुरपति कूं दीए ॥
सुधा सुरनि कूं दयौ, सुरा असुरनि कूं अरप्यौ ।
विष हिमकर दोउ सुतौ, ले संकरैं समरप्यौ ॥
बैद धनंतर लोक मैं, सप्तमुष अस्व रवि कौं दियौ ।
चौदह रतन विभाग कौं, यह कवित्त कविजन कियौ ॥

लछमी भक्ति, मणि सांति, कल्पतरु ग्यांन बिचारौ ।
कामधेन सतबुधि, बैंन सुभ अमृत धारौ ॥
अहं बुधि बिष जांणि, संष अनहद धुनि बाजै ।
धनंतर अष्टांग, चंद संतोष बिराजै ॥
सुरा कांम, मन सप्तमुषहै, गज धीरज जानियेहु ।
तहां जुगति सु रंभा, सबद गुर, नरसिंघ धन कपि छांणि लेहु ॥

काया मांहिं कर्तार है, सो निधि जांणैं नांहिं ॥ ४६ ॥

कर्तार जगत का कर्ता सो काया ही में है । मनरूपी ब्रह्म ही अपनी स्फुरना से संपूर्ण प्रपंच रचता है सो काया के भीतर है । जैसे स्वप्नावस्था में मन बिना अन्य सामग्री के स्वप्न सृष्टि रचिकर स्वप्न सुख दुःख भोगता है, तैसे जाग्रत अवस्था में वही मन व्यावहारिक प्रपंच रचता है । संपूर्ण दृश्य मन के ही अंदर है ॥

सा० जहं मन नांहीं सो नहीं, जहं मन चेतन सो आहि । (१८-११)
मन ही माया ऊपजै, मन ही माया जाइ । (१०-१३३)

दादू गुरमुपि पाइये, सब कछु काया मांहिं ॥ ४७ ॥

गुरू की कृपा से गूढ़ रहस्यों का भेद मिलता है । काया में सब कुछ मिल सकता है, जो खोजै सो पावै ॥

॥ पद ३६१ ॥

काया मांहैं सब कुछ जांणि, काया मांहैं लेहु पिछांणि ॥ ४८ ॥

संपूर्ण जगत में एक सत्ता परमेश्वर की है, दूसरा लेश मात्र भी नहीं है । द्वैत प्रपंच सब मन करके कल्पित है, इस से सब कुछ काया में ही जानने योग्य है ॥

सा० मीत तुम्हारा तुम्ह कनैं, तुम्ह हीं लेहु पिछांणि ।
कबीर ज्यूं नैनौं मैं पूतली, त्यूं पालिक घट मांहिं ।
मूरिष लोग न जांणहीं, बाहरि ढूंढण जांहिं ॥

पूजा की सौंज सब काया ही में दयालजी ने कही है सो सौंज विचार लो, देखो ४-२६८ ॥

काया मांहैं बहु बिस्तार, काया मांहैं अनंत अपार ॥ ४६ ॥

बिस्तार ब्रम्ह का। जिस के अंत वार पार शोभा यश कीर्ति कहने में नहीं आ सकते । सो संतों ने काया में प्रत्यक्ष परिचय किये ॥

सा० दादू पांणीं मांहैं पैसि करि, देषै दिष्टि उघारि। (४-८३)
देषि दिवाने ह्वै गए, दादू परे सयांन। (६-२५)
केते पारिष पचि मुये, कीमति कही न जाइ। (६-४)

काया मांहैं अगम अगाध।

अगम ब्रम्ह अगम ध्यान, जिस ब्रम्ह को देख कर संत हैरान हो रहे ॥

सा० रतन एक बहु पारिषू, सब मिलि करैं बिचार। (६-२)

पद। ये हौं बूझि रही पिव जैसा, है तैसा कोइ न कहै रे।
अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहैरे। पद २४६ ॥

काया मांहैं निपजे साध ॥ ५० ॥

संत निपजै नाम के प्रताप और भाव से, यथा—

सा० साधू सकणां मांहिं मन, ज्यूं मके की ज्वारि।
जन रज्जब जोष्यूं गई, पंषी सकै न ष्यारि ॥
साधू सिरटा मकई, दस बागे तन धार।
ब्रम्ह भोमि रस पीजिये, मन कण निपजि अपार ॥
कण मोटौ साऊ सिरो, चढ़े रू भै कुछ नांहिं।
साध मका की ज्वारि ज्यूं, बपनां निपनां मांहिं ॥

(सकणां=दानेदार। ज्वारि=दाना। ष्यारि=खिराय बिथराय। सिरठा=भुट्टा बागे बस्त्र। चढ़ेरु=चिड़ियों का)

पद-सुणि भाई महिमां नाम तणी माद्रा सतगुर पासैं जो मैं सुणी। टेक।
कोटि कोटि बार जो पढ़िए बेद, सब सास्त्र का लीजै भेद।
पुराण अठारह का मत जोइ, राम नांम समि तुलै न कोइ ॥
कोटि कोटि कूप षणावै बाइ, कोटि कोटि कन्या दे परणाइ ॥

कोटि कोटि बार जो कीजै जागि, तुलै न नांउं सहस्र मैं भागि ॥
धर सगली जो दीजै दान, कोटि कोटि तीर्थ करै सनांन ।
कोटि कोटि जप तप साधै पांन, तऊ न आवै नांव समांन ।
गज गनिका गोतम बध तिरी, नृमल नांउ एही छै हरी ॥
पतित अजामेल सरणैं गयो, भाव कुभाव जिन हरि नांव लयो ।
सुष नारद प्रहलाद अभ्यास, सुमिरयौ धूमति करि बिसवास ॥
तिन के हरि काटे बहु फंद, ते निहचल, चलैं रवि चंद ।
हृदै सति करि सुमिरयौ रांम, आंन धर्म सब तजि बे कांम ।
भणत नांम देव हरि सर्णां, आवागवन मिटै ज्यूं मरणां ॥

काया मांहैं कह्या न जाइ,

ब्रम्ह मन बांणी का बिषय नहीं है, इस से कथन करने में आवै नहीं ॥

पद । ऐसा रांम हमारै आवै, पार पार कोइ अंत न पावै ॥ टेक ५४ ॥
थकित भयौ मन कह्यौ न जाइ, सहज समाधि रह्यौ ल्यौ लाइ ॥ टेक ॥ २४४

सा० हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
बूंद समांणीं समंद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥

काया मांहैं रहे ल्यौ लाइ । ५१ ॥

संसार से निवृत्त होकर काया के भीतर ब्रह्म में संत लय लगा बैठे ।

सा० दादू सब बातनि की एक है, दुनियां तैं दिल दूरि । (७–२५)
दादू सहज सुंनि मन राखिये, इन दून्यूं कै मांहिं । (७–२६)
दादू लै लागी तब जांणिए, जे कबहूं छूटि न जाइ । (७–२)

काया मांहैं साधन सार ॥

सार ब्रह्म का नित्यप्रति सुमिरण है ।

सा० प्रेम भगति दिन दिन बधै, सोई ग्यांन बिचार ।

काया मांहैं करै बिचार ॥ ५२ ॥

ब्रह्म का ध्यान चिंतवन रूप विचार सदा करै ।

सा०– सहज विचार सुष में रहै, दादू बड़ा बमेक ॥ (१८–३१)

काया मांहैं अमृत बांणी ॥

अमृत बचन आपा रहित राम नाम बांणी ।

सा०–कबीर ऐसी बांनीं बोलिए मन का आपा षोइ ।
अपनां तन सीतल करै, औरन कौं सुष देइ ॥

पद—जे बोलै तौ रांमहिं बोलि, ना तरि बदन कपाट न षोलि ॥ टेक ॥
जे बोलिए तौ कहिये रांम, आन बकन सौं नांहीं कांम ।
रांम नांम मेरै हृदै लेषि, रांम बिनां सब फोकट देषि ।
नांम देव कहै मेरै एकै नांउं, रांम नांम की मैं बलिजांउं ॥

काया मांहै सारंगप्रांणीं । ५३ ॥

सारंग सर्व रंग हैं जिसमें । अंतर्मुख वृत्ति से योगी अद्भुत रंग काया के भीतर देखते हैं ।

काया मांहैं षेलै प्रांण ॥

प्राणधारी जीव परमेश्वर से खेलै ।

सा०– पुहप प्रेम बरिषै सदा, हरिजन षेलैं फाग । (४–११०)
दादू रंग भरि षेलौं पीव सौं, तहं बाजै बेन रसाल । (४–६)

काया मांहैं पद निरबाण । ५४ ॥

निरबाण पद परमेश्वर है तिसको कोइ बाण काल कर्म का लगै नहीं, वह सदा अविचल शांतस्वरूप है ।

पद– ऐसा तत्त अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न षाई । पद २२८ ॥

काया मांहैं मूल गहि रहै ।

सर्व का मूल मंत्र ब्रह्म तिसको संतों ने ग्रहण किया ।

सा०–सब आया उस एक मैं, डाल पांन फल फूल । (८–७२)

काया मांहैं सब कुछ लहै । ५५ ॥

चिंतामणि में सब कुछ है ।

सा० जिस मैं सब कुछ सो लिया, निरंजन का नांउं । (२–१३२)

काया मांहैं निज निर्धार, काया मांहैं अपरंपार ॥ ५६ ॥

निज स्वरूप जो अपार ब्रह्म है सो निराधार अपने ही आप है किसी दूसरे के आसरे नहीं, यथा—

सा०–दादू मैं हीं मेरे आसिरै, मैं मेरे आधार (४–२१२)

ऐसे अपने आत्म स्वरूप को काया के धर पदार्थों में से अधर को निर्धारण करले ।

कारन सूछम थूल देह अरु, पंच कोस इनहीं मैं जान ।
करि बिबेक लखि आतम न्यारो, मुंज इषीका तैं ज्यूं भान ॥
(विचारसागर पंचमस्तरंग)

थरिचा कौं धीजौं नहीं, अैसा पाया नाका ।
निराकार आकार बिवरजित, ताका सेवग रांका ॥

काया मांहैं सेवा करै,

काया के अंदर परमेश्वर की सेवा करै ॥

सा०–मस्तकि मेरे पांव धरि, मंदिर मांहैं आव । (४—२७६)
तेज पुंज कौं बिलसणां, मिलि पेलै इक ठांउं (४—२७४)
दादू भीतरि पैसि करि, घट के जड़ै कपाट (४—२५६)
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार । (३३—५)

काया मांहैं नीझर झरै ॥ ५७ ॥

नीझर ब्रह्म सीर (सोता) सदा झरै अखंड ॥

सा०–घन बादल बिन बरषि है, नीझर निर्मल धार । (४—११३)
अैसा अचिरज देषिया, बिन बादल बरषै मेह । (४—११४)

काया मांहैं बास करि, रहे निरंतर छाइ ॥ ५८ ॥

बास परमेश्वर के चरनों का ध्यान, निरंतरि अंतररहित ब्रह्म में लीन हो रहे ॥

दादू पाया आदि घर, सतगुर दिया दिपाइ ॥ ५६ ॥

आदि घर ब्रम्ह स्थान सो सतगुर (परमेश्वर) की कृपा से पाया ॥

सा० दादू पहली घर किया, आदि हमारी ठौर । (३–६७)

॥ पद ३६२ ॥

काया मांहैं अनभै सार,

अनुभव सार साक्षात परमेश्वर का दर्शन ॥

सा० दादू जैसा ब्रम्ह है, तैसी अनभै उपजी होइ । (२८–२०)

काया मांहैं करै विचार ॥ ६० ॥

परमेश्वर का चिंतवन रूप अखंड विचार सदैव करता रहे ॥

सा० दादू एक विचार सौं, सब थैं न्यारा होइ । (१८–१०)

सब तजि देषि विचारि करि, मेरा नांहीं कोइ । (४–१४१)

काया मांहैं उपजै ग्यांन,

ज्ञान परमेश्वर का ॥

सा०—आपै आप प्रकासिया, निगल ग्यांन अनंत । (१७–५)

काया मांहैं लागै ध्यांन ॥ ६१ ॥

ध्यान अंतर्मुख वृत्ति द्वारा ब्रम्ह में लय स्थिति ॥

सा०—मन इंद्री पसरै नहीं, अहनिसि एकै ध्यांन । (१८—३२)

काया मांहैं अमर अस्थांन,

अमर ब्रम्ह सोई जीव की शांति और स्थिति का स्थान है, जिस को हृदय गुहा में अंतर्मुख वृत्ति द्वारा पा सकते हैं । अमर तत्त्व के निरंतर चिंतन से अमर पद मिलता है ॥

काया मांहैं आत्मरांम ॥ ६२ ॥

आत्मरांम परमेश्वर ॥

सा०—आत्म आसण रांम का, तहां बसै भगवांन । (४–१७६)
जहां रांम तहं संत जन, जहं साधू तहं रांम । (४—१८१)
जहं आतम तहं रांम है, सकल रह्या भरपूर । (७—२२)

काया मांहैं कला अनेक,

कला ब्रम्ह से आनंद कलोल ।

सा० सहज सरोवर आत्मा, हंसा करैं कलोल । (४–६१)

काया मांहैं करता एक ॥ ६३ ॥

हमारे कर्ता हर्ता एक परमेश्वर ही है ।

सा० दादू मेरे हृदै हरि बसै, दूजा नांही और । (८–२१)
दादू नाराइन नैंनां बसै, मन ही मोहन राइ । (८–२२)
कबीर रेष सिंदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैंनौं रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥

काया मांहैं लागे रंग,

रंग परमेश्वर की भक्ति ।

सा० जे जन हरि रंगि रंगे, सो रंग कदे न जाइ । (१५–४७)
दादू राता रांम का, अबिनासी रंग मांहिं । (१५–४८)
साहिब की सो क्यूं मिटै, सुंदर सोभा रंग । १५–४६)

पद । रंग लागौ रे रांम कौ, सो रंग कदे न जाइ ।
हरि रंग मेरा मन रंग्यो, और न रंग सुहाइ । (पद ४१५)

काया मांहैं सांई संग ॥ ६४ ॥

सांई परमेश्वर सदा जीव के संग है ॥

सा० प्रांण हमारा पीव सौं, यूं लागा सहिए । (४–३०३)

काया मांहैं सरवर तीर, काया मांहैं कोकिल कीर ॥ ६५ ॥

सरवर हृदय सोई तीर (तट) । कोकिल मनसा, कीर तोता रूपी मन ॥

काया मांहैं कछिब नैंन॥

कच्छप मन निप के अंतर्मुख नैंन आत्म कंवल में ब्रम्ह ध्यान में स्थित।

काया मांहैं कुंजी बैंन॥ ६६ ॥

कुंजी मुरति, बैंन ब्रम्ह से बिनती।

सा०—सुरति पुकारै सुंदरी, अगम अगोचर जाइ। (१०—७)

काया मांहैं कवल प्रकास, काया मांहैं मधुकर बास ॥ ६७ ॥

कवल प्रकास हृदय का प्रफुल्लित होना। मधुकर मन, सो ब्रम्हकी बास लेवै।

काया मांहैं नाद कुरंग ॥

नाद अनाहद शब्द, कुरंग शुद्ध अन्त करण

सा० अनहद है द्वै भांति कौ, सुनुवो जुवो बिचार।
जगनाथ असली हृदै, तत सुर श्रवनन द्वार।

काया मांहैं जोति पतंग॥ ६८ ॥

जोति ब्रम्हजोति, पतंग प्रकृति। पांच तत्वों की २५ प्रकृति इस भांति से कही है—

प्रथी प्रकीरति अस्थि मास तुचा नाड़ी केस।
आप प्रकीरति लाल अरु नीत, प्रस्वेद सुकल सनेवच जीति।
तेज प्रकीरति षुध्या प्यास, आलस निद्रा क्रोध अभ्यास।
बाइ प्रकीरति गावै ध्यावै, ग्यांन कथां अगोचरी पावै॥
अकास प्रकीरति माया मोह, लज्या कर राग अरु द्रोह।
पचीस प्रकीरति पांचूं तत, भिन्नि २ ब्यौरा यहु म्यंत॥

काया मांहैं चात्रिग मोर, काया मांहैं चंद चकोर ॥ ६९ ॥

चात्रिग (चातक) प्राण, मोर मन। चंद ज्ञान, चकोर चित्त॥

काया मांहैं प्रीति करि, काया मांहिं सनेह ॥७० ॥

सर्व ओर से मन को तोड़ कर परमेश्वर से प्रीति स्नेह॥

सा०—प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहिं। (१—१३४)

काया मांहैं प्रेम रस ॥

प्रेम रस ब्रम्ह रस ।
मैं अमली मतिवाला माता, प्रेम मगन मेरा मन राता ॥ टेक ॥

दादू गुर मुषि येह ॥ ७१ ॥

परमेश्वर का दर्शन भाव भक्ति प्रेम प्रीति काया का भेद, यह सब गुरू की कृपा से मिलते हैं ॥

सा०–दूरि देषि आराधते, करते आस उमेद ।
स्यौपुर नेड़ा पाइया, जब लाधा गुरमुषि भेद ॥

॥ पद ३६३ ॥

काया मांहैं तारणहार, काया मांहैं उतरे पार ॥ ७२ ॥

तारणहार परमेश्वर जिस पर कृपा करै सो तरै, काया के गुण विकार जीति, संसारलाज कुल मरजादा तजि, जो भगवत् भजन करै सो पार उतरै ।

सा०–दादू षोई आपणों, लज्या कुल की कार । (२३–३५)

काया मांहैं दूतर तारै, काया मांहैं आप उबारै ॥ ७३ ॥

दूतर संसार सागर, तिस के काम क्रोध लोभ मोह भयादि, इन से परमेश्वर तारै तौ जीव उबरै ॥

॥ पद १५ बषनांजी का । राग गौड़ी ॥

रांम उबारिया रे, ताकौं डर नहिं कोइ ।
बहु बैरी पचि पचि गए, बाल न बंका होइ ॥ टेक ॥
प्रगट तीन्यू लोक मैं रे, साषि कहैं सब साध ।
जिन हरणांकुस मारियो उबारयो प्रहलाद ॥ १ ॥
है गै नरगैवर गुड्या, भारथ बहु बिस्तार ।
अंडा अंतरि राषिया, टीटहड़ी का च्यारि ॥ २ ॥
जहं तहं भीड़ भगत की माधौ, तुम्ह बिन कोई नांहि ।
पांचौं पांडूं राषिया, लाषां जौंहर मांहि ॥ ३ ॥
बाछा गऊ बिनासिया रे, नांमदेव पकड्यौ धाइ ।

बाहरि आयौ बीठलौ, मुई जिवाई गाइ ॥ ४ ॥
बांध्या हाथ पाव परि बांध्या, चौकस कियौ सरीर ।
हाथी आगैं रालियौ, राख्यौ दास कबीर ॥ ५ ॥
अकबर साह बुलाइया, गुरदादू कौं आप ।
ग्यांन ध्यांन पूरा हुआ, रह्या नांव परताप ॥ ६ ॥
पावक सुनहां पारधी, फंद रोप्यौ दूं लाइ ।
मृग नै मारग को नहीं, तब सुमिरयौ रांमराइ ॥ ७ ॥
फंद जल्या सुनहां टल्या रे, पारधी मलै कर धूंण ।
गुण टूटौ रप्या की, तब मारण हारो कौंण ॥ ८ ॥
मंजारी सुत मेल्या रे, ऊपरि धैंस अहाव ।
तिहि बासणि बषनौं कहै, तातो लगी न पाव ॥ ९ ॥

पद–जो रे भाई रांम दया नहिं करते ।
नौका नाव खेवट हरि आपै, यूं बिन क्यूं निसतरते । टेक ॥ पद १७ ॥

सा० चारि पहर मे जलिगई ।
होली अजहूं जरत है, जन गोपाल जग मांहि ।
प्रहलाद बच्यौ होली जरी, रही उभै रस रीति ।
रजब पेषि प्रवीनता, अग्नि न करी अनीति ॥
बिषम बार हरि चढ़े, थाए आए धांम ।
कल मांहैं जल रूप ह्वै, रजब राषे रांम ॥

काया मांहैं दूतर तिरे,

दूतर संसार सागर, तिस के माया ममत्व हरि के प्रताप सं छूटे ॥

रमैणी–सिरजनहार नांव धूं तेरा, भौ सागर तरिबे कौं भेरा ।
जे यहु भेरा रांम न करता, तौ आपै आप आवटि जग मरता ॥
रांम गुसांई मेहरि जु कीन्हां, भेरा साजि संत कौं दीन्हां ।
दुष षंडन मही मंडणां, भक्ति मुक्ति बिश्रांम ॥
बिधि करि भेरा साजिया, कबीर धरया रांम का नांउं ।

काया मांहैं होइ उधरे ॥ ७३ ॥

मनुष्य देह पाई, परमेश्वर में रत होकर पार हुये। मनुष्य देह मुक्ति क्षेत्र है ॥

काया मांहैं निपजे आइ, काया मांहैं रहे समाइ ॥ ७५ ॥

बाह्य दृश्यों से मन निवृत्त होकर जब अंतर्मुख वृत्ति हुई तब काया में निपजे (संसार के झगड़ों से छूटे) और आत्मानंद में मग्न हो बैठे ॥

काया मांहैं पुले कपाट, काया मांहैं निरंजन हाट ॥ ७६ ॥

कर्म कपाट (बंधन) दूर हुये। माया (अंजन) रहित निरंजन हाट रूपी परम तत्व, सो हृदय गुहा में शुद्ध बुद्धि द्वारा पाया।

सा० पांच तत के पांच हैं, आठ तत के आठ (४–५१)
गंम नांम कौं बझिजण बैठे, तांथै मांड्या हाट (१३–१७६)

काया मांहैं है दीदार. काया मांहैं देषणहार ॥ ७७ ॥

दीदार ब्रम्ह का, तिस को देखने वाला प्राणी।

सा० दादू देषि देषि सुमिरण करै, देषि देषि लै लीन (४–१५०)
दादू बिगसि बिगसि दरसन करै, पुलकि पुलकि रस पीन। (४–१४६)

काया मांहैं राम रंगि राते, काया मांहैं प्रेम रस मांते ॥ ७८ ॥

राम रंग आत्म रंग, जिस को देख कर और सब दृश्य फीके लगते हैं, सो अद्भुत रंग अंतर्मुख ध्यान में दिखाइ देता है, उस की शोभा लिखने में नहीं आती। इंद्र धनुष के रंग, हीरा लाल जवाहिरों की चमकें, बिजली का प्रकाश, यह सब उस के नीचे हैं। ऐसे राम रंग को काया में पाकर संत आत्मा में रत होजाते हैं और उसका प्रेमरस पीकर आनंद में मग्न रहते हैं ॥

सा०–दादू माता प्रेम का, रस में रह्या समाइ। (४–३१५)
पीया तेता सुष भया, बाकी बहु बैराग। (४–३१६)

काया मांहैं अविचल भये, काया मांहैं निहचल रहे। ७९ ॥

अविचल स्थिर हुये, चिंता मिटी निश्चिंत हुये। मन मनसा शांत हुई ॥

सा०—हरि चर्यतामणि चर्यततां, चर्यता चित की जाइ । (४--२६)
जब अंतरि उरझ्या एक सूं, तब थाके सकल उपाइ । (१०—१७)
दादू कउवा बोहिथ बैसि करि, मंझि समंदां जाइ । (१०—१८)

काया मांहैं जीवै जीव,

जीवता वह जीव है जो अपने आत्मा की संभाल रखता है ॥

जीवत जीये, मुये भी जीये, दादू रांम निवासा ॥ पद ३०७ ॥

सा०—कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल ।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देषौं काल ॥

काया मांहैं पाया पीव ॥ ८० ॥

पीव परमेश्वर

पद—ये मन मेरा पीव सूं, औरनि सूं नांहीं ।
पिव बिन पलाहि न जीव सूं, येह उपजै मांहीं ॥ पद ३८१ ॥

काया मांहैं सदा अनंद, काया मांहैं परमानंद ॥ ८१ ॥

सच्चिदानंद ब्रह्म से भिन्न कोई वस्तु है नहीं, एक आनन्द रूप ब्रह्म ही सर्वत्र है। सतगुर की कृपा जिस पर हो सो संपूर्ण भ्रम रूपी दुःखों से छूट कर केवल आनंद को ही अनुभव करै, नित्य आनन्द के उत्साह में जय जयकार परमानन्द में पुफुल्लित रहे ।

सा०—जब निराधार मन रह गया, आतम के आनन्द । (१६—२१)

काया मांहैं कुसल है,

कुशल क्षेम हुए जब द्वंद्व से मन रहित हुआ ।

सा०—इक राजी आनन्द है, नग्री निहचल बास । (१२—३४)

सो हम देष्या आइ ॥ ८२ ॥

सो ब्रह्म देखा जब बाह्य विषयों से वृत्ति समेट कर अंतर्ध्यान हुए ॥

सा०—दादू अष्यूं पसण के पिरी, भरे उलथूं मंझ । (७—१६)

दादू गुरमुषि पाइए,

शील संतोष परमेश्वर का दर्शन काया का भेद तैसे ज्ञान ध्यान सच्चे गुरू से मिलते हैं यथा—

पद—हो अैसा ग्यांन ध्यांन गुर बिनां क्यूं पावै ।
वार पार पाग्वार दूतर तिरि आवै हो ॥ पद २६५ ॥

साध कहैं समझाइ ॥ ८३ ॥

पूर्वोक्त प्रकार से संत जन समझा कर कहते हैं ॥

॥ पद ३६४ ॥

काया मांहैं देख्या नूर,

सा०—दादू अलप अल्लाह का, कहु कैसा है नूर । (४-१०३)
नूर नूर अव्वलि आखिर नूर ॥ पद २३८ ॥
नूर रह्या भरपूर, अमीरस पीजिये ॥ पद २६० ॥

काया मांहैं रह्या भरपूर ॥ ८४ ॥

ब्रह्म को काया में नखशिख रोम रोम में भरपूर पाया ।

सा०-जहं आतम तहं राम है, सकल रह्या भरपूर । (४-१८)

काया मांहैं पाया तेज,

ब्रह्म तेज जो हीरों के जड़ाव से भी चमकीला है सो संतों ने ब्रह्म परिचय में साक्षात देखा ।

सा० ज्यूं रवि एक अकास है, अैसैं सकल भर पूर । (४-८६)
दादू हीरे हीरे तेज के, सो निरषे त्रिय लोइ । (४-६७)
नैनहुं बाला निरषि करि, दादू घालै हाथ । (४-३६)
नैनहुं बिन सूझै नहीं, भूला कतहूं जाइ । (४-३७)

काया मांहैं सुंदर सेज ॥ ८५ ॥

सुंदर शोभनीय परमेश्वर, सेज हृदय, अथवा निर्मल भाव सोई सुंदर सेज है ॥

काया मांहैं पुंजप्रकास, काया मांहैं सदा उजास ॥ ८६ ॥

पुंज अति भारी प्रकाश ब्रह्म का काया में देखा। सो उजास नित्य अविनाशी है, जिस के प्रभाव से सब प्रकाश प्रतीत होते हैं ॥

काया मांहैं झिलिमिलि सारा,

झिलमिलाट ब्रम्ह जोति का सार रूप देखा ॥

सा०-दादू नैंनूं आगैं देखिए, आतम अंतरि सोइ । (४-६६)

काया मांहैं सब थैं न्यारा ॥ ८७ ॥

देह गुणों से ब्रह्म न्यारा है ॥

सा०-रहै निराला सब करै, काहू लिपत न होइ । (२१-३०)

सुरम नहीं सब कुछ करै, यूं कलि धरी बनाइ । (२१-३१)

काया मांहैं जोति अनंत,

अनंत जिस का अंत नहीं ऐसी अपार जोति ॥

काया मांहैं सदा बसंत ॥ ८८ ॥

सदा आनंद उत्साह ब्रम्ह का सुख ॥

सा०-दादू रंग भरि षैलौं पीव सौं, तहं बारह मास बसंत । (४-६)

काया मांहैं षेलै फाग,

फाग ब्रम्ह से प्रीति ॥

जोति अपार अनंता, षेलैं फाग बसंता ॥ पद ६७ ॥

अषंड जोति तहं भयौ प्रकास, फाग बसंत जो बारह मास ॥पद ४०६॥

काया मांहैं सब बन बाग ॥ ८६ ॥

बन रोम रोम, बाग ब्रह्म से बनाव ।

काया मांहैं षेलै रास, काया मांहैं बिबिध बिलास ॥ ६० ॥

रास आत्मबिलास, बिबिध नाना प्रकार के बिलास सुख, बहुबिधि भाव जैसे संत हंस, मोती दर्शन, संत मीन, नीर राम नाम, संत भंवर, ब्रह्म कमल, इस प्रकार के बिबिध बिलास काया में माने हैं ॥

सा०—नांनां बिध पिया राम रस, केती भांति अनेक । (४-३३६)

काया मांहैं बाजैं बाजे, काया मांहैं नाद धुनि साजे ॥ ६१ ॥

बाजे अखंड ध्वनि, रोम रोम में " तूंही तूंही " सदा । नाद धुनि साजे अनाहद शब्द में ध्यान लगा ॥

सा०–रोम रोम लै लाइ धुनि, ऐसैं सदा अषंड । (२६—१४)

काया मांहैं सेज सुहाग, काया मांहैं मोटे भाग ॥ ६२ ॥

सेज हृदय, सुहाग दर्शन का सुख । मोटे भाग बड़े भाग से परमेश्वर मिला, सौंज सुफल हुई ॥

मेरा मन के मनसौं मन लागा ॥ पद ३२६ ॥

काया मांहैं मंगल चार,

चतुष्टय अंतः करण आनंदित हुये ॥

सा०–अरस परस मिलि पेलिए, तब सुष आनंद होइ । (४–२७५)

काया मांहैं जै जै कार ॥ ६३ ॥

जय जय ब्रह्म राज सदा आनंद ॥

काया मांहैं अग्म अगाध,

काया की सौंज अगम अगाध है, भाव भक्ति अगम अगाध है, तैसे ही ब्रह्म जोति अगम अगाध है ॥

काया मांहैं बाजैं तूर ॥ ६४ ॥

तूर अनाहद शब्द अखंड ॥

दादू परगट पीव मिल्या, गुर मुषि रहे समाइ ॥ ६५ ॥

पीव परमेश्वर सो कृपा कर प्रत्यक्ष मिला, जिस की प्राप्ति से सर्व शोक मोह दुःख दर्द शारीरिक मानसिक विकार निवृत्त हुये, ऐसा आनंदमय पद गुरू वाक्यों में शुद्धा भक्ति ध्यान और योग से पाया, तिस में निश्चिंत मग्न और लयलीन हो बैठे ॥

॥ इति श्री कायावेली ग्रंथ सम्पूर्ण समाप्त ॥

इति श्री स्वामी दादूदयालजी कौ कित संपूर्ण समाप्त ॥

अंग समस्त ३७ । साषी समस्त २६५८ । राग समस्त २७ ।
सबद समस्त ४४५ ॥

श्री स्वामी दादूदयाल की वाणी की विषय अनुक्रमणिका ॥

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
अंजन रांम निरंजन कीन्हां	पद	१६१	४२३–२४
	४	६	६४
अकल सरूप	पद	३२१, ४३७	५२१, ५४१
अद्वैत ब्रह्म–			
आत्म ब्रह्म समान	१८	१३	२५०
सब रंग तेरे तैं रंगे	२६	१०	३०९
जीव ब्रह्म द्वै नांहि	२७	२२	३१६
दूजा कोई नांहि	२९	१–२०	३२३–२६
मैं जन सेवग द्वै नहीं	पद	१७४	४३०
बावा कहु दूजा क्यौं कहिये	,,	२३१–२	४५५
जीव पीव न्यारा नहीं	,,	२०६	४४५
ज्यूं जल पैसे दूध मैं	१०	२६–२७	१४५
देषौं रांम सकलि के मांहीं	पद	४०२–३	५२५
कर्मरहित सो ब्रह्म	२७	२० २१	३१९
अनन्य सरणि—			
सरणि तुम्हारी आइये रे	पद	२५५	४६५–६६
हरि केवल एक अधारा	,,	२१५–१६	४४९–५०
अनभै थैं आनंद भया	४	२०३–८	९२
,, उपजी गुणमयी	२८	४	३२०
जैसा ब्रह्म तैसी अनभै	२८	२०	३२२
अमृतधारा	४	१११–१५	७७–८
अवगुण से बे परवाही	५	३०–३१	११५–१६

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
आहार (भोजन)—	१३	५६–६०	१९३–४
छाजन भोजन	१९	२६–३८	२६०–६१
भावै तेता षाइ	५	६	११३
षुध्या त्रिषा का नाश	१८	२२–२६	२५२
आत्मा—			
अैसा तत्त अनूपं भाई	पद	२२८	४५४
पीव पीव आदि अंत पीव	,,	२३७–८	४५७
कासौं कहूं अगम हरि बाता	,,	२४१	४५८
मन के मन सौं मन लागा	,,	३२७	४९८
रमता रांम सबनि मैं चीन्हां	,,	४०२–३	५२५
आत्म प्राप्ति शनै २	१८	२३–२६	२५२
आपा (खुदी) त्याग—			
जीवत मृतक	२३	५–१९	२८०–८२
	२३	२४–४४	२८२–८५
आपा मेटि समाइ रहु	२३	५०–५७	२८६
साचा सिर सौं षेल है	२४	२	२८७
जब यहु मैं २ मेरी जाइ	पद	३९३	५२१
मैं नहिं मैं नहिं मेरा	,,	५०	३७६–७७
आपा मेटै हरि भजै	,,	५५	३७८–७९
मनी मेटि महल मैं पावै	पद	४०३	५२५
आपै मारै आप कौं	२५	९१–९४	३०७
आपा निर्दोष	२४	२९–३०	२८३
आभासवाद	१८	२–३	२४८
आयु घटती जाय	२५	१३	२९८
आव घटै तन छीजै	२५	५६	३०३
दिन २ लहुड़े हूंहि सब	२६	३३	३११

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
आरती	४	२६२–६७	९९
	पद	४४१–४५	५४३–४४
आवागवन मन आधीन	११	१–९	१५९–६०
,, भय को नहीं	१६	२३	२३६
तब यहु आवागवन बिलाइ	पद	४०५	५२६
आज्ञाकारी	पद	३३०	४९६
	८	३३–३५	१३०
इंद्रिय निग्रह–			
पंचौं ये परमोधि ले	१	१४०–५३	२२
जब लग मन के दोइ गुण	१०	४५–४६	१४७
इंद्री अपणै बसि करै.	१०	५८–६३	१४९
भवरा हस्ती मीन पतंग	पद	३६८	५१२–१३
इश्क—	३	१–१५६	४२—६२
देह पियारी जीव कौं	३	२५–२६	४४–४५
जिस घट इश्क अल्लाह का	३	५७ ६१	४९
आशिक एक अल्लाह के	३	६५–६६	५०–५१
आशिक माशूक होगया	३	१४५–५२	६०–६१
ईश दर्श (दादू कौं दिखलावै)	पद	३१२	४९१
ईश निवास—			
मुझ ही मांहैं मैं रहूं	पद	५६–५७	३७९–८०
परिचय	४	१–३५३	६३–१११
जहं आतम तहं सांम है	४	३८	६८
मैं मेरे मैं हेरा	पद	७८–७९	३८६
तहं आपै आप निरंजना	,,	२०८ ६	४४६
हरि बिन निहचल कहीं न देखौं	,,	३४६	५०६
ईथांई रहमान वे	,,	३५३–४	५०६–१०

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
ईश्वर अवतार खंडन मंडन—			
जगति न नाचे आइ	२०	१५—२०	२६६
मोहन मंदिर आइ	३	११५	५७
खेलैं गोपी कान्ह	३५	८	३५१
कुल हमारे केसवा	८	१५	१२९
बेगि मिलौ तन जाइ बनवारी	पद	७	३५१
एकहि मथौंगा गोविंदा	,,	८३	३९५
सेतन कौं सुख दाई माधौ	,,	१०४	४००
गोविंदा गाइबा दे रे	,,	१५२	४२०
दुष्ट नै मारिबा संत नै तारिबा	,,	१८०	४३२—३३
माधइयो मीठौरी माई	,,	२८५	४७९
दिलदार मेरे कान्हां	,,	२९०	४८१
कर गहि काटो केसवा	,,	३२३	४९५—६
मोहन सौं मेरी बनि आई	,,	३४४	५०५
मोहन माली सहजि समांनां	,,	३७१	५१४
घटि २ गोपी घटि २ कान्ह	,,	४०७	५२७—८
ईश्वर का भक्त को संभालना—			
आशिक माशूक हो गया	३	१४७	६०
राम जंप मति साध कौं	४	१८०	८८
तब साहिब सेवा करै	४	२७२	१००
दादू दादू कहत है	२०	२१	२७१
संत नै तारिबा परगट थाया	पद	१८०	४३२—३३
संत उबारि दुष्ट दल दीन्हां	,,	१०४	४००
तुम्ह बिन ऐसैं कौंन करै	,,	२०६	४८३
ब्रह्म जीव की करै सहाइ	,,	४०५—७	५२६—८
ईश्वर भरोसा	१९	१—५७	२५७—६४

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
ईश्वर महिमा (ऐसौ राजा सेऊं ताहि)	पद	३६१–९२	५२१
ईश्वर समर्थाई	२१	१–४३	२६६–७४
	२२	१३–३०	२७६–७८
उद्यम	१९	१०	२५८
उपद्रव (देखौ "लोक रीस")			
उपदेश (चितावणी) —	६	१–१५	१४०–४१
हरि के चरण पकरि मन मेरा	पद	१८३–८५	४३४–३५
	,,	२०१–२	४४२–४३
मन रे सेवि निरंजन राई	,,	२२६	४५४
मन रे तेरा कौन गंवारा	,,	३०२	४८६
मन रे देखत जनम गयो	,,	३०३	४८७
मन रे अंति काल दिन आया	,,	३०४	४८७
मन रे तूं देखै सो नांहीं	,,	३०५	४८८
भाई रे ऐसा एक विचारा	,,	३०६–७	४८८–९
कुछ चेति रे कहि क्या आया	,,	२७७–८२	४७६–७८
जागहु जियरा काहे सोवै	,,	३३७–३९	५०२–३
बहरि न कीजै कपट कांम	,,	३६९	५१३
जपि गोविंद बिसरि जिनि जाइ	,,	३८५–८६	५१८–९
आप आपण मैं पेखौ रे भाई	,,	३८७–८८	५१९–२०
हाजिरां हजूर साईं	,,	४०३	५२५–६
जियरा रांम भजन करि लीजै	,,	४३०–३१	५३८–९
ऋषि मुनि महिमा (देखौ "पौराणिककथा" भी)			
भावै तहां छिपाइये सांच न छानां होइ	२	११०–११६	३९
सकल साध दादू सही	१५	११६	२३१
रांम रस मीठा, पीवै साध सुजांन	शब्द	५८	३८०–८१

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
ओंकार थैं ऊपजे पंच तत्त आकार	२२	६–१२	२७५–६
औगुण मनि आणैं नहीं	५	३०–३१	११५–१६
औषध			
औषदि षाइ न पछि रहै	१	१५१–५३	२२
अनभै काटै रोग कौं	४	२०७	९२
निर्मल होइ सरीर	४	३३१	१०८
दादू काटै रोग कौं	१३	५२–६०	१९३—४
औषदि मूली कुछ नहीं	८	६६	१३५
रांम नांम निज औषदी	२	७०	१३
औषदि एक बिचार	१८	१२	२५०
गुर कंचन करिले काया	पद	११२	४०२
आतम रोगी औषद सारा	,,	१९४	४३९
नरमल सदा होइ सरीर	पद	२४७–८	४६१
कबीर की प्रशंसा—			
कासी तजि मगहर गया	१९	५३	२६३
जे था कंत कबीर का	२०	११	२६५
साचा सबद कबीर का	२२	३४	२७९
रांम सरीपा हुआ कबीर	२६	६	१०८
मांहैं मन सौं झूझ करि	२४	५३—५४	२९३
कहां कबीरा नांम (देव)	२	११२	३९
चिड़ी चंच भरि ले गई	४	३३३	१०८
कबीर बिचारा कहि गया	१३	१८६	२०६
अधर चाल कबीर की	१६	१७—१८	२३५–६
कबीर जुलाहा तिरै	पद	२९६	४८३
कर्तव्य —			
जैसा करै सो तैसा पावै	१३	१९५	२१०

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
करणी पोच सोच सुष करई	पद	३२६	४९७
कर्ता अभिमान त्याग	३५	१४	३५१–२
करनी बिनां कथनीं	पद	१९३–५	४३९–४०
करणीं किरका को नहीं	१०	१२४	१५७
केते पुस्तक पढ़िमुये	१३	९३–१०५	१९८–९९
कर्म फिरावै जीव कौं—	२१	४४	२७४
कर्मों के बस जीव है	२७	२१	३१६
कर्ता है करि कुछ करै	३५	१४	३५१–२
कटैं कर्म के पास (फंदे)	२	१२–१३	२९
करामात—			
करामाति कलंक है	८	५४	१३४
बूढ़े थैं बाला करै	३४	३४–३५	३४४
अठ सिधि नौ निधि चेरी	१२	९७–९८	१७५
प्रांण पवन ज्यौं पतला	४	१९९–२००	९१
सिद्धि हमारे सांइयां	८	५	१२७
परचा मांगै लोग सब	२१	२६–२८	२७२
अठ सिधि नव निधि का करै	८	८९	१३८
	पद	४००	५२५
कलिजुग	पद	१९०	४३७–८
,, कूकर कलिमुहां	१६	६६–७०	२४१–४२
कसौटी (भावै सिर दे सूली मेरा)	पद	४०१	५२५
काम क्रोध त्याग	१२	३१–६८	१६५–७१
	पद	४०२–३	५२५–६
कामधेन दुहि पीजिये	४	११६–२१	७८
काया कसै कमाय	४	१९९–२००	९१
,, बसि करै	२७	१५–१७	३१५

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
ओंकार थैं ऊपजे पंच तत्त आकार	२२	६–१२	२७५–६
औगुण मनि आणैं नहीं	५	३०–३१	११५–१६
औषध			
औषदि षाइ न पछि रहै	१	१५१–५३	२२
अनभै काटै रोग कौं	४	२०७	९२
निर्मल होइ सरीर	४	३३१	१०८
दादू काँट रोग कौं	१३	५२–६०	१९३—४
औषदि मूली कुछ नहीं	८	६६	१३५
रांम नांम निज औषदी	२	७०	३३
औषदि एक बिचार	१८	१२	२५०
गुर कंचन करिले काया	पद	११२	४०२
आतम रोगी औषद सारा	,,	१९४	४३९
निमल सदा होइ सरीर	पद	२४७–८	४६१
कबीर की प्रशंसा—			
कासी तजि मगहर गया	१९	५३	२६३
जे था कंत कबीर का	२०	११	२६५
साचा सबद कबीर का	२२	३४	२७९
रांम सरीषा हुआ कबीर	२६	६	३०८
माहैं मन सौं झूझ करि	२४	५३—५४	२९३
कहां कबीरा नांम (देव)	२	११२	३९
चिड़ी चंच भरि ले गई	४	२३३	१०८
कबीर बिचारा कहि गया	१३	१८६	२०६
अधर चाल कबीर की	१६	१७—१८	२३५–६
कबीर जुलाहा तिरै	पद	२९६	४८३
कर्तव्य—			
जैसा करै सो तैसा पावै	१३	१९५	२१०

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
करणी पोच सोच सुष करई	पद	३२६	४९७
कर्ता अभिमान त्याग	३५	१४	३५१–२
करनी बिनां कथनीं	पद	१९३–५	४३९–४०
करणीं किरका को नहीं	१०	१२४	१५७
केते पुस्तक पढ़िमुये	१३	९३–१०५	११८–११
कर्म फिरावै जीव कौं—	२१	४४	२७४
कर्मौं के बस जीव है	२७	२१	३१६
कर्ता है करि कुछ करै	३५	१४	३५१–२
कटैं कर्म के पास (फंदे)	२	१२–१३	२९
करामात—			
करामाति कलंक है	८	५४	१३४
बूढ़े थैं बाला करै	३४	३४–३५	३४४
अठ सिधि नौ निधि चेरी	१२	९७–९८	१७५
प्रांण पवन ज्यौं पतला	४	१९९–२००	९१
सिद्धि हमारे सांइयां	८	५	१२७
परचा मांगै लोग सब	२१	२६–२८	२७२
अठ सिधि नव निधि का करै	८	८९	१३८
	पद	४००	५२५
कलिजुग	पद	१९०	४३७–८
,, कूकर कालिमुहां	१६	६६–७०	२४१–४२
कसौटी (भावै सिर दे सूली मेरा)	पद	४०१	५२५
काम क्रोध त्याग	१२	३१–६८	१६५–७१
	पद	४०२–३	५२५–६
कामधेन दुहि पीजिये	४	११६–२१	७८
काया कसै कमाय	४	१९९–२००	९१
,, बसि करै	२७	१५–१७	३१५

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
काया बेली ग्रंथ	पद	३५७–६४	५४५–७६
,, कारवीं (देखौ "काल")			
काल—	२५	१–९५	२६७–३०७
काया कारवीं	,,	१६–२२	२६६
काहे रे नर करहु डफांण	पद	४२	३७४
काया गगरिया फूटी	,,	२६७	४७२
साथी सावधान ह्वै रहिये	,,	१८६–७	४३५
मन रे सोवत रैंनि बिहानी	,,	२२०–२१	४५१
चलसी सब संसारा	,,	२२५–२७	४५३
माया संसार की सब झूठी	,,	२६७	४७२
नेठि रे माटी मैं मिलना	,,	२७८–७६	४७६–७७
दादू तन की कहा बड़ाई	,,	३८४	५१८
मन रे अंति काल दिन आया	,,	३०४	४८७
कोली साल न छाडै रे	पद	२६६	४८५
कृतज्ञता	३३	२२	३४०
कृष्ण लीला महिमा ("ईश्वर अवतार" भी देखौ)	पद	४०७,४२४	५२७,५३५
ग़ज़ल	पद	४२३	५३५
गर्ब न कीजिये रे	पद	४५	३७५
गुंगा महिला बावरा—	२३	४७–४८	२८५
गुर, झूठे अंधे	१	१२०–२८	१७–१८
हम पाया हम पाया	पद	२८३	४७८
गुर मंत्र	१	१५४–५५	२२—२३
हो ऐसा गुर ग्यांन	पद	२६५	४७१
गुर महिमा	१	१–१५७	१—२३

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
सतगुर चरणां मस्तक धरणां	पद	३७४	५१५
गुर मुख पाइये ज्ञान ध्यान	पद	७६–७७	३८७–८८
गुरु, आत्म–	४	२६५	६१
	पद	२४३	४५९
गृह धर्म–			
घर बन बास समान	१५	८१–८३	२२७
	१६	३३–३९	२३७—८
ना घरि रह्या न बन गया	१	७४	११
भावै गिरि पर्बत रहूं	२	४५–४६	३०
ना घर भला न बन भला	२	७८	७८
घर बन बास समान	१५	८०–८३	२२७
	१६	३३–३९	२३७–८
ऐसे गृह मैं क्यूं न रहै	पद	२६८	४७२
चमत्कार (देखौ "करामात" भी)	२०	२६–२७	२७२
	८	५४	१३४
च्यंता जीव कूं पाइ	१९	१३–१४	२५८
छाजन भोजन (देखौ अहार)			
जरणां	५	१—३३	११२—१६
	पद	१०८—९	४०१
जाति पांति —			
जाति हमारी जगत गुर	८	१५	१२८
सकल आत्मा एक	१३	१२३—३०	२०२–३
नीच ऊंच ले करै गुसांई	पद	२९६	४८३
अभरण के घरि बरण समाइ	पद	४०५	५२६
नीच ऊंच कुल सुंदरी	८	३६	१३१
जीव ईश भेद	२०	१५—२४	२६६—७
जीव ईश एकता (दूजा नांहीं कोइ)	१५	९१	२२८

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
जीव ईश एकता—			
सींधव–पानीवत	१५	९५–९७	२२९
दादू दादू कहत है	२०	२१	२७१
जीव ब्रह्म करि ले	१	१३	२
ब्रह्म सरीषा सोइ	६	८	११८
पांणी लौंण ज्यौं	७	३३–३८	१२५–६
जल मैं गगन	१८	२, ३, ८	२४८–९
ब्रह्म मिलै तब ब्रह्म है	२७	१९, २०, २२	३१६
मांहीं थैं मुझ कौं कहै	३५	३–८	३५०–५१
जीव ईश आधीनता	२०	१६–१९	२७१
करै करावै सांइयां	३५	१८	३५२
माहरूं मूं जे हूं आपूं	पद	३९९	५२४
जीवन मुक्त–			
देह रहै संसार मैं जीव राम के पास	१८	२७–३०	२५२—३
जीवत मिलैं सो जीवते	२६	१६	३१०
जीवत मुकत सदगत भये	२६	३५–४८	३१२–१३
जुवा पेलै जांणराइ	३५	२१	३५२
नारद, भरथरी कबीरादि	२	११०–११६	३९
तब हम जीवत मुकत भये	पद	५२	३७७
परचै पीवै रांमरस	४	२९४–३४६	१०३–११०
मंदिर पैसि बहुरि नहिं निकसै	पद	२०४	४४४
जीवत मुकत होइ जन दादू	पद	२६८	४७२
परम पुरिष सौं मेला	पद	२०१–१२	४४३–४८
सोई साध सिरोमणी	,,	३४८	५०७
रांम मिल्या यूं जानिये	,,	३४९	५०७–८
जोग (देखो "योग" और "सुमिरण")			

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
तन निर्मलता (देखौ "औषध")			
तरवर साषा मूल बिन	४	१२२–२६	७१
तीर्थ मेला (देखौ "त्रिबेणी स्नान" भी)	१३	१४७–४८	२०४–५
केई दौड़े द्वारिका	१५	१२७–२८	२३३
	३१	८	३३३
तीर्थ व्रत न पूजैं आसा	पद	६१–७२	३८५–८६
	,,	३४७	५०६–७
तेज ही रहणा सारे	४	२१६–२०	६४
परम तेज प्रकास है	४	६७–११०	७६–७७
नूर नूर अव्वल आख़िर नूर	पद	२३७–३८	४५७
नूर रह्या भरपूर	,,	२६०	४६८
त्रिबेणी स्नान	,,	६९–७२	३८५–८६
	,,	४३८	५४२
थकित भयो मन कह्यो न जाइ	,,	२४४	२५६–६०
	,,	३७३	५१४
दया निर्वैरता	२०	१–४२	३२२–२८
दादू आदू रूप	पद	१६६, २०२	४४२, ४४३
दादू पंथी ऐसा जांणीं	२७	४१	३१८
दिवाना ह्वै रहै	२३	४६–४८	२८५
दीनता गरीबी	,,	३१	२८३
देवी देवते	पद	१९६–९७	४४०–४१
	,,	३४७	५०६–७
देस एक हम देषिया	१६	२७–३०	२३७
देह गुण का छूटना	१८	२२–२६	२५२
देह रहै संसार मैं जीव राम के पास	१८	२७–३०	२५३
	३५	२१	३५२
द्वैत से भय दुःख	पद	२३२	४५५
धन दौलत	१२	६८½	१७५

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
धन (गरथ) न बांधै गांठडी	१५	८७	२२८
धर्म से वृद्धि	३६	१७	३५५
ध्यान	४	२८३–९३	१०२–३
	७	१–४४	१२१–२६
नष सिष जाप	४	१६६–७८	८७–८८
	८	२९–३१	१३०
नम्रता	२३	५–७,३१	२८०–२८३
नर नाराइण देह	९	११	१४१
	पद	२७९	४७६
नांउं महिमा	२	१–१३२	२४–४१
सकल सिरोमणि नांउं	पद	२७१	४७३
नांहीं रूप—	२३	५१–५७	२८६
नांहीं होय रहु	४	४३–४९	६९–७०
कुछ नांहीं का नांव क्या	१३	१४५–४६	२०४
नहीं तहां थैं सब किया	२१	३८–४०	२७४
रांम सरीषे ह्वै रहै	२६	५–६	३०८
नांमदेव की महिमा	२६	६	३०८
	२	११२	३९
	पद	२०६	४८३
नामदेव का पद	४	३४७–५२	११०–११
नारी पुरुष संबंध—			
जे नर कामिनि परहरै	१२	१०४	१७६
कदे न कीजिये कनक कामिनी साथ	१२	११७–२३	१७८–९
घर के मारे बन के मारे	१२	१३५–६	१८०–८१
नारी नागणि जे डसे	१२	१५५–७३	१८३–५
नहिं नारी सौं नेह	१५	८७	२२८
कनक कामिनी साथ न कीजिये	१०	१२५	१५७

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
नारि पुरुष का नाव धरि	२६	६	३२३
नारी नेह न कीजिये	पद	३२०	५०३
निंदा (देखौ "मानापिमान" भी)			
न्यंदक बाबा बीर हमारा	पद	३३१	४६६–५००
न्यंदत है सब लोक बिचारा	,,	३०८	५२४
निंदक बपुरा जिनि मरै	३२	७	३३५
निगुरा	३३	३–२७	३३६–३९
निमाज़	४	२२८–३२	९५
	१३	४०–४७	१६१–६२
निर्भयता--			
निर्भय घर किया	१८	२२–३०	२५२–३
गिणत न रांणां राव	२४	७३–८३	२६६–७
सबै रिसाने लोक	१६	५६	२४०
दादू मोहि भरोसा मोट	पद	१९१	४३८
निर्भय नांव निरंजन लीजै	पद	३६०	५२०
निष्काम उपासना	८	६०--६५	१३८-९
नीच स्वभाव	३३	३--२७	३३६--३६
पंथा पंथी त्याग	१६	७१—७२	२४२
	पद	६५–६६	३८३–८४
मैं पंथि एक अपार के	,,	१५८	४४१
केई सकल देव कौं ध्यावैं	,,	३०८	४८६
बाबा नांहीं दूजा कोई	,,	२३३	४५५
पतिब्रत	८	१–६६	१२७–३६
बौरी तूं बार २ बौरानी	पद	२५६	४६६
परष साध असाध	२७	२–१६	११४–१६
,, जीव ब्रम्ह	२७	२०–२१	३१६

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
परिचय	४	१–३५३	६३–१११
सुंदर रांम राया	पद	२८८–९	४८०
जब मैं रहते की रह जानी	,,	३४४–४५	५०६–६
ये मन मेरा पीव सौं	,,	३५१–५२	५०८–९
इब हम रांम सनेही पाया	,,	३५६	५११
तहं षेलौं नित ही पीव सूं फाग	,,	३७०	५१३
मन मोहन मेरे मन ही मांहि	,,	३७२	५१४
जहां वै अकल सरूप	,,	४३७	५४१–२
दादू कौं (दरस) दिषलावै	,,	३१२	४९१
परमार्थ की व्यौहार से श्रेष्टता	१७	२०–२५	२४६–४७
रांम कहे सब रहत है	२	४७–५०	३०
परोपकार	२	५१	३१
पहरा	पद	४१	३७२–७३
पाखंड	पद	२८३	४७८
पाप का मूल	२	१२३	४०
पीव पहिचान (परिचय)	४	७८–११५	७४–७८
जोति चमकै तिरवैर	१२	११४	१७७
मन अथिर कर लीजै नांम	१०	१५	१४३
पीव पिछांण	२०	१–४५	२६४–९९
पूजा—	४	२७९–८२	१०१–२
झूठे देवा झूठी सेवा	पद	१९६—७	४४०–४१
पंडित जनौं का कर्तव्य	१३	९३–१०५	१९८–९९
देव टांची नहि गढ़िया	पद	३११	४९०
पूरिक पूरा	१९	१२–२०	२५८–९
	पद	४८	३७६
जिनि सत छाड़ै बावरे	पद	३४२–३	५०४–५

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
पौराणिक कथा			
(देखौ "ऋषि मुनि महिमा" भी)			
इहि रसि मुनि लागे सबै	पद	५८	३८१
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद	,,	३१२	४९१
सकल देव पति सेवा करै	,,	३९२	५२१--२२
सुरनर साधू सिरजिया	,,	४२९	५१८
प्रलय	पद	३९४	५२२
प्रार्थना, मुख्य—	३४	२६, २७, ६३	६४३, ३४७
	पद	१८१	४३३
प्रारब्ध—पुरुषार्थ			
उद्यम सांई सेती	१९	१०	२५८
सांई करे सो होइ	१९	२--३०	२५७--६०
ज्यूं राखै त्यूं रहैंगे	२१	१६--१९	२७१
प्रेम पियाला	शब्द	५९	३८१
दादू पीवै एक रस	२	९३–९६	३७
अमृत धारा देखिये	४	१११–११५	७७– ८
प्रेम पियाला नूर का	४	२३८–४३	९६–९७
फल त्याग	८	९०–९५	१३८–९
फाग बसंत (देखौ "होली")			
बनस्पति	२९	२२	३२५
बरषा बरिषण लागै	पद	३२८	४९८
बरस हु दीन दयाल	३	१५७–५९	६२
बरिषहु रांम अमृत धारा	पद	३३३	५००
बाजी भरम दिखावा	पद	३९	३७२
,, गर नट थेला	,,	३०६	४०८

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
परिचय	४	१–३५३	६३–१११
सुंदर रांम राया	पद	२८८–९	४८०
जब मैं रहते की रह जानी	,,	३४४–४५	५०५–६
ये मन मेरा पीव सौं	,,	३५१–५२	५०८–९
इब हम रांम सनेही पाया	,,	३५६	५११
तहं षेलौं नित ही पीव मूं फाग	,,	३७०	५१३
मन मोहन मेरे मन ही मांहिं	,,	३७२	५१४
जहां वै अकल सरूप	,,	४३७	५४१–२
दादू कौं (दरस) दिषलावै	,,	३१२	४९१
परमार्थ की व्यौहार से श्रेष्टता	१७	२०–२५	२४६–४७
रांम कहे सब रहत है	२	४७–५०	३०
परोपकार	२	५१	३१
पहरा	पद	४१	३७२–७३
पाखंड	पद	२८३	४७८
पाप का मूल	२	१२३	४०
पीव पहिचान (परिचय)	४	७८–११५	७४–७८
जोनि चमकै तिरवैर	१२	११४	१७७
मन अथिर कर लीजै नांम	१०	१५	१४३
पीव पिछांण	२०	१–४५	२६४–६९
पूजा—	४	२७९–८२	१०१–२
झूठे देवा झूठी सेवा	पद	१९६—७	४४०–४१
पंडित जनौं का कर्तव्य	१३	९३–१०५	१९८–९९
देव टांची नहि गढ़िया	पद	३११	४९०
पूरिक पूरा	१९	१२–२०	२५८–९
	पद	४८	३७६
जिनि सत छाड़ै बावरे	पद	३४२–३	५०४–५

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
पौराणिक कथा			
(देखौ "ऋषि मुनि महिमा" भी)			
इहि रसि मुनि लागे सबै	पद	५८	३८१
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद	,,	३१२	४९१
सकल देव पति सेवा करै	,,	३९२	५२१--२२
सुरनर साधू सिरजिया	,,	४२९	५१८
प्रलय	पद	३९४	५२२
प्रार्थना, मुख्य—	३४ पद	२६, २७, ६३ १८१	६४३, ३४७ ४३३
प्रारब्ध—पुरुषार्थ			
उद्यम सांई सेती	१९	१०	२५८
सांई करे सो होइ	१९	२--३०	२५७--६०
ज्यूं राखै त्यूं रहैंगे	२१	१६--१९	२७१
प्रेम पियाला	शब्द	५९	३८१
दादू पीवै एक रस	२	९३–९६	३७
अमृत धारा देखिये	४	१११–११५	७७– ८
प्रेम पियाला नूर का	४	२३८–४३	९६–९७
फल त्याग	८	९०–९५	१३८–९
फाग बसंत (देखौ "होली")			
बनस्पति	२९	२२	३२५
बरषा बरिषण लागै	पद	३२८	४९८
बरस हु दीन दयाल	३	१५७–५९	६२
बरिषहु रांम अमृत धारा	पद	३३३	५००
बाजी भरम दिखावा	पद	३९	३७२
,, गर नट षेला	,,	३०६	४०८

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
बाण, राम बाण मोहि लागे	पद	२०४	४४३–४४
बाद बिबाद न कीजै	पद	२८०	४७७
बिचार	१८	१–५०	२४८–५६
बिचार कर चलना	१८	४४–४९	२५५–५६
औषदि एक बिचार	१८	१२	२५०
बिनती	३४	१–८६	३४०–५०
सम्रथ मेरा सांइयां	पद	३१०–२४	४९४–६
बरिषहु रांम अंमृत धारा	,,	३३२–३४	५००–१
दया तुम्हारी दरसन पइये	,,	३३४	५००–१
चरण देपाड़ तो परमांण	,,	२६१–६४	४६९–७०
तौ निबहै जन तेरा	,,	२६६	४७१
राइ रे राइ	,,	२७२	४७४
तू साचा साहिब मेरा	पद	२७४–७६	४७५–७६
आदिं है आदि अनादि मेरा	,,	२८७	४७९—८०
मालिक मेहरवान करीम	,,	३३५–३६	५०१
तुम्ह बिचि अंतर जिनि परै	पद	३५५	५१०
मोहन दुष दीरघ तूं निवार	,,	३६७	५३२
सुरिजन मेरा वे	,,	४१७–२०	५३२–३३
ये प्रेम भगति बिन रह्यो न जाई	,,	४३५—३६	५४०—४१
तुम बिन दूजा को नहीं	,,	४२५–२८	५३९—७
बिपर्यय शब्द	पद	२१३	४४८
बिरह (मुमुक्षुता)—	३	१—१५९	४२–६२
बिरह अग्निं मैं जलि गये	३	१४१—४३	६०
बिरहनि कौं सिंगार न भावै	पद	४—१०	३५८–६०
बिरहणि बपु न संभारै	,,	३००	४८५—६
आवो रांम दया करि मेरे	,,	३१८	४९३–४

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
विवाह	२०	११	२६५
विषय स्वाद	१२	३१–४२	१६५—६६
मन मीन होइ ज्यूं स्वादि षाइ	पद	३६८	५१२–१३
रे मन साथी माहरा	पद	२५४	४६५
तैं यौंही जन्म गवायौ	,,	२५७	४६६-७
वारी वार कहूं रे गहिला	,,	२५९	४६७–८
बिस्वास	१९	१–५७	२५७–६४
बेली	३६	१–१७	३५३–५५
आनन्द प्रेम समाइ	पद	२०३	४४३
बैराग्य	पद	२७–३४	३६८–७०
ये षूहि पये सब भोग बिलासन	,,	४२१	५३४
आगैं चारा ज नाषी	,,	७३	३८६–८७
माया मोह न बंधिये	,,	१२६	४६८–९९
संसार से मोह निवृत्ति	१२	४२–१७३	१६६—८५
व्यौहार साधन	१७	२५	२४७
ब्रम्हविराट स्वरूप	४	२१०–२०	९३–४
	शब्द	५६	३७९–८०
भक्ति (देखो "बिरह" और "बिनती" भी)			
तूं है तैसी भगति दे	३	४४–५४	४७–८
जैसा रांम अपार है	४	२४४–४८	९७
तुम ठाकुर हम दासा	पद	४०८–१४	४२८–३१
भयभीत भयानक	पद	३७९–८३	५१७–८
डरिये रे डरिये	,,	४३२–३३	५३९–४०
भ्रम भुलावा	३१	१–१५	३२७–३४
भाग बड़े सोई फल षाइ	पद	३६५	५११
भेष	१४	१–४७	२१०–१६
भेष न रीझै निज भर्तार	शब्द	६१	३८२
आतम जोगी धीरज कंथा	पद	२३०–३१	४६४–५५

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
भेष--अंतरि पीव सौं परचा नांहीं	,,	२८३	४७८
मंगलाचरण	१	१--२	१
आतम मंगलचार चहूंदिस	पद	७४	३८७
गावहु मंगलचार	,,	१६५--६६	४२५--६
जै जै जै जगदीस तू	पद	१८२	४३४
नमो २ हरि नमो २	,,	२९७	४८४
धनि २ तूं धनि धणी	,,	३७८	५१६--७
मंत्र	१	१५५	२२--२३
मंदिर मसजिद	१६	५३--५४	२३९--४०
	४	२२८--३२	९५
मजहबौं में समता	१६	४४--७२	२३८--२४२
क्या हिंन्दू मुसलमान	२९	५.-७	३२३
हिंदू तुरक भेद कुछ नांहीं	पद	६५	३८३
द्वै पष रहित पंथ गहि पूरा	,,	६६	३८४
बाबा नांहीं दूजा कोई	पद	२३३	४५५
षंड षंड करि ब्रह्म कौं	१३	४८--५०	१९२
परस्पर भ्रम जनित बिरोध	,,	९३--१०५	१९८--११
सब मतों का निशाना एक	,,	११३--१६	२००--१
दून्यूं भरम हैं हिंदू तुरक गंवार	,,	१२३--३०	२०२--३
अलह कहो भावै रांम कहो	पद	३१५--१७	५२३--४
दोनौं भाई हिंदू मुसलमान	२१	२--७	३२२--२३
श्रीरंग सेती रंग लागा	पद	४३७	५४१
मध्य निर्पक्ष	१६	१--७३	२३३--४२
	पद	३१५--९७	५२३--४
मन—			
हिरदै जैसी होइगी	१७	१८	२४५

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
मन–आपै मारै आप कौं	२५	६१–६४	३०७
मन मैला मन हीं स्यूं धोइ	पद	३८८	५२०
	१०	१–१३६	१४२–५८
मनहीं सौं मूल ऊपजै	१०	१३२–३६	१५८
मन जहं नांहीं सो नहीं	१८	११	२५०
जहां सुरति तहं जीव है	१०	१०२–११७	१४४–४६
मन से लड़ाई	२४	२	२८७
मनरे देषत जनम गयौ	पद	३०३	४८७
बिष अमृत घट मैं बसै	२५	७२–८२	३०५–६
मन मैं हीं जीवै मरै	२५	६२–२४	३०७
मन निर्मल तन निर्मल भाई	पद	२८	३६८
छिन एकैं मनवौ मर्कट माहरौ	,,	३२५	४९६
मन चंचल मेरौ कह्यौ न मानैं	,,	३४०	५०३
ममता त्याग (देखौ "आपा")			
मरने से निर्भयता–	२४	४६–५२	२९३
मरणे थीं तूं मति डरै	२४	७७	२९६
सांई सनमुष जीवतां	८	७	१२८
रे मन मरणें कहा डराई	पद	२२७	४५३
मांस भक्षण निषेध	१३	२–२७	१८६–८१
मानापिमान (देखौ "निंदा" भी)			
मान बड़ाई त्याग	१०	१२२–२३	१५७
	२३	३५	२८३
गुंगा गहिला बावला	२३	४६–४८	२८५
माया	१२	१–१७३	१६१–८५
	पद	२२४	४५२
	,,	३४१	५०३–४
माला–मन माला तहं फेरिये	१	६६–७०	१०

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
मुक्ति (सजीवनि)	२६	१–५१	३०८–१३
संतौ रांम बाण मोहि लागे	पद	२०४	४४४
ऐसैं गृह में क्यूं न रहै	,,	२६८	४७२
सालोक्य, सायुजादि	८	८८–८९	१३८
मुख्य साधन	२४	२–८३	२८७–९७
ज्ञान ध्यान सब छाडि दे	३	७४	५२
हरि केवल एक आधारा	पद	२१६	४५०
मत सार	पद	५५	३७८–७९
मुसलमान के लक्षण	१३	२८–३१	१८९
	,,	४०–५०	१९१–९२
मूर्ति पूजन–			
कंकर पत्थर निषेध	१३	१३९–४२	२०३–४
	पद	१९९–९७	४४०–४१
जे पूजैं आकार कौं	१५	२	२१७
निर्गुण की अपेक्षा सगुण की हीनता	१२	१३८–५३	१८१–८३
गणपति पूजा विधि	पद	८१	३९३
देव दांचा नहिं गढ़िया	पद	३१०	४९०
मृगतृष्णा	५द	३९,३०५	३७२, ४८८
योग–सुमिरण	२	७२–११८	३३–३९
नव सिध सुमिरण	४	१६९–७८	८७–८८
अनभै थैं आनन्द भया	४	२०३–१	९२–९३
उर अंतरि करि सेव	४	२५४–६७	९८–९९
	पद	६१–७२	३८४–८९
सेवग बिसरै आप कौं	५	२७०–३४६	१००–११०
जोग समाधि	७	८–४४	१२२–१२६
नूर नैंन भरि देखण दीजै	पद	१०८–९	४०१

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
योग–मधि नैन निरखौं सदा	पद	२०५–१३	४४४–४८
जोगिया बैरागी बाबा	,,	२३०–३१	४५४—५५
हंस सरोवर तहां रमैं	,,	२४७–५०	४६१—६२
चल रे मन तहं जाईये	,,	२६१	४७२—३
कोली साल न छाड़ै रे	,,	२९९	४८५
मन पवन ले उनमन रहै	,,	४०५–७	५२६–८
झिलिमिलि २ नूर	,,	४२७–८	५४१–२
मनसा मन पांचौं थिर कीजै	,,	४३४	५४०
रंग (देखौ "हरिरंग")			
रज्जू सर्प	पद	३०५	४८८
रस ("देखौ रांमरसाइण")			
रांम अगाध	२	२०–२२	२६
	पद	२४४–४६	४५१–६०
देखौं राम सबनि के मांहीं	पद	४०२–३	५२५–६
रांमरसाइण	पद	५८–६०	३८१–८२
	,,	२३१	४५८
हरि रस माते मगन भये	,,	२७३	४७४
रास–गोपी कांन्ह	पद	४०७	५२७–८
धेन चरावन बेंन बजावन	,,	४२४	४३५–६
रैदास	२	११३	३९
	पद	२९६	४८३
लोक रांस (अभिद्रोह)—			
मीयां ना कर रांस	१३	२०–२५	१८८
अपने अमलौं लूटिये	,,	३१–३६	१८१–९०
तौ काहे लोक रिसाइ	,,	६२–६३	१९४
जब थैं हम निर्पष भये	१६	५९–६८	३४०–४१

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
अण देप्या अनरथ कहै	१२	६–१६	३३५–३६
वेद—			
वेद कुरान की गमि नहीं	१६	३२	२३७
वेद कुरानूं नां कह्या	१	८०	१२
अकह कहात	४	२०५	६२
बेद कतबां मित नहीं	५	१५	११६
बेदों दिया बहाइ	८	६७	१३५
तहं नांहीं पाठ पुरांनां	पद	२०६	४४६
सब हम देप्या सोधि करि	१३	९३–१०५	१६८–६६
वैराग्य–			
गरथ न बांधै गांठड़ी	१५	८७	२२८
सूषिम मांहिले त्याग	१८	१९	२५१
व्यौहार–परमार्थ	१७	२०–२५	२४६–४७
जुवा षेलै जाणराइ	३५	३१	३९५
शरीर त्याग–			
ज्यौं जागत सो जाइ	७	३६	१२५
मरणा तहां भला	२	५१	३१
सांई सन्मुष जीवतां	८	१७	१२८
मरणे थीं तूं गति डरै	२४	४६–५२	२६३
	,,	७७	२६६
बिरह अग्नि तन जालिये	३	७१–७२	५२
षट दर्शन संगि न जाइबा	१६	४४–४८	२३६
	पद	१६८	४४१
संसार—			
रज्जू सर्पवत	पद	३०५	४८८
बाजीगर नट षेला	,,	३०६	४८८

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
सज्जन	३३	२	३३६
	३३	२६	३४०
सजीवन (देखो 'जीवन मुक्ति")			
सतगुर–			
मांहैं सतगुर सेविये	४	२६५	६६
ब्रम्हगुरु	पद	२४३	४५९
मैंब मांहि गुरु देव मिल्या	१	३	१
अमी महारस माता	पद	१११–१२	४०२
मांहीं थैं मुझ कौं कहै	३५	३	३५०
अमर गुरू अविनासी जोगी	पद	२३०–३१	४५४–५५
मेरा गुर आप अकेला षेलै	,,	२४२–४३	४५८–६
समता–			
आतम सौं अन्तर नहिं कीजै	पद	२८४	४७८–६
एक ही एकैं भया आनंद	,,	२८६	४७९
पूरण ब्रम्ह देषै सबहिन मैं	,,	३५७	५०८
समर्थाई	२१	१–४४	२६९–७४
जीवत मारे मुये जिलाये	पद	२३४–३५	४५६–५७
ऐसौ अलष अनंत अपारा	,,	३७१–९२	५२१
सहज भाव	१६	२–४३	२३३–३८
देह रहै संसार मैं, जीव रांम के पास	१८	२७–३०	२५२–३
आपा मेटै हरि भजै	पद	५५	३७८–६
राग दोष रहित सुष दुष थैं	पद	२६८	४७२
बाबा को ऐसा जन जोगी	,,	२१०	४४६
नारी नेह न कीजिये	,,	३२९	४६८–६
प्राण प्यंड थैं रहै नियारा	,,	४००	५२५
सांई बिना संतोष न पावै	पद	२२२–२३	४५२
सांभर के हाकिम प्रति उपदेस	,,	२८१	४७७—८

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
साक्षी चेतन कूटस्थ	३५	१—२१	३५०–५२
साच निर्णय	पद	१६२	४३८
पूरण ब्रह्म	१३	४८—५४	१९२–९३
सुकृत मारग	,,	१४३–४४	२०४
सूधा मारग साच का	,,	१५१–६५	२०५–१०
साध महिमा	१५	१–१२६	२१७–३३
	पद	३४८	५१७
साध पूर्वले	२	११०–११६	३६
	१५	११६	२३१
	पद	५८	३८०–१
साध सतकार	१५	१२१	२३२
	पद	१९९–२००	४४१–४२
साध प्रति उपदेस	,,	२८२	४७८
साध सूरवीरता ("देखौ सूरातन")			
साधन मुख्य —			
ज्ञान बिचार	१८	३१–३७	२५३–४
मूल गहै–आतम चिंतन	८	६७–७७	१३५–३७
रांम विनां सब फीके	१४	२–३	२१०
साधन व्यर्थ–			
तीरथ ब्रत न बनषंडि बास	पद	२३०–३१	४५४–५५
कसि २ काया तप ब्रत करि २	पद	२५५	४६५
रांमजी नाउं विना दुष भारी	,,	३०८	४८९
साधौ हरि सौं हेत हमारा	,,	३०९	४८१–९०
रांमजी जिनि भरमावै हम कौं	,,	३१०	४९०
यूं तप करि २ देह जलावैं	,,	३४७	५०६–७
सारग्राही	१	१–२५	२४३–४७
सारमत	२९	२	३२२
	पद	५५	३७८–७९

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
सिद्धि चमत्कार (देखौ करामाति)			
सुष दुष संसा दूरि किया	पद	२४०	४५८
सुमिरण	२	१—१३२	२४—४१
जिहि मु आपा भल	१	१३७	२०
चित आवै सो लेय	२	२३—२४	२६
रांम नांम नहिं छांडौ भाई	पद	१—३	३५७-५८
रांम धन पांत न पूटै रे	,,	४१	३७६
नष सिष सुमिरण	४	१६०-७८	८७—८८
सो तत सहजैं सुषमण कहणां—	पद	२७०	४७३
तन ही रांम मन ही रांम	पद	३७५—७७	५१५—६
सूरातन	२४	१—८३	२८७—९७
हरि मारग मस्तक दीजिये	पद	१८६	४३७
क्यूं भाजै सेवग तेरा	,,	२५१—५२	४६३-४
रहु रे रहु मन मारौंगा	,,	३८१ ९०	५२०
सौंज	४	२६८	९९—१०५
सृष्टि —			
ईश्वर समर्थाई	२१	१—८	२६९—७०
	२१	३१-४४	२७३-७४
	पद	५३	३७८
ओंकार थैं ऊपजै	२९	६—१२	२७५—७६
काल करम जिव ऊपजे	४	५४—५५	७१
जा कारणि जगि सिरजिया	१०	३३—३४	१४५
बाजीगर नट षेला	पद	३९, १०६	३७२, ४८८
क्यौं कर यहु जग रच्यौ गुसांई	,,	२३५	४५६
तूं मोटो कर्तार	,,	४२९	५३८
स्वतंत्रता देखो "निर्भयता" भी—			

विषय	अंग वा पद	साखी वा शब्द का नम्बर	पृष्ठ
स्वतंत्रता—गिणत न रांणां राव	२४	७३–७६	२९६
सबै रिसाने लोक	१६	५१	२४०
हंस सरोवर तहां रमैं	पद	२४७	४६१
हठ योग ("सूरातन" भी देखौ)	२४	२–८३	१८७–९७
रहु रे रहु मन मारौंगा	पद	३८९	५२०
हरिरंग—			
जे जन हरि के रंगि रंगे	१५	४७–४९	२२२
हरि रंग कदे न ऊतरै	पद	४१५–१६	५३१–२
हिंदू तुरक (देखौ "मजहबों में समता")			
हिंसा की निंदा	१३	७–१९	१८६–८८
	२९	१–४२	३२२–२८
हैरांन	६	१–२७	११७ २०
	पद	२४४–४६	४५९–६०
होणां था सो है रह्या	१९	४३–४७	२६२
होली फाग बसंत	४	६–९	६४
	४	१०९–१०	७७
	४	१७३	८७
खेलैं फाग बसंता	पद	९७	३९७
फाग बसंत बारह मास	पद	४०६	५२७
क्षमा	५	३०–३१	११५–१६
ज्ञान बिना सब फीका	पद	३०७	४८८ ९
,, की जड़ अलिफ़	२	८९–९०	३६
,, आत्म मांहैं ऊपजै	१	२०–२१	३

कठिन शब्दों का कोष (भावार्थ)

फ़ारसी, फ़ा० ॥ सिंधी, सिं० ॥ गुजराती, गु० ॥ पंजाबी, पं० ॥ मराठी, म० ॥ जयपुरी, जै० ॥

जो अंक किसी २ शब्द के पीछे लगे हैं सो उस अंग और साषी का नम्बर अथवा पद का नम्बर बताते हैं, जिस में वह शब्द बाणी में मिलता है। प्रत्येक शब्द के पते आरंभ से नहीं रक्खे गये इस कारण से यह हवाले सर्वत्र नहीं लगे हैं।

अ

अेणे, गु० इस से।
अैन, फा० साक्षात्, केवल, ठीक वही
अंग, स्वरूप, प्राकार, विषय, विभाग।
अंगि न माइ, जै० अंग में न समाय, अति हर्षित होय।
अंचतां, जै० पीते ही।
अंचवै, जै० पीवै।
अंजन, माया। (शब्द १६१)
अंत, जै० अन्य, अंतरे पर, दूर।
अंतर, फर्क, भेद, अंदर, भीतर, अंतरा, फ़ासला।
अंतरबेद, देश विशेष, हृदय गुफा। (शब्द ४०७)
अंदोह, जै० सन्देह।
अंबर, आकाश।
अकल, अकाल, अमर, कला से रहित (शब्द ४३७)
अकह, जिसको कह न सकें।
अकारथ, व्यर्थ।
अगह, जो ग्रहण न हो सके।
अगाध, अपार, अनंत।
अगोंच, अगोचर, मन बाणी से रहित, अदृश्य, अलक्ष।
अछोप, अशौच। पद ३१२।
अजब, फा० अद्भुत।
अज्या, जै० बकरा।
अजर, जरा से रहित, अमीरस
अजरावर, अमर।
अजहूं, जै० अब भी
अज़ीज़, फा० प्यारा।
अठे, जै० आठौ, अष्ट।
अणकीया, जै० बिना किया।
अणबंछित, जै० बिन मांगा।
अतीत, जुदा, गुणों से परे, गुणातीत
अथग, अथाह।
अधर, निराधार, बिना सहारे।

अधौंदी, कच्चा चमड़ा।
अनत, जै० अन्यत्र, दूसरी जगह।
अनभई, विपरीति भाव (शब्द २१३)
अनभै, अनुभव, विवेक, प्रत्यक्ष ज्ञान, ब्रह्मज्ञान (४—२०५) (८—२०८)
अनल, पक्षी विशेष जिस में ७ हाथियों को उड़ा ले जाने की शक्ति मानते हैं। (१४—१८)
अनिनि, अनन्य, अद्वैत, एक।
अनुदिन, नित्यप्रति, प्रतिदिन, रोज़ २।
अनेरे, दूर।
अपरछन, छिपा।
अपरम्परा, अपरम्पार, वार पार रहित।
अपवाद, निंदा, बुराई, विद्यमान दोषों का कथन।
अपूठे, जै० पीछे।
अबदाल, फ़ा० एक प्रकार की सिद्धी, करामात, चमत्कार।
अबिर्था, व्यर्थ।
अबिहड़, जै० अभेद, जिससे अलग न हो, जो बिछुड़े नहीं।
अबुझ, जै० अज्ञानी, बे समझ।
अभेद, जिस का मर्म न मिलै, भेद रहित
अभेव, जिस का स्वभाव न जाना जाय।
अम्हचा, म० हमारा, अपना।
अमरकंद, मोक्ष।
अमरापुरी, देवलोक, स्वर्ग।
अमल, फ़ा० कर्म, जै० नशा, अफीम
अमली, नशेबाज़।
अमी, अमृत।
अया, जै० ऐसी। ११—२२।
अयान, जै० अजान, अज्ञानी।
अरचा, पूजा, सेवा, आराधना।
अरदास, जै० बिनती, प्रार्थना।
अरवाह, फ़ा० जीवात्मा, रूहैं।
अर्श, फ़ा० आसमान से ऊपर सब से उत्तम स्थान।
अरसपरस, परस्पर, आपस में, आमने सामने।
अरूझना, जै० उलझना।
अलष, अलक्ष, जो किसी का विषय न हो जो लखा न जाय।
अलह, परमात्मा जो लखा न जाय,
अलेष, जो किसी का विषय न हो।
अवतार, गु० जन्म, यह देह।
अवधूत, निर्लेप, मन वासना त्यागी।
अवलम्बन, आसरा, आश्रय, आस।
अवाज, फ़ा० शब्द
अवाह, कुम्हार का आवा।
अविगत, अपार, अगोचर, अलह, अगम अप्राप्य।
अषई, जै० आषा, सर्बस्व, सम्पूर्ण, (शब्द १०)।
अषय, अक्षय, अविनाशी।
अष्यर, अषिर, जै० अक्षर, हर्फ़।
अषिल, समस्त, सारा, सब

आखिल, एकमय, अभिन्न, सम्पूर्ण, अमर।
अघट, जै० अनंत, अटूट।
अस्त, जै० अस्थि हड्डी।
असनाव, फ़ा० आशनां, प्यारी।
अहि, दिन, अहिनिशि।
अहेड़ी, जै० व्याध, शिकारी।

आ।

आंगण, जै० सहन, मैदान।
आंधी, जै० अंधी, नेत्रहीन, ग्राम विशेष।
आंसूड़े, गु० आंसू।
आगम, वेद, रामनाम, ब्रम्ह(शब्द३५६)
आचारी, आचारवान।
आड़ा, जै० आड़ में, बीच में, परदेकी तरह।
आतुर, अधीर, जल्दबाज़, दुखी।
आथि, जै० थैली, अर्थ।
आदिअनादि, उत्पत्ति रहित।
आन, आज्ञा, अन्य, दूसरा।
आपे, गु० दे, देवे।
आयुध, आवध, शस्त्र, हथियार।
आरंभ, नया काम, शुरू, लग्गा।
आरणि, रणभूमि।
आरति, दीप दर्शावन, पूजा, चाह।
आवटकूटा, जन्म मरणादि १३ ३८, १३–१४५।
आषणहार, पं० कहने वाला।
आसंघ, जै०, हिम्मत, आह १६–१७

इ।

इक, जै० एक।
इकलस, जै० लगातार, एकरस।
इत्थां, पं० यहां, (शब्द १०१)
इथां, सिं० इस जगह, यहां।
इबादत, फा० पूजा।
इमान, फा० धर्म, विश्वास, निश्चय।
इमाम, फा० नमाज़ियों में मुखिया।
इलाही, फ़ा० ईश्वर।
इश्क, फ़ा० प्रेम, भक्ति।
इषलास, फ़ा० मित्रता, दोस्ती।
इह, जै० यह।

ई।

ईयें, जै० ऐसे (१८–५)

उ।

उजल, जै० स्वच्छ, उज्वल।
उजाल, उजेला, प्रकाश।
उजास, जै० उजियाला, प्रकाश, ज्ञान।
उणहार, आकार, सदृश, डौल, रूप, गुण।
उत्तौं, पं० ऊपर से।
उत्थां, पं० वहां (शब्द १०१)।
उतावला, जै० जल्दी।
उदक, जल।
उदमद, उन्मत्त, मस्त।
उदिम, जै० उद्यम, रोज़गार।
उदीत, प्रकाश।
उधरनहार, बचाने वाला।

उधारि, गु० छुड़ाय, बचाय।
उधारी, उद्धार कर।
उनमन, उनमुन, लयलीन, शांत, विषय विरक्तता, चुपचाप।
उनहार, जै० डौल, रूप, गुण, आकार, सदृश।
उपगार, उपकार, भलाई।
उपज, जै० उत्पत्ति।
उपजणि, जै० उत्पन्न होना, उपजना
उपनै, जै० उपजै।
उपांणीं जै० सृष्टि, उत्पत्ति।
उपाय, जै० उत्पन्न करके।
उबारना, उद्धार करना।
उमंग, उत्साह, लहर, तरंग।
उर, हृदय।
उरझाय, उलझाय, फंसकर।
उरवार, उरला, समीप का किनारा।
उरिण, कर्ज से रहित।
उरे, पं० इस ओर, नज़दीक।
उरै, जै० समीप।
उलथौं, उलटिकर।

ऊ।

ऊंधे, जै० उलटे, नीचे मुख।
ऊणां, जै० किंचित्, खाली।
ऊधरना, मुक्तहोना, उद्धरना।
ऊनवै, गु० गर्मी से उमसै (२२–१६)
ऊपली, जै० ऊपरली, ऊपर की, दिखावटी।
ऊबरना, उबरना, बचना, छूटना, जीते रहना, उद्धरना।
ऊभा, जै० खड़ा।
ऊरा, कम, ऊरापूरा।

ए

एकंकार, एकरूप।
एकजबार, जै० एकबार।
एकमेक, एकरस।
एणां, गु० इस से।
एता, जै० इतना।
एह्, गु० इस प्रकार।
एहां, गु० इन को

ऐ।

ऐंन, प्रत्यक्ष, तद्रूप।

ओ

ओट, आसरा, छाया।
ओडो, सिं० तहां।
ओर, किनारा, ओर छोर।

औ

औघट, कठिन।
औजूद, फा० शरीर, वजूद।
औधूत, निर्लेप, मन वासनात्यागी।
औलिया, फा० सिद्ध, पंहुचे महात्मा।
औसांण, अवसर।

क

कंगुरेला, कंगूरे दार।
कंगूरा, बुर्ज की चोटी।
कंथा, गुदड़ी, फकीरी कपड़ा।
कंदलि, गुफा में।

कंध, जै० कंधा, दीवार।
कंप, सोने का मैल।
कछव, जै० कछुआ, कच्छप।
क़जा, फ़ा० मौत।
कड़बा, जै० खड़बा, चलने की तैयारी।
कण, जै० दाना, बीज।
कणूका, जै० कणां, छोटा टुकड़ा, दाना।
कत, जै० कहां।
कतरंजन, कुत्सितरंजन, झूठा सुख देने वाला। १२-४६।
कतेब, जै० किताब, पुस्तक।
कथणीं, जै० बात चीत।
कद, जै० कब।
कदे, जै० कभी।
कनक, सोना।
कने, जै० समीप, पास।
कपाट किवाड़।
कपोल, गाल।
कमड़े कापड़ी, कमरी आदि कपड़ों के भेख धारी। पद १६८
कम्म, पं० सिं० काम, कार्य,।
करंक, सूखी खाल, चमड़ी। ३-१६६
करक, साल, पीड़ा।
करणीं, जै० कर्म, कर्तूत।
करणीगर, जै० सिरजनहार, ईश्वर।
कर्तूम, बनाहुआ, जीव।
करद, पं० जै० छुरी।
करवत, आरा।
करह, जै० ऊंट।
करामात, चमत्कार, सिद्ध।
करीम, फ़ा० दयालु, ईश्वर।
कलमा, फ़ा० मुसलमानों का महावाक्य।
कलश, घड़ा।
कला, माया।
कलाप, दुःख।
कलाल, मुरा बेचनेवाला।
कलाली जै० दारू, शराब, आशव।
कलूब, सिं० हृदय, (शब्द ६०)।
कविलास, जै० कैलाश।
कस, जै० किसको।
कसणीं जै० कसौटी परीक्षा।
कसमल, पाप।
कसीस, जै० ज़ोर से।
कसुंभ, जै० कुसुम।
कसौटी, परीक्षा, दुःख, आज़माइश।
कांइ, जै० क्या।
कांजी, जै० सुक्त, राइ मट्ठा आदि मिला कर बसाई हुई खटाई, रायता। (१५ ६७)
काछचा, जै० कमर कसी, बनाया।
काछि, जै० कमर बांध के।
क़ाज़ी, फ़ा० न्यायाधीश।
काट, जै० लोहे का मैल, काई।
काठ, लकड़ी।
कांणि, जै० खोट, कसर १५-१०२।
कांणीं, जै० एक आंख रहित, छिद्र वाली बस्तु।

कादिरकार फ़ा० परमेश्वर (शब्द ९२)
कापे गु० काटे ।
काफ, झूठ ।
कामणिगारी, गु० यंत्र मंत्र करने वाली, मोहने वाली स्त्री ।
कार, जै० काम, कार्य, लीक, मर्यादा ।
कारवीं, मुसाफ़िर, पथिक, यात्री ।
कारिज, जै० कार्य, काम ।
कारी, रक्षा ।
कालर, जै० ऊसर, बंजर, खार भूमि ।
कालीधार बूड़ै, जै० सर्व प्रकार से नाश हो जावे ।
कासन, जै० किससे, किसको ।
कित्थां, पं० कहां ।
किरका, जै० लेश, किंचित ।
कीट, लकड़ी का कीड़ा ।
कीडी, पं० जै० चींटी ।
कीला, कीड़ा, खेल ।
कुंज, पक्षी विशेष—कहते हैं कि यह हिमालय पर अंडे देकर दक्षिण देश में जा रहती है, सुरति से अपने बच्चों को पालती है । यदि वह आप मर जाय, तो बच्चे पलैं नहीं, यदि बच्चे मरजांय तो वह पक्षी भी मृत्यु को प्राप्त होता है (शब्द ३७६) ॥
कुंज, फा० कोना (शब्द ९१) ।
कुंजर, हाथी ।
कुनंद, फा० वे करते हैं ।
कुफ़र, फा० झूठ ।
कुरंग, हिरन ।
कुरबांन, देव के आगे चढ़ावा ।
कुरलना, रोना ।
कुल, जाति ।
कुली, कुलीन जातिवाले (शब्द ९२) ।
कूं, जै० को ।
कूकर, कुत्ता, स्वान ।
कूड, पं०, झूठ ।
कूड़ा, पं०, झूठा ।
कूल, किनारा, तट, तीर ।
कूडौ, गु० झूठ ।
कृतम, कर्म, बनाया हुआ, कपटी, किया हुआ ।
कृतम कर्त्ता, जै० मूर्त्ति अथवा अन्य बनाई वस्तु में कर्त्ता पने (ईश्वरत्व) का अध्यास ।
कृत्यम, कर्म, कर्तृत ।
केई, जै० बहुत से, कई ।
केतक, जै० कितने, कोई ।
केते, जै० कितने ।
केने, गु० किसको ।
केम, गु० किस तरह ।
केवी गु० किस तरह ।
केसरी, जै० सिंह ।
के, जै० वा, या, कि, अथवा ।
को, जै० का, कोई ।

कोतिल, जै० घोड़े के सवार के साथ दूसरा ख़ाली घोड़ा। १७--२५

कोरा, नवा, टटका।

कोली, कोरी, कपड़ा बुननेवाला। पद २६६

कौं, जै० को।

कौड़ा, पं० कड़वा।

कौतिग, जै० कौतुक, तमाशा, परिहास

कौतिगहार, कौतुकहारा, तमाश बीन

क्यारे, गु० कब।

क्यूंहीं, जै० किस विधि।

ग

गइला, गु० गया।

गंगा, दहनी नाड़ी, पिंगला स्वर, देखौ पृष्ठ ५५६।

गंध, बास, बू।

गगन, आकाश।

गजीना, गजी, कपड़ा।

गढ़, गु० गाढ़ा, कठिन।

गमि, पहुंच, प्रवेश, प्राप्ति।

ग़रक, फ़ा० डूबना।

गरथ, गु० अर्थ, धन, रोकड़।

गरवा, जै० महान, भारी, श्रेष्ठ।

गरास, जै० ग्रास, निवाला।

गर्व्यो, जै० गर्व किया।

गल, जै० गला, गर्दन।

गल, पं० बात।

गलित, जै० रत, लयलीन।

गली, रास्ता।

गलियार, गरियार, मक्कार, ढीला, सुस्त।

गलै विलै, जै० गलकर एक होजाना, मिलना, भेटना, ४—३६।

गवन, गमन, आना जाना।

गहगही, जै० ग्रहण, पकड़।

गहण, ग्रहण, १२-५६।

गहन, गूढ़।

गहना, ग्रहण करना।

गहर, गाढ़ी।

गहिला, जै० पागल, भोला, मूर्ख। २३-४७

गांजी, जै० घी, घृत (४—३५१)

ग़ाफ़िल, फ़ा० अचेत, बेहोश।

गार, जै० मिट्टी।

गारड़ी, जै० विष उतारने वाला, गारूडी।

गारबा, जै० गर्ब करना।

गालौं, जै० गलाऊं।

गाहन, मथन, शोधन, गोता लगाना।

गियांनीं, ज्ञानी।

गिरास, ग्रास, मुख का कौर। २४—५

गिरासना, खाना।

गिलना, ग्रास करना, निगलना। १२-५६

गुज़ारना, फ़ा० अर्ज़ करना।

गुझ, जै० गुह्य, गूढ़, गुप्त।
गुडी, गुड्डी, पतंग।
गुदर, गुज़र, प्रवेश (शब्द ६४)
गुनही, जै० गुनहगार, अपराधी।
गुमराह, फ़ा० रास्ता भूला हुआ, बेदीन।
गुरमुषी, जै० बड़ाई, बड़प्पन।
गुरबाइक, जै० गुरू वाक्य।
ग़ुसल, फ़ा० स्नान।
ग़ैब, फ़ा० अचानक, अनजान, गुप्त। १–३
गैला, जै० पागल, मूर्ख, भोला।
गो, फ़ा० गेंद।
गोता, फ़ा० डुबकी।
गोप, छिपा कर।
गोर, फ़ा० क़बर। २३–५५
गोहन, नज़दीकी, सम्बन्धी।
गोशमाल, फ़ा० कान कसौटी, निरोध।
गोश्त ख़ुरदन, फ़ा० मांसाहार।

घ

घट, शरीर, घड़ा, जीव।
घण, जै० हथौड़ा।
घणेरी, जै० बहुत, अधिक।
घणूं, जै० बहुत।
घरि, घड़ी, समय, घर में।
घाट, किनारा, सांचा, डौल।
घाय, जै० चोट।
घावां, जै० हथौड़े की चोट से।
घावर, (शब्द २९१)

च

चंच, जै० चोंच।
चकचाल, जै० भ्रमावा, घुमाना।
चरचना, चंदन लगाना।
चरण, गु० दीर्घकाल (जैसे चिरंजीव)
चरणसमा = दीर्घकाल (पद २०)
चरण विलंब (पद १२८)
चरण समान (पद ४०६)
चल्या, जै० चला।
चवे, जै० चुवे, झरै।
चहूंटै, जै० चिपकै, लगै।
चा, म० का।
चालना, जै० चलना।
चाव, जै० इच्छा, चाह।
चावनी, गु० इच्छावान।
चिंतामणी, एक मणि जो मन मांगा पदार्थ देती है, ब्रह्म।
चितावणी, जै० चेताने वाली, सावधान करने वाली।
चिराकी, चांदनी, जोति।
चिलका, जै० चमकारा।
चिहन, जै० दिखावा, चिन १२–७४।
चिहर, जै० अद्भुत, चमकीली। १२–८२
चुगना, जै० चुनना जैसे चोंच से।
चे, फ़ा० क्या।

चेतना, स्मृति, ध्यान, स्फुरना।
चौड़े, जै० खुले, मैदान में।

छ

छांटा, जै० बूंद, छींटा, छिट्टी।
छांवरि, जै० निछावर, कुरबान।
छाके, जै० छके, अघाये, त्रप्त।
छाजन, वस्त्र, कपड़े।
छाजना, शोभना।
छाना, जै० छिपा, दबा, ढका।
छाने, जै० छिपकर।
छिटकना, जै० छूटना, बिखरना।
छिटकाना, जै० फेंकना, छिड़कना, डालना, त्यागना।
छिनाछिन, छिन्न भिन्न, टुकड़े टुकड़े, (३-४०)।
छीजना, जै० क्षय होना, घटना।
छीलर, जै० तलैया, पोखर, उथली झील।
छूटणा, जै० छोड़ना।
छूटि, जै० सिवाय।
छूटिक, गु० छुटकारा, बचाव।
छेली, जै० बकरी। ४-३४७।
छेलो, गु० आखिरी, अंतिम।
छेव, जै० अंत।
छो, सिं० क्या, (४-२२)।
छोटको, गु० छुटकारा, मुक्ति।
छोति, जै० छूति, अपवित्रता।

ज

जंगम, भेषधारी साधू, चलनहार सृष्टि।
जक, जै० चैन, आराम, शांति। ३-४७
जगाना, बोध करना, ज्ञान देना।
जगिरहे, जै० उगिरहे, जग में रहे।
जठर, पेट, उदर।
जबराईल, फा० फ़रिश्ता, गण।
जमजौरा, काल का रस्सा (२६-१२)
जमना, बांया स्वास, ईड़ा नाड़ी, देखौ पृष्ठ ५५६।
जमात, फा० मंडली, सभा, गिरोह। ४-२२६।
जरणां, गुप्त रखना, मन में धारण करना, पचाना, शांति, क्षमा, सहन करना। ५-३३
जरवूं, मु० पचना, हज़म होना मिलजाना।
जरै, धारण करै, गुप्त रक्खै, पचाले, सहारै। ५-२१।
जलदल, जै० ठाकुरजी का चरणामृत। १९-२९
जलहर, जै० जलमयी, तरावट (पद ३१३)।
जलहरि, मछली, मीन।
जलाब्यंब, जलाकाश। ४-८३।
जलका रुप जो पानी के भीतर नेत्र खोलने से दीखता है।
जवासा, घास विशेष।
जांनां, फ़ा० प्यारी।
जाचंद, जै० जन्म अंध। १२-४३
जाचना, जै० याचना, मांगना।

जाजरा, जै० कमज़ोर, फटा, तड़का।
जाणराइ, जै० जानने वाला, जनैया।
जाता, सिं०ज्ञात, जाना हुआ ३१—७
जाती, फा० जो अपने आप हो, कुदरती।
जान, जै० जवान, बलवान।
जाम, गु० पहर।
जामण, जै० जन्मना।
जामै, जै० जन्मै, उगै।
जारै, पचावै, धारण करै, गुप्त रक्खै, पचाले, सहारै। ५—१४
जाशे, गु० जायगा।
जिंद, पं० जान, (पद १०१)
जिंयें, जै० जिस तरह, जैसे।
जित्थां, पं० जहां। पद १०१।
जिनि, नहीं, न, मत।
जियरे, जै० मनमें, चित्त में। ३—४७
जीवन मूरी, सजीवन जड़ी, राम नाम,
जीव्यांनो, गु० जीने का।
जीवाड़े, गु० जिवाये।
जुगत, जै० चतुराई, युक्ति।
जे, जै० जो, यदि. अगर।
जेटला, गु० जितना।
जेणें, जै० जिस से, जिस तरफ़।
जेरौ, सिं० उजियारा, प्रकाश।
जोइ, गु० देख।
जोई, गु० देखकर
जोगना, जोड़ना, मिलना, लगाना।
जोतिग, जै० ज्योतिश।
जोववुं, गु० देखना।
जौरा, रस्सा। २६—१२।
ज्यां, गु० जहां।

झ

झंपना, जै० झांकना। २५—७०
झंग, सिं० झगड़ा।
झंपना, सिं० झपटना।
झंपै, सिं० झांकै, देखै।
झरणां, जै० निकाल देने वाला, बहा-देने वाला। ५—१७
झांई, जै० छांही।
झाल, जै० अग्नि की ज्वाला, लपट।
झिलिमिलि, चमक।
झुकेड़े, जै० झोटे, झूलने।
झुरना, नीचे सरकना, सूखना।
झूझना, जूझना, घायल होना, समर में मरना। २४—५३, ६४।

ट

टग, टगाटगी, एकतार, एकरूप, एक तुक, टिक टिकी। लयलीन। ४—२३१।
टाला, बहाना।
टीका, तिलक।
टुक, थोड़ा।

टूका, जै० टुकड़ा रोटी का। १९–२७
टेव, आदत, बान।
टोटा, घाटा।

ठ

ठरूं, गु० शांति पाऊं, ठहरूं।
ठांवड़ा, जै० बर्तन, शरीर।
ठाम, जै० ठांव, ठिकाना।
ठाली, जै० खाली।
ठाहर, जै० ठिकाना, जगह, बदला स्थान।
ठूंगना, जै० निगलना, खाना।
ठेलना, जै० ठोकर मारना।

ड

डग, फलांग।
डगरा, रास्ता, चलन।
डफाण, जै० दंभ, तूफान। २५–७१
डहकावै, जै० बिगाड़ै, बहकावै।
डांव, जै० दांव, मौका।
डांवाडोल, ठिकाने नहीं, चलता फिरता
डाकना, जै० कूदना।
डुषैंडे, सि० दुःख।
डूंडा, जै० डूंगा, छोटी नौका।
डेना, सिं० देना।
डोरी, रस्सी।

ढ

ढाली, जै० डाली।
ढिग, जै० पास, समीप। १२–८३,
ढीट, कठोर, निर्लज्ज।
ढौरी, चोप चाह, (१२–८३, शब्द ७६)

त

तप्त रबाणी, सिं० परमेश्वर का सिंहासन।
तणों, गु० का (शब्द १७८)।
तत, तत्व, सार।
तनहा, फा० अकेला।
तप्ति, गर्मी।
तरवर, वृक्ष, पेड़, पौदा।
तसबी, फा० माला। ४–२३०।
ताज, फा० सिरका भूषण, मुकुट।
ताजणां, जै० चाबुक। १–१३६।
ताजी, जै० घोडा।
ताज़ीर, फा० सज़ा, दंड, ताड़ना।
ताता, जै० गरम, तप्त।
ताड़ीजै, गु० धमकाइये।
ताणी, गु० ताणवुं, खींचना।
तार, गु० उतार।
तारा, गु० तेरा।
तारिक, तरक करने वाला, छोड़ाने-वाला, तारने वाला। ३–६५।
तारो, गु० तेरा।
तालाबेली, गु० तड़फड़ाना, तलफ बिलाप, (३–४८–५१)।
तालिब, फा० मुमुक्षु, इच्छावान।
ताहरा, गु० तेरा।
ताहरो, गु० तेरा।

तिण, जै० त्रिण, घास, फूस, तुच्छ पदार्थ।
तिमिर, अंधेरा, अज्ञान।
तिरना, जै० तैरना।
तिल, क्षण, (शब्द १८७)।
तिसज, गु० प्यास।
तीर, किनारा, समीप।
तुमी, म० तुम्हीं, तुम।
तूर, तुरही।
ते, सो।
तेग, फा० तलवार।
तेजपुंज, तेजसमूह।
तेम, गु० तिसतरह
तोर, तेरा।
त्यां, गु० तहां।

थ

थइने, गु० होकर।
थल, स्थल, भूमि।
थाकना, जै० थकजाना, हारजाना।
थाती जै० स्थाती, स्थिती, रहन।
थान, स्थान।
थाये, गु० होता है।
थावर, स्थावर, अचल, शनिवास।
थाशे, गु० होगा।
थिर, स्थिर।
थीं, जै० से।
थैं, जै० से।

द

दई, देव, ईश्वर।
दंद, जै० दंद फंद, झगड़े, द्वंद्व, सुख दुःख आदि।
दड़ीदोट, जै० गेंद फेंकना। १२--९२
दत्त, दान, दियागया।
दमामा, जै० नगारा।
दरवै, द्रवै, प्रसन्न हो।
दरहाल, फा० इस समय।
दरीबा, स्थान, दरबा कबूतरों का।
दरूने, अंदर, भीतर।
दरोग, फा० झूठ।
दल, पत्ता, फूल की पंखड़ी।
दष्या, जै० दीक्षा, गुरु का उपदेश। गुरमंत्र। १—३।
दहण, जै० जलन, दाह।
दा, पं० का।
दाग, शरीर को जलाना, अंतेष्टि क्रिया।
दाझे, जै० जलावे, दग्ध करे।
दादनी, फा० बख़शिश, इनाम।
दाधी, गु० जलती, तप्त।
दायम, फा० हमेशा, सदा।
दारू, जै० औषध।
दालिदी, दालिद्री, कंगाल।
दाषे, गु० दिषाये (१२—९२)।
दासातन, जै० दासत्व, दासभाव।
दिट्ठा, पं० देखा। ६—२१।
दिढ, दृढ़, मजबूत, पक्का।

दिनकर, सूर्य।
दिया दीपक, ज्ञान, दान। १–३७।
दिल, फ़ा० मन, हृदय।
दिलदार, फ़ा० यार, इष्ट, मित्र।
दिवस, दिन, २–१३६,
दिसंतर, जै० दूरदेश, परदेश।
दिहाड़ियां, पं० दिन।
दिहाड़े, पं० दिन।
दीठां, गु० देखकर।
दीदार, फा० दर्शन।
दीन, फ़ा० मत, धर्म।
दीया, दीपक, ज्ञान, दान। १–३८।
दीवा, दीपक, ज्ञान। १–३५।
दीवान, फ़ा०, परमात्मा।
दुई, फ़ा०, द्वैत।
दुंदर, द्वंद्व, द्वैतभाव, मेरा तेरा।
दुंह, जै० अग्नि, जंगल की आगि, १३–५१।
दुनिया, फ़ा०, लोक, संसार।
दुनी, फ़ा० दुनियां, संसार।
दुराऊं, छिपाऊं।
दुविध्या, जै० दुःख, संदेह।
दुहागी, जै० दुहागणी, जिसको ख़सम अपने जीते जी त्याग दे, सुहाग रहित, दृष्टांत- जगत दुहागी राम बिन (१४–७१)।
दुहुंवां, जै० दोनों।
दुहेला, जै०, कठिन, भारी, बोझेला।
दूंदर, जै० अंधेरा, धुंध, अज्ञान। १७–२०
दूझना, जै० दूधदेना। ४–१२१।
दूभर, जै० कठिन।
देवरा, जै० मंदिर।
देवल, गु० देवालय, मंदिर।
देषाड़, गु० दिखाव।
देह, फ़ा० गांव, देहात।
देहड़ी, गु० देह।
देहुरा, मंदिर। १६–५३।
दोजग, फ़ा० दोज़ख़, नर्क।
दोष, द्वेष, वैरभाव।
दौं, जै० अग्नि की गर्मी, भभक।

ध

धंध, धंधा, व्योहार।
धणी, जै० धनी, मालिक, परमात्मा।
धर, धरती। आधार अपेक्षित अनात्म पदार्थ। पृष्ठ ५६६।
धरणि, धरती।
धरणीधर, ईश्वर, विष्णु, शेष।
धाय, दौड़कर।
धाह, जै० विलाप, चिल्लाहट।
धिजाना, जै० चुप करना।
धीजना, विश्वास करना।
धीदाता, बुद्धि का देने वाला।
धुर, ठिकाना, अंत।
धू, धू, तारा विशेष।
धूतो, गु० ठगा।

धोरी, जै० धारण करने वाला, निबाहने वाला, बैल जो गाड़ी का जुआ धारण करता है, मालिक, ३४–४८।
धोवती, जै० धोती।
धौं, वा, अथवा।
ध्रू, तारा विशेष।

न

नफ्स, फा० पेट, मनोराज्य।
नबेरना, जै० निबेड़ना, सुलझाना।
नमाइ, जै० न अमाय, न समाय।
नर्क, मैला, सड़ा गोबरादि।
नरालै, काटै, तोड़ै।
नव, गु० नहीं।
नवधा, भक्ति।
नवाये, गु० उत्तम। २७–२३
नवेला, नवीन, नवा, (शब्द १२२)।
नषसिष, पैरों के नाखूनों से लेकर सिर की चोटी तक। ४–१७८
नसाय, बिगड़ जाय, नाश हो।
नांइ, नाँव, नांम।
नांउं, नाम।
नांव, नाम।
नांवै, जै० नमावै, नवांवै, झुकै।
नागर बेल, पान, तांबूल।
नाठना, जै० भागना, छोड़ देना।
नाठी, जै० नष्ट हुई, नाश हुई।
नाद, शब्द, आवाज़।
नादबिंद, अमीरस जो अनाहद शब्द से झरता है।
नाल, पं० साथ।
नाल कवल, कुमोदनी, नार, नीलोफ़र।
नाषना, जै० डालना, फेंकना।
नाह, गु० पति, कंथ।
नाहर, एक जात का सिंह, शेर।
निंद्या, जै० निंदा, अविद्यमान दोषों का कथन।
निगमागम, वेद शास्त्र।
निगुणां, जै० अन अधिकारी, कृतघ्नि, निमक हराम, गुण न मानने-वाला, निगुरा।
निघट, खाली, चुक जाना।
निधणी, जै० ला वारिस, (३५-४७)
निधि, खज़ाना, दौलत।
निपजना, जै० उपजना।
निपना, जै० सुलझा, शुद्ध हुआ।
निबेरा, जै० सफ़ाई।
निमति, जै० निमित्त, लिये।
निमष, निमेष, क्षण मात्र।
नियरे, नेरे, नजीक, समीप।
निर्बंध, बंध रहित, स्वतंत्र।
निरंतर, हमेशा, सदा, अंतर रहित।
निर्वेद, पछिताव, अपने किये पर निराश, दुःखी, वा शर्मिंदा होना।

निरसंध, जोड़ बिना, संधि रहित। ४-१०५
निरामय, निरोगी।
निवरा, जै० निकम्मा, खाली।
निवाजै, पालै, नवाज़िश करै।
निवान, तला, नीचा भाग।
निवारा, नियारा, न्यारा, अलग।
निषर, खरा, सच्चा, पक्का। ४-३१३
निस, रात्रि। ४-७
निहचल, शांत, अचल।
निहारी, देखना।
निहोरा, खुशामद, याचना।
नीका, उत्तम।
नीझर, झरना, सोता।
नीधना, जै० निर्धन।
नीर, जल, पानी।
नीला, जै० हरा रंग।
ने, गु० को।
नेटि, गु० अवश्य, निश्चय करके, नेति।
नेण, गु० नैन, नेत्र।
नेरा, समीप।
नौतम, नवीन।
न्याव, न्याय, इन्साफ़।

प

पंक, कीचड़।
पंगुल, पगहीन, लंगड़ा।
पंगुल ज्ञान, पांच इंद्रियों के विषयों से निर्मल एकाग्र ज्ञान, (२८-७)।
पंच, पंच इंद्रियां। १-१४९।
पंथीड़ा, बटाऊ, (पद १४९-५०)।
पंद, फ़ा० शिक्षा, नसीहत।
पंध, सिं० फ़ासला, दूराई (३१-७)।
पगार, चमकारा, (५-२९, १२-११४)
पचना, जै० थकना, मेहनत करना।
पछि, जै० पथ्य, खाने में परहेज़।
पटंतर, तुल्य, सदृश, बदले, उपमा।
पटंबर, रेशमी वस्त्र।
पटम, पाखंड, दिखावा ढोंग।
पटल, पड़दे।
पतंग, सलभा, कीड़ा।
पति, मान, इज़्ज़त, बड़ाई, भर्ता।
पतीजना, विश्वास करना।
पतेर, जै० बहन।
पधरा, मददगार, सहायक, गु० पदर से बना, (२४-७८)।
पयाल, पाताल। २-११६।
पर, दूसरे का, बेगाना, पराया।
परआतम, परमात्मा। ४-७२।
पर्चा, फ़ा० कागज़, लेख।
परचा, जै० परिचय, पहिचान, भेट, मिलाप।
परजले, प्रज्वलै, जलै, बलै।

परणै, जै० बिवाह करै ।
परतष, प्रत्यक्ष, साक्षात्, सामने ।
परमांन, प्रमाणित, मुख्य ।
परमोध, गु० परमोदवुं = मनाना, प्रबोध करना । १–१४९
परष, परिष, परीक्षा । १४–३८ ।
परस, स्पर्श, मिलाप, छूना ।
परसंग, प्रसंग, विषय ।
परसन, स्पर्श, भेट मिलाप ।
परसेद, पसीना, (पद ४०७) ।
परापरं, परात्परम्, परमेश्वर । १–२ ।
परापरी, परमात्मा, परात्पर । १–४१ ।
परिमल, सुगंध, आनंद, सुवास ।
परिमित, प्रमाण, हद्द ।
परिवांन, परमांन, प्रवीन ।
परिहर, त्याग, छोड़ ।
परै, गु० पार ।
परोहण, नौका, वाहन ।
पलाण जै० ऊंट की काठी । २५–२९
पष, पक्ष, संप्रदाय, जमात, साथ, तरफ़ १६—५८ ।
पषालना, धोना, प्रक्षालना ।
पस, सिं० देख ।
पसरना, फैलना ।
पसाव, बख़शीश, दान ।
पहरा, रखवाली ।
पहली, पहले, पूर्व ।
पहुंता, पहुंचा ।
पाइया, पं० पाया, प्राप्त हुआ ।
पांडे, पंडित ।
पांणीं, जल, पानी ।
पांति, पंक्ति, मंडली, जमात, ज़ात। १३–१२३
पाक, फ़ा० पवित्र ।
पाट, पाटा, तख़्ता, दरवाजा ।
पाड़, गु० पहाड़, शिला (१३–५१) ।
पाण, सिं० आप ।
पाने, जै० पाले, हिस्से, ज़िम्मे, माथे ।
पापनिछेदन, पापों का हरनेवाला ।
पाम, गु० पावै, मिलै ।
पामाल, फ़ा० पैरों के नीचे मसलना ।
पाम्यौ, गु० पाया ।
पामूं, गु० पाऊं ।
पारधी, शिकारी ।
पारस, पत्थर जिस के स्पर्श से लोहा सोना होता है ।
पारिष, परखनेवाला, परीक्षक ।
पाल, जै० तालाब के किनारे का बांध ४—७ ।
पालव, पलई, डाल, शाखा ।
पालवे, गु० पल्ला, वस्त्र का खूंट ।
पाषर, लड़ायी के बख़्तर ।
पाषैं, गु० बिना ।
पास, फांसी, बंधन, फंदा ।
पासबान, फ़ा० रक्षक ।
पासी, फ़ांसी, फंदा ।
पाहण, पत्थर, पाषाण ।

पाहुणां, जै० महमांन, जवाई, दामाद, २५-३२।
पिंजर, पिंजरा, शरीर।
पिंड, स्थूल शरीर।
पिदर, फ़ा० पिता।
पीर, फ़ा० गुरू। १३-११५
पीरन, सिं० ईश्वर।
पीरी, सिं० परमेश्वर।
पुंज, ढेरी, समूह।
पुनि, पुण्य। १८-४
पुणग, जै० बूंद।
पुरवै, सम्पूर्ण करै।
पुरातन, प्राचीन, अगला।
पुलक, हर्ष, खुशी।
पुहप, जै० पुष्प, फूल।
पूंगी, प्रारब्ध।
पूगना, जै० पहुंचना।
पूता, पवित्र।
पूर, नदी का चढ़ाव, धारा।
पूरणहारा, इच्छाओं का पूर्ण करने वाला, अन्नदाता।
पूरिक पूरा, पूर्ण करने वाला, पालन करने वाला, राज़िक।
पेड़ाइत, जै० पीड़ा देने वाले, दुष्टजन, (१२—६८)।
पेया, सिं० पड़ा।
पेरे, गु० तरह, रीति, भांति।
पेलना, ढकेलना, त्यागना, दौड़ना।
पेली, गु० परली, उसपार।
पेषना, देखना।
पेही, सिं० पीव।
पैंड़ा, पं० रास्ता, राह, मार्ग, सफ़र।
पै, पर, परंतु (पद २६६) अमृत (४-३४०)।
पैका, सिं० कौड़ी, पैसा १३-१११, अनायास २२—२०
पैसना, पैठना, प्रवेश करना।
पोच, पोला, कायर, दुर्बल, हीन।
पोटा, गठरी, बोझ (२५-७६)।
पौढ़ा, प्रौढ़, युवावस्था से पूर्व।
प्यंड, पिंड, शरीर।
प्रतिपाल, रक्षा।
प्रतिबिंब, छाया, परछाहीं।
प्रीतड़ी, प्रीति।
प्रभास, प्रकाश, तीर्थस्नान।
प्रवांण, प्रवाच, प्रसिद्ध रूप।

फ

फंध, फंदा, जाल।
फ़क़ीर, फ़ा० वैरागी, उपराम।
फाटिक, स्फटिक, बिल्लौर।
फ़र्मान, फ़ा० हुक्म, आज्ञा।
फ़ारिग़, फ़ा० मुक्त, निस्पृह।
फाल, फलांग।
फ़िल, फ़ा० बख़्शीश, कृपा।
फुनि, पुनः, फिर।
फुनिग, सर्प (शब्द ४१६)।

फूल्यौ, जै० फूला, आनंदित ।
फोक, खोखला, सार निकाले पीछे जो गाद रहे, निस्सार । १६–१२६

ब

बंटै, बांटै ।
बंद, ठिकाना ।
बंसा, बांस
बकसना, क्षमाकरना, देना ।
बग, बक, बगुला पक्षी ।
बगनी, अमली, नशेबाज़ । १३–१११
बच्छ, वत्स, बछड़ा ।
बजारी, बाज़ारी, झूंठे ।
बटपार, ठग, डकैत ।
बटाऊ, पथिक, राहगीर ।
बणिजना, बेचना ।
बदकार, फ़ा० दुराचारी ।
बधना, बढ़ना, ।
बधाये, बढ़ाये, बधाई, मंगलचार ।
बनराइ, वृक्ष, बेलड़ी ।
बपु, स्वरूप ।
बेमेक, विवेक, विचार ।
बर, श्रेष्ठपदार्थ ।
बरण, रंग, जाति भेद ।
बरत, मोटी रस्सी जिस पर नट नाचते हैं ।
बरदा, फ़ा० आदमी, मनुष्य, (शब्द ८३) ।
बरबरि, बराबरि, समता ।
बरियां, समय, सायत, वक्त ।
बलाय, आफ़त, बैरी, दुर्घटना, भूत प्रेत ।
बलिजाऊं, अपने आपको अर्पण करूं ।
बलि बलि वारणे, निछावर, भेट ।
बलिया, बलवान, सामर्थ ।
बस्त, बस्तु, चीज़बस्त ।
बसाइ, बस, ज़ोर, उपाय ।
बहनड़ी, बहन ।
बहाय, फेंकना, जलमें बहादेना, भुलाना, भटकाना ।
बहिया, बहता ।
बहिश्त, फ़ा० स्वर्ग ।
बहोर, समय, काल (३५–३४)
बांडी, दुहागणी, स्त्री जिसका पति तिरस्कार करै ।
बांबी, सर्प का बिल ।
बाकुला, छिलका, बुकला ।
बाचाबंधी, गूंगे, बचन रहित, पशू ।
बाछ, बछरा, वत्स, पुत्र । १–१५३ ।
बाजी, माया, इंद्रजाल ।
बाजींद, बाजीगर ।
बाझै, लिपटै, लिपायमान हो ।
बाट, राह, गैल, मार्ग ।
बांट्या, बांटा ।
बाण, तीर, बान, आदत ।
बाणक, मेल, संयोग, चारपाई की बिनावट, आरंभ ।

बाणि, आदत, बात।
बाद, व्यर्थ, बेफायदा।
बाना, बनाव, भेष।
बापुड़ा, बापुरा, जै० मूर्ख, बेचारा, दीन, ग़रीब।
बाय, वायु, पवन।
बार, समय, ढील, फेर, देर।
बारेंण, गु० दरवाज़े पर।
बारहबाट, सर्व प्रकार से।
बाव, वायू।
बासिग, बासुकि नाग, पद २२६।
बावना, बोना, उगाना, वृक्ष लगाना।
बासदेव, अग्नि।
बासन, बर्तन, पुरुष।
बाहना, जोतना, फैंकना, सींचना।
बाहर, कुमक, मदद।
बाहि, डाल दे, फेंक दे।
बाहिरा, वायु, पवन, आंधी (१५–१०७)।
बाहिश, गु० छोड़ कर, जुदा करके।
बाहुड़ना, पीछे आना, बहुरना।
बाहै, बहकावै। १२–८३, १०–१२१।
बिकट, कठिन, दुस्कर।
बिकसना, फूलना, खिलना।
बिकृत, बिरूप, भयानक।
बिगास, बिकाश, खिलना, खुशी।
बिगोया, भ्रष्टकिया, मोह्या। १२–११०,
बिघ, भेड़िया। ४–३४७
बिच, बीच, मध्य।
बिछटौं, बिछड़ौं, अलग हों।
बिछोह, बियोग, जुदाई।
बिटंब, गु० बिटम्बण, बिडम्बना, दुःख, बेइज़्ज़ती, १२–१०९,
बिड़द, गु० बिरद, प्रतिज्ञा। ३–५४
बिडारण, तोड़ने वाला, नाशकर्त्ता।
बितड़ना, बांट देना।
बिथा, दुःख, दिक्कत।
बिनांनीं, बिज्ञानी।
बिमल, निर्मल, पवित्र।
बिमांसण, पछितावा, दुःख, कसौटी (शब्द १५८)।
बिया, गु० बीजा, दूसरा।
बिरचे, निराला होय।
बिरष, जै० वृक्ष, पेड़।
बिरह, इश्क़, भक्ति, मुमुक्षता।
बिलसना, भोगना, आनंदित होना।
बिलाई, बिल्ली, अविद्या।
बिषम, कठिन।
बिषहर, बिषवाले जीव।
बिसमिल, फ़ा० घायल।
बिसाहना, ख़रीदना, मोल लेना।
बिहड़ै, बिछुड़ै, छूटै, जुदा हो।
बिहरना, हरलेना, चीरना, फाड़ना।
बिहाय, व्यतीत हो।

बिहावणी, गु० भयानक (पद २५३)।
बिहूणां, जै० रहित, बिना ।
बीछूट्या, बिछड़ा, जुदा हुआ
१०—१२६, २५—५५ ।
बीज, बिजली, तड़ित, फलके दाने ।
बीजौ, गु० दूसरा ।
बीष, कदम भर ।
बूझ, समझ, बुद्धि, ज्ञान ।
बूड़ै कालीधार, सर्व प्रकार से नाश हो।
बेगर, बेगर्ज़, विरक्त ।
बेगा, जै० जल्दी ।
बेगाना, बिराना, पराया ।
बेद, गु० व्यथा, क्लेश ।
बेदन, क्लेश, दुःख ।
बेदिल, फ़ा० कठोर हृदय ।
बेपरवाह, स्वतंत्र, बेगर्ज़ ।
बेमिहर, फ़ा० कठोर हृदय ।
बेली, गु० मित्र, रक्षक, सहायक ।
बेसास, विश्वास ।
बैसणौ, बैठने का स्थान ।
बैसना, बैठना ।
बोध, ज्ञान, समझ ।
बोहिथ, जहाज़, नाव ।
बौरावना, धोखा देना, फुसलाना ।

भ

भंजन, वर्तन ।
भरांति, भ्रांति, भेदभाव, परहेज़ ।
भरमाड़, गु० भ्रमाओ ।
भलका, बांण, तीर, भाला ।
भवन, भुवन, लोक ।
भांडा, बर्तन ।
भांवता, अनुकूल, प्यारा, यथेष्ट ।
भाग, हिस्सा, प्रारब्ध ।
भाजन, बर्तन ।
भान, भंजन करना, तोड़ना ।
भानण, तोड़ना ।
भामिनी, सुंदरी ।
भाय, भाव, स्थिति, प्रकार, तरह ।
भाव, श्रद्धा, रुचि, आदर, सत्कार, प्रेम ।
भावठी, भट्टी ।
भावे, चाहै, रुचै ।
भाह, जै० दाह, अग्नि, जलन ।
भिरे, फेरे ।
भीटना, जै० छूना ।
भीड़, तकलीफ़, दुःख, मुसबित ।
भीना, भीगा, गीला, गलतान ।
भीर, पक्ष, तर्फ, साथ ।
भुइ, धरती ।
भुरकी, चुटकी, मंत्रप्रयोग ।
भुवंगम, सर्प ।
भूचना, लूटना, चाहना ।
भूधर, राजा, गिरिधर । पद २८५
भेद, रहस्य, तात्पर्य, फर्क, आशय, ठिकाना, पता ।

भेरा, नाव, किश्ती।
भेरि, शहनाई का बाजा, दुंदुभी, पपीहरा (१२-१४)।
भेल, गु० झमेला, (शब्द १५६)।
भेलना, मिलाना।
भेल सभेले, मिले मिलाये, वेतरतीब, भेष, बाना, पहराव।
भोमि, भूमि, पृथिवी, धरती।
भोरे, सिं० टुकड़े।
भोरैं, जै० भूलसे, भोलेपन से, व्यर्थ, अकाज।
भौ, भव, संसार।
भौरौ, जै० भोला, मूर्ख।
भृंगी, लखोरा, कीड़ा।

म

मंछर, मत्सर, अहंकार। २३-५
मंझ, सिं० कमर, (३१-७)।
मंझारि, भीतर।
मंडल, आकाश, कुंडल।
मंत, महंत।
मगहर, मघापाटी खेत जो काशी के समीप गंगा पार है। १६-५३
मधु छानै (१२-४३)।
मड़हट, मरघट, शमशान। १०-९८
मड़ा, घायल।
मणके, माला के दाने, गुरिया।
मति, नहीं, बुद्धि।
मदीठ, देखने के अयोग्य, (२४-२६)
मध्य, बीच, निर्पक्ष।
मधि, बीच, अंदर, मध्य।
मनमुषी, मनमानी, यथेष्ट।
मनष, जै० मनुष्य।
मनसा, इच्छा, आकांक्षा, ख्वाहिश।
मनामनी, जै० मन की स्फुरता, मनमानी, मेरीतेरी, अहंभाव (२३-३३)।
मनिषा, जै० मानुषी।
मनी फा० मन की कल्पना, खुदी, आपा, २३-३३, शब्द ७०।
मने, गु० मुझ को।
मर्कट, बंदर (१२-३६)।
मर्दन, फा० मसलना।
मर्म, हृदय, भेद।
मरकत, मणी विशेष, पन्ना।
मरजीवा, मुक्त, माया से निवृत्त।
मलूं, गु० मिलूं।
मसकीन, फा० दीन, गरीब।
मसाइक, मूसा के अनुयायी। १४-३३।
मसान, शमशान।
मसि, दवात।
मसीत, मसाजिद, मुसलमानोंका मंदिर १६-५२, ४-२२९।
महबूब, फा० प्यारा। २०-३।
महिमाय, देवी।
महियल, धरती वाले, पद १९७।
मां, जै० में
मांडी, जै० आरंभ की, लगायी, मुकर्ररकी
मांजर गु० बिल्ली, मार्जार।

मांझी, घोर, कठिन।
मांदल, पखावज, ढोलक।
मांहिले, जै० भीतर के।
माहैं, जै० भीतर, अंदर।
मा, गु० मत, नहीं।
माणस, जै० मनुष्य, आदमी।
माता, मग्न, रत।
मादर, फा० माता।
माधइयो, गु० माधव, विष्णु, कृष्ण, पद २८५।
मानसरोवर, एक झील। ४–७।
माबूद, फा० ईश्वर।
माय, अमाय, समाय।
मारिया, जै० मारा।
मारे, गु० हमारे।
माषण, मक्खन, नवनीद।
माहरो, गु० हमारा।
माहवो, गु० महीना, मास।
मिहीं, सूक्ष्म, बारीक।
मिट्ठा, पं० मीठा।
मित, परिमाण, अंदाज़, हद्द।
मिल्या, जै० मिला।
मिलवो, मिलावो।
मिहर, फा० कृपा, दया।
मींडक, जै० मेंडक।
मीत, मीच।
मीनी, मिन्नी, बिल्ली। ४–३४७
मीर, फ़ा० सरदार।
मीरां, फा० सर्दार, मालिक।
मुआ, मरा।
मुई, फ़ा० खुदी, आपा। १३–१९।
मुकते, बहुत, काफ़ी।
मुक्ता, मुक्ष, जीवन मुक्त, मोती।
मुक्ताहल, मोती।
मुक्ति, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारुप्य।
मुग्ध, मूर्ख, भोला, अज्ञानी।
मुरदन, फ़ा० मारना।
मुर्सद, मुरशद, फा० पीर, गुरू। १३–११५।
मुलकत, मुसकराना।
मुल्लां, फा० मुसलमानों का पुरोहित।
मुष्ठी, मूठी।
मुसल्लम, फा० मज़बूत।
मुहरा, जहर मुहरा।
मुंहिडे, पं० मेरे।
मूंगी, हरा, मूंग की सी हरियाली।
मूवां, जै० मरेपर।
मूकी, गु० छोड़कर, मुकवुं = छोड़ना, त्यागना।
मूठि, मुष्ठि मुट्ठी।
मूये, मरे।
मूर, मूल, कारण।
मूस, गु० मूष=चुराना।
मेदनी, दुनियां, जगत, लोग।
मेर, पर्वत, पहाड़।

मेलना, गु० फेंकना, छोड़ना, डालना, त्यागना।

मेल्या, जै० धरा, रक्खा।

मेलवूं, गु० छोड़ना।

मेल्हना, डालना, देना।

मेहर, फा० करुणा, दया।

मैं, ममभाव, अहंकार। ४--४४, २३-३४

मैंगल, गु० मस्त हाथी।

मैंड, मेढ़, राह, मर्यादा।

मैंडा, पं० मेरा।

मैंणीं, जै० मैंनें=भीतर, १२-७८

मैमंत, मस्त, मतवाला।

मोट, गठरी।

मोटा, बड़ा उमर में।

मोमिन, कोमल हृदयवान।

मोहब्बत, फ़ा० प्यार।

मौजूद, फा० हाज़िर।

मृतक भोजन, मांगा पदार्थ (१९-२७)

मृत्तिका, मट्टी, धर्ती।

य

यक़ीन, फ़ा० विश्वास, भरोसा, निश्चय।

यूं, जै० इसतरह।

येणे, गु० इसको।

यौं, जै० इस तरह।

र

रजनी, रात।

रज़ाय, रज़ा, इच्छा।

रतिवंती, प्रेमी। २-२

रती, प्रीति, चाह (३४-१९)।

रब, फ़ा० परमात्मा। ३-५८

रबाणी, सिं० रबका, परमेश्वर का।

रमना, खेलना, भजन करना, (पद ३०)।

रमाड़ गु० खिलाड़ी; (शब्द १५४)।

रमाडे, गु० रमावे, खिलावे।

रली, इच्छा, आशा।

रवल्यौ, गु० भटका।

रषपाल, रक्षक, पालक।

रष्या, रक्षा, परवरिश।

रसन, जाप।

रसना, जीभ, ज़ुबान, स्वाद इंद्रिय।

रसातल, लोक।

रहणि, चाल, आचरण, रीति। १६-१८

रहबा, रहना।

रहमान, परमेश्वर।

राच, रचना।

राज़िक, फ़ा० जीविका देनेवाला, परमात्मा। १९-२०, ५४।

रातामाता, मग्न, रतहुआ, मस्त।

रामरस, अमृत, ब्रह्मानन्द।

रामति, रमन, फिरना, बिचरना।

रावंत, सूरबीर।
रासि, राशि, ढेरी, गु० संग, संबन्ध।
रिंद, फ़ा० स्वेच्छाचारी, जो शरा को न माने।
रिज़क, फ़ा० जीविका, रोटी। १६–२०
रिदै, हृदय, दिल।
रिपु, बैरी, शत्रु।
रीगे, जै० रहि गये।
रीझना, प्रसन्न होना।
रीता, ख़ाली।
रुडूं, गु० भला, उत्तम, श्रेष्ठ।
रुति, गु० ऋतु, मौसम (१६–२७)।
रूंषडा, जै० वृक्ष, पेड़ (३६–७)।
रूह, फ़ा० मन, आत्मा।
रोज़ा, फ़ा० मुसलमानों के व्रत, उपवास।
रोपना, लगाना, जमाना, गाड़ना।
रोष, रीस, ग़ुस्सा।

ल

लंगर लोग, ख़ुशामदी, चापलूस। १३–६
लधा, सिं० लद्धा, पाया (३१–७)।
लषना, समझना, देखना।
लहना, प्राप्तकरना, लेना।
लहुरा, छोटा उमर में।
लांबी, अधीरता, अस्थिरता, बे सबरी।
लाइ, लपट, अग्नि।
लापर्दे, फ़ा० पर्दे बिना, खुला।
लाया, लगाया।
लार, जै० पीछे, साथ।
लावै, लगावै।
लहड़ा, गु० लाहा, लाभ (शब्द ८३)।
लाहा, लाभ, ब्याज।
ली, जै० गी, (शब्द ४२९)।
लीधुं, गु० लिया (सं० लब्ध)।
लीन, एकरस, मिलाहुआ।
लुब्ध, इच्छा, १२–३२।
लेवाड़, गु० लेनेदे।
लै, सुरति, दृष्टि, लय।
लोई, लोगौ।
लोका आवटकूट, लोकाचार, उत्पत्ति प्रलय। १३–१४५
लोचन, नेत्र, आंख।
लोय, लोक में।
लोहरवाड़ा, ग्राम विशेष टौंक राज्य में। १२-६८
लौरूं, पत्नी।
ल्यौ, जै० लय, वृत्ति, दृष्टि, सुरति।

व

वंजणा, पं० जाना।
वंजाइ, सिं० त्याग।
वंडना, पं०, सिं०, बांटना। ३–६०
वज़ू, फ़ा० हाथ मुंह धोना नमाज़ के लिये।
वण, गु० बिना।
वत्तां, सिं० फिरूं मैं।
वतैं, सिं० फिरता है तू (४–२२–, २४)।

वली, गु० भी, और भी ।
वां, जै० वहां ।
वांछनां, चाहना ।
वांडी, दुहागर्णा स्त्री जिसका पति तिरस्कार करे ।
वाट, गु० राह ।
वाटड़ी, गु० बाट, राह ।
वायक, वाक्य, बचन ।
वार, निछावर, देरी ।
वारणै, वारी, बलिहारी ।
वारे, गु० बचाये ।
वाल्हा, गु० पीव, पति ।
वाहला, गु० प्यारा, प्रीतम ।
विगति, चाल, लीला, कृत्य ।
विलूधा, गु० विलुब्ध ।
विरकत, गु० विरक्त, त्यागी ।
वीनवै, गु० प्रशंसा करै । पद १६६ ।
वेगलो, गु० जुदा, अलग ।
वेदन, पीड़ा, दर्द ।
वेला, पं० समय, वक्त ।
वेलो, गु० समय, वक्त ।
वेहला, गु० जल्दी ।
वै, जै० वह ।
वैली, जै० इस ओर, उरली तरफ़ ।
व्याधी, रोग, बीमारी ।

श

शब्दी, शब्द मात्र का उच्चारण करने वाला, अर्थ न जानने वाला ।
शहीद, फ़ा० धर्म पर प्राण देने वाला ।
शिष्ट, श्रेष्ठ ।
शील, राग द्वेष रहित, स्वभाव ।
शून्य, द्वैत शून्यरूप ब्रह्म, अद्वैत ब्रह्म । ४-५० ।
शोधन, गु० खोजना, शुद्ध करना, पता लगाना ।
शोर, फ़ा० शब्द, हल्ला ।

ष

षजीना, खज़ाना, धन, भंडार ।
षटदर्सन, छः भेष साधुओं के ।
षड़भड़, गड़बड़ ।
षबर, फ़ा० हाल, समाचार ।
षय, क्षय, जीर्ण, नाश ।
षर, फ़ा० गधा ।
षरा, सच्चा ।
षाड़ाबूजी, खाड़ाबूरी, गढ़े में छिपायी या दबायी हुई, गुप्त वा धोखे का काम वा वस्तु, (१२-६८) ।
षाधी, गु० खाई ।
षान, फ़ा० सरदार ।
षालिक, फ़ा सिरजन हार, ईश्वर, कर्त्तार ।
षिण, क्षण, पल ।
षितमतगार, फ़ा० सेवक ।
षिरना, गलकर, घिसकर या सड़कर झरना ।
षिलषाना, खिलवत खाना, पोशीदा जगह, निजस्थान ।

षीन, क्षीण, दुर्बल।
षीर, क्षीर, दूध।
षीला, जै० खूंटा, कीला।
षुध्या, जै० क्षुधा, भूख।
षुरदन, फ़ा० खाना।
षूदन, रौंदन पैरों से।
षूटना, जै० कम पड़ना, घटना, समाप्त हो जाना।
षुट्या, गु० घट गया।
षूटीपूगी, जै० प्रारब्ध का क्षय (१३-३४)।
षूब, फा० श्रेष्ठ, परमात्मा। २०-३
षूह, पं० कूआ। पद ४२१
षेंदाना, जै० भेजना।
षेतरपाल, जै० भैरवादि देवी देवता।
षेम, क्षम, रक्षा।
षेवट, मल्लाह।
षेह, रज, मिट्टी।
षोटां, जै० भटकै, भुलावै।
षोड़श, सोलह, १६।

स

सँकल, ज़ंजीर।
संक्या, शंका।
संधे, जोड़।
संपट, डब्बा, दो पत्थरों का मेल।
संबल, संभल, होशियार, सावधान।
संबाहि, संभाल।
संभार्यो, गु० याद करे, स्मरण करे।
संवारना, संभालना।
संषा, सिंह।
संसा, संशय, संदेह, चिंता, फ़िकर, शक-१-११६।
सकरा, तंग, ओछा।
सगला, सब।
सगुणा, गुण मानने वाला, कृतज्ञ, शुकुर-गुज़ार।
सगाई, संबंध, नाता।
सजीवन, जीता, ज़िंदा, जीवन्मुक्त।
सदईसदा, सदैव सदा, हमेशा।
सदका, निछावर, सख़ावत।
सन, संग, कासन = किस से।
सनेही, स्नेही, मित्र, स्नेहयोग्य, (पद ३५६)।
सपरना, नहाना, स्नान।
सपीड़ा, पीड़ा सहित।
सबल, बलवान।
सबले, सम्पूर्ण, सब।
सबाहणहार, खेंचने वाला।
सभो, सिं० सब।
सभोई, सिं० सब।
समंद, समुद्र।
समता, मन की समावस्था।
समा, गु० समय, काल।
समाई, सहारै, बरदाश्त करै।
सयांणां, होशियार, चतुर, प्रवीण।
सर, तीर, बाण, तालाब।
सर्ग, पुष्प, माला, स्वर्ग।

सरग, स्वर्ग।
सरभर, तुल्यता, बराबरी।
सरना, सिद्ध होना, सुधरना।
सरवर, तालाब, सरोवर। ४-६७
सरवै, देवै, निकालै, सरै।
सरसी गु० सरीखा, सदृश।
सरीषा, समान, सदृश।
सलोना, अच्छा।
सवारथ, स्वार्थ।
ससकना, कांखना दुःख से स्वास लेना। ३-५७
ससिहर, चंद्रमा।
सह, बादशाह, परमेश्वर।
सहज सुंनि, परमात्मा, परमार्थ सत्ता ४-५६।
सहनांण, जै० लीक, निशानी, चिन्ह।
सहस, सहस्र, हज़ार।
साइर, गु० सायर, सागर, समुद्र (पद ६२)।
सां, सिं० से।
सांकड़ो, गु० कठिन, तंग।
सांधना, संधान करना, जैसे कमान पर तीर चढ़ाते हैं।
सांभल, गु० सुनना, संभालना, ध्यान देना।
साकत, विषयासक्त, असाध, मूर्ख, गृहस्थ (१२-९७ १५-७०, १२-६७, १७-१६)।
साचा, सच्चा।
साजना, बनाना, सजावट करना।
साटा, अदल बदल, सट्टा, सौदा।
साटे, बदले।
साड़ना, पं० जलाना। ३-५९
साण, सिं० साथ, मित्र।
साद, गु० स्वाद।
साध, साधन ज्ञान के, साधू
सान्हा, सांधा, लगाया हुआ।
सानै, मिलावै।
साफिल, सफल।
सावति, सावधान, पूरा।
साम्हां, जै० सामने।
सामीप्य, मुक्ति, (ब्रह्म समीप वृत्ति)
सामो, गु० सामने।
सायुज्य, मुक्ति (ब्रह्म में लयरूप)
सार, चलाना, (शब्द ४०१)।
सारंग, मृग, हिरन,।
सारंग प्राणि, विष्णु, धनुषधारी।
सार्दूल, सिंह, शेर।
सारा, भरोसा, सम्पूर्ण, बस। सही सलामत ३-८०
सारूप्य, मुक्ति (चतुर्भुजादि रूप की प्राप्ति)।
साल, कांटा, सार, कपड़ा बुनने का स्थान (पद २६६)।
सालिक, फ़ा० दरवेश, शरापर चलनेवाला।

सालिहां, फ़ा० नेक मर्द।
सालोक्य, मुक्ति (ब्रह्म लोक में वास)
साव, स्वाद।
साषी शब्दी, तोते की तरह शब्द उच्चारण करने वाला, अज्ञानी।
साहिब, परमात्मा।
सिंगी, नरसिंघा, हिरन के सींग का पपीहा।
सिंघोर, नारियल।
सिजदा, फ़ा० दंडवत, प्रणाम, सिर नवाना।
सिध, सिद्ध, सिद्धिवान, महात्मा।
सिफ़ाती, फ़ा० सिफ्तवाला, गुण वाला, विशिष्ट।
सिरजनहारा, सृष्टिकर्त्ता।
सिरजि, जीविका, ज़िंदगी, रोज़ी।
सिरताज, मालिक।
सिरमौर, शिरोमणि। उत्तम, श्रेष्ठ।
सिरोमणि, उत्तम, श्रेष्ट।
सिला, पत्थर की पाट।
सिष्ट, सृष्टि। श्रेष्ट १९—६
सिषर, चोटी।
सिष साषां, चेलों की मंडली १-११५।
सी, जैसी, सदृश।
सींगी, सींगकी बजानेकी पपीहरी २५-११।
सीझना, सुरझना, सुधरना, १३-२७ साजना, बनाना।
सीधा, सिद्धान्न, बना बनाया भोजन १९-३१।
सीदाणी, गु० मुरझाई, कुम्हलाई।
सीर, साझी, शरीक।
सीष, शिक्षा, उपदेश।
सीष्यूं, सीखने से।
सीस नवाइ, चिमगादड़ की तरह उलटा लटकना।
सु, सो।
सुंनि, शांत निर्वाण पद, ब्रह्म रूप (४-५०)
सुंनि मंडल, दशवें द्वार से आगे।
सुकृत, पुण्य।
सुच्या, शौच।
सुणया, जै० सुना।
सुध, शुद्ध।
सुधसार, अमृत सार।
सुधा, अमृत।
सुधि, स्मृति, चेतना।
सुनहा, स्वान, कुत्ता।
सुपिना सुष, झूठा सुख।
सुबहान, फा० बड़ा, उच्च।
सुभाय, स्वभाव।
सुमिरण, ध्यान, माला जाप।
सुयं, स्वयम्, आप ही आप।
सुर, स्वर, बाजा।
सुरता, श्रोता, सुनने वाला।
सुरम, श्रम, थकान (२२-२०,१९-९,२१-११)।
सुरसती, सरस्वती नदी, सुरति, (पद ४०७)।

सुरिजन, परमेश्वर। पद ४१९
सुलछिन, सुलक्षण, उत्तम, श्रेष्ठ।
सुलतान, फ़ा० बादशाह, राजा।
सुलाक, छेद, ज़ख़्म।
सुवटा, सुवा, तोता, पक्षी।
सुवारथ, स्वार्थ।
सुहदा, बेकल।
सुहदायी, सौदायी, मस्त। ३–५८
सुत्र, श्रोत्र, कान।
सूका, सूखा, काल।
सूत, सलाह, मेल।
सूध, सूधा।
सूधा, सहित, सुद्धा।
सूफी, फा० फकीर।
सूबस, उत्तम ध़ास।
सूभर, उत्तम प्रकार से भरा हुआ।
सूर, सूर्य, मुमुक्षु, बीर, साधक।
सूरातन, सूरबीरता, मुमुक्षता।
सूल, पीड़ा।
सूषिम, सूक्षम, महीन, बारीक, छोटा।
सेइ, सेवन।
सेई, वेही, वही।
सेंबल, सेमर का वृक्ष।
सेज्या, सइया, सेज।
सेझा, झरना, पानी का सोत। ४–३१
सेत, खेत, सुफैद। २५–६१
सेरी, रास्ता, खिड़की, मार्ग (२१–२९)
सेल, भाला।
सेवड़ा, भेषधारी, साधु।
सेस, शेष नाग।
सैंदेही, देहीं सहित, सेंदा, जान—
पहचान वाला।
सैन, इशारा, समझ।
सो, से।
सोधना, ढूंढना, जाचना, खोजना, शोधना।
सोधी, सुध, सम्हाल। १–११९
सौं, से।
सौं, गु० शूं, क्या।
सौंज, गु० पूजन, सेवा, आचार,
चाल चलन।
स्थन, थन, स्तन।
स्याबत, साबित, अखंडित।
स्वांगी, तमाशा करने वाला,

ह

हंझ, सिं० संत।
हंदा, सिं० है।
हंसला, हंसवाला।
हजूरी, फ़ा० हाज़िर रहने वाला, मौजूद।
परमेश्वर का ४—२२८
हदीस, हद्द, मर्यादा।
हयात, फा० ज़िंदगी।
हरि, मेंढक।
हलाहल, बिष।
हवे, गु० अब।
हांढना, भटकना।
हाजत, फ़ा० आवश्यकता, ज़रूरत।

हाट, बज़ार।
हाना, जै० हानि, १३–१३८, १८२)।
हाफ़िज़, फ़ा० कुरान को कंठाग्र करने वाला।
हासिल, फ़ा० प्राप्त।
हिक, पं० एक।
हितकारी, मित्र।
हिरस, फ़ा० लालच, राग।
हियड़ा, हृदय, दिल।
हीण, हीन रहित।
हुंण, पं० अब, इसकाल।
हूं, जै० था।
हूं, गु० अग्नि।
हूं, जै० प्राप्ति (पद ३५४)
हूं, जैसे "टारचौ हूं न करै" (पद २९६), गु० मैं।
हूंणां, जै० होना, होनहार।
हेज, गु० प्रेम, प्यार, हेत।
हेम, बर्फ़।
हेल, गु० बोझा।
हेला, जै० हांक, पुकार।
है, घोड़ा।
हैवान, फ़ा० जानवर पशु।
होर, पं० और।
हौं, जै० मैं।
हौंस, चाह, इच्छा, हविस।
हौद, फ़ा० पानी का कुंड। ४–२२८

त्र

त्रय, तीन।
त्रिषा, प्यास।

ज्ञ

ज्ञान गुफ़ा, दसवां द्वार, मस्तक में ध्यानाकार वृत्ति का स्थान।

विज्ञापन ।

स्वामी दादूदयाल की बाणी संपूर्ण अंगबंधू सटीक, जिसको पंडित चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ने अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों से मिलान करके शोधा है और दयालजी के गूढ़ वाक्यों का अर्थ अनेक महात्माओं की सम्मति से टिप्पण में दिया है, सो वैदिक यंत्रालय अजमेर में सुंदर मोटी टाइप में चिकने कागज़ पर छपकर तैयार हुई है। साखी और पदों के प्रत्येक विभाग एक २ पंक्ति में अलग २ स्पष्टरूप से छापे गये हैं, कायाबेली ग्रंथ की संपूर्ण टीका और महात्मा चंपाराम कृत दृष्टांत संग्रह ग्रंथ से उत्तमोत्तम दृष्टांत उचित २ स्थानों पर टिप्पण में धर दिये गये हैं।

दयालजी की बाणी ३०० वर्षों से अधिक समय की बनी है, जिस समय सम्राट अकबरशाह का भारत में राज था तब इसकी रचना हुई थी। तब से अभी तक यह हस्तलिखित पुस्तकों में दयालजी के सांप्रदायिक महात्माओं के हाथों में रही है। यह पहला ही बार है कि पूर्णरूप से टीका सहित संपूर्ण बाणी (साखी और पद) छप कर प्रकट हुई है।

यह ग्रंथ सर्वजनों के पठन योग्य है। अक्षर २ में दयालजी ने आत्मज्ञान और उसकी महिमा दर्शाई है। मनुष्यों के कल्याण के उचित साधन सरल रसीले शब्दों में बताये हैं, जिनके पठनमात्र से मनुष्य प्रेम में मग्न होकर ईश्वर में लयलीन हो जाते हैं। निर्गुण भक्ति, योगादि ईश्वर की प्राप्ति के साधन अनेक भांति से बतलाये हैं, जिनका जानना प्रत्येक मनुष्य को उन्नति के लिये आवश्यक है।

आत्मज्ञान के साथ उस भारी सचाई को बतलाया है, जिससे मनुष्य आपस के विरोध छोड़ कर सब में अपने आत्म को ही देखता है, अर्थात् सर्व को अपनी ही तुल्य मानता है, जहां एक आप ही आप है, वहां वैर विरोध किससे हो। ऐसे अद्वैत ज्ञान को नानाभांति से बतला कर शाह अकबरशाह के दर्बार फतेहपुर सीकरी में दयालजी ने हिंदू मुसलमानों में परस्पर मेल कराया था, जहां राजा भगवंतदास, बीरबल, अब्बुलफ़ज़लादि अकबर-

शाह के मंत्री उपस्थित थे। इसी प्रकार के धर्मोपदेश तथा सामाजिक और व्यावहारिक रीति संशोधन पर पक्षपात रहित निर्भयता से सच्चे मार्ग को दयालजी ने बतलाया है। उन में से अनेक बातें हमारे लिये अब भी उपयोगी हैं।

आत्मज्ञान, धर्मोपदेश, सामाजिक और व्यावहारिक रीति भांति के अतिरिक्त साहित्य का भी भंडार इस पुस्तक में भरा है, भाषा के पुराने रूप, पुरानी बोल चाल, पुरानी लिखावट के अनेक उदाहरण इस बाणी में मिलते हैं, जिन से विज्ञ जन पुरानी हिंदी का व्याकरण बना सकते हैं। यह विषय भूमिका में कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है।

पुस्तक के अंत में विषयानुक्रमणिका (Index) और कठिन शब्दों का कोष (भावार्थ) अकारादि क्रम से दिया गया है। आदि में सूचीपत्र भी रक्खा है। इन से विषय के खोजने में पाठकों को सुगमता रहेगी। पठन पाठन में सब प्रकार की सरलता रक्खी गई है। हस्तलिखित वा कुरीति से छपी पुस्तकों के पाठ में जो कठिनाइयां होती हैं, उन से यह पुस्तक बची हुई है और हम आशा करते हैं कि पाठक जन इन लाभों को अवश्य सराहेंगे।

६६४ पृष्ठ रायल अठपेजी में पुस्तक छपी है। मूल्य इस भांति से रक्खा गया है—

बिना जिल्द बंधी	५)
जिल्द कपड़े की	५॥)
उत्तम antique कागज़ पर दो जिल्दों में	७॥)

तीसरे प्रकार की बहुत थोड़ी पुस्तकें छपी हैं। जिन महाशयों को लेना हो निम्नलिखित पते से मंगालें। मूल्य अग्रिम न आने पर पुस्तकें वी० पी० द्वारा भेजी जायंगी, जिन के लेने के लिये मंगानेवाले की ज़िम्मेदारी होगी॥

चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी—

जोन्हगंज-अजमेर.

॥ पुस्तकप्रशंसापत्र ॥

॥ श्रीरामजी ॥

पंडित चंद्रिकाप्रसादजी त्रिपाठी की संपादित स्वामी दादूदयाल की बाणी हमने आदि से अंत पर्यंत देखी है, पुस्तक अतिसुंदर चिकने काग़ज़ पर मोटे अक्षरों में छपी है और प्रत्येक साखी के पद अलग २ एक २ पंक्ति में रक्खे हैं जिनसे पढ़ने में पूरी सुगमता मिलती है, दयालजी के शब्द बड़े परिश्रम से अनेक प्राचीन पुस्तकों से मिलान करके शोधे गये हैं, हमारी जान में यह पुस्तक सर्व प्रकार से शुद्ध है और पंडितजी की टीका हमारी सांप्रदायिक परिपाटी के अनुकूल है, पुस्तक के आदि में सूचीपत्र और अंत में विषयानुक्रमणिका और कठिन शब्दों का कोष अधिक लगाकर पंडितजी ने दयालजी की बाणी को परमोपयोगी कर दिया है, जिसके लिये जिज्ञासूजन सदा पंडितजी के कृतज्ञ रहेंगे ॥

मिती आसोज बदी ५
संवत् १९६४

द० पंडित नंदराम,
दादूपंथी मसकीनदासौत,
श्री दादू द्वारा, पुण्यधाम नरांणां ॥

स्वस्ति श्रीयुत पंडित चंद्रिकाप्रसादजी ने दयालजी की बाणी बहुत शुद्ध करके छपवाई है, जिस में कठिन पदों के अर्थ संप्रदायी लोगों की रीति से रचे हैं, और फारसी भाषा की साषियों का अर्थ संक्षेप से निरूपण किया है, पंजाबी भाषा सिंधी भाषा की साषी शब्दों का अर्थ भी किंचित् निरूपण किया है, बंबई में, काशीजी में, लाहोर में छपवाई हुई दयालजी की बाणी उन से बहुत शुद्ध पंडितजी ने बड़े परिश्रम से अनेक प्राचीन हस्त लिखित पुस्तकों से मिलान करके चिकने काग़ज़ और मोटे अक्षरों में छपवा कर तय्यार करवाई है ॥

द० पंडित भगवानदास के.

सिद्ध श्री सर्वोपमा योग्य परमविचारवान् परमशांतिवान् पंडित श्री श्री श्री चंद्रिकाप्रसाद को लिखी सूरत से पंडित मोतीरामजी का सत्य राम

बंचनाजी और आपने बड़े परिश्रम से दयालजी की बाणी को छपवाया है स बहुत अच्छा काम किया है अब ग्रंथ अच्छा होगया ॥

मिती चैत्रसुद ७ वार बुद्ध १९६४ द० मोतीराम पांडित,
बेगमपुरा खांगडसेरी, सूरत

स्वामीदादूदयाल की बाणी वेदान्त का उत्तम ग्रंथ है इसे दादूपन्थी महात्मा गुप्त रखने की चेष्टा करते आए हैं, इसी से इसका यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ, अब इस पुस्तक को पांडित चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी, जोन्सगंज अजपेर ने टिप्पणीसहित प्रकाशित करके बड़ा उपकार किया है, कई पुस्तकों का परस्पर मिलान करके आपने यह कार्य्य सिद्ध करपाया है, दादूजी की भाषा पुरानी है, इससे उस का ठीक ठीक भाव सब की समझ में नहीं आता, पंडित चंद्रिकाप्रसादजी ने दादूपन्थी महात्माओं की कृपा से दादूजी के गूढ़ भावों को अच्छी तरह जानकर बड़ी ही योग्यता से इस पुस्तक का सम्पादन किया है, क्लिष्ट स्थलों में टिप्पणियां देदी हैं जगह जगह पर भावार्थ भी समझाया है और दृष्टान्त भी दिये हैं, "बाणी" के अन्त में आपने दादूजी के सबद अर्थात् पद भी दिये हैं, पुस्तक बड़े टाइप में अच्छे काग़ज़ पर छपी है, टीका टिप्पणी नीचे छोटे टाइप में है, पुस्तक के अन्त में विषयों की सूची और कठिन शब्दों का कोश लगाकर पुस्तक सर्वाङ्ग सुन्दर करदी गई है. आदि में आपने जो लम्बी चौड़ी भूमिका लिखी है वह बहुत ही उपयोगी है, इससे दादूजी की भाषा समझने में बड़ी सहायता मिलती है, और साथही पुरानी हिन्दी से सम्बन्ध रखनेवाली कितनी ही बातें भी मालूम होती हैं, यह पुस्तक छः सौ पृष्ठों में समाप्त हुई है. हिन्दी में इसे एक रत्न समझना चाहिये ॥

सरस्वती, भाग ८, संख्या ९, मास सेप्टेम्बर १९०७।

श्रीस्वामी दादूदयाल की बाणी सटीक चन्द्रिकाप्रसादजी त्रिपाठी ने २ साल के परिश्रम से तय्यार करके छपवाई है, जिस उत्तमरीति से पंडित ने इस पुस्तक को सम्पादन किया है उससे हिन्दी और उस के पुराने इतिहास को बड़ी सहायता मिलेगी, यही आदर्श है जिसको सामने रख हिन्दीके अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन होना चाहिये, अपनी ढं

। और भूमिका से आपने दादूजी की बाणी को सब के लिये सुगम
या है, पुस्तक सुन्दर साफ़ चिकने काग़ज़ पर छपी है ॥ भारतमित्र, ३
त १९०७ ॥

"दादूजी की बाणी" का एडीशन यदि कोई सर्वोत्तम हुआ है तो पंडित
द्रकाप्रसादजी त्रिपाठी का किया हुआ है, यों तो दादूजी की बाणी जगह
ह छपी है, काशी नागरीप्रचारिणीसभा ने भी छपाई है, परन्तु वे उत्तम
छपीं पंडितजी की छपाई हुई बाणी शुद्ध रम्य और असलीरूप में है,
ी पुस्तकों के ऐसे ही एडीशन होने चाहियें ॥ विद्याभास्कर, भाग १,
ख्या ८ सेप्टेम्बर १९०७

श्रीमान् महाशय! आप की छपाई पुस्तक श्री श्री १०८ श्रीस्वामी दयाल
महाराज की बाणी पढ़कर बहुत हर्ष हुआ, कृपा करके तीसरे दरजे की
तकों की २ कापियें याने दोनों भाग मेरे पते से वी. पी. भिजावें और
गाड़ी जो पुस्तक प्रकाशित हो उस की सूचना मुझे दीजाय ॥

ता० १३ फरवरी १९०८ द०कुँवर शिवनाथासिंह
शेखावाटी

मान्यवर महाशय ! आपने जो पूर्ण परिश्रम करके श्रीस्वामी दादूदयाल
की बाणी को छापा इसके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं और
र करता हूं कि जैसा आपने लिखा है कि इसकी द्वितीयावृत्ति में
ीजी की जीवनी भी दी जावेगी बहुत जल्दी प्रकाश करेंगे, इसमें जहांतक
ुझ सहायता भी दी जावेगी, जिन दो जिल्दों की न्योछावर ७॥)
ि है उस की दो प्रति अर्थात् चार जिल्दें जिन की कीमत १५) होगी
ा निम्नलिखित पते पर शीघ्र भेजकर कृतार्थ करेंगे । श्रीजी के जीवन-
ु छपजाने की जैसी मेरी उत्कंठा है वैसी ही और भी मेरी कोम के दादू-
तों की होगी और इसके बाबत जहांतक होगा मैं जमायतों में जरूर लिख
के छपाने का उद्योग करूंगा और यथाशक्ति मैं भी सहायता करूंगा।

द० मोतीराम भंडारी
तारीख २७ मार्च १९०८ मलसीसर ठाकुरसाहब का डेरा
श्री चांदपोल बाहर-जयपुर.

LINGUISTIC SURVEY, INDIA.

RUTHFORNHAM, CAMBERLY, SURREY,
England.
5th December 1908.

Dear Sir,

I have to acknowledge with many thanks the receipt of your letter of the 17th November and of the admirable edition of the ग्रंथ of **स्वामी दादूदयाल** which accompanied it. I have already read a good portion of the latter, and congratulate you on having succeeded in bringing out an excellent and well printed critical edition of a work which is of great importance in the religious history of India.

I shall be glad to learn that your well deserving efforts have met with a suitable response, and trust that we may soon see further editions of old Hindi books issuing under your superintendence. Your book should have a large sale amongst the *Dādū Panthīs,* to whom it ought to be invaluable.

Yours faithfully,
GEORGE A. GRIERSON.

To

PANDIT CHANDRIKĀ PRASĀD TRIPĀTHĪ.

DOWLATPUR, P. O. BHOJPUR,
RAI BARELI,
23-7-1907.

My dear Chandrikā Prasāda,

Many thanks for a copy of your *"Swāmī Dādā Dayāl-kī-Bā* The get up is beautiful. The binding is excellent. The introduct is very interesting. You have ably edited the book, and the Hi reading public should feel grateful to you for bringing out a re. a. edition of the *"Bānī"*.

Yours Sincerely,
MAHĀBIR PRASĀD DVIVEDI.